अखिल विश्व के अभ्युदयाभिलाषी

भारत-गणतन्त्र के सर्वप्रथम (भूतपूर्व) राष्ट्रपति

भारतीय जनता के श्रद्धा-केन्द्र

देशरत्न डॉक्टर राजेन्द्र प्रसादजी

के कर-कमलों में

जिनके आदर्श से प्रेरणा और प्रोत्साहन पाकर

बिहार की महिलाएं देशसेवा में प्रवृत्त हुईं

'महिला-चर्खा समिति' (पटना) की ओर से

'बिहार की महिलाएँ'

अभिनन्दन-ग्रन्थ के रूप में

सादर, सविनय,

समर्पित

वक्तव्य

आधुनिक काल में बिहारी महिलाओं के जागरण का इतिहास सन् १९१७-१८ ई० से प्रारम्भ होता है। महात्मा गांधी ने इन्हीं दिनों चम्पारन जिले में वहाँ के निलहे गोरों के अत्याचार से प्रजा की रक्षा के लिए भारत में पहले पहल सत्याग्रह का प्रयोग किया। तब बिहार में पुरुषों की अपेक्षा, सार्वजनिक सेवा के क्षेत्र में, स्त्रियों की संख्या नगण्य थी। पर्दा-प्रथा तो बुरी तरह से सारे बिहार में फैली हुई थी। महात्मा गांधी ने स्त्रियों की यह दशा बहुत निकट से देखी और सार्वजनिक सेवा-कार्यों के लिए नारी-जागरण की आवश्यकता उन्हें तीव्रता से अनुभूत हुई। उन्हीं की प्रेरणा और उनके अभिन्न सहयोगी स्वर्गीय बाबू ब्रजकिशोर प्रसादजी के प्रोत्साहन से बिहार की महिलाओं ने राष्ट्रीय आन्दोलन में उसी समय से यत्किंचित् सहयोग देना प्रारम्भ किया था। सन् १९२० ई० में जब महात्मा गांधी ने असहयोग-आन्दोलन का सूत्रपात किया, तब स्वातन्त्र्य संग्राम में योगदान करनेवाली बिहारी महिलाओं की संख्या पूर्व की तुलना में कुछ बढ़ी। सन् १९३०-३२ ई० के सत्याग्रह आन्दोलन में पर्याप्त संख्या में, बिहारी महिलाओं ने बड़े उत्साह और साहस के साथ महात्मा गांधी के सन्देशों और आदेशों के अनुसार राष्ट्रीय संग्राम में भाग लिया। घर-घर चर्खा और खादी का प्रचार करने, विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार के लिए धरना देने, छुआछूत की भावना मिटाने, मद्य-निषेध आन्दोलन को अग्रसर करने तथा पर्दा प्रथा तोड़ने के कार्यक्रमों में उनकी सच्ची लगन और त्याग-भावना देखकर स्वतन्त्रता-संग्राम के पुरुष सैनिकों को भी बहुत बल और प्रेरणा मिली।

बिहार के नारी समाज का यह अभूतपूर्व नव जागरण, रामगढ़ काँगरेस के समय सन् १९४० ई० में देखा गया, जब कि स्वयंसेविकाओं और अन्य रचनात्मक कार्यकर्त्रियों के रूप में उनकी सेवाओं की सराहना महात्मा गांधी तथा राष्ट्र के अन्य नेताओं ने उदारता से की। किन्तु, महात्मा गांधी तथा पू० राजेन्द्र बाबू जैसे आदरणीय जनों ने यह इच्छा प्रकट की कि नारी-जागरण की इस भावना को बढ़ाने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि रामगढ़-काँगरेस में आयी हुई स्वयंसेविकाओं और महिला कार्यकर्त्रियों के साथ सम्पर्क कायम रखा जाय और तदर्थ पटना में महिलाओं की एक संस्था, सुव्यवस्थित रूप में, चलायी जाय, जो रचनात्मक प्रवृत्तियों को बढ़ाने का कार्य करे। फलस्वरूप, 'महिला चर्खा-क्लास' की सन् १९४० ई० में ही स्थापना पटना में हुई, जिसका नाम सन् १९५१ ई० में 'महिला चर्खा-समिति' हुआ। इसके मूल में महात्मा गांधी और पू० राजेन्द्र बाबू की प्रेरणा तो थी ही, इसके अनुदिन विकास में स्वर्गीय श्रीलक्ष्मीनारायणजी और स्वर्गीय श्रीरामदेव ठाकुरजी के सक्रिय सहयोग और परामर्शों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। सन् १९४० ई० में स्थापना के समय प्रथम सभा की अध्यक्षता स्वर्गीय अनुग्रहनारायण सिंहजी ने की थी। इस ग्रन्थ में अन्यत्र इसका पूरा परिचय दिया गया है। आरम्भ से सन् १९४६ ई० तक पू० राजेन्द्र बाबू इस संस्था के अध्यक्ष रहे। अतः, जब राष्ट्रपति पद से अवसर ग्रहण करके वे मई (सन् १९६२ ई०) में पटना पधारे, तब समिति की महिलाओं ने संचालक-मण्डल की

बैठक कराके यह निर्णय कराया कि पू० राजेन्द्र बाबू को हमलोगों की ओर से एक ऐसा अभिनन्दन-ग्रन्थ, उनकी अठहत्तरवीं जयन्ती के अवसर पर समर्पित किया जाय, जिसमें उनकी प्रेरणा और उत्साह से जाग्रत् हुई बिहारी महिलाओं द्वारा विविध सार्वजनिक क्षेत्रों में की गयी सेवाओं का प्रामाणिक विवरण रहे। तदनुसार, इस ग्रन्थ के प्रकाशन की यथोचित व्यवस्था की गयी। इसके सम्पादन का भार श्रीशिवपूजन सहाय को सौंपा गया। उनकी सहायता के लिए श्रीदिगम्बर झा नियुक्त किये गये। इन दोनों व्यक्तियों ने लेखों और चित्रों के संग्रह तथा अन्यान्य आवश्यक सामग्री के संकलन का प्रयत्न भी बड़ी तत्परता से किया। परिणामस्वरूप, यह ग्रन्थ जनता के समक्ष उपस्थित है। इसके प्रकाशन की व्यवस्था में चर्खा समिति की मन्त्रिणी, श्रीमती सावित्री देवी और संचालिका, श्रीमती मनोरमा श्रीवास्तव का उत्साह उल्लेखनीय है।

समिति की कार्यकर्त्री महिलाओं की इच्छा के अनुसार ही इस ग्रन्थ का नाम 'बिहार की महिलाएँ' रखा गया है। उनकी यह आन्तरिक श्रद्धा रही कि हम बिहारी महिलाओं को समाज सुधार और देश-सेवा के पथ पर अग्रसर होने के लिए प्रेरणा प्रदान करनेवाले पू० राजेन्द्र बाबू को हमलोगों की बहुमुखी उन्नति और प्रगति का विस्तृत विवरण ही प्रकाशित करके अभिनन्दन-ग्रन्थ के रूप में अर्पित किया जाय।

हिन्दी संसार में अबतक अभिनन्दन-ग्रन्थों की परम्परा में ऐसा कोई नवीन उद्योग सम्भवतः नहीं हुआ था। इसीलिए, चर्खा-समिति की महिलाओं का प्रस्ताव मुझे भी बहुत पसन्द आया। इसमें वैदिक युग से आधुनिक युग तक की बिहारी महिलाओं के सम्बन्ध में वास्तविक अधिकारी व्यक्तियों के प्रामाणिक लेख प्रकाशित किये गये हैं। राजनीति, समाज, शिक्षा, धर्म, साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में बिहार की महिलाओं ने जो सेवा और प्रगति की है, उसका विवरण सुयोग्य एवं विश्वसनीय व्यक्तियों द्वारा इस ग्रन्थ में उपस्थित किया गया है। मेरी राय है कि भारत के प्रत्येक राज्य की महिलाओं के सम्बन्ध में ऐसा ग्रन्थ तैयार होना चाहिए, जिससे भारतीय नारी-समाज के जागरण का इतिहास भारतीय साहित्य में सञ्चित हो जाय। जिन महानुभावों ने इस ग्रन्थ के लिए विद्वत्तापूर्ण निबंध लिखने की कृपा की है, उनके प्रति मैं सादर आभार प्रकट करता हूँ। जिन सज्जनों ने इस ग्रन्थ में किसी प्रकार की भी सहायता की है, उनके सहयोग का आदर करते हुए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन का उद्देश्य तभी सिद्ध होगा, जब नारी-समाज में इसका प्रचार बढ़ेगा और इसमें प्रकाशित विद्वानों के बहुमूल्य विचारों पर महिलाएँ यथेष्ट ध्यान देंगी। आशा है कि इससे समस्त भारतीय महिला-समाज को एक नयी प्रेरणा मिलेगी।

पटना   जयप्रकाश नारायण

२.११.६२

सम्पादकीय निवेदन

भारतीय जनता के हृदय-सम्राट् पूज्यवर राजेन्द्र बाबू भारत गणतंत्र के सर्वप्रथम राष्ट्रपति का सिंहासन छोड़कर अब भारतवासियों के हृदय सिंहासन पर विराजमान हैं, जिसपर उनका ऐकाधिपत्य राष्ट्रपति होने से पहले भी था और राष्ट्रपति रहते समय भी बना रहा। उस सिंहासन से यह सिंहासन बहुत बड़ा और बहुत ऊँचा है। उस सिंहासन पर कालक्रम से बहुतों का अधिकार होगा या होता रहेगा, परन्तु इस सिंहासन का ऐसा अजातशत्रु और आदर्श उत्तराधिकारी अब कोई शायद ही नसीब हो, क्योंकि यह अधिकार विश्ववन्द्य अवतारी महापुरुष महात्मा गान्धी के तप पूत हार्दिक आशीर्वाद का मूर्त रूप है।

मेरा अहोभाग्य है कि ऐसे देवोपम व्यक्तित्व की अभ्यर्थना करने के निमित्त प्रकाशित इस अभिनन्दन ग्रन्थ के सम्पादन का सुयोग मुझे सुलभ हुआ, जिसका सारा श्रेय 'महिला-चर्खा समिति' के अध्यक्ष श्रद्धेय श्रीजयप्रकाशनारायण जी को है। उन्होंने जिस समय इसका सम्पादन भार मेरे दुर्बल कन्धों पर न्यस्त किया, उस समय तो अपना परम सौभाग्य समझकर मैंने उनके प्रेमपूर्ण अनुरोध को शिरोधार्य कर लिया, पर जब इस सत्कार्य का श्रीगणेश करने के लिए इसकी रूपरेखा तैयार करने लगा, तब मेरा मन सहसा कातर हो उठा। कारण, मेरी शारीरिक शक्ति और दृष्टि-शक्ति भी दिन-दिन शिथिल और क्षीण होती प्रतिभात होती है, और इस ग्रंथ में केवल बिहार की ही महिलाओं से सम्बद्ध सामग्री रहेगी, जिसे केवल बिहार के ही लेखक तैयार कर सकेंगे और इस तरह हिन्दी संसार के अन्य साहित्यसेवियों का सहयोग प्राप्त करना असम्भव-सा होगा।

ऐसा अनुभव होते ही मेरे मन में यह भावना जगी कि यह शुभ कार्य भगवत्प्रेरणा से ही मुझे सौंपा गया है और भगवत्कृपा से ही यह सिद्ध भी होगा। कदराया मन इस विश्वास पर दृढ़ हो गया कि भगवान् के भरोसे ठाना हुआ काम अवश्य ही सफल होता है। बस, मैंने इस ग्रंथ की निश्चित रूपरेखा के अनुसार बिहार के अधिकारी लेखकों से, उनकी रुचि और विशेषज्ञता के अनुकूल, लेख माँगना शुरू कर दिया। बिहार के सहृदय विद्वान् साहित्यकारों ने मेरे नम्र निवेदन पर ध्यान देने और उसे सार्थक करने की जो कृपा प्रदर्शित की, उसके लिए मैं उनके प्रति आन्तरिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

इस ग्रंथ की मूल परिकल्पना 'महिला चर्खा-समिति' की संचालिका श्रीमती मनोरमा देवी के मस्तिष्क की उपज है। उन्होंने 'समिति' की अन्यान्य सेविकाओं से सलाह करके जब श्रीजयप्रकाश जी के सामने अपना प्रस्ताव रखा, तब उन्होंने और उनकी सहधर्मिणी श्रीमती प्रभावती देवी ने उसे बहुत पसन्द किया। इसलिए, 'समिति' की सेवा में संलग्न महिलाओं की यह सुन्दर सूझ सबसे पहले अभिनन्दनीय है। इसके प्रकाशन क्रम में उनलोगों का उत्साह देखकर मुझे बड़ा संतोष हुआ है। मेरी इच्छा और सुविधा के अनुकूल व्यवस्था करने में उन

सबकी तत्परता सर्वथा प्रशंसनीय रही। मैं उन सभी देवियों का बहुत आभारी हूँ। 'समिति' के संचालक-मण्डल के सदस्य और केन्द्रीय संसद्-सदस्य श्रीगंगाशरण सिंह से समय-समय पर जो सत्परामर्श मिलते रहे हैं, उनके लिए मैं सधन्यवाद उनका स्मरण कर लेना ही पर्याप्त समझता हूँ।

आरम्भ में श्रीजयप्रकाश जी ने लेख-संग्रह आदि दौड़धूप के बाहरी कामों में मेरी सहायता करने के लिए नवयुवक कवि श्रीरामसिंहासन सिंह 'विद्यार्थी' को नियुक्त कर दिया था। उन्होंने मेरे निर्देशानुसार सामग्री संकलन का काम सावधानी से किया। पर, कुछ महीनों बाद उनके छोड़ जाने पर श्रीदिगम्बर झा बुलाये गये। इनके सहयोग से मुझे काफी सुविधा मिली। ये मेरे बहुदिन परिचित साथी और बड़े ही प्रतिभा-सम्पन्न युवक हैं। ईश्वर की कृपा से ही इनके ऐसा कार्यदक्ष और परिश्रमी सहयोगी मिल गया, नहीं तो यह बेड़ा पार न लगता।

अधिकांश लेखों के संशोधन सम्पादन में जो कठिनाई हुई, उसका वर्णन यहाँ अनावश्यक प्रतीत होता है, यह केवल अनुभवगम्य है। कितने ही विस्तृत लेखों को संक्षिप्त करके मुझे स्वयं दुबारा लिखना पड़ा। किन्तु, मैंने बराबर ध्यान रखा कि किसी की मौलिकता में बट्टा न पड़े। इस बात पर भी ध्यान रखना पड़ा कि एक ही तरह की बात कई जगह दुहरायी हुई न जान पड़े। यह काम अत्यन्त कठिन था, क्योंकि लेखों में विषय विभिन्नता होते हुए भी प्रतिपाद्य विषय लगभग सबका एक ही रंग ढंग का था। तब भी लेखकों के विचारों की क्रमबद्धता को कायम रखने के खयाल से कुछ प्रसंगों की आवृत्ति कई प्रकरणों में प्रकारान्तर से रहने देनी पड़ी। ऐसा इसलिए भी हो गया कि लेखकों के स्वतन्त्र विचार कहीं छेड़े नहीं गये। इतने पर भी इस बड़े ग्रंथ में अनेक प्रकार की त्रुटियाँ रह गयी होंगी, जिनके लिए मेरी अस्वस्थता, साहित्यिक कार्य-व्यस्तता और नेत्रदोष-विवशता ही उत्तरदायी है। अतः, विश्वास है कि मैं ऐसी दयनीय स्थिति में उदारतापूर्ण क्षमादान का पात्र समझा जाऊँगा।

इस ग्रन्थ की सामग्री जुटाने में बड़ी परेशानी हुई। 'बिहार की प्रमुख महिलाएँ' और 'बिहार की धर्मशीला महारानियाँ' स्तम्भों के लिए अनेकानेक पत्र लिखे गये, जो सामग्री ठीक समय पर मिल सकी, वही प्रकाशित की गयी। अखबारों में सूचनाएँ प्रकाशित करने के सिवा, जिनका ठीक पता मालूम था, उन्हें पत्र भी लिखे गये; परन्तु परिचय नहीं आया, अतः जिनके परिचय न दिये जा सके, उनसे मैं क्षमा-प्रार्थना करने को विवश हूँ। पत्राचार और सूचना प्रकाशन से समय पर जो कुछ प्राप्त हो सका, उसी का उपयोग इसमें किया गया। समय भी कम रहने से शीघ्रता और तत्परता के साथ काम करना पड़ा। लेखों का कोई क्रम न बँध सका, क्योंकि एक एक करके लेख आते रहे और उसी सिलसिले से छपते भी गये।

लेखों के संग्रह और सम्पादन में अति व्यस्त रहने के कारण इसके प्रूफ संशोधन का पूरा भार मैंने अपने सुहृद्बन्धु श्री श्रीरञ्जन सूरिदेव को, जो 'साहित्य' के सम्पादन में मेरे

सुयोग्य सहकारी भी हैं, सौंप दिया था। निस्सन्देह, उन्होंने अपना काम बड़ी खूबी और मुस्तैदी से किया। उन्होंने सच्ची लगन से जो परिश्रम किया, वह मेरे परिश्रम से कहीं अधिक मूल्यवान् है; क्योंकि उनका मनोयोगपूर्ण सहयोग यदि सुलभ न होता, तो मेरा सारा परिश्रम व्यर्थ हो जाता। अतः, मैं सच्चे दिल से उनका आभार-अंगीकार करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

इस ग्रंथ की छपाई, सफाई, सुन्दरता आदि में ज्ञानपीठ प्रेस के संचालक स्वामी पण्डित मदनमोहन पाण्डेय की सुरुचि का ही विशेष योग है। बढ़िया छपाई के लिए उनका प्रेस भारत सरकार से पुरस्कृत हो चुका है। उन्होंने स्वाभाविक सौजन्य से इस काम को सँभाला और सँवारा भी। उनके प्रेस को मुझ जैसे अशक्त व्यक्ति के साथ चलना पड़ा। उनकी ओर से सुविधा न मिलती, तो सम्पादन का काम ठीक तरह नहीं निभता। धन्यवाद प्रदान मात्र से उनके सहयोग का सत्कार नहीं हो सकता।

मुझे बड़ा आत्मसंतोष है कि पूज्य राजेन्द्र बाबू को आरा नागरी प्रचारिणी सभा से जो अभिनन्दन-ग्रंथ समर्पित हुआ था, उसके सम्पादन का सौभाग्य भी मुझे प्राप्त हो चुका है और 'महिला-चर्खा समिति' की उदारता से पुनः वैसी ही सेवा का सुअवसर मुझे अनायास उपलब्ध हो गया। यदि मेरी यह तुच्छ सेवा 'हम सबके आराध्यदेव' की किञ्चिदपि तृप्ति का कारण बन सकी, तो मैं अपने को कृतकृत्य समझूँगा। 'समिति' का भी मैं बड़ा उपकृत हूँ, जिसने मेरे जीवन के अन्तिम प्रहर में मुझसे ऐसी सात्त्विक सेवा करा ली, क्योंकि नारी समाज की साहित्यिक सेवा की साध बहुत दिनों से मेरे मन में भी थी, जिसकी पूर्त्ति का माध्यम प्रभु ने 'समिति' को बना दिया।

मैं पुनः इस ग्रन्थ के निर्माता अपने आदरणीय लेखकों के प्रति बार बार कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिनके सहयोग से बिहार की महिलाओं के लिए एक छोटा मोटा आकर ग्रन्थ सा तैयार हो सका। इससे बिहारी महिलाओं की बहुमुखी प्रगति और पुरानी परम्परा का तो परिचय मिलेगा ही, भविष्य में महिलोपयोगी साहित्य तैयार करने की प्रेरणा भी मिलेगी, साथ ही भारतीय महिला संसार का ध्यान भी इसकी उपयोगिता की ओर आकृष्ट होगा।

अन्त में, मंगलानन्दमय परमात्मा से मेरी यही प्रार्थना है कि पूज्यपाद राजेन्द्र बाबू की ऐसी अनेक जयन्तियाँ देखने का सौभाग्य हम सबको प्राप्त होता रहे।

भगवान रोड, मीठापुर, पटना-१
२६-११-६२, सोमवार

शिवपूजन सहाय

विषय-सूची

बिहार की प्रमुख महिलाएँ

बिहार की महिलोपयोगी संस्थाएँ

बिहार की धर्मशीला महारानियाँ

शुभकामनाएँ

RASHTRAPATI BHAWAN
NEW DELHI-4.

राष्ट्रपति भवन
नई दिल्ली-४

November 6, 1962.

I am happy to know that on the occasion of his seventyeighth birthday, a volume containing accounts of the services renderd by the distinguished women of Bihar in the fields of politics, education, social welfare and the like from the oldest times is to be presented to Dr. Rajendra Prasad. This is a fitting tribute to one who has such a long record of Public service in Bihar and in India.
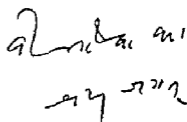
S. Radhakrishnan

(S. RADHAKRISHNAN)

∴

बगाल यात्रा
२२. १०. ६२

'बिहार की महिलाएँ' नामक ग्रंथ जो प्रकाशित हो रहा है, आशा करता हूँ उससे बिहार मे स्त्री-शक्ति जगाने मे कुछ मदद मिलेगी ।

∴

MINISTER OF
TRANSPORT AND COMMUNICATIONS
INDIA

नयी दिल्ली : २२. १०. ६२

महिलाओ ने राष्ट्रीय आन्दोलन और स्वतन्त्रता के बाद देश-रचना के कार्य में योग देकर देश के गौरव को ऊँचा किया है। उनका जीवन-परिचय आनेवाली संतति का मार्ग-दर्शन करेगा ।

ग्रन्थ जनोपयोगी सिद्ध हो ।

जगजीवनराम

Minister of Labour &
Employment and Planning

NEW DELHI
दिनांक २३. १०. ६२

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि महिला-चर्चा-समिति (पटना) आदरणीय डॉ० राजेन्द्र प्रसाद जी को 'बिहार की महिलाएँ' नामक ग्रन्थ, प्रकाशित कर, अभिनन्दन-ग्रन्थ के रूप में समर्पित करने जा रही है। आशा है, समिति इस बात का प्रयास करेगी कि यह ग्रन्थ डॉक्टर साहब के उच्च आदर्शों के अनुरूप हो। समिति के इस प्रयास की सफलता के लिए मेरी शुभकामनाएँ।

गुलजारी लाल नन्दा

∴
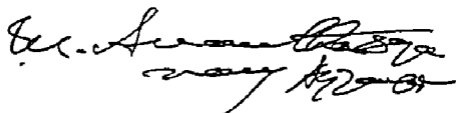
BIHAR GOVERNOR'S CAMP
PATNA
November 9, 1962

Dr. Rajendra Prasad occupies today the position of 'Bhishma Pitamaha' in our country. As a soldier in the freedom fight, he had the opportunity to come into close contact with the Father of the Nation quite early. It was in Champaran, the principle of 'Satyagraha' which was to become a potent weapon in our fight for freedom was first tried. Dr. Rajendra Prasad sacrificed his all in the struggle and underwent untold suffering for the cause of national freedom

When the time demanded that he should shoulder responsibility, he never hesitated. He did so in all humility motivated by a sense of duty to the country. In any task he took up, be it as the President of the Congress, be it as the Central Minister for Food & Agriculture, be it as the President of the Constituent Assembly or be it as the President of India, he brought to bear on his work a great amount of sincerity, and earned the respect and regard of all. He has a smile and kind word to every one.

I pray to God that he may be spared for many more years so that he may be available for advice and guidance to us all.

. Ananthasayanam Ayyangar)
Governor of Bihar

कृषिमन्त्री,
भारत सरकार

नई दिल्ली
नवम्बर १७, १९६२

यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई कि आप 'बिहार की महिलाएँ' नामक पुस्तक देशरत्न डॉ० राजेन्द्र प्रसाद को अभिनन्दन-ग्रन्थ के रूप मे समर्पित कर रहे है। आपने बिहार की नारी से सम्बन्धित सभी समस्याओ को इस ग्रन्थ मे एक स्थान पर सकलित करके भारतीय महिलाओ की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक भावनाओ और आकाक्षाओ को मूर्त्त रूप देने का महान् कार्य किया है। आपके इस सोद्देश्य प्रयास की मैं सराहना करता हूँ और इसकी सफलता की हार्दिक कामना करता हूँ।

रामसुभग सिंह

Governor of Gujrat
सत्यमेव जयते

Raj Bhavan
AHMEDABAD
१३ नवम्बर, १९६२

बिहार इस बात की एक बेहतरीन मिसाल है कि कोई इलाका चाहे कितना ही पिछडा हुआ और अडचनोवाला हो पर किसी महापुरुषो की रहनुमाई और प्रोत्साहन पाकर वह एक महत्त्व का भाग ले सकता है।

मुझे यह जानकर बडी खुशी है कि महिला-चर्खा-समिति, पटना की तरफ से 'बिहार की महिलाएँ' नाम का एक ग्रंथ प्रकाशित किया जानेवाला है, जिसे इस युग के एक महापुरुष डॉ० राजेन्द्र प्रसाद जी को समर्पित किया जायगा।

मैं इस प्रकाशन के लिए अपनी शुभकामनाएँ भेजते हुए खास तौर से समिति को उसके इस उम्दा काम के लिए बधाई देता हूँ।

मेहदी नवाज़ जंग

भारतीय विद्याभवन
चौपाटी पथ, बम्बई-७

दिनांक ३१ अक्टूबर, १९६२

यह जानकर आनन्द हुआ कि भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसादजी को अभिनन्दन-ग्रन्थ समर्पित किया जायगा। आदि वेदकाल से ही बिहार एक धर्म-भूमि की महिमा से मंडित रहा है। पाटलिपुत्र और वैशाली से भारतीय संस्कृति के स्वर्णयुग का प्रवर्तन हुआ है। भगवती सीता की जन्मभूमि बिहार की कोख ने अनेक पौराणिक और ऐतिहासिक गरिमा से मंडित नारी-रत्नों को जन्म दिया है। आधुनिक राज और समाज-सेवा के क्षेत्रों में भी बिहार की नारियाँ अग्रगामिनी रही हैं। अतएव देशरत्न श्रीराजेन्द्र बाबू को उनकी इस मंगल-जयन्ती के अवसर पर 'बिहार की महिलाएँ' नामक अभिनन्दन-ग्रन्थ समर्पित करने का विचार सर्वथा उपयुक्त ही है। आपका यह आयोजन सराहनीय है और मैं हृदय से इसकी सफलता चाहता हूँ।

क० मुनशी
(क० मा० मुंशी)

∴

मुख्य मन्त्री, पंजाब

चंडीगढ़
१५.११.६२

साधुमना देशरत्न डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद भारतीय संस्कृति के मूर्तिमान स्वरूप हैं। उनके जीवन का हर क्षण, राष्ट्र के गौरव को अक्षुण्ण रखने के लिए बीता और बीत रहा है। राष्ट्र-मुक्ति-संग्राम के महान सेनानी, राष्ट्रीय सरकार के मंत्री, संविधान सभा के अध्यक्ष और राष्ट्रपति के रूप में आपने जो परम्पराएँ स्थापित की हैं वे हम सबके लिए अक्षय प्रकाशस्तम्भ का कार्य करेंगी।

अतः प्रत्येक देशवासी से देशरत्न के पद-चिह्नों पर चलने की अपील करता हूँ तथा जगदाधार से उनकी दीर्घायु के लिए कामना करता हूँ।

प्रताप सिंह
[illegible]

शुभकामनाएँ

संसद् सदस्य
(लोकसभा)

राजा गोकुलदास महल, जबलपुर
दिनांक २४ अक्टूबर, १९६२

राजा जनक जो विदेह कहे जाते थे, तथा सती शिरोमणि सीता, जो भारतीय नारी का आदर्श बनी, बिहार की पावन भूमि मे ही उत्पन्न हुए। भारतीयता के प्रतिनिधि रूप मे डॉ० राजेन्द्र प्रसाद जी भी अपने विद्यार्थी जीवन से ही क्या, देश के स्वातन्त्र्य-सग्राम मे क्या, भारत के राष्ट्रपति के रूप मे सदा ही भारत की सस्कृति के प्रतिनिधि और उसके अग्रदूत रहे। इसी प्रकार पतिपरायणा दिवगता श्रीमती राजवंशी देवी ने भी, जो अपने पति के साथ वर्षों भारत के भव्य राष्ट्रपति-भवन मे रही, अपने पति के आदर्शो, उनके आचार और विचारो का तो अनुसरण किया ही, लेकिन इससे भी अधिक उन्होने भारतीय नारी के आदर्श रूप को ही अपने व्यवहार म मूर्तरूप किया, जो उनकी पति-भक्ति के रूप म अपने पति और पुत्र-पौत्रो के सामने जीवन की परिपूर्ण अवस्था मे, जीवन-मुक्ति के रूप मे और मुखरित हो गया। इन सभी दृष्टियो से बिहार के उज्ज्वल यश मे देशरत्न डॉ० राजेन्द्र प्रसाद जी और उनकी दिवगता भार्या श्रीमती राजवशी देवी न केवल बिहार की उर्वरा भूमि के, वरन् समस्त भारत की, दो ऐसी विभूतियाँ, दो ऐसे निष्कलक शुभ्र और उदात्तचरित्र नायक पात्र है, जिन पर हर भारतीय पुरुष और प्रत्येक भारतीय नारी गर्व करता है और गौरवान्वित है। राजेन्द्र बाबू को जन्म देने का और श्रीमती राजवशी देवी जैसी कुलवधू पाने का गौरव बिहार को मिला और इस दम्पति के अनुकरणीय और प्रेरणादायी जीवन की रोशनी सारे भारत म फैली। इसमे बिहार बडभागी है या शेष भारत, यह निर्णय करते वक्त ये पक्तियाँ स्मरण हो आती है—

'गुरु गोविंद दोऊ खडे काको लागौं पाय।
बलिहारी गुरु आपनो जिन गोविंद दियो बताय ।।'

अत बिहार की नारी को जो सदा वन्दनीय रही है, राजेन्द्र बाबू के जन्म दिन के पावन प्रसङ्ग पर उनकी दिवगता भार्या सहित उनकी जन्मदायिनी माता को अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ। साथ ही परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह देशरत्न डॉ० राजेन्द्र प्रसाद जी को शत वर्ष का स्वस्थ एव सुखी जीवन दे जिसमे हम उनसे प्रेरणा एव समय असमय पर प्रकाश और परितोष पाते रहे।

गोविन्ददास

राजकुमारी अमृत कौर
MEMBER OF PARLIAMENT
(RAJYA SABHA)

२, विलिंगडन क्रीसेन्ट
नई देहली-४
२६ अक्टूबर, १९६२

जो भी श्रद्धांजलि हम पूज्य राजेन्द्र बाबू के चरणों में अर्पण करना चाहते हैं, सो उचित ही है।

उन्होंने अपना सारा जीवन देश की सेवा में लगा दिया है और वह नमूना हम सब के अनुकरण के लिए है। आशा है कि श्रीभगवान हम सब पर कृपा रक्खेंगे और उनकी ओर से डॉ० राजेन्द्र प्रसाद जी को शक्ति मिलेगी कि वे वर्षों तक हमारे नेतृत्व के लिए जीवित रहें।

अमृत कौर

∴

खादी ग्रामोद्योग ग्राम-स्वराज्य समिति
(अ० भा० सर्वसेवा संघ)

साधना केन्द्र, राजघाट, वाराणसी-१
२३.१० ६२

समिति का यह ग्रन्थ बिहार की महिलाओं को आगे बढ़ने में और अपना जीवन चरितार्थ करने में दीप-स्तम्भ की तरह प्रकाश देगा। डॉ० राजेन्द्र प्रसाद को दीर्घ आयुष्य और अच्छा आरोग्य प्राप्त हो, यही हमारी प्रार्थना है।

शंकर राव
(शंकर राव देव)

∴

काशी विश्वविद्यालय

१८.१०.६२

बिहार ने देश को एक स्त्री दी—राजर्षि जनक की पुत्री मैथिली सीता और सब कुछ दे दिया। सीता स्त्री-आदर्श में अन्तिम शब्द है। वह नारी-जीवन की पराकाष्ठा है। सीता सचमुच भारतीय पृथ्वी की पुत्री बन गयी। विदेह राजर्षियों ने ज्ञान और कर्म के जिन आदर्शों को प्रतिपालित किया था, वे जनक-वंश की राजकुमारी सीता में साकार हो गये। सीता का चरित्र शतसाहस्री संहिता है। वह ऐसी श्रुति है, जो बिना पढ़े ही सबके हृदय में है। जबतक सीता के चरित्र का अटल सुमेरु विराजमान है, तबतक भारतीय स्त्री की यशोगाथा सब लोक में वन्दनीय रहेगी।

वासुदेवशरण अग्रवाल

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

१६.१०.६२

हमें यह जानकर विशेष हर्ष हुआ कि भारत-गणराज्य के प्रथम राष्ट्रपति महामान्य देशरत्न डॉ० राजेन्द्र प्रसाद जी की ७८वीं वर्षगांठ पर उन्हें 'बिहार की महिलाएँ' नामक प्रकाशन अभिनन्दन-ग्रन्थ के रूप में भेंट करने का निश्चय आपलोगों ने किया है। ग्रन्थ की जो रूपरेखा आपलोगों ने स्थिर की है, उससे यह स्पष्ट होता है कि यह ग्रन्थ बिहार की मातृजाति के सम्बन्ध में विश्वकोश के समान उपादेय होगा। राजेन्द्र बाबू की आपलोगों की ओर से इस रूप में अभ्यर्थना सर्वथा श्लाघ्य है।

जगन्नाथप्रसाद शर्मा
प्रधान मन्त्री

∴

डॉ० नगेन्द्र
एम० ए०, डी० लिट्०

आचार्य तथा अध्यक्ष हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
दिनांक २२.१०.६२

प्रिय महोदय,

पूज्य राजेन्द्र बाबू भारत की पवित्र परम्परा के प्रतीक हैं। राजपद पर आसीन वे राजर्षि रहे और अब ब्रह्मर्षि-पद को प्राप्त हो गये हैं। उनके चरणों में मैं शत-शत प्रणाम निवेदित करता हूँ।

नगेन्द्र

∴

पद्मभूषण
सू० ना० व्यास

भारती भवन, उज्जैन
दिनांक २०.१०.६२

जिस प्रकार बिहार की एक महिला सीता समस्त देश की अभिनन्दनीय है, उसी प्रकार यह रचना राजेन्द्र-अभिनन्दन-ग्रन्थ के रूप में देश-भर में समादर का विषय बनेगी। मेरी शुभकामनाएँ।

सू० ना० व्यास

बिहार की महिलाएँ

(श्रीराजेन्द्र-अभिनन्दन-ग्रन्थ)

जौहर

डॉक्टर श्रीरामधारी सिंह 'दिनकर'; उदयाचल, पटना

जगता तभी जहान,
उसे जब विपद् जगाती है।

हँसी भूल बच्चे चिन्तन करने लगते हैं।
बहनें जाती डूब किसी गंभीर ध्यान में।
कुसुम खोजने लगते अपनी आग,
ऊँघती नदी तेज होकर हहराती है।
पेड़ उठाकर कान प्रलय की चरण-चाप सुनते हैं;
हवा आँकने को भविष्य की आहट रुक जाती है,
आर-पार अम्बर के जब शम्पा चिल्लाती है।

भारत में जब कभी कड़कता वज्र,
सती भामिनियाँ सहसा हो उठतीं निर्मम, कठोर।
दाँतों से अधर दबा,
आँखों का अश्रु रोक,
बलि वेला की आरती, पुष्प, रोली सहेज,
पुरुषों को रण में भेज
चंडिकाएँ सगर्व
सिन्दूर लेप घर-घर उमंग की शिखा सजाती है।

विजयी अगर स्वदेश,
प्रिया-प्रियतम का फिर नाता है।
विजयी अगर स्वदेश,
पुरुष फिर पुन, भिरा माता है।

किन्तु, 'पताका झुकी अगर बलिदान की,
गरदन ऊँची रही न हिन्दुस्तान की,
पुरुष पीठ पर लिये घाव रोते रहें,
आँसू से अपना कलंक धोते रहें।

पर, जातीय कलंक
देश की माताएँ सहतीं नहीं;
परंपरा है, चीख-चीख
वे पीड़ाएँ कहतीं नहीं।

हारे नर को देख
देवियाँ दबी ग्लानि के भार से—
जल उठती हैं, अगर
काट सकतीं न कंठ तलवार से।

नारी

श्रीकेदारनाथ मिश्र 'प्रभात'; ३ हार्डिंग रोड, पटना

किसने देती है ऐसी शक्ति विधानों में
ऐसा आकर्षण मिला किसे उद्यानों में
बरसे जैसा सौन्दर्य तुम्हारी चितवन से
तुम सचमुच हो देवार्ह दिव्य तन से, मन से।
सुख में अनछुई किरन बन सदा झलकती हो
दुख में कोमल आँसू की भाँति छलकती हो।

वह दीपक कैसा, जिसकी स्नेहिल शिखा न हो
जिसके हर कम्पन में अर्पण-सुख लिखा न हो
कैसी निष्ठा जो मरु को सरस हिलोर न दे
उर-उर बँध जाये, ऐसी रेशम-डोर न दे।

तुम जहाँ मधुर हो, वहाँ कोकिला गाती है
तुम जहाँ मृदुल हो, वहाँ चाँदनी भाती है
तुम जहाँ क्षमा हो, गंगा वहाँ उमड़ती है
तुम क्षेमा जहाँ, घटा घनघोर घुमड़ती है।

तुम जहाँ मौन हो, वहाँ सिन्धु की ज्वार उठे
तुम जहाँ मुखर हो, वहाँ वसन्त पुकार उठे
तुम जहाँ स्वप्न हो, छाया वहाँ मचलती है
तुम जहाँ सत्य हो, वहाँ तपस्या चलती है।

तूफानों में तुम झुक जातीं, टूटतीं नहीं
प्यालियाँ छलकतीं भावों की, फूटतीं नहीं।

तुम रहतीं मन के पास कि प्यासा राह चले
तुम रहतीं मन के पास कि तम में दीप जले
तुम रहतीं मन के पास कि पथ भारी न लगे
चन्द्रमा न हो, पर रजनी अँधियारी न लगे।

तुम रहतीं मन के पास कि आँसू आग बने
सम्पूर्ण शून्य दीपित हो, दीपक-राग बने
तुम रहतीं मन के पास कि पृथ्वी खिली रहे
नभ के तारों से हिय की धड़कन मिली रहे।

नक्षत्र व्योम के छन्द-चितेरे झाँक रहे
भू की कविता तुम, नयन भविष्यत् आँक रहे
नर से नारी सेवा के लिए विभक्त हुई
[illegible] बनी जब [illegible] से [illegible] [illegible]।

प्रसाद-प्रशस्ति

श्रीपोद्दार रामावतार 'अरुण'; कवि-निवास, समस्तीपुर (दरभंगा)

जन-गण-भारत के मनु महान
जागरण-काल के महाप्राण
जाज्वल्यमान देशाभिमान पुरुषोत्तम
स्वातंत्र्य - चेतना - इन्द्र - केतु
शुचि योग - भोग - संयोग - सेतु
चिन्तित उन्नत मनुजत्व-हेतु देवोपम !

o

लोचन में नित संस्कृति-प्रकाश
अन्तर में ऋषि-रंजित विकास
पावन'प्रतिपल प्रत्येक श्वास ऊर्जस्वित
करुणाप्रधान अकलुष जीवन
तपसी तन में चिर अरुणिम मन
कर में सदैव कल्याण-सुमन मधुगंधित !

o

गांधी-गुण-भूषित अनुपम नर
जैसा भीतर वैसा बाहर
शिव-रूप सत्य स्वर्णिम सुन्दर अधिनायक
तुम स्वयं देह में ही विदेह
राजर्षि - ऋद्धि में बुद्ध-स्नेह
शीलाम्बर में श्रम-सिद्धि मेह फलदायक !

o

हे ओजस्वी मृदु संन्यासी
नख से शिख तक भारतवासी
दिल्ली-त्यागी काशी ! अर्पित अभिनन्दन
रक्षित तुम से आदर्शवाद
..इतिहास-पुरुष डॉक्टर प्रसाद
करता स्वराष्ट्र निज पूज्यपाद का पूजन !

भारतीय नारी

[वैदिक युग से आधुनिक युग तक : एक सिंहावलोकन]

डॉक्टर (श्रीमती) गीता लाल; पटना कॉलेज

प्रायः सभी प्राचीन सभ्यताओं में नारी की स्थिति अत्यंत शोचनीय रही है, किंतु अत्यंत प्राचीन वैदिक सभ्यता[1] में आर्य नारी की दशा बहुत सम्मानपूर्ण थी। यद्यपि वैदिक युग में, तथा उसके कुछ समय बाद तक भी, पुत्री-जन्म का स्वागत नहीं किया जाता था, फिर भी परवर्ती युगों की भाँति इस युग में कन्या कभी भय का हेतु नहीं थी। पुत्रों की भाँति पुत्रियों का भी उपनयन-संस्कार होता था। उन्हें शिक्षा पाने का अधिकार था। वे विदुषी, दार्शनिक, चिकित्सक, आचार्या तथा नृत्य गान-विद्या में कुशल होती थीं।[2] और, इन साधनों द्वारा आर्थिक स्वाधीनता का भी उपभोग करती थीं। साधारण स्त्री भी कताई बुनाई के द्वारा विपत्ति के दिनों को भली भाँति व्यतीत कर लेती थी। स्त्रियाँ कवयित्रियाँ होती थीं और ऐसी कई स्त्रियों के मंत्र वेदों में सम्मिलित हैं। उच्च शिक्षा सुसंस्कृत एवं धनी परिवारों तक ही सीमित थी, किंतु साधारण घरों में भी कन्याओं को वेद-मंत्रों और प्रार्थनाओं का शुद्ध उच्चारण कंठस्थ कराया जाता था। क्षत्रिय-परिवारों में लड़कियों को सैनिक शिक्षा मिलती थी, जो बाद में भी बहुत दिनों तक दी जाती थी। उनका विवाह पूर्ण-वयस्का होने पर होता था और अपना पति चुनने में उनका कम या ज्यादा हाथ रहता था। प्रेम विवाह के वर्णन भी आये हैं। क्षत्रियों में स्वयंवर की प्रथा थी, जो बारहवीं शती तक प्रचलित थी। संस्कृत के काव्यों और नाटकों में इसका वर्णन आया है।

विवाह को एक सामाजिक और धार्मिक कर्त्तव्य माने जाने के कारण उसकी अनिवार्यता स्वयसिद्ध है, किंतु समाज इस बात पर बल नहीं देता था कि किसी भी मूल्य पर, किसी भी तरह, अच्छा या बुरा विवाह-संबंध होना ही चाहिए। इसके विपरीत वैदिक वाङ्मय में बड़ी उम्र की कुमारियों के वर्णन भी हैं। कुछ स्त्रियाँ आध्यात्मिक उद्देश्य के लिए आजन्म अविवाहित रह जाती थीं। यह परंपरा बाद में बौद्ध और जैन धर्मावलंबियों में भी वर्त्तमान रही। विवाह में दहेज की प्रथा नहीं थी। सम्पन्न परिवारों में जामाता को कुछ उपहार दिये जाते थे। ज्योतिर्विद्या का विकास नहीं हुआ था, अतः विवाह में वर और कन्या की कुंडली मिलाने का प्रश्न ही नहीं था। सगोत्र विवाह नहीं करने की आधुनिक

---

१ डॉक्टर अल्तेकर ने वैदिक युग २५०० ई० पू० से १५०० ई० पू० तक माना है।

२ मैत्रेयी, गार्गी, लोपामुद्रा, इन्द्राणी और घोषा—ये इस युग की अत्यंत प्रसिद्ध विदुषी नारियों के नाम हैं।

प्रथा उस समय नहीं थी। प्राचीन समय में अन्तरजातीय और 'अनुलोम' विवाह भी प्रचलित थे। स्त्रियों के पुनर्विवाह, नियोग तथा विधवा-विवाह भी होते थे। नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ—इन पाँच अवस्थाओं में स्त्री को पुनर्विवाह करने का अधिकार युग-युग—चौथी-पाँचवीं सदी—तक था।[1] सामान्यतः पुरुषों के बहु-विवाह की प्रथा नहीं थी, किंतु व्यवहार में धनियों और शासक-वर्ग में यह प्रचलित था। निर्धन-वर्ग में भी सामाजिक और धार्मिक कार्यों के अवसरों पर पुत्र की अनिवार्यता के कारण बहु-विवाह होते थे।

इस समय पतिता स्त्रियों के साथ उदारतापूर्ण व्यवहार किया जाता था। यदि वे अपना अपराध स्वीकार कर पश्चात्ताप करती थीं और बाद में पवित्र जीवन व्यतीत करती थीं, तो उन्हें सामाजिक और धार्मिक कार्यों में भाग लेने का अधिकार था। इस युग की एक बात और उल्लेखनीय है। यह है, स्त्री और पुरुष का समानाधिकार। दोनों एक दूसरे के मित्र थे, उनके अधिकारों और कर्त्तव्यों में विशेष वैषम्य नहीं था। दोनों संयुक्त रूप से सोमरस निकालते थे, उसे शुद्ध करते थे और पीते थे, एवं यज्ञ, दान तथा देवताओं की स्तुति करते थे। वैदिक शब्द 'दम्पति' का अर्थ है—'घर का संयुक्त अधिकारी अथवा प्रभु।' इस प्रकार, घर पर पति और पत्नी का समान अधिकार था। पति और पत्नी को अभिन्न, एक दूसरे का अर्धांग, पूरक और एक शरीर के दो अंग माना जाता था। अतः, कोई धार्मिक क्रिया दोनों के सहयोग के बिना पूर्ण नहीं मानी जाती थी।[2]

स्त्री और पुरुष का यह समानाधिकार वैदिक विवाह-मंत्रों में भी देखा जा सकता है, जिनमें पति और पत्नी दोनों एक ही शपथ लेते थे। इस युग में, परिणामतः, पुरुष द्वारा स्त्री को शारीरिक दंड देने का प्रचलन नहीं था, न स्त्री को पुरुष के अधीन रहना पड़ता था। इसके विपरीत उसे पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी। वह सामाजिक तथा धार्मिक कृत्यों में भाग लेती थी। पर्दा-प्रथा का उल्लेख नहीं मिलता।

इस प्रकार, वैदिक युग में, और कुछ बाद तक भी, आर्य नारी को वे सभी सुविधाएँ और अधिकार प्राप्त थे, जिनके लिए आधुनिक नारी-आंदोलनकारी जोर देते हैं। उस युग में नारी की इस स्थिति के कई सामाजिक एवं धार्मिक कारण थे। आर्य खेती करते थे। खेती करने और नये नये क्षेत्रों को जीतने के लिए बहुत बड़े परिवार की आवश्यकता थी। फिर, वैदिक आर्य दार्शनिक और मननशील होते हुए भी सांसारिक जीवन में आस्था रखते थे। उन्होंने वर्णाश्रम धर्म की स्थापना की थी, जिसमें गृहस्थाश्रम को अन्य तीनों आश्रमों से विशेष महत्त्व दिया था। गृह-जीवन का केन्द्र तथा खेती और युद्ध के लिए पुत्रों को जन्म देनेवाली और उनका पालन करनेवाली नारी को आर्यों ने अत्यंत सम्मान का पात्र समझा।

---

१. रामगुप्त की पत्नी ध्रुवदेवी का अपने देवर चंद्रगुप्त से पुनर्विवाह ऐतिहासिक घटना है। संस्कृत का 'देवी चन्द्रगुप्तम्' तथा हिंदी का 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक इसी घटना पर अवलंबित हैं।

२. श्रीरामचंद्र को भी सीता की स्वर्ण-मूर्त्ति बनवाकर अश्वमेध यज्ञ पूरा करना पड़ा था।

उन्होंने नारी को संसार-यात्रा की सहचरी और सुख दुःख की संगिनी कहकर एकाधिक बार उसकी अभ्यर्थना की है।

भारतीय नारी वैदिक युग के सम्मानपूर्ण पद पर अधिक दिनों तक प्रतिष्ठित नहीं रह सकी। शनैः शनैः उसकी स्थिति का ह्रास होने लगा और वह सहचरी के महान् पद से दासी के निम्न स्तर को पहुँच गई। इसके सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक कारण थे। उत्तर वैदिक युग में यज्ञों का आडम्बर बहुत बढ़ गया। फलस्वरूप, कर्मकांड में पवित्रता, नियमों और विधियों की जटिलता तथा वेद मंत्रों के शुद्ध उच्चारण की अनिवार्यता हुई। स्वभावतः इसमें विशिष्ट रूप से दीक्षित पुरोहितों को महत्त्व दिया जाने लगा और पत्नियों को यज्ञाधिकार से वंचित किया जाने लगा। यज्ञों में पवित्रता पर अत्यधिक ध्यान देने का यह अर्थ हुआ कि नारी रजोधर्म के कारण भी उनसे बहिष्कृत हुई। आर्यों का अनार्य स्त्रियों के साथ विवाह-संबंध भी उन्हें यज्ञकार्य से बाहर रखने का कारण बना। अनार्य भार्या यज्ञ के नियमों से अपरिचित होने के कारण भद्दी भूलें करती थी। ६०० ई० पू० तक स्त्रियों ने अपने को पूर्ण रूप से यज्ञाधिकार से वंचित पाया। आगे २०० ई० पू० के बाद कन्याओं का उपनयन संस्कार बंद हो जाने पर, और इसीलिए उनकी शिक्षा का महत्त्व कम हो जाने पर, वे वेद पढ़ने के अधिकार से भी वंचित कर दी गईं। यज्ञाधिकार और वेदों के अध्ययन से विहीन होकर इस समय तक नारी शूद्रों के तुल्य समझी जाने लगी।

६०० ई० पू० से ही गौतम द्वारा रजोदर्शन के पूर्व कन्या का विवाह कर देने की व्यवस्था के कारण, और बाद में कुछ आचार्यों द्वारा इससे भी नीची विवाह आयु—आठ वर्ष—की व्यवस्था के कारण भी स्त्रियों की अवस्था में परिवर्तन आया। कन्या की विवाह-आयु घटा दिये जाने के कुछ कारण ये थे—स्त्री की चारित्रिक पवित्रता पर अत्यधिक ध्यान, पुत्र प्राप्ति की शीघ्र आशा, विलासिता और माता पिता की इच्छा के विरुद्ध बालिग कन्या के संन्यासिनी होने की आशंका। आगे बाल विवाह को इस कारण भी प्रोत्साहन मिला कि उपनयन संस्कार बंद हो जाने से कन्याओं की शिक्षा पर कम ध्यान दिया जाने लगा, अतः जब वे बेकार रहने लगीं, तब माता पिता को यह उचित नहीं मालूम हुआ कि उन्हें पंद्रह सोलह वर्ष की अवस्था तक कुमारी रखा जाये। वर्ण व्यवस्था के उप-वर्ग बनने के कारण भी इस रीति को बढ़ावा मिला क्योंकि योग्य वर ढूँढ़ने के लिए क्षेत्र और अवसर अत्यंत सीमित हो गये। सती प्रथा ने भी इसमें योग दिया। यदि पिता की मृत्यु हो गई और माता सती हो गई, तो कन्या की देखरेख करने के लिए पति के रूप में एक अभिभावक मिल जाता था। संयुक्त परिवार की प्रथा भी सहायक हुई, जिसमें परिवार बढ़ जाना—उस हालत में भी, जब पुरुष कमा नहीं रहा हो—बुरा नहीं समझा जाता।

विवाह की उम्र कम हो जाने के कारण कुछ शास्त्रकारों ने, जिन्होंने कन्याओं के लिए उपनयन संस्कार आवश्यक समझा, विवाह को ही उनका उपनयन संस्कार बताया और दोनों में साम्य भी ढूँढ़ निकाला। लड़की की ससुराल ही उसका गुरु-गृह है और उसका

पति उसका गुरु है। इस प्रकार, गुरु-भक्ति, अर्थात् पति-भक्ति का आदर्श स्त्रियों के लिए मान्य हुआ। उपनयन-संस्कार बंद हो जाने और छोटी उम्र में विवाह होने के कारण स्त्री-शिक्षा को गहरा धक्का लगा। अशिक्षित, अनुभव शून्य, डरी हुई, छोटी उम्र की वधू का पति वस्तुतः उसका गुरु हो गया। गुरु का पद पाने पर पति को देवता बनते देर न लगी—गुरु भी तो आखिर देवता की भांति ही पूज्य होता है। गुरु और धार्मिक प्रवृत्ति की बच्चियों द्वारा इसका अक्षरशः पालन किया जाना स्वाभाविक था। शास्त्रकारों ने भी इसमें योग दिया। उन्होंने स्त्री का प्रधान कर्तव्य पति सेवा और पातिव्रत्य बताया। पातिव्रत्य की मूल भावना यह है कि एक बार किसी पुरुष से विवाह होने के बाद उसमें न्यूनताएँ होने पर भी स्त्री को दूसरे पुरुष का विचार भी नहीं करना चाहिए।[1] पति कोढ़ी, क्रोधी, दुःशील, परस्त्री गामी हो, फिर भी पत्नी को चाहिए कि वह साध्वी बनी रहे। स्त्री पति की पूजा करके दुर्लभ स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त कर सकती है। ऐसी अवस्था में विधवा-विवाह की समाप्ति और सती-प्रथा का आरम्भ स्वाभाविक था। इस प्रकार, सतीत्व के एकांगी दृष्टिकोण और नैतिकता के दुहरे मानदंड को भारत में आश्रय मिला। पति पुनर्विवाह, बहु विवाह, परस्त्री गमन, दुराचार, पत्नी का अपमान आदि कोई भी पाप करे, किंतु पत्नी को उसकी पूजा देवता की भाँति करनी चाहिए।[2] पुराणों और महाभारत में ऐसी सतियों तथा पतिव्रताओं के अपूर्व त्याग और शक्ति के समय असंभव आख्यान लिखे गये।[3]

इस प्रकार युग-युग के बाद से स्त्रियों की वश्यता और पुरुषों की प्रभुता सर्वसामान्य हो गई।[4] पुरुष की शारीरिक शक्ति और स्वामित्व की भावना तथा स्त्री की शारीरिक निर्बलता—अतः संरक्षण की आवश्यकता, उसकी आर्थिक पराधीनता और प्रेम में समर्पण-

१ सावित्री में यह आदर्श अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गया। वह सत्यवान को अपना वर चुनती है। बाद, नारद द्वारा यह ज्ञात होने पर भी कि सत्यवान् विवाह के एक वर्ष बाद मर जायगा, सावित्री उसी से विवाह करती है क्योंकि उसने मन से सत्यवान् को अपना पति मान लिया था।

२ गुप्त युग में रामगुप्त की पत्नी ध्रुवदेवी का चन्द्रगुप्त से विवाह इस तथ्य का सूचक है कि गुप्त-युग तक सतीत्व का एकांगी दृष्टिकोण भारत में पूर्णतः स्वीकृत नहीं था। जो नियम स्त्रियों के लिए थे, वे ही पुरुषों के लिए भी थे।

३ इन आख्यानों में सन्देह का अवकाश हो सकता है, किन्तु इन्हें निरन्तर आदर्श के रूप में अपनानेवाली भारतीय नारी पर उनके प्रभाव में शंका नहीं की जा सकती। उसने पातिव्रत्य का पालन अत्यंत विषम परिस्थितियों में, अपने प्राणों को संकट में डालकर भी, किया है। भारतीय नारी ने सीता और सावित्री का आदर्श सदैव अपने सम्मुख रखा है।

४ सीता और शकुन्तला जैसी पवित्र और सती साध्वी नारियों का दृष्टांत इस बात का प्रमाण है कि स्त्रियों पर पुरुषों की 'सर्वतोमुखी' प्रभुता थी। राम ने अग्नि द्वारा परीक्षित सीता को लोकापवाद के भय से हिंस्र पशुओं से भरे वन में छोड़ दिया और दुष्यंत द्वारा प्रत्याख्यान किये जाने पर भी ऋषिकुमार शारद्वत शकुन्तला को राजा की मर्जी पर छोड़कर लौट गया।

यह विभिन्न सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितियों के कारण दिनानुदिन जटिलतर होता गया। विभिन्न विदेशी आक्रमणों के कारण युद्ध और संघर्ष हुए, भारतीयों के मतभेद, वैमनस्य तथा संगठन के अभाव के कारण भारत परतंत्र हुआ और बिलकुल विभिन्न आचार-विचारवाले इस्लाम धर्म के अनुयायियों से बहुत दिनों तक, और बाद में ईसाई धर्मावलंबियों से अपेक्षाकृत कम समय तक, हिंदू धर्म को लोहा लेना पड़ा। परिणाम यह हुआ कि हिंदुओं ने अच्छे अथवा बुरे सभी धार्मिक नियमों को वेद वाक्य माना। विदेशी शासकों द्वारा पराधीन बनाये गये गुलाम पुरुषों की गुलाम स्त्रियों की दुरवस्था का सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

सौभाग्य से पाँच हजार वर्ष की पुरानी सभ्यतावाले इस देश में ज्ञान के कुछ ऐसे साधन थे कि यह कहने में अत्युक्ति नहीं कि हरएक भारतीय, वह पुरुष हो अथवा स्त्री, एक छोटा-मोटा दार्शनिक था और आज भी है। उसमें श्रद्धा थी, अच्छी बातों को सुनने, समझने और ग्रहण करने की रुचि थी, भावुकता थी, ईश्वर में विश्वास था और पूर्वजन्म तथा स्वर्ग एवं नरक की कल्पना थी, जिनका कोरी साक्षरता से अधिक महत्त्व है। जब इस आंतरिक शक्ति को बीसवीं शताब्दी में, गांधीजी के नेतृत्व में, बाह्य शक्तियों का सहारा मिला, वह बाँध तोड़कर निकल पड़ी, जिसे देखकर अँगरेज शासकों और विदेशियों को भी चकित होना पड़ा।

सर्व प्रथम राजा राममोहन राय (सन् १७७४—१८३३ ई०) का ध्यान भारतीयों की हीन दशा की ओर गया। उनका नाम दो सुधारों से जुड़ा हुआ है—सती प्रथा का निषेध और अँगरेजी शिक्षा का प्रचार। सती प्रथा का प्रत्यक्ष संबंध नारी की स्थिति से है। सन् १८२९ ई० के एक कानून द्वारा विधवाओं को पति की लाश के साथ जला देना एक अपराध माना जाने लगा और सन् १८६०-६१ ई० तक यह प्रथा एकदम उठ गई। इस प्रकार, नारी के उत्थान के इतिहास का प्रारम्भ हुआ।

●●

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः ।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन ॥
—मनु० ९।२६

[अर्थात्, स्त्रियाँ सन्तान के लिए हैं, बड़ी भाग्यशालिनी हैं, पूजा के योग्य हैं और घर की ज्योति हैं। घर में स्त्री और श्री दोनों हो समान हैं।]

बिहार की महिलाएँ और रीति-रिवाज

श्रीमती गिरिजा बरनवाल, बी० ए०, प्रशिक्षणशास्त्री, पटना

किसी समाज में जो सामाजिक और धार्मिक परंपराएँ प्राचीन काल से चली आती हैं, वे ही उस समाज के रीति-रिवाज का रूप ग्रहण कर लेती हैं।' ये रीति रिवाज परिवर्तनशील होते हैं। विभिन्न सामाजिक धार्मिक सुधार-आंदोलनों, ज्ञान विज्ञान के विकास, विभिन्न सभ्यताओं के संघात प्रतिघात आदि से किसी देश की परंपराओं में समयानुसार परिवर्तन होते रहते हैं। भारत म अँगरेजी शिक्षा और सभ्यता के प्रसार होने के कारण देखते-देखते भारतीय रीति-रिवाजों में बहुत परिवर्तन उपस्थित हो गया। मुसलमानी शासन-काल के प्रभाव से भी उनमे परिवर्तन हुए थे। वेश भूषा, खान पान, रहन सहन, आचार-विचार आदि में, कुछ रूढ़िवादी व्यक्तियों के विरोधों के बावजूद, पर्याप्त सुधार हो गये हैं।

रीति रिवाज मुख्यतया दो वर्गों मे विभक्त किये जा सकते हैं—सामाजिक तथा धार्मिक। सामाजिक रीति-रिवाजों के अन्तर्गत वेश भूषा, खान पान और विभिन्न संस्कार आते हैं तथा धार्मिक रीति रिवाजों में देव पूजा, त्योहार, मेला, तीर्थ, धर्म-कर्म, दान-पुण्य, धार्मिक अंधविश्वास आदि सम्मिलित किये जा सकते हैं।

रीति रिवाजों और विधि विधानों के भार को ढोने का श्रेय, कम-से कम हिंदू समाज में, नारियों और पुरोहितों को ही है। पुरुषों को न तो रीति-रिवाज याद रहते हैं और न इनमें उनकी विशेष रुचि रहती है। अवसर आने पर घर की स्त्रियाँ या पुरोहित जैसा कहते हैं, वे आँख मूँदकर वैसा कर देते हैं। इसके विपरीत स्त्रियाँ लगभग सभी सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में इतना महत्त्वपूर्ण हाथ बँटाती हैं कि यदि वे सहयोग न दें, तो अनेक कार्य अधूरे रह जायँ। महिलाएँ स्वभावत रीति रिवाजों म बहुत दिलचस्पी रखती हैं। और, उन महिलाओं की नारी-समाज में बड़ी पूछ होती है, जो इस संबंध में अपनी स्मरण-शक्ति का सिक्का दूसरी स्त्रियों पर बिठा देती हैं। स्त्रियाँ बड़े ध्यान से अपनी माता, भावज, सास, जेठानी आदि द्वारा की जानेवाली रिवाजों को देखती हैं और जब उनके स्वयं करने का अवसर आता है, तब वे उन लोगों के बताये सुझाये निर्देश-मार्ग से जौ भर भी इधर-उधर नहीं होना चाहतीं।

कुछ पर्व त्योहार ऐसे भी होते हैं, जो परंपरा से घर की बड़ी बूढ़ी स्त्रियों द्वारा घर की नई पीढ़ी की किसी दूसरी स्त्री को—अधिकतर सास द्वारा पतोहू को अथवा माता द्वारा पुत्री को—दिये जाते हैं। व्रत उपवास और कष्ट सहन करनेवाले जितने कठिन पर्व हैं, वे सब प्रायः स्त्रियों द्वारा ही किये जाते हैं। रीति-रिवाजों—विशेषत व्रत-उपवासवाले धार्मिक विधि-विधानों—से नारियों के इस प्रकार चिपटे रहने के क्या कारण हैं, यह समाजशास्त्र

विहार की महिलाएँ और रीति-रिवाज

श्रीमती गिरिजा वरनवाल, बी० ए०, प्रशिक्षणशास्त्री, पटना

किसी समाज में जो सामाजिक और धार्मिक परंपराएँ प्राचीन काल से चली आती हैं, वे ही उस समाज के रीति-रिवाज का रूप ग्रहण कर लेती हैं। ये रीति रिवाज परिवर्त्तनशील होते हैं। विभिन्न सामाजिक धार्मिक सुधार-आंदोलनों, ज्ञान विज्ञान के विकास, विभिन्न सभ्यताओं के संघात प्रतिघात आदि से किसी देश की परंपराओं में समयानुसार परिवर्त्तन होते रहते हैं। भारत में अँगरेजी शिक्षा और सभ्यता के प्रसार होने के कारण देखते-देखते भारतीय रीति रिवाजों में बहुत परिवर्त्तन उपस्थित हो गया। मुसलमानी शासन-काल के प्रभाव से भी उनमें परिवर्त्तन हुए थे। वेश भूषा, खान पान, रहन सहन, आचार-विचार आदि में, कुछ रूढ़िवादी व्यक्तियों के विरोधों के बावजूद, पर्याप्त सुधार हो गये हैं।

रीति रिवाज मुख्यतया दो वर्गों में विभक्त किये जा सकते हैं—सामाजिक तथा धार्मिक। सामाजिक रीति रिवाजों के अन्तर्गत वेश भूषा, खान पान और विभिन्न संस्कार आते हैं तथा धार्मिक रीति रिवाजों में देव पूजा, त्योहार, मेला, तीर्थ, धर्म-कर्म, दान-पुण्य, धार्मिक अंधविश्वास आदि सम्मिलित किये जा सकते हैं।

रीति रिवाजों और विधि विधानों के भार को ढोने का श्रेय, कम-से कम हिंदू समाज में, नारियों और पुरोहितों को ही है। पुरुषों को न तो रीति-रिवाज याद रहते हैं और न इनमें उनकी विशेष रुचि रहती है। अवसर आने पर घर की स्त्रियाँ या पुरोहित जैसा कहते हैं, वे आँख मूँदकर वैसा कर देते हैं। इसके विपरीत स्त्रियाँ लगभग सभी सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में इतना महत्त्वपूर्ण हाथ बँटाती हैं कि यदि वे सहयोग न दें, तो अनेक कार्य अधूरे रह जायँ। महिलाएँ स्वभावतः रीति रिवाजों में बहुत दिलचस्पी रखती हैं। और, उन महिलाओं की नारी समाज में बड़ी पूछ होती है, जो इस संबंध में अपनी स्मरण-शक्ति का सिक्का दूसरी स्त्रियों पर बिठा देती हैं। स्त्रियाँ बड़े ध्यान से अपनी माता, भावज, सास, जेठानी आदि द्वारा की जानेवाली रिवाजों को देखती हैं और जब उनके स्वयं करने का अवसर आता है, तब वे उन लोगों के बताये सुझाये निर्देश-मार्ग से जौ भर भी इधर उधर नहीं होना चाहतीं।

कुछ पर्व त्योहार ऐसे भी होते हैं, जो परंपरा से घर की बड़ी बूढ़ी स्त्रियों द्वारा घर की नई पीढ़ी की किसी दूसरी स्त्री को—अधिकतर सास द्वारा पतोहू को अथवा माता द्वारा पुत्री को—दिये जाते हैं। व्रत उपवास और कष्ट सहन करनेवाले जितने कठिन पर्व हैं, वे सब प्रायः स्त्रियों द्वारा ही किये जाते हैं। रीति-रिवाजों—विशेषतः व्रत-उपवासवाले धार्मिक विधि-विधानों—से नारियों के इस प्रकार चिपटे रहने के क्या कारण हैं, यह समाजशास्त्र

और मनोविज्ञान के विद्यार्थियों के लिए खोज का महत्त्वपूर्ण विषय हो सकता है। मुझे तो यहाँ उन रीति-रिवाजों के विषय में कुछ लिखना है, जिनका संबंध बिहार की महिलाओं से है।

बिहार की महिलाओं की पोशाक मुख्यतः साड़ी और कुर्ती है। ग्रामीण स्त्रियाँ साड़ी का आँचल सीधा (आगे) रखती हैं और सिर ढकती हैं या बहुएँ घूँघट काढ़ती हैं। यही ढंग शहर की अनपढ़ और अर्धशिक्षित नारियों में भी प्रचलित है। शहर की शिक्षित नारियाँ और उनके प्रभाव तथा फैशन में आई हुई अन्य महिलाएँ सीधा पल्ला लेते हुए भी सिर खुला रखती हैं या फिर उल्टा पल्ला लेकर—साड़ी का आँचल पीठ की ओर फेंककर—सिर खुला रखने का तो इनमें आम रिवाज है ही। स्कूल और कॉलेज में पढ़नेवाली बहुतेरी बड़ी उम्र की लड़कियों में सलवार (या गरारा), कुर्ते और दुपट्टे की पंजाबी पोशाक अधिकाधिक प्रचलित हो रही है। शादी के उपरांत बिहारी महिलाएँ यह पोशाक नहीं पहनतीं। साड़ी पर से पर्दे के लिए चादर ओढ़ने की प्रथा शहरों से प्रायः उठ-सी गई है, किंतु देहातों में अनतक विद्यमान है, यद्यपि अब वहाँ भी चादर सिर से खिसककर कंधे पर आ गई है। जाड़े के दिनों में महिलाएँ ऊनी या फ्लालैन के कपड़े, स्वेटर, चादर आदि पहनती-ओढ़ती हैं। शहरों में कोट पहनने का भी रिवाज है।

बिहार की मुस्लिम स्त्रियों की वेश भूषा में आधुनिक सभ्यता का बहुत कम सम्मिश्रण हो पाया है। ग्रामीण और निम्नवर्ग की मुस्लिम स्त्रियाँ तो बहुधा हिंदू नारियों की भाँति साड़ी और कुर्ती पहनती हैं, किंतु शहरी और धनी घराने की मुस्लिम नारियों में साड़ी और कुर्ती के साथ-साथ चुस्त पाजामा (या गरारा), कुर्ता और ओढ़नी का पुराना रिवाज भी प्रचलित है। ये नारियाँ जब बाहर निकलती हैं, बुर्के के भीतर अपना अंग प्रत्यंग ढक लेती हैं। केवल आँखों के सामने जाली बनी होती है, जिससे ये अपना मार्ग देख पाती हैं।

बिहार में मुस्लिम समाज इतना कट्टर है कि विश्वविद्यालय की छात्राएँ और महिला-प्राध्यापिका भी बुर्के में आती हैं। बहुत कम ऐसी मुस्लिम नारियाँ होंगी, जो बुर्के का उपयोग न करती हों। हिंदू और मुस्लिम नारियों के विपरीत ईसाई नारियों में पर्दे का पूर्णतः बहिष्कार है। बिहारी ईसाई महिलाओं की पोशाक साड़ी और कुर्ती ही है। स्कर्ट ब्लाउज पहननेवाली ईसाई स्त्रियों की संख्या अत्यंत कम है।

बिहार के छोटानागपुर और संतालपरगना के पहाड़ी और जंगली अंचलों में रहनेवाली आदिवासी नारियों की पोशाक आदिम अवस्था की है—एक लुंगी-जैसी चादर बदन में लपेटकर ऊपर से दूसरी चादर ओढ़ लेना। किंतु, वहाँ भी शहरों के प्रभाव से युवतियों में साड़ी और कुर्ती पहनने की प्रथा चल पड़ी है।

बिहार की नारियों के पहनावे में आभूषणों का भी बहुत बड़ा महत्त्व है। विवाह में उन्हें ससुराल और मायके से गहने मिलते हैं। अर्थाभाव न होने पर सिर, बाँह, नाक, कान, गले और पैर में आभूषण पहनने का रिवाज है। शिक्षित स्त्रियाँ नाक और पैर में आभूषण पहनना छोड़ रही हैं।

विवाह और विशेष उत्सवों पर बिहार की महिलाओं में सभी अंगों में गहने पहनने की रीति है। किसान और मजदूर-वर्ग की स्त्रियाँ चाँदी के ही आभूषण पहनती हैं।

मुस्लिम स्त्रियाँ भी आभूषण की शौकीन होती हैं। ईसाई स्त्रियाँ गहने कम पहनती हैं—कान और गले में एकाध आभूषण डाल लेती हैं। बिहार की आदिवासी स्त्रियाँ भी चाँदी और रूपा के गहने पहनती हैं, किंतु अपने को सजाने में वे फूलों का खूब व्यवहार करती हैं।

आधुनिक फैशन के अनुसार कुछ स्त्रियाँ रूज और लिपस्टिक का भी व्यवहार करती हैं। बिहार की सुहागिन स्त्रियाँ माँग में सिंदूर अवश्य लगाती हैं। विवाह, तीज, छठ आदि के विशेष अवसरों पर वे नाक के अग्रभाग से माँग तक सिंदूर लगाती हैं। सधवा स्त्रियाँ सुबह उठने के बाद स्नान करके माँग भरकर—माँग में सिंदूर लगाकर—ही जलपान या भोजन करती हैं। कोई सधवा स्त्री अगर किसी के घर घूमने और मिलने जाती है, तो उसका सम्मान भले ही नाश्ते या चाय पान से न किया जाय, किंतु किसी सधवा या कुमारी के द्वारा उसका माँग भरना आवश्यक है।

कृषि-कर्म की दृष्टि से बिहार एक धनी प्रदेश है। यहाँ प्रायः सभी अनाजों की खेती होती है; किन्तु धान अधिक पैदा होने के कारण यहाँ के लोग चावल अधिक खाते हैं। बिहार की स्त्रियों का मुख्य काम खाना पकाना और घर की देख-भाल करना है, अतः खान-पान में विशेष रुचि रखती हैं। तीज-त्योहार आदि के विशेष अवसरों पर वे विशेष प्रकार के पकवान स्वयं पकाती हैं। चौके में जूठ-निजूठ, कच्चा-पक्का, छूआछूत आदि नियमों के पालन में अब भी कठोरता बरती जाती है, किंतु पहले के समान कट्टरता नहीं है। शहरों में तो इसके नियम अत्यंत ढीले पड़ गये हैं। स्त्रियाँ बिना स्नान किये भोजन पकाती हैं और पति को दफ्तर तथा बच्चों को स्कूल भेजकर निश्चिन्तता पूर्वक घर और कपड़ों की सफाई करने के बाद स्नान करती हैं। मर्द और बच्चे कपड़े और जूते पहने भोजन कर लेते हैं।

बिहारी महिलाएँ शाकाहारी भी हैं और मांसाहारी भी। बिहार की मुस्लिम और ईसाई महिलाएँ मुख्यतः मांसाहारी हैं। यहाँ की आदिवासी महिलाओं का मुख्य भोजन हँड़िया (कोदों के चावल से तैयार की गई एक प्रकार की शराब), भात, मांस आदि है। कभी-कभी सब्जी, विशेषतः आलू खा लेती हैं। दाल खाने की प्रथा इन लोगों में लगभग नहीं है।

पुत्रोत्पत्ति पर बिहार की नारियाँ खूब खुशियाँ मनाती हैं। जिस दिन बच्चे का जन्म होता है, उस दिन से छठी या बरही (छह या बारह दिन) तक—जिस दिन सूतिका-गृह से जच्चा बच्चा को निकालकर स्नान कराया जाता है और इस प्रकार शुद्ध होकर शिशु की माँ छठी पूजती है—पुत्र-जन्म के गीत (सोहर) रोज रात में गाती हैं। टोले-मुहल्ले की स्त्रियाँ भी इसमें सम्मिलित होती हैं। इसी प्रकार मुंडन, यज्ञोपवीत, विवाह आदि के लिए भी विशेष गीत होते हैं और वे भी सामूहिक रूप में गाये जाते हैं। इन सभी अवसरों पर कई दिन तक गीत गाये जाते हैं।

बिहारी महिलाओं के पास लोक गीतों का अक्षय भंडार होता है। विभिन्न देवी-देवताओं—शिव, राम, कृष्ण, दुर्गा, शीतला आदि के गीत और विभिन्न ऋतुओं के गीत—कजली, चैती, चौमासा, बारहमासा आदि तथा विभिन्न त्योहारों—जीवत्पुत्रिका (जितिया), तीज, करमा, छठ, गोधा-नवधना आदि के गीत वे खूब गाती हैं। विभिन्न अवसरों—धान रोपने, फसल बोने या काटने, दीवार पोतने, छत पीटने आदि तथा चक्की पीसने समय के गीत, गंगा-नहाने का गीत, और न जाने कितने प्रकार के दूसरे गीत भी ये सम्मिलित स्वर से गाती हैं। कितनी ही वृद्धियों को असंख्य गीत याद रहते हैं। बूढ़ी स्त्रियाँ प्रभाती और भजन भी खूब गाती हैं। नाच की प्रथा धोबी, चमार, कहार, अहीर आदि जातियों की स्त्रियों में ही पाई जाती है—त्योहार, विवाह, आदि आनन्द के अवसरों पर इनके स्त्री पुरुष के जोड़े भी नृत्य करते हैं।

बिहार में साधारणतः सभी हिन्दू और मुस्लिम स्त्रियों के लिए विवाह करना आवश्यक है। लड़की में कोई खराबी रहने अथवा आर्थिक कठिनाइयों से ही लड़कियों की शादी रुकती है। आजकल कुछ पढ़ी लिखी नारियों में भी अविवाहित रहने का रिवाज बढ़ रहा है। ईसाई स्त्रियों में अविवाहित रहने का रिवाज और भी अधिक है।

बिहार के हिंदू समाज में तिलक-दहेज की जबरदस्त प्रथा है, जो आज की भौतिकवादी सभ्यता से शीघ्रता से फैलती जा रही है। साधारणतः बिहार की महिलाओं का विवाह चौदह वर्ष से बाईस वर्ष की उम्र तक हो जाता है। यों निम्न जातियों में तो सात-आठ वर्ष की बच्ची का भी विवाह कर दिया जाता है। विवाह के बाद लड़की ससुराल जाती है, किंतु वहाँ अपने परिवार के सदस्यों मुख्यतः सास, ननद, जेठानी आदि—से संबंध-निर्वाह करना उसके लिए कठिन हो जाता है। हमारा सामाजिक संगठन और हमारी सामाजिक प्रथाएँ ही कुछ इस प्रकार की हैं कि सास और बहू में प्रायः सुंदर संबंध स्थापित नहीं हो पाता। यदि सभी अपने अपने अधिकार और कर्त्तव्य की मर्यादा समझें, तो लड़ाई झगड़े की बात ही न उठे। किंतु सास-ननदों द्वारा सताई हुई अनपढ़ स्त्रियाँ जब स्वयं सास बनती हैं, तब चक्रवृद्धि ब्याज-सहित सब कुछ अपनी बहू से वसूलती हैं। आजकल बहुत कम ही ऐसे परिवार होंगे, जहाँ सास-बहू में माँ-बेटी-सा प्रेम हो। आधुनिक शिक्षित युवक, जो घर से दूर नौकरी करते हैं, विवाह होते ही अपनी बहू को साथ ले जाते हैं। अतः, उनके घर में इस प्रकार की समस्या का सामना बहुओं को नहीं करना पड़ता। मुस्लिम और ईसाई परिवारों में स्त्रियों के अधिकारों को उतना नहीं कुचला गया है; इसलिए उनके घरों में सास बहू का सनातन झगड़ा नहीं चलता।

त्योहार और उत्सव प्रायः प्राचीन घटना या महापुरुष के स्मारक होते हैं। रामनवमी, कृष्णजन्माष्टमी, दशहरा आदि पर्व महापुरुषों और उनके जीवन के प्रति भारतीय जनता के पूज्य भावों को व्यक्त करते हैं। व्रत धार्मिक अनुष्ठान होते हैं। इहलोक और परलोक के कल्याण की कामना से व्रत किये जाते हैं। उपवास, हवन, यज्ञ, पूजापाठ, दान-दक्षिणा

आदि इसके अंग हैं। कुछ उत्सव तो व्रत भी होते हैं; जैसे कृष्णजन्माष्टमी, महाशिवरात्रि आदि। विजयादशमी केवल उत्सव है। व्रतोत्सव में स्त्रियों के लिए विशिष्ट विधि विधान हैं और वे खुलकर उसमें भाग लेती हैं।

बिहार में होनेवाले कुछ व्रतोत्सवों के नाम इस प्रकार हैं—हरितालिका, गणेशचतुर्थी, करवा चौथ, कृष्णजन्माष्टमी, रामनवमी, गंगा दशहरा, वट-सावित्री, अनंत-चतुर्दशी, महाशिवरात्रि, नागपंचमी, सरस्वतीपूजा या वसंतपंचमी, लक्ष्मीपूजा या दीपावली, दुर्गापूजा या नवरात्र, मकरसंक्रान्ति, भैयादूज, रक्षाबंधन, होली, जीवत्पुत्रिका, छठ, परद्दी, सामा-चकवा आदि। कुछ व्रत पति के लिए, कुछ पुत्र के लिए और कुछ भाई के लिए हैं।

बिहारी महिलाएँ जिस व्रत की जैसी विधि है, उस व्रत को वैसे ही करती हैं। किंतु कुछ बातें व्रतोत्सवों में ऐसी हैं, जो हमारी असावधानी और मूर्खता के कारण उनके उद्देश्य को पूरी तरह सम्पन्न नहीं होने देतीं, इसलिए सुधार की आवश्यकता है।

पहली बात तो यह कि इस युग में स्वास्थ्य की दृष्टि से निर्जल उपवास कभी न करना चाहिए। दूसरी बात यह कि निर्जल व्रतों (तीज, छठ, जीवत्पुत्रिका, करवा चौथ आदि) के एक दिन पहले नारियाँ रात में बारह बजे के बाद खूब मेवे-मिष्टान्न पक्वान्न आदि खा लेती हैं, जिससे दूसरे दिन भूख न लगे किंतु यह उचित नहीं है। तब व्रत का महत्त्व ही क्या रहा? व्रत के पहले दिन हल्का भोजन करना चाहिए। व्रत के दिन कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिए, जिससे क्रोध उत्पन्न हो। प्रसन्न चित्त से रहकर व्रत के विधानों को पूरा करना चाहिए।

बिहार की हिंदू नारियों में न जाने कितने देवी-देवताओं को पूजने का रिवाज है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक परिवार का अपना देवता भी होता है। यों तो प्रायः प्रत्येक मास की पूर्णिमा का भी अपना अपना महत्त्व है। श्रावणीपूर्णिमा, शरत्पूर्णिमा कार्त्तिक पूर्णिमा आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। शरत्पूर्णिमा को मिथिला में 'कोजागरा' नामक महोत्सव बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता है, जिसमें स्त्रियों का योगदान बड़े महत्त्व का होता है। कुछ महिलाएँ पूजा-पाठ के रूप में ही रामायण, महाभारत, भागवत, सुखसागर, प्रेमसागर आदि धर्म-ग्रंथों में से किसी का रोज पाठ करती हैं। पुण्यप्राप्ति के लिए माघ, वैशाख और कार्त्तिक में गंगा स्नान भी करती हैं। चंद्रग्रहण और सूर्यग्रहण, मकरसंक्रांति कुम्भ आदि में झुंड बाँधकर गंगा स्नान करने जाती हैं। वे बहुधा टोली बनाकर काशी, प्रयाग, मथुरा, वृंदावन, अयोध्या आदि तीर्थ स्थानों को भी जाती हैं।

बिहार की नारियों में कुछ अंधविश्वास भी हैं। वे देवी देवताओं के सामने अपने मनोरथ की सफलता के लिए मनौती मानती हैं और मनस्कामना पूरी होने पर मन्नतों को धूमधाम से पूरा करती हैं। छठ आदि पर्व भी प्रायः मनौती मानकर किये जाते हैं।

बिहारी महिलाओं का झाड़-फूँक पर भी विश्वास है। गाँवों की अपढ़ स्त्रियों में कई तरह के टोटके करने का रिवाज भी है। चेचक को वे धार्मिक दृष्टि से देखती हैं।

वैज्ञानिक दृष्टि से जो उपचार बताये गये, उनपर धार्मिक रंग चढ़ गया। चेचक का टीका लगाने के बाद भी स्त्रियाँ नवें दिन शीतला-माता की पूजा करती हैं।

किंतु, इस प्रकार के धार्मिक अंधविश्वास शिक्षिता स्त्रियों में कम हो रहे हैं। शिक्षा ही वह साधन है, जिसके द्वारा बिहारी महिलाओं के रीति-रिवाजों में घुसी हुई अवांछनीय रूढ़ियों को दूर करने का उपाय किया जा सकता है।

●●

गांधीजी और नारी-प्रगति

प्रोफेसर जगन्नाथप्रसाद मिश्र, एम्० ए०; एम्० एल्० सी०, लहेरियासराय (दरभंगा)

I am firmly of opinion that india's salvation depends on the sacrifice and enlightenment of her women—मेरा यह दृढ विचार है कि भारत का उद्धार उसकी नारियों के त्याग एवं ज्ञानालोक पर निर्भर करता है। —महात्मा गांधी

गांधीजी एक ओर यदि यह चाहते थे कि भारत की नारियाँ अंधविश्वास, कुसंस्कार, अशिक्षा एवं अज्ञान के मोह से मुक्त होकर समाज एवं राष्ट्र के कर्मक्षेत्र में अपना उचित स्थान ग्रहण करें, तो दूसरी ओर उनका यह भी विचार था कि नारी में स्नेह, दया, ममता, त्याग, तितिक्षा आदि जो सहज गुण हैं, उनका वे परित्याग न करें।

मूलतः पुरुष और नारी के एक होने पर भी गांधीजी यह मानते थे कि बाह्य रूप में दोनों के कर्तव्य भिन्न हैं। मातृत्व के कर्तव्य-पालन के लिए जो गुण अपेक्षित हैं, उनका पुरुष में होना आवश्यक नहीं है।

स्थूल रूप से दोनों के कर्तव्यों का उल्लेख गांधीजी ने अपने 'हरिजन' पत्र में इस प्रकार किया था— नारी अनिवार्य रूप से गृहस्वामिनी है। पुरुष रोटी कमानेवाला है। नारी का काम है उस रोटी को रखना और उसे बाँटना। उसे अवेक्षक (care taker) की जो संज्ञा दी गई है, वह यथार्थ है। जाति के शिशुओं का लालन-पालन करना उसका विशिष्ट एवं अनन्य जन्मसिद्ध अधिकार है। बिना उसके अवेक्षण के जाति का अवश्य ही नाश हो जायगा।'

इस प्रकार, नारी का कर्मक्षेत्र चाहे जो भी हो, उसके जीवन का केन्द्रबिन्दु यह परिवार ही होना चाहिए। नारी-जाति स्वभावतः स्नेहशील एवं शान्तिमयी होती है। अपनी अन्तर्निहित शक्तियों को सहज भाव से उद्बुद्ध करके यदि नारियाँ स्वधर्मनिष्ठ हो जायँ, तो उनके द्वारा सम्पूर्ण मानव जाति का कल्याण-साधन हो सकता है। वास्तव जगत् में जो नारी शक्ति पुरुष को परिचालित करती है, वह यदि विपथगामिनी हो जाय, तो इसका परिणाम दोनों के लिए अमंगलजनक सिद्ध हो सकता है।

गांधीजी के शब्दों में नर और नारी दोनों के लिए यह हीनताव्यञ्जक है कि नारियों को घर के काम काज छोड़कर उस घर की रक्षा के हेतु बंदूक धारण करने को कहा जाय। इसका अर्थ होगा बर्बरता की ओर लौट चलना। अपने गृह को सुव्यवस्थित रूप से रखने में उतनी ही बहादुरी है, जितनी बाह्य आक्रमण से उसकी रक्षा करने में।

हिंसा, द्वेष एवं शीतयुद्ध की उत्तेजना एवं विभीषिका से पूर्ण समस्त विश्व की दृष्टि आज एशिया महादेश के ऊपर लगी हुई है। इस महादेश में ही आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व मानव मैत्री एवं करुणा की वाणी उद्घोषित हुई थी। मानवात्मा की एकता, समत्व बुद्धि, ज्ञान और अभेद दर्शन के तत्व को परमसत्य के रूप में ग्रहण करनेवाले वेदान्त, उपनिषद् और गीता जैसे दिव्य ग्रन्थ भारत में ही रचित हुए थे। भारत एक बार फिर इस पृथिवी के ऊपर शान्ति की दीपवर्तिका हाथ में लेकर साम्य, प्रेम एवं मैत्री की चिर प्रतिष्ठा करने में समर्थ होगा।

यह कोरी कवि कल्पना अथवा भावुकों का स्वप्न-मात्र नहीं है, वल्कि संसार के कितने ही मनीषी अपने मन में इस विश्वास का पोषण कर रहे हैं।

भारतीय मातृ जाति के आदर्श हैं सीता, सावित्री, शैव्या और दमयन्ती। सेवा एवं त्याग के द्वारा इन्होंने अपने जीवन को महिमोज्ज्वल बनाया था। भारतीय मातृ जाति की साधना यदि त्याग के पथ को छोड़कर भोग के पथ पर चलेगी, माता का जीवन यदि त्यागमय न होकर भोगसर्वस्व बन जायगा, तो इससे समाज का अधःपतन हुए बिना नहीं रह सकता। आत्मसुखपरायणा, भोगसर्वस्वा जननी की सन्तान अपने जीवन में किसी महत्तर आदर्श की अनुप्रेरणा नहीं प्राप्त कर सकती।

पिता की अपेक्षा माता का प्रभाव ही सन्तान के ऊपर अधिक पड़ता है। किसी माता में यदि चरित्र का महत्त्व नहीं होगा, उदारता नहीं होगी, उच्च जीवनादर्श नहीं होगा, तो उसकी सन्तान में ऐसे गुणों का समावेश कठिनता से होगा, जिनसे उसका जीवन महत् एवं उदार बने।

महात्मा गांधी ने नारी-जीवन की प्रायः सभी समस्याओं पर अपने सुचिन्तित विचार व्यक्त किये हैं। नारी-जीवन में स्वतन्त्रता के लिए कहाँतक स्थान हो सकता है, उनकी शिक्षा दीक्षा किस रूप में होनी चाहिए, वैवाहिक जीवन का आदर्श बाल-विवाह, दहेज प्रथा, विवाह और प्रेम, विवाह विच्छेद, विधवा विवाह, सह शिक्षा, पर्दा प्रथा, कृत्रिम उपायों द्वारा सन्तति-निरोध इत्यादि विषयों पर गांधीजी के जो अभिमत हैं, वे एक ओर यदि भारतीय नारी के परम्परागत आदर्श पर आधृत हैं, तो दूसरी ओर उनमें युग धर्म की भी अवहेलना नहीं की गई है।

पर्दा-प्रथा को ही लीजिए। गांधीजी किसी भी रूप में समर्थक नहीं थे। विवाह की पवित्रता एवं नारी के सतीत्व की महिमा को सब प्रकार से स्वीकार करते हुए भी उनका विचार था कि नारी के सतीत्व की रक्षा पर्दों की चहारदिवारी के अन्दर नहीं हो सकती।

इसका विकास उसके (नारी के) अन्दर से होना चाहिए और इसका महत्त्व इसी में है कि वह प्रत्येक प्रलोभन का प्रतिरोध कर सके। सतीत्व ऐसी वस्तु नहीं है कि उसे ऊपर से आरोपित किया जाय, इसके लिए स्वतः प्रयास होना चाहिए। नारी की विशुद्धता का नियमन पुरुष करें, यह उसका अनुचित अधिकार का दावा करना है। गांधीजी हृदय के पर्दे को ही वास्तविक पर्दा मानते थे।

बिहार में जिस समय पर्दा प्रथा के विरुद्ध प्रबल आन्दोलन आरंभ किया गया था, गांधीजी ने उसका पूर्ण समर्थन किया था। उन्होंने अपने भतीजा मगनलाल गांधी को पर्दा-प्रथा-विरोधी आन्दोलन का परिचालन करने के लिए बिहार भेजा था। बिहार के नेताओं को उन्होंने आमंत्रित किया था कि वे अपने घरों की महिलाओं को पर्दे से बाहर निकालकर इस आन्दोलन को आगे बढ़ायें। उन्होंने स्वयं इस विषय पर कई लेख लिखे और आन्दोलन में सक्रिय भाग लेनेवाली महिलाओं को प्रोत्साहन प्रदान किया। उनके प्रोत्साहन के फलस्वरूप बिहार की महिलाओं को नैतिक बल प्राप्त हुआ और इस प्रथा की जो सम्माननीयता थी, वह बहुत अंशों में शिथिल हो गई।

बिहार के प्रायः प्रत्येक जिले में पर्दा प्रथा के विरुद्ध सार्वजनिक सभाओं का आयोजन किया गया, जिनमें कुलीन परिवारों की महिलाओं ने भाग लिया। यह बिहार के सामाजिक जीवन में बहुत बड़ी क्रान्ति थी, जिसका प्रभाव आगे चलकर समाज के अन्य क्षेत्रों पर भी व्यापक रूप से पड़ा। सार्वजनिक जीवन में नारियों का प्रवेश होने लगा और स्त्री-शिक्षा का विस्तार हुआ। क्रमशः विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करनेवाली छात्राओं की संख्या में वृद्धि होने लगी और नारी का कर्म-जीवन, जो अबतक गृह परिवार तक ही सीमित था, अब अन्य क्षेत्रों में भी अपना कर्तृत्व प्रदर्शित करने लगा।

राष्ट्र एवं समाज के सार्वजनिक क्षेत्र में सेवा करने का अधिकार नारी एवं पुरुष को एक समान है, इस बात को मानते हुए गांधीजी ने अपने सभी आन्दोलनों में सक्रिय भाग लेने के लिए नारियों का भी आह्वान किया। उनके इस आह्वान पर उच्चशिक्षित एवं अल्पशिक्षित सभी वर्ग की स्त्रियों ने स्वाधीनता आन्दोलन में तथा अन्य रचनात्मक कार्यों में योगदान किया। कितनी ही नारियाँ जेल गईं तथा पुलिस के हाथों अपमान एवं यन्त्रणाएँ सहीं। रचनात्मक कार्य—विशेष कर चर्खा और खादी के प्रचार—में तो नारियों का ही प्रमुख भाग रहा और चर्खे के द्वारा गांधीजी का संदेश बिहार के सुदूर गाँवों में भी घर-घर पहुँच गया। जिन स्त्रियों ने कभी किसी राष्ट्रीय नेता का नाम तक नहीं सुना था, जो राष्ट्रीय विषयों से सर्वथा अनभिज्ञ थीं, जिनमें देश-प्रेम और राष्ट्रीयता एवं सामाजिक चेतना का लेश भी नहीं था, उनकी जबान से भी गांधीजी के नाम बार-बार सुने जाने लगे और उनमें भी एक नई चेतना जागरित होने लगी।

गांधीजी अपने दौरे के सिलसिले में बार-बार बिहार आये। भारत में उनका सार्वजनिक जीवन का आरम्भ बिहार के ही चंपारन जिले में निलहे साहबों के अत्याचार के कारण

हुआ। उस समय से ही विहार की स्त्रियों में भी नव जागरण का उदय हुआ और उन्होंने अपने जीवन में नवीन स्पन्दन का अनुभव किया। इसके बाद जब असहयोग आन्दोलन की दुन्दुभि बजी और देश में चतुर्दिक् आशा एवं उमंग की एक लहर फैलने लगी, तब स्त्री एवं पुरुष दोनों ने समान रूप से उसके प्रभाव का अनुभव किया। जिन नारियों ने आन्दोलन में स्वयं सक्रिय भाग नहीं लिया, उन्होंने भी स्वेच्छा से अपने पति पुत्र या अन्य आत्मीय जनों को उत्साह प्रदान किया—अपने स्नेह के कारागार में उन्हें आबद्ध नहीं किया और न उनके मार्ग में रोड़े अटकाये। इस प्रकार के अनेक दृष्टान्त हैं कि ऐसे अवसरों पर माताओं एवं पत्नियों ने बड़े धैर्य एवं साहस से काम लिया। यदि इन महीयसी त्यागमयी महिलाओं का नैतिक समर्थन पुत्रों एवं पतियों को प्राप्त नहीं होता, यदि वे अपने मोह-पाश में उन्हें बाँध रखने का प्रयत्न करतीं, तो संभव था कि उनमें कितनों का ही मनोबल क्षीण पड़ जाता। इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि भारतीय नारी-जीवन में आज जो कुछ प्रगति देखी जाती है, बहुत अंशों में उसका श्रेय गांधीजी को है।

आज नारी प्रगति की चर्चा सर्वत्र हो रही है, किन्तु इसका यथार्थ स्वरूप क्या है और क्या होना चाहिए, इस बात पर बहुत थोड़े लोग विचार करते हैं। प्रति वर्ष विश्व विद्यालयों की विभिन्न परीक्षाओं में अधिकाधिक संख्या में छात्राएँ उत्तीर्ण होने लगी हैं। महिला महाविद्यालयों की संख्या में भी वृद्धि हो रही है। शिक्षण कार्य में महिलाएँ अधिक संख्या में नियुक्त होने लगी हैं। विधान मण्डल में महिला समाज को पर्याप्त संख्या में प्रतिनिधित्व मिलने लगा है। राजनीतिक एवं सामाजिक सभा समितियों में भी महिलाओं का स्थान नगण्य नहीं कहा जा सकता। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के फलस्वरूप कुछ महिलाओं को अर्थोपार्जन करने का जो सुयोग मिला है उससे अवश्य ही उनकी गृहस्थी की आर्थिक कठिनाइयाँ कुछ अंशों में कम हुई हैं, उनकी आर्थिक परवशता भी दूर हुई है और उनमें स्वाभिमान का भाव जागरित हुआ है। भविष्य में संभव है कि और भी बहुत सी महिलाएँ जीविकार्जन के विभिन्न क्षेत्रों में काम करने लग जायँ।

किंतु, नारी का जो सर्वप्रधान कर्तव्य है—सुमाता बनकर सन्तान-पालन करना और सुगृहिणी बनकर परिवार में सुख शान्ति एवं श्री का संवर्धन करना, उसका पालन यदि सम्यक् रीति से नहीं हुआ, तो अवश्य ही हमें विचार करना होगा कि जो शिक्षा विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में लड़कियों को मिल रही है, उसे हम सच्चे अर्थ में सफल कह सकते हैं या नहीं। आर्थिक दबाव के कारण भले ही कुछ स्त्रियों को बाह्य क्षेत्र में कार्य करने के लिए विवश होना पड़े, किन्तु उनका वास्तविक कर्म क्षेत्र गृह परिवार ही होना चाहिए, जहाँ रहकर वे अपनी सन्तान को मनुष्य बना सकती हैं, जिससे अच्छे नागरिक के रूप में राष्ट्र एवं समाज के प्रति वे अपने कर्तव्य का पालन कर सकें।

शिक्षिता महिलाएँ सारा दिन बाह्य कर्मक्षेत्र में व्यतीत करके संध्या समय रुग्ण मन एवं क्लान्त देह लेकर घर लौटें, तो वे किस प्रकार गृह की सुव्यवस्था एवं शान्ति को कायम

रख सकती हैं और सन्तान के प्रति स्नेह-प्रदर्शन तथा उनकी देखभाल करने का उन्हें अवसर ही नहीं मिलेगा, इसलिए गृह-परिवार की उपेक्षा करके सारा समय बाह्य कर्मक्षेत्र में ही लगाना उचित नहीं कहा जा सकता।

नारी सुमाता बनकर अपनी सन्तान के लिए त्याग एवं कष्ट सहन करती है। प्रसव-पीड़ा उसे सहन करनी पड़ती है। गर्भ में नौ महीने तक वह भ्रूण का पालन करती है। सृष्टि के आनन्द में अपने सारे कष्टों को वह भूल जाती है। शिशु के लालन-पालन में उसे जो दुःख झेलना पड़ता है, उसकी वह परवाह नहीं करती। सन्तान के प्रति उसका जो यह निःस्वार्थ प्रेम है, वही उसकी सबसे बड़ी शक्ति है। गांधीजी नारी के इस प्रेम को ही सारी मानव जाति के प्रति स्थानान्तरित करना चाहते थे। वह चाहते थे कि नारी इस बात को भूल जाय कि वह पुरुष की कामवासना की पूर्ति की वस्तु है। ऐसा करने से ही वह उसकी माता, निर्माता एवं मौन नेता के रूप में पुरुष के पार्श्व में अपना गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त करेगी : Let her forget that she ever was or can be the object of man's lust And she will occupy her proud position by the side of man as his mother, maker and silent leader

संसार के राष्ट्रों में आज युद्ध का आतंक छाया हुआ है। शान्ति रूपी अमृत के लिए लोग पिपासित हो रहे हैं। उनकी इस पिपासा को शान्त करने की कला नारी ही जानती है। अहिंसा का अर्थ होता है असीम प्रेम और इस असीम प्रेम का अर्थ होता है कष्ट सहन की असीम क्षमता। मातृ-जाति से बढ़कर और कौन इस क्षमता को प्रचुरतम मात्रा में प्रदर्शित कर सकता है?

व्यक्ति एवं राष्ट्र के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में गांधीजी सत्य एवं अहिंसा का सार्थक प्रयोग करना चाहते थे। इसके लिए वे इस आशा को अपनी छाती से चिपकाये रहे कि सत्य एवं अहिंसा को वास्तव जीवन में सार्थक कर दिखाने में नारी असन्दिग्ध रूप में नेतृत्व ग्रहण करेगी और इस प्रकार मानवीय विकास में अपना स्थान प्राप्त करके वह अपनी हीन भावना का परित्याग कर देगी I have hugged the hope that in this woman will the unquestioned leader and, having thus found her place in human evolution, she will shed her inferiority complex

नारी, पुरुष की दासी नहीं, अर्धांङ्गिणी एवं जीवनसंगिनी है। पुरुष के समान ही उसे भी व्यक्तित्व विकास का पूर्ण सुयोग मिलना चाहिए। वह स्वाभिमानिनी बनकर समाज में अपना समुचित स्थान ग्रहण करे। किन्तु, नर नारी के यौन सम्बन्ध पर पश्चिम से जो नई-नई भावधाराएँ साहित्य और सिनेमा के माध्यम से इस देश में फैल रही हैं, उनकी वह अन्धानुगामिनी न बने। विलास-व्यसन एवं भोग-लालसा की तृप्ति के लिए अर्थोपार्जन करना, साज सिंगार में अपव्यय करना, रूप सौन्दर्य का प्रदर्शन करना इस देश

की नारियों को शोभा नहीं देता। कारण, यहाँ नारी जीवन का आदर्श अति उच्च एवं महान् रहा है। यहाँ की नारियों ने केवल गृहकर्म एवं स्वजन-परिजन की सेवा-शुश्रूषा में ही अपनी कुशलता का परिचय नहीं दिया है, वरन् उन्होंने विद्या, पाण्डित्य, साहस एवं शौर्य के क्षेत्र में भी अपनी कीर्ति-ध्वजा फहराई है। जीवन में सब कुछ यौन आवेग द्वारा निर्धारित एवं नियमित होता है—आधुनिक काल की इस शिक्षा को मानने से उसे दृढता-पूर्वक अस्वीकार कर देना चाहिए : She must resolutely refuse to believe in the modern teaching that everything is determined and regulated by the sex impulse.

जीवन में यदि काम वासना के लिए स्थान है, तो उससे भी बढकर महत्त्वपूर्ण स्थान आत्मत्याग, सेवा, उदारता एवं परदुःखकातरता का है। आत्मकेन्द्रिक बनकर स्वार्थपरायण, भोगसर्वस्व जीवन व्यतीत करने में कदापि सुख नहीं है। गृह-परिवार के शान्त, स्नेहपूर्ण वातावरण में जो संतोष एवं आत्मतृप्ति है, वह बाह्य जीवन के तुमुल कोलाहल में नहीं। अमेरिका जैसे समृद्ध देश की नारियों के मन में भी आज भोगसर्वस्व जीवन के प्रति प्रतिक्रिया होने लगी है। वे भी सुख, शान्ति एवं संतोष की खोज में गृह-परिवार का आश्रय लेने लगी हैं।

भोग विलास, अभाव एवं तृष्णा की कोई सीमा नहीं। तुच्छ भोग लालसा चरितार्थ करने के मोह में यदि नारी अपने स्वाभाविक कर्मक्षेत्र को छोड़कर बाह्य कर्मक्षेत्र को ही अपने लिए उपयुक्त स्थान समझने का आग्रह दिखाये, तो समाज-कल्याण की दृष्टि से यह शुभ लक्षण नहीं कहा जा सकता। भारत की नारियाँ अबला नहीं, देवी और शक्ति हैं। शताब्दियों से इस देश में नारियों की जो गौरवपूर्ण परंपरा चली आ रही है, उसकी उन्हें रक्षा करनी है। माननीय डॉक्टर राधाकृष्णन् के शब्दों में नारियाँ 'भारतीय संस्कृति की अभिरक्षिका' (Custodions of India's Culture) हैं। पुरुषों की अपेक्षा उनमें आत्मबल एवं नैतिक शक्ति अधिक है। शताब्दियों से जो नारियाँ दासता के बन्धन में आबद्ध थीं, उनके लिए एक नवयुग का आविर्भाव हुआ है। अपने त्याग, संयम एवं अनुशासन के द्वारा वे मनुष्य के जीवन-स्तर को ऊँचा कर समाज एवं राष्ट्र का अशेष कल्याण कर सकती हैं।

स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेव च ।
स्वं च धर्मं प्रयत्नेन जायां रक्षन् हि रक्षति ॥
—मनु० ९।७

[अर्थात्, जो पुरुष यत्नपूर्वक अपनी पत्नी की रक्षा करता है, वही अपनी सन्तति, चरित्र, कुल तथा अपने धर्म की रक्षा करता है।]

बिहार की महिलाओं का पारिवारिक जीवन

श्रीपरमानन्द पाण्डेय, एम्० ए०, बी० एल्०; बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद, पटना

मनु ने कहा है—'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'। जहाँ, जिस परिवार में, नारी की पूजा होती है—नारी को समुचित आदर मिलता है, वहाँ देवता रमते हैं—वास करते हैं।

अन्य मनीषियों ने भी नारी को पूजनीया माना है। भारतीय संस्कृति में नारी 'देवी' कहकर सम्बोधित की गई है। आज पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से भले ही नारियों को श्रीमती प्रसाद, श्रीमती सिंह, श्रीमती शर्मा आदि जो कुछ कहा जाय, लेकिन उनकी भारतीय उपाधि 'देवी' ही है। आज ऐसा भी देखा जाता है कि स्त्री का अपना नाम लुप्त हो जाता है और पति के नाम के साथ श्रीमती जोड़कर लोग काम चला लेते हैं। श्रीमती सीता देवी न कहकर श्रीमती सीता प्रसाद या श्रीमती रामप्रसाद ही कहना आधुनिक सभ्यता का लक्षण माना जाता है। नारियाँ और स्थानों में तो समानता तथा स्वतंत्रता के नारे लगाती हैं, परन्तु अपने नाम को न जाने क्यों वे पानी में नमक की तरह पुरुषों के नाम में घुल मिल जाने देना पसन्द करती हैं। यह एक विचित्र बात है!

आज की नारियाँ देवी न रहकर मानवी होना चाहती हैं। मैं समझता हूँ कि ऋषियों ने नारी की सहज स्वाभाविक स्नेहशीलता, सेवापरायणता, दयालुता, मधुरता, भावुकता, सुन्दरता आदि गुणों को देखकर ही उसे देवी के परम पावन पद पर प्रतिष्ठित किया था। नारियों के उपर्युक्त गुणों के कारण ही ऋषियों ने उनकी लौकिक उपयोगिता और महत्ता समझकर उनके लिए कुछ सीमाएँ निर्धारित कर दी थीं, जिनके अन्दर ही उनके नारीत्व (देवीत्व) का चरम विकास हो सके। तत्कालीन परिस्थितियों और सामाजिक व्यवस्थाओं में नारियाँ उन्हीं निर्धारित मर्यादाओं की परिधि में रहकर सुशोभित होती थीं। परिवार के बाहर भी उनकी सत्ता-महत्ता थी, किन्तु गृह और परिवार में तो उनका ऐकाधिपत्य था—एकच्छत्र राज्य था। अत, जो वस्तु जितनी ही अमूल्य होती है, उसकी रक्षा उतनी ही तत्परता और सावधानता से की जाती है। नारी की रक्षा का विधान भी, उसके जीवन-भर के लिए, प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। इसी उद्देश्य से मनु ने कहा है—

पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥

यहाँ संरक्षण में रहने का कोई दूसरा भाव नहीं है, पराधीनता का संकेत भी नहीं है। यहाँ सिर्फ रक्षा की बात है। जैसे राज्यपाल आदि स्वतंत्र हैं, फिर भी उनके अंगरक्षक आदि रहते हैं। यहाँ नारी की पराधीनता की घोषणा समझना अनुचित है। यहाँ उनके प्रति पुरुषों

के कर्त्तव्य पालन में सदा सजग रहने मात्र का विधान है। यहाँ संरक्षण का अर्थ बलपूर्वक बन्धन कदापि नहीं। मनु की उपयुक्त पंक्तियाँ नारी की गुलामी की जंजीर नहीं हैं, अपितु प्रेम, प्रतिष्ठा और आदर की जयमाला हैं।

वेद में भी विवाहोपरान्त वधू को आशीर्वाद दिया गया है—

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधिदेवेषु॥

—ऋ० १०।८५।४६

यह, घर में सास, ससुर, ननद, देवर आदि की सम्राज्ञी बनने का आशीर्वाद है। परिवार में स्त्री के उत्तरदायित्वपूर्ण अधिकार की एक महत्वपूर्ण घोषणा है यह। प्राचीन भारतीय वाङ्मय में सर्वत्र भार्या ही गृहस्थी का मूलाधार है। स्त्री के बिना परिवार का अस्तित्व ही नहीं है। सामाजिक और पारिवारिक सुख समृद्धि की आधार-शिला स्त्री ही है। स्कन्दपुराण में कहा गया है—

भार्या मूलं गृहस्थस्य भार्या मूलं सुखस्य च।
भार्या धर्मफलावाप्त्यै भार्या सन्तानवृद्धये॥

—काशीखंड, अ० ४।६७

जिस प्रकार रथ को चलाने के लिए दो पहियों का होना अनिवार्य है, उसी प्रकार परिवार को सुचारुरूपेण सचालित करने के लिए भी पुरुष और नारी का पारस्परिक सहयोग अत्यन्त आवश्यक है। परिवार में दोनों का महत्त्व समान है। यदि स्त्री का सहयोग न हो, तो पुरुष अकेला परिवार नहीं चला सकता। कहा गया है—

एकचक्रो रथो यद्वदेकपक्षो यथा खगः।
अभार्योऽपि नरस्तद्वदयोग्यः सर्वकर्मसु॥

—भविष्यपुराण, अ० ७

इस प्रकार, समाज के आधारभूत परिवार में नारी का महत्त्वपूर्ण स्थान स्पष्ट सिद्ध है। वर्त्तमान युग में भी नारी का यह महत्त्व कम नहीं हुआ है। फिर भी, आवश्यकता इस बात की है कि नारी और पुरुष दोनों इसको समझें और तदनुसार व्यवहार करें, ताकि दोनों का पारिवारिक जीवन सुख शान्तिपूर्ण और आनन्दमय हो।

उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए हमें विचारना है कि बिहारी परिवार में नारी की स्थिति क्या है, उसका पारिवारिक जीवन कैसा है।

पारिवारिक सम्बन्धों के विचार से नारियों के मुख्यतः तीन प्रकार होंगे—

१. जो पूरे समय के लिए परिवार में रहती हैं, २. जो आंशिक रूप से परिवार में रहती हैं, और ३. जो परिवार से अलग रहती हैं—जिनका परिवार से कोई सम्बन्ध नहीं।

प्रथम प्रकार की महिलाएँ घर में ही रहती हैं। ये घर की देख-रेख, बच्चों का लालन-पालन, चूल्हा चौका, सँभालना आदि अनेक घरेलू काम-काज करती हैं। सारांश यह कि

इनका कार्यक्षेत्र अपने घर तक ही सीमित है। ऐसी स्त्रियों का सारा समय परिवार में ही बीतता है और परिवार के सभी सदस्यों से उचित स्नेह का निर्वाह भी करना पड़ता है।

उम्र के हिसाब से संयुक्त परिवार में प्रायः तीन कोटि की महिलाएँ हैं—वृद्धा, प्रौढ़ा और युवती। बिहार में संयुक्त परिवार की प्रथा किसी तरह अभी जीवित है। बिहारी परिवार में प्रायः उक्त तीनों प्रकार की महिलाएँ पाई जाती हैं। वृद्धा दादी-नानी आदि कहलाती हैं और घर की महिलाओं में सर्वोच्च आदरणीयासपद उन्हीं का है। बेटा, पोता, नाती, बहू, बेटी, पोती, नतिनी—सभी उनका आदर करते हैं, उनको यथासाध्य आराम देने की कोशिश करते हैं और उनसे आशीर्वाद पाने की लालसा रखते हैं। उनके समक्ष देवर-भाभी, ननद-भौजाई परस्पर परिहास करने में सकुचाते हैं। जिस परिवार में ऐसी वयोवृद्ध महिलाओं का उचित सम्मान नहीं होता, उसकी निन्दा सारे समाज में होती है और ऐसे निन्दनीय परिवार की अवनति तथा दुर्गति के दृश्य भी देखे गये हैं।

अधिकांश वृद्धा महिलाएँ गृह-व्यवस्था से विरत होकर राम भजन करती हैं और घर का सारा भार बहू पर दे देती हैं। बहू भी गृह-स्वामिनी का गौरव पाकर सबकी समुचित सुविधा और आराम का खयाल रखती हैं। हाँ, यदि वृद्धा स्वेच्छा से गृह-स्वामिनी का पद नहीं छोड़ती, तो गृह-कलह भी होता है। प्रायः अधिकतर सभ्य परिवारों में दोनों ही सद्-भावना और समझदारी से काम लेती हैं, जिससे जीवन सुखमय रहता है।

संयुक्त परिवार में नवयुवतियाँ, नवोढ़ा बहुएँ अथवा नव-विवाहिता बेटियाँ घर के उत्तरदायित्व से प्राय मुक्त रहती हैं। हाँ, यदि परिवार में कोई बड़ी बहू न रही, तो स्वभावतः सारा भार नई-नवेली बहू पर आ जाता है।

बिहार में तिलक दहेज की प्रथा बड़ी ही भयानक है। इस घृणित प्रथा ने यहाँ के सामाजिक जीवन को विकृत कर दिया है, महिलाओं की पारिवारिक स्थिति को भी शोचनीय बना दिया है। यदि लड़की के पिता ने काफी दहेज नहीं दिया, तो ससुराल के परिवार में लड़की की प्रतिष्ठा कम होती है। बहू के पिता ने यदि देन-लेन में कसर की, तो उसका उपालम्भ, अनेक झिड़कियों के साथ, बहू को सुनना पड़ता है। यदि वह बिना जवाब दिये सब चुपचाप पी जाय, तो उसका कुशल है और यदि जवाब दे, तो तुरत निर्लज्ज और खोटी कहलाये। वह सबके लिए अप्रिय हो जाती है। जिस बहू का पिता अधिक तिलक-दहेज देता है, वह भी नये परिवार में कुछ ही दिनों के लिए प्रिय रहती है। इसका पहला कारण तो यह है कि ऐसे विवाह में लड़के के पिता रुपया ही देखते हैं, लड़की के गुण नहीं। ऐसी बहू को भी पूरा अभिमान रहता है। वह समझती है कि उसके पिता ने लड़का खरीदा है, इसलिए स्वभावत कुछ अहंकार हो जाता है। नतीजा यह होता है कि परिवार के सभी लोग उसके अभिमान से असन्तुष्ट हो जाते हैं। दूसरी ओर, लड़की के पिता से बेरहमी के साथ जो तिलक-दहेज वसूला जाता है, उससे उनका दिल भी टूट जाता है, क्योंकि जिस

लड़की की बदौलत पिता को जमीन-जायदाद बेचनी पड़े, वह लड़की मायके में अधिक प्रिय नहीं रह पाती। ससुराल चली जाने पर उसकी खोज खबर कम ली जाती है।

इस घृणित प्रथा के समाप्त होने पर महिलाओं की पारिवारिक स्थिति में अभीष्ट परिवर्त्तन दृष्टिगोचर होने लगेगा।

पाश्चात्य परिभाषा के अनुसार, परिवार जहाँ पति पत्नी और नाबालिग बच्चे तक ही सीमित है, वहाँ घर में पत्नी ही सर्वे-सर्वा होती है। परिवार की आन्तरिक व्यवस्था महिला के हाथ में ही रहती है। पाश्चात्य देशों में भारत की तरह सम्मिलित परिवार की प्रथा नहीं है। सम्मिलित भारतीय परिवार में भी गृहिणी ही गृहस्वामिनी होती है, इसीलिए वह गृहलक्ष्मी कहलाती है। गृहस्वामी पुरुष घर के बाहर का सारा कामकाज करता है और घर के अन्दर की सारी पारिवारिक व्यवस्था गृहदेवी के अधिकार में रहती है। बिहार में आज भी यह सनातन भारतीय परम्परा यत्र-तत्र प्रचलित है।

हमारे बिहार में कुछ महिलाएँ ऐसी भी हैं, जो घर से बाहर कार्य करती हैं। समाज-सेविका, राज्य-विधान सभा या केन्द्रीय संसद् की सदस्या, प्राध्यापिका, शिक्षिका तथा दफ्तरों में कार्य करनेवाली नारियाँ भी इसी कोटि में आती हैं। ये दिन रात अपने परिवार में नहीं रहती हैं। परिवार से इनका सम्बन्ध पुरुषों-जैसा है। बाल बच्चों के लालन-पालन का भार इनपर कम ही रहता है। ये चूल्हे चक्की से करीब करीब सम्बन्ध-विच्छेद कर लेती हैं। व्यवहार कुशलता, स्वभाव की मृदुलता, कार्यक्षमता आदि गुणों के कारण इन्हें समाज में सम्मान और द्रव्य दोनों प्राप्त होते हैं।

बिहार की कितनी ही महिलाएं सामाजिक और राजनीतिक तथा साहित्यिक सेवा के क्षेत्र में प्रचुर ख्याति पा चुकी हैं। इनके अतिरिक्त भी अनेक बिहारी महिलाएँ हैं, जो देश और समाज के उत्थान में अपना सारा समय लगाती हैं। इनका कार्यक्षेत्र परिवार से बाहर है। इनका परिवार से स्नेह सम्बन्ध रहता तो है, पर सार्वजनिक हित के लिए इन्हें पारिवारिक सुख का त्याग करना ही पड़ता है। ये बाहर गौरव प्राप्त करती हैं, लेकिन परिवार के भीतर इनकी विशेष उपयोगिता नहीं रह पाती।

हमारे बिहार में भी अब महिलाओं का एक ऐसा वर्ग क्रमशः बन रहा है, जिसे परिवार से विशेष सम्बन्ध नहीं। यह वर्ग आधुनिक सभ्यता और नई शिक्षा से उत्पन्न सामाजिक क्रान्ति की देन है। बहुत अधिक पढ़-लिख लेने और पुरानी रूढ़ियों को तोड़ने तथा विचार स्वातन्त्र्य के कारण आजीवन कौमार्य व्रत धारण करनेवाली महिलाएँ भी बिहार में, स्वल्पाधिक संख्या में हैं। विशेषतः उच्च शिक्षा प्राप्त महिलाओं में सार्वजनिक सभा सम्मेलनों, रेडियो तथा सिनेमा का शौक दिन-दिन बढ़ता जाता है। स्वावलम्बन की भावना भी उनके हृदय में विकसित होती जा रही है। वर्त्तमान प्रगतिशील युग के प्रभाव से ऐसी महिलाओं का समाज अनुदिन उन्नति पथ पर अग्रसर होता जा रहा है।

किन्तु, भारतीय संस्कृति की प्राचीन मर्यादा के जो पोषक और समर्थक हैं, वे भारतीय ललनाओं की पाश्चात्य प्रणाली की उन्नति देखकर चिन्तित भी हैं।

बिहार में महिलाओं का एक वर्ग और है, जिसे प्रतिदिन दोनों समय भोजन पाने के लिए कठिन श्रम करना पड़ता है। ये मजदूरिनें यद्यपि अपने परिवार से बाहर ही काम करती हैं, तथापि दिन भर परिश्रम करके रात में अपने परिवार में ही रहती हैं। दिन भर कठिन श्रम करके जो कुछ उपार्जन करती हैं, उसी से अपना तथा अपने बच्चों के पेट भर पाती हैं। इनमें से कितनी ही अभागिनों के पति भी निकम्मे होते हैं, जिनका भार भी इन्हीं बेचारियों पर रहता है। पर, जहाँ पति, पत्नी, पुत्र और पुत्रवधू सभी कमाते हैं, वहाँ पारिवारिक सुख की कमी नहीं है। हाँ, शिक्षा और ज्ञान के अभाव के कारण परिवार में कुछ कलह भले ही हो जाय, पर ये नेह-छोह-भरा घरेलू सुख का उपभोग अपनी अनुभूति के अनुसार कर लेती हैं। किन्तु, अधिकांश ऐसे परिवारों को भर पेट भोजन नहीं मिल पाता। कितने ही परिवारों का हर एक बालिग व्यक्ति कमाता है, लेकिन मजदूरी से ही खाना कपड़ा, पर्व-त्योहार, शादी-ब्याह, दवा दारू आदि का सारा खर्च नहीं निभता। लगातार काम मिलता भी नहीं। जाड़ा, बरसात और धूप-लू के महीनों में प्रायः आठ-दस दिन प्रति मास बेकार बैठ जाना पड़ता है। दुर्भाग्य की बात है कि मजदूर-वर्ग के कितने ही व्यक्ति शराब पीने के व्यसन में पड़ जाते हैं।

कुल मिलाकर यह वर्ग सदा आर्थिक कठिनाई में रहता है। इनका रहन-सहन का स्तर अत्यन्त निम्न कोटि का होता है। फलतः, ऐसे वर्ग की महिलाओं का पारिवारिक जीवन कहीं कहीं कटुतामय और कहीं-कहीं असंतोषप्रद रहता है। किन्तु, एक बात है कि इस वर्ग की महिलाएँ जीविकोपार्जन के लिए स्वतन्त्र हैं और पुरुषों की कमाई पर ही अपना गुजर-बसर नहीं करतीं।

बिहार के नगरों और गाँवों में कुछ लोगों का ही परिवार समृद्ध है। अधिकांश परिवार मध्यम वर्ग के हैं। औद्योगिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक दृष्टियों से बिहार एक पिछड़ा हुआ राज्य कहा जाता है। अतः, बिहारी महिलाओं का औसत पारिवारिक जीवन अनेक प्रकार के अभावों का शिकार है। जबतक आर्थिक विषमता नहीं मिटती और मध्यम वर्ग की आय नहीं बढ़ती, तबतक अधिकांश का जीवन संकटमय ही रहेगा।

यों तो समृद्ध परिवार में भी कभी-कभी अशान्ति दीखती है, किन्तु अभावग्रस्त परिवार में तो सुख शान्ति का कुछ-न-कुछ अभाव बराबर रहता है। परिवार की गरीबी का अभिशाप अधिकांशतः महिलाओं को भोगना पड़ता है। तुलसीदासजी ने कहा है—

जल संकोच बिकल भये मीना। बिविध कुटुम्बी जनु धनहीना॥

बिहार की महिलाओं के पारिवारिक जीवन को उन्नत करने के लिए उनके आर्थिक तथा शैक्षणिक स्तर को उन्नत करना नितान्त आवश्यक है।

अंगिका के लोकगीतों में नारी-हृदय का चित्रण

श्रीगदाधरप्रसाद अम्बष्ठ, विद्यालंकार, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना

अंग-राज्य की महत्ता

'अंगिका' प्राचीन अंग-जनपद की भाषा है। बिहार-प्रान्त के अन्तर्गत न्यूनाधिक भागलपुर प्रमण्डल ही प्राचीन अंग देश था। अति प्राचीन काल में 'अंग' एक शक्तिशाली राज्य रहा। इस जनपद की चर्चा अथर्ववेद, अथर्ववेद के परिशिष्ट, ऐतरेय ब्राह्मण, गोपथ ब्राह्मण, ऐतरेय आरण्यक आदि वैदिक ग्रन्थों, अनेक पौराणिक एवं स्मृति ग्रन्थों, रामायण, महाभारत आदि प्राचीन पोथियों तथा बौद्ध एवं जैन साहित्य में की गयी है। अवध नरेश सुप्रसिद्ध सत्यवादी हरिश्चन्द्र के समय यहाँ दृढ़रथ नाम का राजा था। कोशल नरेश 'सगर' के समय अंग देश का राजा बलि था। इसकी पत्नी सुदेष्णा से महर्षि दीर्घतमा के अंग, वंग, कलिंग, सुह्म और पुंड्र—ये पाँच पुत्र उत्पन्न हुए जिन्होंने अपने-अपने नाम पर अलग-अलग देश बसाये। इस दीर्घतमा ने शकुन्तला और दुष्यन्त के पुत्र भरत का राज्याभिषेक कराया था, जिसके नाम पर इस देश का नाम 'भारत' पड़ा। ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है कि राजा अंग ने समस्त पृथ्वी को जीतकर अश्वमेध यज्ञ किया था। अङ्ग समन्तं सर्वतः पृथ्वीं जयन् परीयायाश्वेन च मेध्येनेज इति—३१।८।२२।

अंग के वंशधर राजा लोमपाद के साथ अयोध्या-नरेश महाराज दशरथ की मैत्री थी। अंगदेश की राजधानी चम्पानगर (भागलपुर) में महाराज दशरथ रानियों-सहित आकर लोमपाद के जामाता ऋष्यशृंग को पुत्रेष्टि-यज्ञ कराने के लिए ले गये। यहाँ के राजा अधिरथ ने महाभारत के सुप्रसिद्ध वीर कर्ण को शैशवावस्था में गंगा में बहते हुए पाकर उनका अपने यहाँ पालन-पोषण किया था।

वायुपुराण में अंगद्वीप का वर्णन आया है। ईसा की पहली शताब्दी में हिन्द-चीन-स्थित चम्पा के अन्दर अंगवासियों ने अपना उपनिवेश बसाया था। बुद्ध के समय में अंग भारत के सोलह महाजनपदों में एक था। जैनों के बारहवें तीर्थङ्कर वासुपूज्य यहीं हुए। सुत्तनिपात आदि बौद्ध ग्रन्थों में अंग के गंगा से उत्तर के हिस्से को, अर्थात् वर्तमान उत्तर मुँगेर, उत्तर भागलपुर और सहरसा जिले को अंगुत्तराप कहा है। अंग के उत्तरीय और दक्षिणीय दोनों भागों में भिक्षु-संघों के साथ भगवान् बुद्ध कई बार भ्रमण के लिए आये थे।

विद्या का केन्द्र

अंग प्राचीन काल से ही विद्या का केन्द्र रहा है। महर्षि दीर्घतमा और उनकी शूद्रा स्त्री कक्षीवती के पुत्र कक्षीवन्तों के बहुत से सूक्त ऋग्वेद में हैं। राजा जनक के दरबार के महर्षि अष्टावक्र यहीं के रहनेवाले थे। लंकावतारसूत्र के प्रसिद्ध प्रणेता बौद्ध पंडित

जिन, हस्त्यायुर्वेद के रचयिता पालकाप्य मुनि और थेरगाथावली के लेखक सोम चम्पा ही निवासी थे। कहते हैं कि कात्यायनसूत्र नामक धर्मग्रन्थ के निर्माता कात्यायन मुनि ने भी चम्पानगरी में ही जन्म लिया था। स्वयम्भव आचार्य ने जैनसिद्धान्त-ग्रन्थ दशवैकल्प सूत्र की रचना यहीं रहकर की थी। ईसा की आठवीं शती से बारहवीं शती तक यहाँ के विक्रमशिला-विश्वविद्यालय ने विश्व में बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की थी। चीन, तिब्बत, मध्य एशिया, लंका, जावा, सुमात्रा, बर्मा, स्याम तथा अरब देशों में यहाँ से धर्मप्रचार का कार्य होता था। इन देशों के बहुत-से छात्र यहाँ विद्याध्ययन के लिए आते थे। आचार्य रत्नाकर ने लंका में एवं पद्मसम्भव, कमलशील, शान्तरक्षित, दीपंकर श्रीज्ञान आदि महापंडितों ने तिब्बत में धर्म और साहित्य के प्रचार के लिए बड़ी ख्याति प्राप्त की थी। इनमें कितनों की रचनाएँ अब भी प्राप्य हैं। सहोर (वर्त्तमान सबौर भागलपुर)-निवासी शान्तरक्षित का जन्म ६७५ ई० में और दीपंकर श्रीज्ञान का जन्म ९८२ ई० में हुआ था। ये दोनों अपने-अपने समय के शीर्षस्थानीय दार्शनिक विद्वान् थे और तिब्बत नरेश के विशेष निमन्त्रण पर वहाँ गये थे। दीपंकर श्रीज्ञान तो इससे पूर्व बारह वर्षों तक स्वर्ण-द्वीप (सुमात्रा) में रह चुके थे। शान्तरक्षित की खोपड़ी, पात्र, चीवर आदि तिब्बत के साम्ये-विहार में और दीपंकर श्रीज्ञान के भिक्षापात्र, कमंडलु और खदिर-दंड ल्हासा के रास्ते के एक मन्दिर में सुरक्षित हैं। इस काल के तिब्बती साहित्य में अंग-देश का नाम भगल भी आया है। यही भगल नाम आज 'भागलपुर' में परिणत हो गया। बौद्धों के चौरासी सिद्धों का गढ़ विक्रमशिला विश्वविद्यालय ही था। इन चौरासी सिद्धों में तेरह तो अंगदेश के ही थे।

सिद्ध-साहित्य में अंगिका का स्वरूप

सिद्धों का साहित्य अपभ्रंश भाषा में है। सिद्धों के अतिरिक्त भी विनयश्री आदि कितने ही लेखक और कवि यहाँ इस युग में हुए, जिनमें बहुतों की रचनाएँ अब भी प्राप्य हैं। आज की अंगिका-भाषा का मूल रूप हम सिद्धों के आठवीं से बारहवीं शती तक के साहित्य में पाते हैं। अंगिका ही क्यों, पास पड़ोस की बँगला, असमिया, उड़िया, मैथिली, मगही, भोजपुरी आदि की उत्पत्ति भी इसी पूर्वा अपभ्रंश भाषा से बतायी जाती है, जिसका केन्द्र-स्थल होने का गौरव अंगदेश को है।

प्राचीन आंगी भाषा

ईसा की पहली शताब्दी के ग्रन्थ भरतनाट्यम् में भारत की भाषाओं को इन सात श्रेणियों में बाँटा गया है—मागधी, अवन्तिका, प्राच्या, शूरसेनी, अर्द्धमागधी, बाह्लीका और दाक्षिणात्या :

मागध्यवन्तिका प्राच्या शूरसेन्यर्द्धमागधी।
बाह्लीका दाक्षिणात्या च सप्त भाषा प्रकीर्त्तिताः॥

—भरतनाट्यम्, १७।४८

पाणिनि व्याकरण के अध्याय ४ और पाद १ के १७८वें सूत्र—न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः की व्याख्या करते हुए सातवीं शती की पाणिनीय काशिका वृत्ति के रचयिता ने प्राच्या के अन्तर्गत पाचाली, वैदेही, आगी, वांगी और मागधी को माना है। सिद्धान्तकौमुदी के रचयिता भट्टोजिदीक्षित ने भी इस व्याख्या को स्वीकार किया है। अन्तर केवल इतना ही है कि वैदेही के स्थान में उन्होंने वैदर्भी लिखा। वग की भाषा को आज हम वागी के स्थान में बँगला और अग की भाषा को आगी के स्थान में अगिका कहते हैं।

अगलिपि

प्राचीन सस्कृत बौद्धधर्म ग्रन्थ 'ललितविस्तर' के ग्यारहवें अध्याय में, जिसका चीनी और जापानी अनुवाद छठी शती के पूर्व ही हुआ था, तत्कालीन चौंसठ लिपियों में क्रमानुसार चौथी लिपि का नाम अगलिपि लिखा है। इससे इस लिपि की प्रमुखता प्रकट होती है। 'ललितविस्तर' में उल्लिखित लिपियों के अन्दर मगध-लिपि का स्थान छठा और पूर्व विदेह-लिपि का स्थान इकतालीसवाँ है। अग जनपद के पर्वतों और मूर्त्तियों में उत्कीर्ण अभिलेखों तथा विक्रमशिला के तिब्बत और नेपाल गयी हुई पुस्तकों को गौर से देखने पर इस अगलिपि का पता लग सकता है। मिथिला, असमिया और बँगला-लिपियों में परस्पर का जितना अन्तर दिखाई पड़ता है, अनुमान है कि उतना ही कुछ अन्तर इन लिपियों का अगलिपि के साथ भी होगा। थोड़ी थोडी दूरी पर अधिक अन्तर की सम्भावना नहीं दीखती।

अंगिका भाषा पर आधुनिक विद्वान्

अंगदेश की भाषा का प्राचीन नाम आगी के लिए अगिका शब्द का प्रयोग आधुनिक विद्वानों में सर्वप्रथम महापडित राहुल सांकृत्यायन ने किया था। उसी सिलसिले में उन्होंने वज्जिका, काशिका और मल्लिका के नाम भी लिये थे। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने अपनी 'हिन्दी भाषा का इतिहास' नामक पुस्तक के तृतीय सस्करण के ४४वें पृष्ठ पर लिखा है—"मेरी धारणा है कि १००० ई० पू० के लगभग काशी, मगध, विदेह, अग, वग आदि जनपदों के आर्यों की बोलियाँ आज के इन प्रदेशों की बोलियों की अपेक्षा अधिक साम्य रखते हुए भी एक दूसरे से कुछ भिन्न अवश्य रही होंगी। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक जनपद की प्राचीन प्रान्तीय आर्यभाषा में कुछ विशेषताएँ रही होंगी, जो विकास को प्राप्त होकर आजकल की भिन्न-भिन्न भाषाएँ और बोलियाँ हो गयी हैं।" श्रीजयचन्द्र विद्यालकार ने भी अपनी 'बिहार : एक ऐतिहासिक दिग्दर्शन' नामक पुस्तक के पृष्ठ १२ मे बताया है कि ग्रियर्सन ने जिन बोलियों को मैथिली के भेद कहे हैं, वे वास्तव में वैशाली, विदेह, अगुत्तराप और अग-जनपद को सूचित करते हैं।

विद्यापति पर अंगिका का प्रभाव

सिद्ध-साहित्य के बाद अंगिका-भाषा का प्रभाव हम चौदहवीं शती के विद्यापति के पदों में पाते हैं। विद्यापति का ननिहाल तथा अन्य कई सम्बन्ध अंगदेश से होने के कारण

तथा नडीस्थान (मुँगेर) एवं वैद्यनाथधाम बराबर आते-जाते रहने के कारण, उनकी भाषा पर अंगिका-भाषा का अत्यधिक प्रभाव देखा जाता है। अंगभाषा की अनेक संज्ञाओं, सर्वनामों और क्रियाओं के प्रयोग उनके पदों में हुए हैं, जो मैथिली के पुराने और नवीन कवियों की रचनाओं में प्रायः नहीं मिलते, बल्कि ठेठ मिथिला में उनके ये शब्द आज भी बोधगम्य नहीं हैं।

आधुनिक अंगिका का साहित्य

अठारहवीं शती के अन्त में फादर एण्टोनियो ने 'गॉस्पेल ऐंड ऐक्ट्स' का अंग-भाषा में अनुवाद किया था। कहते हैं कि उत्तर भारत की भाषाओं में सबसे पहले इसी भाषा में इस पुस्तक का अनुवाद हुआ था। जॉन क्रिश्चियन ने इस भाषा में बाइबिल के कुछ अंशों का अनुवाद मुँगेर में लीथो में प्रकाशित किया था। सम्भवतः, अठारहवीं या उन्नीसवीं शती में रचित 'बिहुला'-गीतिकाव्य का अंगिका क्षेत्र में बहुत प्रचार है। कलकत्ता और बनारस से यह पुस्तक लाखों की संख्या में छपी है। बीसवीं शती में देवघर के भव-प्रीतानन्द के गीत बहुत लोकप्रिय हुए। छिटफुट गीतों और नाटकों की रचना करनेवाले तो बहुत हैं। कुछ दिन पूर्व पूर्णिया जिले में बोलबे नाटक का बड़ा प्रचार था। इन नाटकों की तुलना भोजपुरी क्षेत्र के भिखारी के नाटकों से की जा सकती है। अंगिका के प्राचीन साहित्य अभी प्राप्त नहीं हुए हैं। इस सम्बन्ध में अनुसन्धान की आवश्यकता है।

अंगिका का लोक साहित्य

अलिखित लोक साहित्य तो अन्य क्षेत्रीय भाषाओं की भाँति अंगिका में भी बहुत हैं। यहाँ के पुरुष लोकगीतों में लोरिकायन, घुघुली घटमा, नैका बनिजारा, बिजयमल, ढोलनसिंह, सलेस, दीना भदरी, मनसा राय, मीरायन, लाला महाराज, कालीदास, नटुआ दयालसिंह, विक्रमादित्य, लुकेसरी, भोज, कमला माय, नन्हीं बिन्हीं, चडीवर, लड़िलवा, हिरनी-बिरनी, मदअन, बहुरा गोढिन, चुहरमल, बृजभान आदि अनेक प्रसिद्ध गीत हैं। इनमें से कुछ गीत दूसरे क्षेत्रों में भी प्रचलित हैं, किन्तु उनकी भाषा में अन्तर है। शायद ही कोई ऐसा गाँव हो, जहाँ इन गीतों में से किसी न-किसी के गानेवाले व्यक्ति न हों। इन गीतों में मानव प्रकृति के जैसे स्वाभाविक चित्रण हैं, हृदय की जैसी सच्ची भावनाएँ प्रदर्शित हैं, वैसा बड़े बड़े काव्यों में भी मिलना कठिन है, यहाँ बहुत से पुरुषों एवं पुरानी बूढ़ी स्त्रियों से शिक्षाप्रद और मनोरंजक किस्से कहानियाँ सुनने को मिलती हैं। इन सबका यदि संग्रह किया जाय, तो कहानी और उपन्यास के बड़े-बड़े सुन्दर ग्रन्थ तैयार हो जायँ। इन लोक गाथाओं का प्रचलन अब धीरे धीरे बहुत घटता चला जा रहा है। उसी प्रकार यहाँ के मुहावरों, कहावतों और पहेलियों के संग्रह से भी हमारा साहित्य समृद्ध हो सकता है।

अंगिका का स्त्री-लोक साहित्य

पुरुष-लोकगीतों से अधिक सरस, सुन्दर और मार्मिक भाव-भरे स्त्री लोकगीत हैं, जिन्हें स्त्रियाँ घर घर विविध अवसरों पर अकेले या दस पाँच मिलकर गाती हैं। ये गीत

पचासों किस्म के हैं और ये तरह तरह से गाये जाते हैं। इनकी राग रागिनियों का यदि विस्तार-पूर्वक विवेचन किया जाय, तो सगीत शास्त्र का एक सुन्दर ग्रन्थ तैयार हो जाय। भिन्न-भिन्न संस्कारों के अलग अलग गीत हैं, जैसे—जन्म, मुडन, जनेऊ, विवाह आदि के गीत। विवाह के ही गीत बहुत तरह के हैं। भिन्न-भिन्न विधि-व्यवहारों के भिन्न भिन्न गीत हैं, जैसे—कुलदेवता के गीत, सगुन के गीत, तिलक के गीत, लगन के गीत, उबटन के गीत, कन्या-विवाह के गीत, कन्या दान के गीत, पुत्र-विवाह के गीत, बरात के गीत, जोग के गीत, परिछन के गीत, पानी काटने के गीत, नहछू के गीत, जेवनार के गीत, कोहबर के गीत, ममदन के गीत, झूमर आदि। ऐसे अवसर पर स्त्रियाँ परस्पर गाली देने के गीत भी गाती हैं। ऐसे गीतों की संख्या भी कम नहीं है, जिनमें अधिकाश अश्लील हैं, किन्तु कुछ भाव भरे भी हैं। विविध देवी-देवताओं के अलग-अलग गीत हैं जैसे—कुल-देवता, दुर्गा, काली, विषहरी, शीतला, गगा, शिव पार्वती आदि के गीत। मुसलमान भी तजिया के अवसर पर भिन्न-भिन्न गीत गाते हैं। पर्व त्योहारों में छठ, तीज, करमा धरमा, मधु-श्रावणी आदि के तथा खेल तमाशों में जट जटिन, सामा चकेवा, झूला आदि के गीत प्रचलित हैं। अनेक मौसमी गीत भी हैं, जैसे—फाग, चैत, चौमासा, बारहमासा, मलार, कजली आदि। पहले स्त्रियाँ शरीर पर गोदना गोदाती थीं। उस अवसर पर गाये जानेवाले गीत भी बड़े सरस और मधुर हैं। धान रोपन के समय भी स्त्रियाँ गीत गाती हैं। उस अवसर के अलग ही गीत होते हैं। छत पीटने के गीत भी हैं। जाँता पीसने के समय के विविध रसों और भावों के छोटे बड़े बहुत गीत होते हैं। ये 'जँतसार' कहलाते हैं। यहाँ हम अगिका के कुछ ऐसे गीतों के नमूने उपस्थित कर रहे हैं, जिनमें स्त्रियों की कुछ हृद्गत भावनाओं के सुदर चित्रण हैं

सोहागिन

नीचे का पहला गीत 'जँतसार' है। इसमें गेहूँ पीसने के बहाने कोई स्त्री अपने समीचीन और असमीचीन कार्य की स्वय विवेचना कर रही है। कार्य की कठिनाइयाँ वह महसूस करती है और कार्यों के पूरा न होने पर उत्तरदायित्व से चूकने का भी डर उसे है। काम को मेहनत से और दिल लगाकर न करने पर उसे पति की भर्त्सना का भय है, साथ ही परिश्रम और प्रेम के साथ कार्य करने पर प्रियतम की आँखों म ऊँचा उठने की आशा और भरोसा।

इस प्रकार, इस गीत में साधारण गृहकार्य के बहाने सभी सांसारिक कार्यों को सुचारु रूप से करने पर जीव के लिए परमात्मा के घर प्रिय बनने की बात बतायी गयी है। अतएव, इस गीत को हम रहस्यवादी गीत भी कह सकते हैं। इसम रूपक अलकार स्पष्ट रूप से परिदर्शित है—

कौने देलन गेहुँमा, कउने देलन हे चगेरिया कि,
कउने वैरिनिया, पिसहैंऊ भेजल हे सखिया।

सासु देलन गेहुँमा, ननदी देलन हे चंगेरिया कि,
गोतनी बैरिनिया, पिसइँले भेजल हे सखिया।
आँचर न लई छई, सासो नहिं हे निचरय कि,
कइसे जमइये, सत गुरु पाहुन हे सखिया।
मोट कय पीसवई, आगने हे उठइये कि,
पिय घर होइये, दुर-दुर छिया-छिया हे सखिया।
नान्ह कय पीसवई, प्रेम झारी हे उठइये कि,
तब हमें होइये, पिया के सोहागिन हे सखिया।

सतीत्व-रक्षा

इस गीत में बताया गया है कि कोई योगी राजा के दरवाजे पर कड़ी धूप में पहुँचा, तो रानी ने उसे कुछ देर विश्राम कर लेने के लिए कहा। इसपर उस योगी ने कुछ अन्यथा ही समझ लिया और बहुत खुश हुआ। फिर तो वह रानी को प्रसन्न करने के लिए बाजार जाकर एक-एक कर साड़ी, कुर्ती, गहना और सिन्दूर खरीद लाया तथा रानी से उन्हें पहन लेने का बार-बार आग्रह करने लगा। विवश होकर रानी ने सब कुछ पहन ओढ़ तो लिया, पर वह असमंजस में पड़ गयी। वह न योगी को दुत्कार सकती थी और न धर्म गँवाने को तैयार हो सकती थी।

अन्त में वह सूर्य भगवान् को अर्घ्य देकर प्रार्थना करने लगी कि हे भगवन् मेरा धर्म किसी तरह बचा लो। उसी समय उसे एक बात सूझ हुई। वह योगी को झूठ या सच कहने लगी कि उसका पति आ ही रहा है। योगी घबरा गया और वहाँ से भागने का उपाय पूछने लगा। रानी ने योगी को कोठी पर रखी हुई कटारी को दिखाते हुए बताया कि इसके द्वारा कोली खिड़की को तोड़कर वह जल्दी से भाग जाय।

जब योगी भागकर कुछ दूर चला गया, तब उसे अपनी करनी पर पछतावा होने लगा कि एक सोलह वर्ष की युवती ने उसके जैसे एक साठ वर्ष के योगी का बुद्धि हरण कर उसे किस प्रकार बेवकूफ बना दिया।

घामलऽ घुमलऽ योगी, आयलै हो राम,
आहो राम, बैठी गेलै राजा के दुआरिया कि, रौदी गँवाइये लेहो हो राम।
सेहे सुनि जोगिया, आनन्द भेलै हो राम,
आहो राम, चलि भेलै हाजीपुर हटिया कि, पटोरी बेसाहै लागलै हो राम।
पिन्हहो पिन्हहो रानी, बिरानी धानी हो राम,
आहो राम, पिन्हिये ओढ़िये धानी लेहो कि, पिन्हिये ओढ़िये लेहो हो राम।
सेहे देखि जोगिया, आनन्द भेलै हो राम,
आहो राम, चलि भेलै हाजीपुर हटिया कि, चोलिया बेसाहै लागलै हो राम।

पिन्हहो पिन्हहो रानी, बिरानी धानी हो राम,

आहो राम, पिन्हिये ओढ़िये धानी लेहो कि, पिन्हिये ओढ़िये लेहो हो राम।

सेहँ देखि जोगिया, आनन्द भेलै हो राम,

आहो राम, चलि भेलै हाजीपुर हटिया कि, गहना बेसाहँ लागलै हो राम।

पिन्हहो पिन्हहो रानी, बिरानी धानी हो राम,

आहो राम, पिन्हिये ओढ़िये धानी लेहो कि, पिन्हिये ओढ़िये लेहो हो राम।

सेहँ देखि जोगिया, आनन्द भेलै हो राम,

आहो राम, चलि भेलै हाजीपुर हटिया कि, सेन्दुर बेसाहँ लागलै हो राम।

पिन्हहो पिन्हहो रानी, बिरानी धानी हो राम,

आहो राम, पिन्हिये ओढ़िये धानी लेहो कि पिन्हिये ओढ़िये लेहो हो राम।

पिन्हिये ओढ़िये रानी, समतुल भेली हो राम,

आहो राम, दिये लागली सुरुज अरघवा कि, धरम बचाइये लेहो हो राम।

भागहो भागहो जोगी, भागि जाहो हो राम,

आहो राम, जेकरियो धानी हमें सुन्दरि कि, सेहो चलल आवै हो राम।

कोलिया खिरकिया रानी, बन्द भेहुन हो राम,

आहो राम, कौने दरवाजा जोगी भागता कि, सेहो रे बताइये देहो हो राम।

कोठिया ऊपर जोगी, कटारी छहुन हो राम,

आहो राम, काटी देहो कोलिया खिरिकिया कि जल्दी सयँ भागी जाहो हो राम।

एकै कोसें गेलै जोगी, दुइ कोसें हो राम,

आहो राम, तेसर कोसें मन पछतावै कि, सबे बुधि हरी लेलकै हो राम।

सोलहे बरिस केर रनिया हो राम,

आहो राम, साठें बरिस केर हम जोगी कि, सबे बुधि हरी लेलकै हो राम।

आत्मत्याग

इस गीत में आत्मत्याग का एक सुन्दर आदर्श उपस्थित किया गया है। जिरवा नाम की एक स्त्री गंगा यमुना से पानी लाने के लिए गयी। पापी देवर ने उसकी राह रोकी। इसपर जिरवा ने कहा—'हे पागल देवर, अलग हो जा। वर्षा की नन्हीं नन्हीं बूँदों से मेरी साड़ी भींग रही है।' देवर ने उत्तर दिया—'हे भौजी, साड़ी भींगने दे, मेरी चादर पहन लेना।' भौजाई उत्तर देती है—'तेरी चादर में आग लगे, मैं तो गाम की साड़ी बदलूँगी।' वह स्त्री अपने घर लौट आयी और क्रोध में पति को खरी-खोटी सुनाने लगी। कहने लगी—'धिक्कार है कि तुम्हारे रहते देवर ने मेरी राह रोकी।' पति उत्तर देता है—'हे सुन्दरी, सबेरा होने दो, बाजार से छुरी खरीदकर मैं भाई के प्राण ले लूँगा।' इस पर स्त्री शान्तचित्त होकर सोचती है और कहती है कि—'हे स्वामी, भाई तुम्हारे लिए दाहिनी बाँह है, पर स्त्री तो साट की पाती जैसी है। भाई मर जायगा, तो अकेला हो जाओगे,

किन्तु स्त्री के मरने पर तो फिर स्त्री हो जायगी। इसलिए, हे स्वामी, ऐसी अवस्था में मेरा ही मर जाना बेहतर होगा।'

गंगा सो जमुनवाँ से निरवा, पनिया भर गेलैं रे की,
देवरा पापी ढेकलन पाटियो रे की।
अलग जाहो अलग जाहो, अमत देवरवा हो,
नान्हीं तो फुहरवा, साड़ी मोर भींजल रे की।
भींजे देहो भाई भींजो, अपनो चुनरिया हे,
मोर रे चदरिया पालट करिहऽ रे की।
अगिया लगैवै हो देवरे, तोहरो चदरिया हो,
सासु के लुंगरिया, पालट करवै रे की।
माहीं धून लागहून हे स्वामी, जाँघी धून लागहून हे,
तोहरा हे अछैतें, देवर बाट छेकलक रे की।
हुए दे परात सुन्दरि हे, पसरत हटिया हे,
छुरिया हे बेसाही, भैया जिय हतबै रे की।
मइया जे छीकऽ स्वामी, दहिनियो बहियाँ हे,
तिरिया जे छीकऽ, खाट केर पासियो रे की।
मइया जे मरतऽ हे स्वामी, एस्मर होइबे हो,
तिरिया हे मरैत, फेरू तिरिया होयतऽ रे की।

सौत का हृदय

इस गीत में एक सौत के हृदय का चित्रण है। जब श्रीकृष्ण दूसरा विवाह करने को चले, तब राधिका आग्रह करने लगी कि मैं भी तुम्हारे साथ तुम्हारा विवाह देखने चलूँगी। श्रीकृष्ण ने कहा —'हे राधे, यदि तुम्हारा इतना आग्रह है, तो सब सुन्दर वस्त्राभूषणों को उतार लो और लोकदिनी-दासी के रूप में साथ चल चलो।' राधिका राजी हुई। जब बरात आगे बढ़ी, तब राधिका भी दासी का वेष बनाकर चवर डुलाती हुई श्रीकृष्ण के साथ चल पड़ी। जहाँ जहाँ श्रीकृष्ण जाते थे, उनकी दासी की सुन्दरता को देखकर लोग चकित होते थे। क्रमश नगर, दरवाजा, मँडवा और वेदी पर होते हुए जब श्रीकृष्ण कोहबर में गये, तब राधिका कलेजा न थाम सकी। उसकी आँखों से आँसू भर-भर झरने लगे। यह देखकर सब लोग कहने लगे कि दासी बड़ी अमगुनी है। ऐसे शुभ अवसर पर रोती है। इसपर राधिका बोल उठी—'मैं कोई अशुभ मनानेवाली स्त्री हूँ, ऐसी बात कोई न कहे। मैं श्रीकृष्ण की प्यारी और दुलारी राधिका हूँ।' नयी वधू की माँ सुनते ही अकचका गयी। उसने झट राधिका को अपने कलेजे से लगा लिया और वह कहने लगी कि मुझे क्या मालूम, जो मैं जानती कि राधिका बेटी मेरे घर आयगी, तो मैं राधिका के योग्य वस्त्र, आभूषण और सिन्दूर पहले से खरीद रखती और उसे प्रेम से पहनाती।

जब हरि चलल बियाह करै है,
हरि हरि राधिका जी अँचरी पसारल, हम्हू जैबऽ तोरे सगे है।
जऊँ राधे चलबे हमरो सगे है,
हरि हरि सभे आभरन खोलि लेहो, लोकदिनी भेसें चलहो है।
सजि बरियतिया बाहर भेन है,
हरि हरि राधिका बियनिया नेने साथ, लोकदिनिया बड़ी सुन्दरि है।
जब हरि आयेला नगर बीचें है,
हरि हरि राधिका बियनिया डोलावय, लोकदिनिया बड़ी सुन्दरि है।
जब हरि आयेला दुअरिया बीचे है,
हरि हरि राधिका बियनिया नेने ठाढ़ी, लोकदिनिया बड़ी सुन्दरि है।
जब हरि आयेला मँड़वा पर है,
हरि हरि राधिका पीठिया लागी ठाढ़ी, लोकदिनिया बड़ी सुन्दरि है।
जब हरि आयेला बेदिया तरे है,
हरि हरि राधिका पँजरवा लागी ठाढ़ी, लोकदिनिया बड़ी सुन्दरि है।
जब हरि आयेला कोहबरवा घरें है,
हरि हरि राधिका नयनवाँ ढरे लोर, लोकदिनिया बड़ी असगुनी है।
असगुनी असगुनी जनु बोलूँ है,
हरि हरि हमहूँ छिकियै राधिका दुलारी कि हरि जी के पियारियो है।
जऊँ हमें जानतौं राधिका धिया है,
हरि हरि राधिका जोगें पटोरी बेसाहतौं, राधिका पहिनायतौं है।
जऊँ हमें जानतौं राधिका धिया है,
हरि हरि राधिका जोगें गहना बेसाहतौं, राधिका पहिनायतौं है।
जऊँ हमें जानतौं राधिका धिया है,
हरि हरि राधिका जोगें सिन्दुरा बेसाहतौं, राधिका पहिनायतौं है।

विधवा-विलाप

एक अनजान बाल विधवा पिता से पूछती है—'पिताजी, आपने यह तालाब क्यों खुदवाया, और यह वाटिका क्यों लगवायी ?' पिता उत्तर देता है—'बेटी, मैंने यह तालाब धर्म के लिए खुदवाया है और यह वाटिका फूल के लिए लगवायी है।' बेटी कहती है—'हे पिता, मैंने फूल चुन-चुनकर सेज बिछायी, पर न मालूम मेरा मन क्यों अजीब-सा होने लगा, हे पिता, मेरा जन्म आपने क्यों दिया और क्यों मेरी ऐसी सुन्दरता बढ़ायी ?' पिता कहता है—'हे बेटी, बहुत छोटी उम्र में ही मैंने तुम्हारा विवाह कर दिया था, पर तुम्हारे स्वामी परदेश चले गये।' बेटी कहती है—'हे पिता, जिस रास्ते मेरे स्वामी विदेश गये, वह

रास्ता मुझे आप दिखला दें।' पिता कहता है—'बेटी, जिस रास्ते तुम्हारे स्वामी विदेश चले गये, अब उस रास्ते पर दूब जम गयी है, मैं रास्ता कैसे दिखलाऊँ।'

बेटी समझ गयी और वह फूट-फूटकर रोती हुई अपना दुखड़ा एक-एक कर सुनाने लगी। कहने लगी—'हे पिता,' मेरी माँग सिन्दूर के बिना, मेरी आँख काजल के बिना, मेरी बाँह लहठी (चूड़ी) के बिना, मेरा मुँह सुगन्धित पान के बिना, मेरे दाँत सुन्दर मीसी के बिना, मेरी सेज बालम के बिना, मेरी गोद बालक के बिना हाहाकार कर रही हैं। ये सारी चीजें आजीवन मेरे लिए सपना हो गयीं। हे पिता, हाजीपुर में हाट लगी है, वहाँ से मेरे लिए भाग्य खरीदकर ला दो।'

पिता व्याकुल हो उठा, बोला—'बेटी, भाग्य तो तुम्हारे साथ ही है, वह बदला नहीं जा सकता। सोना होता, तो मैं बदल देता, पर भाग्य बदलना संभव नहीं। हे बेटी, मैं तुम्हारे खाने पीने के लिए सोने का कटोरा दूँगा, तुम्हें किसी तरह की तकलीफ नहीं होगी, अपने पिता की लाज रख लो।' बेटी उत्तर देती है—'हे पिता, तुम्हारे सोने के कटोरे में आग लगे, सोने का कटोरा मैं क्या करूँगी, मेरा पापी मन तो मानता ही नहीं है।'

हृद्गत भावों का यह कैसा स्वाभाविक और मार्मिक चित्रण है !

कथी लै खनैलहो हो बाबू, अहरी पोखरिया हो,
कथी लै लगैलहो, घनी बगियो रे की।
धरम लै खनैलियै गे बेटी, अहरी पोखरिया गे,
फूल लै लगैलियै, घनी बगियो रे की।
फुलवा चुनिये चुनि, सेजिया डसयलौं हो,
जीया पापी मानलो न जाइय रे की।
कथी लये आहो बाबू, हमरो जनम देलहो,
कथी लये सूरती बढ़ाइलहो रे की।
नान्ही सो उमिरिया गे बेटी, तोहरो बियाह कैलौं,
स्वामी तोर गेलहुन परदेसियो रे की।
जाही बाटे आहो बाबू, स्वामी मोर विदेस गेलन,
से हो बाट देहो न, देखाइये रे की।
जाही बाटें आगे बेटी, स्वामी तोर विदेस गेलन,
सेहो बाटें दूभिया जनमि गेल रे की।
मँगिया जे रोवै हो बाबू, मँगिया सेन्दुर बिनु,
सेन्दुर मोर भै गेले सपनमे रे की।
आँखिया जे रोवै हो बाबू, आँखियाँ काजर बिनु,
काजर मोर भै गेलै, सपनमे रे की।

बहियाँ जे रोवै हो बाबू, बहियाँ लहठी बिनु,
लहठी मोर भै गेलै सपनमे रे की।
मुखवा जे रोवै हो बाबू, महमह पान बिनु,
पान मोर भै गेलै, सपनमे रे. की।
दँतवा जे रोवै हो बाबू, सुन्दर मिसिये बिनु,
मीसी मोर भै गेलै, सपनमे रे की।
सेजिया जे रोवै हो बाबू, सेजिया बालम बिनु,
बालम मोर भै गेलै, सपनमे रे की।
गोदिया जे रोवै हो बाबू, गोदिया बालक बिनु,
बालक मोर भै गेलै, सपनमे रे की।
हाजीपुर हटिया हो बाबू, लगलै हटिअवा हो,
लाई देहो करम, बेसाहियो रे की।
सोनमा जे रहितै गे बेटी, फेरू कं बदलतिहै,
करमो बदलो नहिं, जाइय रे की।
तोहरा कं देबो गे बेटी, सोना के कटोरवा गे,
राखि लेहो बाबू जी के लाजियो रे की।
अगिया लगैबै हो बाबू, सोना के कटोरवा हो,
जीया पापी मानलो न जाइय रे की।

अंगिका के लोकगीतों में नारी-हृदय की उदारता, सेवा भावना, त्यागवृत्ति, प्रेमपरायणता और करुणा के अनेक चित्ताकर्षक चित्र मिलते हैं। यहाँ जो बानगी दिखायी गयी है, उससे नारी-जाति के सद्गुणों का कुछ आभास मिल जाता है।

यत्र पुत्रो गुरोः पूजां देवानां च तथा पितुः।
पत्नी च भर्त्तुः कुरुते तत्राळक्ष्मीभयं कुतः॥
—मार्कण्डेयपुराण, ५०/७८

[अर्थात्, जिस घर में पुत्र अपने गुरु, देवता और पिता की पूजा करता हो और स्त्री अपने पति की सेवा में तत्पर रहती हो, उस घर में अमंगल का भय कहाँ?]

प्राचीन बिहार की कुछ यशस्विनी नारियाँ

[बौद्ध काल से मुसलमानों के आगमन-काल तक]

डॉक्टर देवसहाय त्रिवेद, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, पटना

नारियाँ राष्ट्र-रूपी इमारत की नींव की ईंट होती हैं। यदि नींव की कुछ ईंटें खिसकीं, तो बड़ी-से-बड़ी इमारत भहरा पड़ेगी।

यशोधरा

• बौद्धकाल की नारियों में सर्वप्रथम नाम यशोधरा का लिया जा सकता है। वह महाराज शुद्धोदन की पुत्रवधू और सिद्धार्थ की अग्रमहिषी थी। वह घटाशब्द या किंकिणीस्वर के राजा सुप्रबुद्ध की कन्या थी। उसके अन्य नाम गोपा, कंचना, बिम्बा और बिम्बसुन्दरी भी हैं।

दैवज्ञों ने भविष्यवाणी की थी कि सिद्धार्थ के लक्षणोंवाला यदि गृहस्थ रहे, तो चक्रवर्ती राजा होता है और यदि प्रव्रजित हो, तो बुद्ध। अतः, राजा शुद्धोदन ने अपने पुत्र को प्रव्रज्या से बचाने के लिए बाल्यकाल में ही, सोलह वर्ष की अवस्था में, उसका विवाह कर दिया, साथ ही उन्होंने राजकुमार के लिए तीन ऋतुओं के सुख-साधनों से युक्त तीन प्रासाद बनवा दिये। इनमें एक नौतल्ला, दूसरा सततल्ला और तीसरा पँचतल्ला था। राजा ने नाटक करनेवाली चालीस स्त्रियों को भी नियुक्त किया। सिद्धार्थ अलंकृत नटियों से परिवृत, गीत-नाट्यों से सेवित और महासम्पत्ति का उपभोग करते हुए ऋतुओं के क्रम से प्रासादों में विहरते थे।

जिस दिन सिद्धार्थ ने चारों निमित्त (वृद्ध, रुग्ण, मृत और संन्यस्त पुरुष देखे), उसी दिन सन्ध्या समय उनकी पत्नी ने पुत्ररत्न उत्पन्न किया। महाराज शुद्धोदन ने आज्ञा दी—'यह शुभ समाचार सिद्धार्थ को सुनाओ।' राजकुमार ने कहा—'राहुः जातः', राहुल (बन्धन) पैदा हुआ। अतः, राजा ने कहा—'मेरे पोते का नाम राहुल-कुमार हो।'

राजकुमार सिद्धार्थ ने बड़े श्रीसौभाग्य के साथ अपने प्रासाद में जाकर सुन्दर शय्या पर विश्राम करना चाहा, किन्तु उनका मन उचट गया। उन्होंने उसी रात्रि को गृह-त्याग की दृढ़ प्रतिज्ञा की। अपने पुत्र को देखने की इच्छा से वे अपनी प्रिया के शयनागार में पहुँचे। वह देवी पुत्र के मस्तक पर हाथ रखे सो रही थी।

राजकुमार अपने पुत्र का प्रथम और अंतिम दर्शन करके प्रासाद से निकल पड़े। यशोधरा उन्हें अंतिम विदाई भी न दे सकी। किस प्रकार उसके दिन कटते होंगे, किन्तु वह नारी अपने पुत्र के आसरे अपने दिन काटने लगी।

जब भगवान् बुद्ध सशिष्य, वैशाखी पूर्णिमा को, राजगृह से कपिलवस्तु पहुँचे, तब उनका स्वागत करने के लिए नगर के अनेक बालक, राजकुमार और बालिकाएँ तथा राजकुमारियाँ पहुँचीं। बुद्ध ने न्यग्रोध वृक्ष (वट) के नीचे डेरा डाल दिया और उपदेश किया। किसी ने भी भोजन के लिए उन्हें अपने घर निमन्त्रित नहीं किया। अतः, वे स्वयं ही भिक्षाटन के लिए नगर में प्रविष्ट हुए। लोग दुतल्ले-तितल्ले प्रासादों पर से खिड़कियाँ खोल तमाशा देखने लगे।

राहुल माता ने कहा—'आर्यपुत्र इसी नगर में ठाट के साथ घोड़े और पालकी पर चढ़कर घूमते थे और आज इसी नगर में सिर और दाढ़ी मुँड़ाये, काषाय-वस्त्र पहने, खप्पर हाथ में लिये भिक्षा माँग रहे हैं! क्या यह शोभा देता है?' उसने अपने श्वशुर से जाकर कहा—'आपका पुत्र भीख माँग रहा है।' इसपर राजा ने विनयपूर्वक सशिष्य बुद्ध को अपने महल में बुलाकर सबको भोजन करवाया। भोजन के बाद राहुल-माता को छोड़कर सारे रनिवास ने जाकर बुद्ध की वन्दना की।

राहुल-माता ने भारतीय नारी के आदर्शानुकूल अभिमान भरे शब्दों में कहा—'यदि मुझमें गुण है, तो आर्यपुत्र स्वयं मेरे पास आयेंगे। उनके आने पर ही मैं वन्दना करूँगी।' अतः, बुद्ध अपने दो प्रमुख शिष्यों के साथ यशोधरा के यहाँ पहुँचे और आसन पर बैठ गये। राहुल माता ने शीघ्र आकर पैर पकड़ लिये। अपने सिर को बुद्ध के पैरों पर रख वह फूट-फूटकर रोने लगी।

राजा शुद्धोदन कहने लगे—"मेरी बेटी आपके काषाय-वस्त्र पहनने का सन्देश सुनकर काषायधारिणी हो गई, आपके एक बार भोजन करने की कहानी सुनकर वह एकाहारिणी हो गयी; वह भी तख्ते पर सोने लगी; उसके नैहर (= ज्ञातृगृह) से पत्र और संवाद आया कि तुम यहाँ चली आओ, हम तुम्हारी सेवा-शुश्रूषा करेंगे; किन्तु उसने एक भी उत्तर न दिया और किसी भी सम्बन्धी को नहीं देखती थी। मेरी बेटी ऐसी गुणवती है।'

इस पर बुद्ध ने कहा—'निःसन्देह राजकन्या ने अपनी रक्षा की है।'

अब यशोधरा की करुण कहानी सुनें। सातवें दिन वह अपने इकलौते पुत्र को अलंकृत करके उसे उसके अपने पिता महाश्रमण के पास भेजती है और कहती है—'वही तेरे पिता हैं, उनसे विरासत माँग।'

भगवान् बुद्ध के पास जाकर और पिता का स्नेह पाकर कुमार प्रसन्नचित हुआ और भोजन के बाद पिता के साथ चल दिया तथा कहने लगा—'मुझे दायज दें।'

इसपर बुद्ध ने सारिपुत्र से कहा—'राहुलकुमार को साधु बनाओ।'

यह समाचार सुनकर यशोधरा पर कैसी बीती होगी, इसका अनुमान केवल नारी-हृदय अथवा सहृदय कवि ही कर सकता है।

कालान्तर में राहुल माता ने सोचा—'मेरे स्वामी प्रव्रजित होकर सर्वज्ञ हो गये, पुत्र प्रव्रजित होकर उन्हीं के पास रहता है, मैं अकेली सूने में रहकर क्या करूँगी। मैं भी प्रव्रजित हो श्रावस्ती पहुँचकर बुद्ध और राहुल को निरन्तर देखती रहूँगी।'

यह है भारतीय ललना का आदर्श।

सुजाता

भगवान् बुद्ध की बुद्धत्व प्राप्ति में सुजाता का सहयोग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। जब सिद्धार्थ निरंजना नदी के तट पर, उरुवेला के पास, सेनापति नामक ग्राम के निकट घोर तपस्या कर रहे थे और उनके पाँचों साथी उनका साथ छोड़ ऋषिपत्तन (= सारनाथ) चले गये, तब सुजाता ने उनकी देख-भाल शुरू की। ग्रामीण कन्या सुजाता नन्दबाला ने वट-सावित्री-व्रत किया था और वट-वृक्ष के नीचे मनौती की थी कि मेरे प्रथम गर्भ से यदि पुत्ररत्न हुआ, तो प्रति वर्ष पायस (खीर) चढ़ाऊँगी।

मनोरथ पूर्ण होने पर नन्दबाला सुजाता, अपनी दासी 'पूर्णा' के साथ थाल-भर खीर लेकर, प्रातः वट-वृक्ष के नीचे पहुँची। इधर सिद्धार्थ शुद्ध होकर साधना में लीन उसी वट-वृक्ष के नीचे स्वच्छ भूमि पर बैठे थे।

नन्दबाला ने सोचा, आज हमारे वृक्षदेव स्वयं नीचे उतरकर अपने ही हाथों बलि-ग्रहण करने को बैठे हैं। नन्दबाला ने पात्रसहित खीर सिद्धार्थ के हाथ में दे दी। तदनन्तर चली गई।

अम्बपाली

वृज्जिसंघ स्वाधीन नर नारियों का संघ था। बिहार में गंगा के उत्तर की भूमि में ही कुछ ऐसी खूबी है, जहाँ सीता, उर्मिला, अहल्या, अम्बपाली, कात्यायनी, मैत्रेयी, गार्गी आदि एक-से-एक रूप-गुण-सम्पन्न नारियाँ हो चुकी हैं।

भगवान् बुद्ध (१८७३ खृष्टाब्द पूर्व से १७९३ खृ॰ पू॰ तक) कहते हैं कि जबतक वृज्जि अपनी कुमारियों और नारियों पर जोर-जबरदस्ती नहीं करेंगे तथा उनकी इज्जत करेंगे, तबतक वृज्जिसंघ का विनाश न हो सकेगा।

अम्बपाली एक सर्वाङ्गसुन्दरी ललना थी। वृज्जिसंघ के नियमानुसार किसी भी एक व्यक्ति को ऐसी श्रेष्ठ ललना को भोगने का अधिकार न था। अतः, अम्बपाली को आजीवन अविवाहित ही रहना पड़ा।

समय पड़ने पर महिलाएँ भी, जिनके हाथ में पहले वीणा थी, तलवार धारण करती थीं। जिनके केश पर फूलों के गुच्छे लटकते थे, उनके मस्तक पर शिरस्त्राण शोभता था। जिस वक्षस्थल पर पारिजात हार शोभता था, उसी वक्षस्थल पर जिरह-बख्तर शोभने लगता था। वे घोड़े पर सवार हो रणचण्डी का रूप धारण कर शत्रुओं का मान मर्दन करती थीं।

भगवान् बुद्ध का विचार था कि सघ में महिलाओं को प्रवेश न करने दिया जाय। उन्हें भय था कि इससे सघ दूषित हो जायगा। किन्तु, आनन्द के कहने से ही उन्होंने नारियों को अपने सघ में सम्मिलित किया। उन्हें तब भी डर था कि आगे चलकर इससे सघ की बड़ी निर्बलता सिद्ध होगी और तथागत का धर्म जितने समय तक ससार में रहता, उसके आधे समय तक रह पायगा।

संघमित्रा

कहा जाता है कि सम्राट् अशोक ने अपने भाई महेन्द्र और बहन सघमित्रा को (अन्य मत है कि ये क्रमश अशोक के पुत्र और पुत्री थे) धर्म प्रचार के लिए लका भेजा, किन्तु यह वार्त्ता केवल सिंहली परम्परा पर आश्रित है। किसी भी भारतीय परम्परा से इसकी पुष्टि नहीं होती है। विजयसिंह ने खृष्ट-पूर्व ५४३ में लंका-प्रवेश अपने साथियों के साथ किया और वहाँ बुद्ध-धर्म का प्रचार किया तथा वहाँ राज्य करना भी आरभ किया। सिंह के नाम पर ही लका-द्वीप का नाम सिंहल पड़ा। सर्वप्रथम सिंहल में भगवान् बुद्ध ने स्वय आकर धर्म का प्रचार किया, इसलिए वहाँ उसी काल से बुद्ध सवत् का आरभ बुद्ध निर्वाण की तिथि से माना जाने लगा।

ध्रुवस्वामिनी

ध्रुवदेवी या ध्रुवस्वामिनी का पीहर (= पितृगृह) स्यात् कश्मीर के निकट उत्तरी पजाब में था। वह अत्यन्त सुन्दरी थी। उसने समुद्रगुप्त के प्रथम पुत्र रामगुप्त का पाणिपीडन किया। किन्तु, रामगुप्त प्राय नपुसक था। उसमें राज्य-शासन करने की क्षमता न थी। पिता की मृत्यु के बाद (खृ० पू० २७१) वह विशाल साम्राज्य का स्वामी बना। किन्तु, सम्राट् समुद्रगुप्त की मृत्यु के बाद ही शाही शाहानुशाही शक मुरुण्डों ने सिर उठाया और साम्राज्य के पश्चिमोत्तर भाग को हड़पना चाहा। इन शकों के आक्रमण को रोकने की हिम्मत रामगुप्त में न थी। किसी प्रकार हाथ जोड़कर उसने अपने प्राणों की रक्षा की और अपनी प्रिय भार्या ध्रुवदेवी को शत्रुओं के हाथ सुपुर्द कर देने की प्रतिज्ञा की।

किन्तु, उसका छोटा भाई जो पीछे चन्द्रगुप्त द्वितीय (खृ० पू० २६६ से २३२ खृ० पू०) के नाम से ख्यात हुआ, इस अपमान को सहनेवाला न था। वह देखने में अत्यन्त सुन्दर था। उसका मुख पूर्णचन्द्र के समान दमकता था। उसने तुरत सलवार, कुर्ता और ओढ़नी पहनकर, अपनी भ्रातृजाया (= भौजाई) का वेश धारण कर, शक शत्रु की सेना के शिविर में, पालकी पर अपनी सहेलियों के साथ, प्रवेश किया। पालकी के कहार स्वय वीर योद्धा होने पर भी अपने स्वामी को दो रहे थे। इसकी पुष्टि निम्नाकित प्रमाणों से होती है—

'हर्षचरित' (उच्छ्वास ६) में बाणभट्ट कहता है—अरिपुरे च परकलत्रकामुक कामिनीवेशगुप्तश्चन्द्रगुप्त शकपतिमशातयत्। (रिपु की नगरी में परायी स्त्री की कामना करनेवाले शकराज को कामिनीवेश में छिपे हुए चन्द्रगुप्त ने हत्या की।)

'हर्षचरित' के टीकाकार शंकर लिखते हैं—शकानामाचार्यः शकाधिपतिःचन्द्रगुप्तभ्रातृजायां ध्रुवदेवीं प्रार्थयमानः चन्द्रगुप्तेन ध्रुवदेवीवेषधारिणा स्त्रीवेषजनपरिवृतेन व्यापादितः। (शकों के आचार्य शकाधिपति ने चन्द्रगुप्त की भाभी ध्रुवदेवी की प्रार्थना की। तब ध्रुवदेवी का वेष धारण करके स्त्री-वेषधारी लोगों से घिरे हुए चन्द्रगुप्त ने उसे मार डाला।)

राष्ट्रकूटनृपति अमोघवर्ष प्रथम (८१४—७७ ई०) के संजन-अभिलेख में अंकित है—

हत्वा भ्रातरमेव राज्यमहरद्देवीञ्च दीनस्तथा।
लक्षं कोटिमलेखयत् किल कलौ दाता स गुप्तान्वयः॥

अर्थात्, भाई की हत्या करके जिस दीन ने राज्य और देवी को हर लिया तथा लाख माँगने पर करोड़ लिख दिया, वही गुप्तवंश कलियुग में दानी प्रसिद्ध हुआ। 'मुद्राराक्षस' नाटक के रचयिता विशाखदत्त (२६० ख़ृ० पू०) ने अपने रूपक 'देवीचन्द्रगुप्त' में स्पष्ट लिखा है कि कायर नरेश रामगुप्त ने शक राजा की चढ़ाई से अपनी रक्षा न कर सकने पर अपनी प्रजा के आश्वासनार्थ राजमहिषी ध्रुवदेवी को उस कामुक शकपति के पास भेजना स्वीकार कर लिया, किन्तु शूर चन्द्रगुप्त ने ध्रुवदेवी का वेष धारण करके, तथा स्त्री-वेषधारी अन्य योद्धाओं को साथ लेकर, शत्रु शिविर में घुसकर उस कामी शकपति का विनाश किया, जिस प्रकार पद्मिनी को देने के व्याज से गोरा और बादल ने मध्ययुग में अलाउद्दीन की सेना का संहार किया था।

पराक्रमी चन्द्रगुप्त ने ध्रुवदेवी को अपनी राजमहिषी बनाया। कहा भी है—

None but the brave
None but the brave
Deserves the fair.

—ड्राइडेन

रामगुप्त इस योग्य न था कि राज्य शासन या इस सुन्दरी का उपभोग करता। अतः, चन्द्रगुप्त ने रामगुप्त का वध करके साम्राज्य लक्ष्मी और अपनी भ्रातृजाया का उचित उपभोग किया : वीरभोग्या वसुन्धरा। इसी चन्द्रगुप्त के विषय में समुद्रगुप्त द्वारा निर्मित विशाल विष्णुध्वज (=कुतुबमनार) के टैबलेट स्मारक चिह्न लौहपट्ट पर लिखा है—चन्द्राह्वेन समग्रचन्द्रसदृश वक्त्रश्रिय बिभ्रता।

प्रभावती गुप्ता

प्रभावती गुप्ता की माता का नाम कुबेरनागा और पिता का चन्द्रगुप्त-द्वितीय परम-भागवत था। वाकाटक-नरेश महाराज रुद्रसेन (द्वितीय कलि सवत् २८१६—२८३३ या ख़ृष्ट-पूर्व २८५—२६८) की अग्रमहिषी थी। समुद्रगुप्त इसका बाबा था। यह युवराज दिवाकर-सेन की जननी थी। इसकी मुद्रा का पाठ है—

वाकाटकललाएस्य (?) क्रमप्राप्तनृपश्रियः ।
जनन्मा (?) युवराजस्य शासनं रिपुशासनम् ॥

वाकाटक ब्राह्मण राजा थे। उनका गोत्र था विष्णुवृद्ध। प्रभावती गुप्ता को देवगुप्त की कन्या भी कहा गया है, जो समुद्रगुप्त द्वितीय का नामान्तर प्रतीत होता है। दामोदरसेन और प्रवरसेन की माता प्रभावती गुप्ता एक सौ वर्ष से अधिक उम्र की वृद्धा हो गई थी। स्यात् वह रामटेक में विश्राम करती थी। दामोदरसेन गद्दी पर न बैठ सका और असमय ही संसार से चल बसा। जब प्रभावती गुप्ता स्वर्गलोक सिधारी, तब उसके पुत्र प्रवरसेन द्वितीय ने गणयाजी (एकादशाह श्राद्ध के पुरोहित) को कोथुरक ग्राम दान किया। प्रवरसेन-द्वितीय ने वरुणार्य त्रिवेद को कोशम्बर खण्डग्राम दान दिया। इस (तिरोदी-अभिलेख, एपिग्राफिया इण्डिका, २२—२६७) में त्रिवेद ही पाठ है, न कि त्रिवेदी। आजकल कुछ लोग भूल से समझते हैं कि 'त्रिवेदी' शब्द शुद्ध है और 'त्रिवेद' अशुद्ध। श्रीदेवगुप्तसुता प्रभावती गुप्ता से उत्पन्न वाकाटक परममाहेश्वर प्रवरसेन ने सत्र के लिए भी दान किया और दानपत्र को कालिदास से लिखवाया, जो मैथिल कवि काव्यत्रयी (मेघदूत, कुमारसम्भव और रघुवंश) का रचयिता है।

इससे सिद्ध है कि इस मगध की दुहिता ने दक्षिण भारत में जाकर किस प्रकार अपनी प्रतिभा को चमकाया। महिलाओं को दान इत्यादि करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। यह बहुत ही चतुर महिला थी और अपने पुत्रों के वयस्क होने तक अभिभावक के रूप में वह राज-काज चलाती रही। इस बिहार की भूमि की यह खूबी है कि यहाँ एक से-एक बढ़कर योग्य नर-नारी हुए, किन्तु स्वयं बिहार उनकी उतनी प्रतिष्ठा नहीं करता, जितनी सुदूरवर्ती प्रदेशों में होती है।

विद्या

कालिदास के जन्मस्थान के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग उन्हें उज्जयिनी, काशी, बंग, मिथिला या कश्मीर का निवासी मानते हैं। परम्परागत किंवदन्ती है कि कालिदास कवि होने के पूर्व निपट गोबरगणेश थे। किसी तरह बकरी चराकर जीवन-निर्वाह करते थे।

वहीं एक प्रतिष्ठित धनी ब्राह्मण परिवार भी था, जिसकी कन्या 'विद्या' या 'विद्योत्तमा' सर्वशास्त्र पारंगता थी। उसने प्रण किया था कि जो उसे शास्त्रार्थ में पराजित करेगा, उसी से वह विवाह करेगी। उसके सामने किसी की भी दाल न गली। अन्ततः, स्वाभिमानी मैथिल पण्डितों ने उसे छकाने के लिए एक निपट मूर्ख से उसका विवाह कराने को सोचा। उन्होंने एक मूर्ख को डाल पर बैठकर उसी डाल को काटते देखा। वे उसे फुसलाकर विवाह के बहाने ले गये और बोलने को मना कर दिया। केवल संकेत से बातें करने को सिखलाया।

सभा-प्राङ्गण में विद्या ने द्वैत या अद्वैत की सिद्धि के लिए एक अँगुली दिखाई। इस मूर्ख ने समझा कि उसकी एक आँख फोड़ने का वह संकेत कर रही है। इसपर इसने दो अँगुलियाँ उठाईं कि मैं दोनों आँखें फोड़ दूँगा। पण्डितों ने उस मूर्ख की ओर से द्वैत का समर्थन करते हुए विद्या को पराजित किया और इस मूर्ख का विवाह एक राजकन्या से हो गया।

किन्तु, भंडा फूटते देर न लगी। विद्या ने इसे अपने प्रासाद से ढकेल दिया। नीचे काली की मूर्ति थी। यह वहीं गिरा। काली ने वर माँगने को कहा। इसने समझा कि किसने गिराया, यही पूछा जा रहा है। कहा—'विद्या'। काली ने 'एवमस्तु' कह दिया।

घूमता-फिरता वह काशी पहुँचा और सर्वशास्त्र-पारंगत होकर घर लौटा और अपनी पत्नी से कहा—कपाटमुद्घाट्यताम्; किवाड़ खोलो। इसपर पत्नी ने कहा—'अस्ति कश्चिद् वाग्विशेषः।' इस वाक्य के एक-एक शब्द के सहारे कालिदास ने क्रमशः 'कुमारसम्भव' (अस्ति से) 'मेघदूत' (कश्चित् से) और 'रघुवंश' (वाक् से) बनाया।

यह कालिदास राजा कुमारगुप्त (ई० पू० २३३—१६१ तक) के सभासद थे। कुछ दिनों तक चन्द्रगुप्त द्वितीय (ई० पू० २६६—२३३) के भी दरबार में रहे। चिरकाल मगध में रहने के बाद वे वाकाटक नृप प्रवरसेन (ई० पू० २६८ से १७१ ई० पू०) के दरबार में बुलाये गये, जिस प्रकार आज भी मिथिला के पण्डित सुदूर राज्यों में अपनी विद्वत्ता के कारण पूछे जाते हैं।

भारती

शंकराचार्य (ई० पू० ५०८—४७६ ई० पू०) के समकालीन मिथिला के मण्डनमिश्र का नाम किसने नहीं सुना है। जब शंकराचार्य दिग्विजय के लिए निकले, तब इनके तर्क के सामने सभी नतमस्तक हो गये। मण्डनमिश्र कर्मकाण्ड के महापण्डित थे। अन्ततः, शंकर की मुठभेड़ मण्डन से हो ही गई। किन्तु, शास्त्रार्थ की मध्यस्थता करने के लिए तो कोई सर्वमान्य विद्वान् चाहिए ही। यह कार्यभार मण्डन की धर्मपत्नी 'भारती' को ही ग्रहण करना पड़ा।

अन्ततः, मण्डनमिश्र हार गये और अपने प्रतिकूल भी भारती ने निर्णय दिया। किन्तु, कहा कि पति और पत्नी दोनों मिलकर एक होते हैं, यदि शंकर मुझ भारती को शास्त्रार्थ में पराजित करें, तो वे पूर्ण दिग्विजयी घोषित किये जा सकते हैं।

अब भारती ने कामकला सम्बन्धी अपने प्रश्नों की बौछार शुरू की। शंकर निरुत्तर रह गये। कुछ दिनों के बाद उन्होंने कामशास्त्र में निपुणता प्राप्त की और फिर जाकर भारती को शास्त्रार्थ में पराजित किया।

इसी मण्डनमिश्र को शंकर ने अपने शिष्यों में ब्रह्मस्वरूपाचार्य के नाम से प्रथम मठाधीश बनाया।

●●

आदिवासी-समाज में नारी का स्थान

श्रीरामरीभक्त रसूलपुरी, 'उत्तर विहार'-सपादक, पटना

आग्नेय (अनार्य) जातियों ने जब भारत में अपनी सभ्यता संस्कृति का विस्तार किया, तब बहुश. वे आर्यों की वर्णाश्रम-व्यवस्था में विलीन हो गयीं और जिन्होंने अपनी परपरागत संस्कृति की रक्षा की, वे जगलों पहाडों में जा बसीं। इनकी कुछ शाखाएँ धीरे-धीरे पूर्व की ओर बढती गयी और दक्षिण पूर्वा द्वीप समूह तक जा पहुँचीं। जो आग्नेय जातियाँ भारत के जगल पहाडों मे अपने को सुरक्षित कर सकीं, उनकी सांस्कृतिक परपरा आज भी कायम है।

उत्तर भारत के विभिन्न भागों में आज आग्नेय वश के आदिवासी ही बहुतायत से पाये जाते हैं। आग्नेय लोग आजीविका के लिए खेती का आविष्कार कर चुके थे। कपास से वस्त्र निर्माण की प्रणाली भी उन्हें ज्ञात हो चुकी थी। जगली जानवरों को पकड़-कर उन्हें पालतू बनाना तथा उनसे आवश्यक काम लेना पहले पहल उन्होंने ही प्रारम किया। चन्द्रमा को देखकर तिथियों की गणना करना, वृक्षों, नदियों, प्रस्तर-खडों तथा ग्राम देवताओं की पूजा करना, मृतकों की हड्डियों को नदियों में प्रवाहित करना आदि आग्नेय-सभ्यता की ही देन हैं। स्त्रियों में सुहाग के चिह्न के रूप में सिन्दूर का व्यवहार सर्वप्रथम आग्नेय सभ्यता में ही प्रचलित हुआ। कालक्रम से भारतीय आर्यों ने इनकी सभ्यता-सस्कृति को आत्मसात् कर लिया, फिर भी जिन आग्नेय जातियों ने अपनी परपरा और सस्कृति की रक्षा के लिए तत्कालीन नगरों और बस्तियों को छोडकर दुर्गम अरण्य पर्वतों की शरण ली, अनेक युगों के बीतने पर भी आजतक वे उन्हें जुगाये हुई हैं।

आग्नेय जातियों के अवशिष्ट का, जो आज भारत के विभिन्न अरण्य-पर्वत-प्रदेशों में विशेषत पाये जाते हैं, 'आदिवासी' नाम अँगरेजों का दिया हुआ है। प्राचीन भारतीय ग्रथों में इन्हें हम कोल, किरात भिल्ल, असुर आदि नामों से अभिहित पाते हैं, जिनमें आग्नेय जातियों की ही प्रधानता है और ये उत्तर भारत के विभिन्न अचलों में फैली हुई हैं। आज यद्यपि इन आदिम जातियों के प्राचीन इतिहास का कोई प्रामाणिक आधार नहीं मिला है, तथापि भाषाशास्त्रियों ने आदिवासियों की भाषाओं तथा नृ वश के अनुसधायकों ने रक्त, आकृति आदि के आधार पर जो सिद्धान्त निश्चित किये हैं, उनसे आदिम जातियों से सम्बन्ध रखनेवाली बहुत-सी ऐतिहासिक गुत्थियाँ सुलझने लगी हैं।

आग्नेय वंश की जातियाँ भाषा की दृष्टि से दो भागों में विभक्त हैं। इनकी एक शाखा आग्नेय मु ड भाषाभाषिणी है तथा दूसरी शाखा द्रविड कुल की भाषाएँ बोलती है।

वर्तमान काल में राजकीय सूची के अनुसार मुंडा, हो, संथाल, खरिया, उरांव, पहाड़िया, बिरहोर, असुर आदि उनतीस जातियाँ यहाँ निवास करती हैं। इनमें मुंडा, हो, संथाल, खरिया, बिरहोर आदि की भाषाएँ आग्नेय कुल की हैं, जिन्हें जॉर्ज ग्रियर्सन ने 'कोलारियन' और फ्रेडरिक मिलर ने 'मुंडारियन' नाम दिये हैं। उरांवों की भाषा 'कुड़ुख' और सौरिया पहाड़िया की भाषा 'मालतो' द्रविड़ परिवार की भाषाएँ हैं और भाषा के आधार पर जाति वंश के निर्णायक विद्वान् इसी कारण उरांवों तथा सौरिया पहाड़िया जातियों को आग्नेय वंश का न मानकर द्रविड़ कुल का मानते हैं। किन्तु रंग, आकृति और अंगों के नृ-तत्त्वात्मक विश्लेषण से यह सिद्ध हो गया है कि द्रविड़-कुल भाषाभाषी होने पर भी 'कुड़ुख' और 'मालतो' बोलनेवाली उरांव तथा सौरिया पहाड़िया आदि जातियाँ आग्नेय वंश की ही हैं तथा ऐसा अनुमान किया जाता है कि आर्यों के विस्तार के पश्चात् आग्नेय जातियों की एक शाखा पृथक् होकर विन्ध्य पर्वतमाला के दक्षिण, नर्मदा के दक्षिण में, चली गयी।

सभ्यता-संस्कृति में आग्नेयों से द्रविड श्रेष्ठ थे, इस कारण उनसे प्रभावित होकर आग्नेयों ने उनकी भाषा को अपना लिया और कालान्तर में जब वे पुनः उत्तर की ओर लौटे, तब भाषा की दृष्टि से वे अन्यान्य आग्नेय जातियों के लिए बिलकुल अपरिचित हो चुके थे। उरांवों की एक लोककथा के आधार पर जाना जाता है कि दक्षिण से आकर उन्होंने रोहतासगढ़ (शाहाबाद) में अपना राज्य स्थापित किया और कालान्तर में वे यवनों द्वारा रोहतासगढ़ से खदेड़ दिये गये। तब वे दो धाराओं में बँटकर कुछ तो राजमहल की पहाड़ियों में चले गये और कुछ राँची-पठार की ओर मुंडाओं के संपर्क में आगे बढ़े। इस सूत्र से ऐसा अनुमान किया जाता है कि राजमहल के सौरिया और राँची के उरांव द्रविड़ कुल भाषाभाषी होकर भी आग्नेय वंश के ही हैं। शेष आग्नेय भाषाभाषी मुंड-कुल की जातियाँ मुंडा, हो, संताल, खरिया, बिरहोर आदि मुंड-वंश की ही शाखाएँ हैं और स्थान, समय तथा गिरोह की भिन्नता के कारण ही इनकी सामाजिक परंपरा, भाषा, बोली तथा जातीय नामकरण में भिन्नता का सूत्रपात हुआ। प्राचीन काल में आग्नेय जातियों की सामाजिक व्यवस्था, सहयोग और सम सामाजिकता के आधार पर, संघटित थी।

विभिन्न आदिम जातियों में उनकी उत्पत्ति के उत्स के सम्बन्ध में जो लोककथाएँ प्रचलित हैं, उनमें बाह्य दृष्टि से यद्यपि सामंजस्य नहीं दीख पड़ता, तथापि सूक्ष्म विश्लेषण करने पर उनमें एकसूत्रता का संधान मिल जाता है। 'सिंगबोंगा' आदिवासियों का सर्व प्रधान देवता है—सूर्यदेवता, सृष्टिकर्त्ता, सर्व-शक्तिमान् ईश्वर। केवल संताल 'सिंगबोंगा' के अतिरिक्त 'मरांग ठाकुर' को भी सर्वशक्तिमान् देव मानते हैं और उनकी पूजा 'मरांग-बुरू' के नाम से करते हैं।

आदिम जातियों में प्रचलित उनकी उत्पत्ति-कथा या सृष्टि कथा के अनुसार सर्व-प्रथम चारों ओर पानी-ही पानी था। 'सिंगबोंगा' पत्तों की नाव पर सदा घूमते रहते थे।

आकेशाश से ऊबकर उन्हें संसार बनाने की इच्छा हुई। तब उन्होंने मछली, केंकड़े और कछुए को उस महाजल-राशि के भीतर से मिट्टी लाने के लिए भेजा, किन्तु इनमें से कोई सफल न हुआ। तब 'सिञबोंगा' ने जोंक को भेजा। जोंक ने जल की अतल गहराई में प्रवेश कर मुँह से मिट्टी खाना और पूँछ की ओर से उसे जल की सतह पर निकालना आरंभ किया। वह मिट्टी जल की सतह पर जमकर पृथ्वी के रूप में परिणत हो गयी। तब उसपर वनस्पतियाँ, वृक्ष लताएँ क्रमशः उत्पन्न हुईं। फिर, पशु-पक्षियों का उद्‌भव हुआ। तब हुर (हंस) नामक एक बड़े पक्षी ने एक विशाल अंडा दिया। उस अंडे से दो मानव प्रादुर्भूत हुए — एक स्त्री और दूसरा पुरुष। ये ही मानव-वंश के आदि माता-पिता हुए। इनका नाम 'लुटकुम हड़ाम' और लुटकुम बुढ़िया' था। संताल इन्हें 'पिलचू हड़ाम' और 'पिलचू बूढ़ी' कहते हैं। बहुत दिनों तक अज्ञान के कारण इन दोनों में पति पत्नी का सम्बन्ध स्थापित नहीं हुआ, जिससे मानव वंश का विस्तार अवरुद्ध रहा। तब 'सिञबोंगा' ने इन्हें 'इली' (धान के चावल से निर्मित कच्ची शराब) बनाना सिखलाया। इली के नशे में दोनों ने मिलकर वंश-विस्तार किया। इनके बारह पुत्र और बारह पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं, जिनसे संपूर्ण मानव समाज का विस्तार हुआ।

'हुर' पक्षी से उत्पन्न होने के कारण आदि मानव की उन संतानों ने अपने को 'होरो-को' कहा। यही 'होरो को' संताली का 'होड़' और हो भाषा का 'हो' बन गया, जिसका अर्थ होता है मनुष्य। 'मुंडा' शब्द प्रथम उपाधि बोधक था। ग्राम या दल विशेष की शाखा का सरदार इस उपाधि से पुकारा जाता था। 'मुंडा' शब्द सिर या मस्तक का बोधक है। आगे चलकर यह शब्द जाति-विशेष के नाम के लिए रूढ़ हो गया। 'बिरहोर' शब्द का अर्थ भी होता है — 'जंगल का आदमी।' मुंड भाषाओं में 'बिर' शब्द का अर्थ जंगल होता है और 'होड़' या 'होर' का अर्थ होता है मनुष्य। ऐसा अनुमान है कि जब आर्य सवर्णों ने इन वनवासियों को 'कोल किरात' आदि कहकर घृणा-सूचक भाव अभिव्यक्त किया, तब उसके प्रतिक्रिया-स्वरूप इन्होंने अपने को 'होड़', 'हो', मुंडा, बिरहोर, उराँव आदि मनुष्य-बोधक या सम्मान सूचक संज्ञा से अभिहित करना प्रारंभ किया।

पिछली जन गणना के अनुसार भारत में आदिवासियों की संख्या ढाई करोड़ के लगभग है। बिहार के छोटानागपुर पठार और राजमहल की पहाड़ियों में आदिवासियों की आबादी विशेष तौर पर पाई जाती है। हजारीबाग, धनबाद, राँची, पलामू, सिंहभूमि तथा संतालपरगना के जंगली भागों में ये बहुतायत से बिखरे हुए हैं। सन् १९५१ ई० की जन-गणना के अनुसार बिहार में आदिवासियों की संख्या ४०,४९,१८३ है, जो इस राज्य की कुल आबादी का लगभग १० प्रतिशत है। संतालपरगना में संतालों की, राँची में उराँवों और मुंडाओं की और सिंहभूमि में हो जाति की प्रधानता है। अन्य आदिम प्रजातियाँ अल्पसंख्य रूप में उपर्युक्त क्षेत्रों में निवास करती हैं।

बिहार में आदिवासियों की आबादी का ब्योरा-इस प्रकार है—

संताल—१५,६६,०६६
मुंडा—५,१६,७४३
हो—३,४६,६४४
भूमिज—१, ५२, ६६२
खड़िया—८८, ७७७
असुर—४,३००
बिरहोर—२,४६६
उराँव—६,३८,४६०
सौरिया पहाड़िया—६८,६५४

इनमें कुछ ऐसी प्रजातियाँ भी हैं, जिनकी संख्या बहुत ही कम है। इनमें सबसे अधिक आबादी संतालों की है। इन आदिम प्रजातियों की मूल संस्कृति एक होते हुए भी इनकी सामाजिकता, भाषा तथा जीवन क्रम में पर्याप्त भिन्नता पायी जाती है। फिर भी, कुछ ऐसी एकसूत्रता इनमें विद्यमान है, जिसके कारण इन्होंने एक ईकाई का रूप धारण कर लिया है।

बिहार-राज्य के लगभग साढे चालीस लाख आदिवासियों में पुरुषों की संख्या २०,१७,४१४ तथा स्त्रियों की संख्या २०,३१ ७६६ है। इस भाँति विगत जन गणना के अनुकूल आदिवासी पुरुषों से आदिवासी स्त्रियों की संख्या १४,३५५ अधिक है। संख्या के अनुपात से आदिवासी समाज म स्त्रियों की प्रधानता सिद्ध हो जाती है।

मोटे तौर पर हम आदिम जातियों को सामाजिक जीवन के आधार पर, तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—वन्यजीवी, ग्रामजीवी तथा शिल्पजीवी।

वन्यजीवी

बिरहोर, कोरवा आदि सघन जंगलों में रहनेवाली जातियाँ वन्यजीवी श्रेणी में आती हैं। ये जातियाँ प्राय अपने पितृवंश परिवार के साथ एक जंगल से दूसरे जंगल में आजीविका की खोज में भटकती फिरती हैं। इनका मुख्य व्यवसाय जंगली जानवरों का शिकार करना तथा रस्सी बनाने के कच्चे साधनों को प्राप्त कर उनसे रस्सी बना हाट बाजारों में बेचना है। ये किसी जंगल में अपने 'टंडा' (कुछ परिवारों का संगठन या गिरोह) का पड़ाव तभी तक स्थिर रखते हैं, जबतक उन्हें वहाँ उपयुक्त शिकार तथा रस्सी बनाने के निमित्त साधन प्राप्त होते रहते हैं। साधारणत, उनका पडाव पाँच छह महीनों से तीन चार वर्षों तक का होता है। ये जंगली पेड़ों की पत्तियों तथा डालों से अस्थायी झोपड़ियाँ बना लेते हैं। प्रत्येक विवाहित दम्पती के लिए ऐसी एक अलग झोपड़ी की आवश्यकता होती है। इनका पुरुष-वर्ग बन्दर, चूहा, गिलहरी, जंगली बकरे आदि का शिकार तथा रस्सियों की कच्ची सामग्री का चयन करता है। बिरहोर-स्त्रियाँ महुए के फूल,

जंगली कंद और शाकों का संग्रह जंगली प्रदेशों से करती हैं। साथ ही, ये रस्सियाँ बनातीं तथा उन्हें साप्ताहिक हाट बाजारों में बेचतीं और आवश्यक सामान आदि खरीदती हैं।

बिरहोरों में अन्य प्रजातियों की भाँति ही सगोत्र विवाह वर्जित है। इन वन्य जातियों में दहेज की कोई विशेष प्रथा नहीं है। फिर भी, ऐसा देखने मे आता है कि इनमें बिना विवाह के भी प्रेमी-प्रेमिका के दो तीन बच्चे हो जाते हैं और वे प्रेमी-प्रेमिका दाम्पत्य जीवन का निर्वाह करने लगते हैं। इनमें तलाक तथा विधवा-विवाह की प्रथा भी प्रचलित है। अन्य आदिवासियों की भाँति ही इन वन्यजीवी बिरहोरों में भी नृत्य गीत की प्रथा विशेष अवसरों पर तो है ही, दैनिक जीवन में भी नृत्य गीतों को बहुत बड़ा महत्त्व प्राप्त है। दैनिक पारिवारिक जीवन में महिलाओं की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार की गयी है, परन्तु सामाजिक गठन में पुरुषों का ही आधिपत्य है। पंचायत, विवाह आदि के निर्णय का अधिकार पुरुष वर्ग के हाथों में ही सुरक्षित होता है।

ग्रामजीवी

ग्रामजीवी श्रेणी दो भागों में विभक्त की जा सकती है। प्रथम वे ग्रामजीवी, जो समतल भूमि पर रहते हैं। ग्रामों में इनका निवास होता है। मुख्यतः जीविका के लिए ये खेती करते हैं। इस श्रेणी में संताल, मुंडा, हो, उराँव आदि आदिम जाति की प्रमुख प्रजातियाँ हैं। इनमें उराँवों को छोड़कर शेष मुंड-भाषाभाषी हैं।

संतालों की आबादी मुख्यतः संतालपरगना में है। छोटानागपुर के विभिन्न अंचलों मे भी ये यत्र तत्र पाये जाते हैं। उड़ीसा, बंगाल तथा असम प्रान्तों म भी लाखों की संख्या में संताल आबाद हैं। संताली लोककथा के आधार पर जाना जाता है कि हिजड़ी-पिपिड़ी में इनका जन्म हुआ, 'खोज कमान' में इनकी खोज हुई और 'हरात' में इनकी वंशवृद्धि हुई तथा 'सासाग बेड़ा' में इनका जाति विभाजन हुआ। इस क्रम मे इन्हें 'जाँपी दिसोम', 'आयरे दिसोम', 'कायण्डे दिसोम', 'चाय दिसोम', 'चंपा दिसोम', 'तोड़े पाखुड़ी', 'बाहा बाँदेवा', 'जोना जोसपुर', 'खासपाल बेलाँवजा', 'सिर दिसोम', 'शिखर दिसोम', 'नागपुर', 'साँत दिसोम' और 'संतालपरगना' की यात्राएँ करनी पड़ीं। 'चाय चम्पा' का निवास संतालों का स्वर्णिम काल था, जिसकी सुखद स्मृति आज भी संतालों में गौरव का संचार कर देती है।[१]

इस प्रकार, संतालों को अपने मूल स्थान संतालपरगना तक पहुँचने में अनेक युगों की यात्राएँ करनी पड़ीं। यद्यपि उपर्युक्त यात्रा क्रम का ठीक-ठीक भौगोलिक अनुसंधान अभी तक नहीं हो पाया है और अभी यह खोज का विषय है तथापि इतना पता चलता है कि संतालों का प्रवेश संतालपरगना में अठारहवीं शती के अंतिम भाग में हुआ। उन्नीसवीं शती के मध्य में संतालों ने अँगरेजों का आधिपत्य मानने से इनकार कर

१ दे० 'पंचदश लोकभाषा निबंधावली' में श्रीडोमन साहु 'समीर' का निबन्ध (प्र० बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना), पृ० १०७।

दिया, जिससे भीषण विद्रोह की चिनगारी फूट पड़ी। इसी समय से संतालों का विशेष परिचय सभ्य जगत् को प्राप्त हुआ।

संतालों की मुख्य जीविका खेती है। ये गाँवों में निवास करते हैं और कहीं-कहीं इनकी छिटपुट बस्तियाँ भी पायी जाती हैं। इनके गाँवों में घरों का निर्माण दो पंक्तियों में किया जाता है और बीच मे गलियारे रहते हैं, जिन्हें 'कुल्ही' कहते हैं। इनके घर मिट्टी की दीवारों पर फूस के छप्पर डालकर बने होते हैं। अब कहीं कहीं खपड़े का प्रचलन भी देखा जाने लगा है। संताल के घरों की स्वच्छता एक अनुकरणीय वस्तु है। घरों की सफाई, उन्हें लीपना-पोतना, दीवारों पर सुंदर भित्ति-चित्रों को अंकित करना आदि खास तौर पर स्त्रियों के जिम्मे होता है। संताल-महिलाएँ स्वाभाविक रूप से सफाई को विशेष पसन्द करती हैं। वस्त्र तथा शरीर की सफाई उनकी अपनी चीज है। वे फूलों को आभूषण के रूप मे धारण करती हैं तथा फूलों से जूड़ों का सजाना उनकी विशेष कला है। पारिवारिक जीवन में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान होता है।

मुंडा प्रजाति का मुख्य क्षेत्र राँची है। सिंहभूमि में भी मुंडा काफी संख्या में निवास करते हैं। प्रस्तर-युग के जो अवशिष्ट दक्षिण बिहार और मध्यप्रदेश के जंगली अंचलों में पाये गये हैं, उनसे पता चलता है कि मुंडा लोग आर्यों के विस्तार के पूर्व ही इन क्षेत्रों में अपनी सभ्यता का विस्तार कर चुके थे। कालान्तर मे, इन्हीं क्षेत्रों में असुरों ने लौह-युग का निर्माण किया।

एक मुंडा गाथागीत के अनुसार बारह भाई असुर और तेरह भाई देवता निरंतर आग की भट्ठी जलाकर लोहा गलाया करते थे। जब दुनिया उनके ताप से जलने लगी, तब 'सिंगबोंगा' ने छल से उन्हें उन्हीं की भट्ठी में जला डाला।[1] इस कथा से अनुमान किया जाता है कि लौह-युग की सभ्यता का प्रारंभ इन्हीं क्षेत्रों में असुरों द्वारा हुआ। आज राँची का प्रसिद्ध स्थान-वाचक 'लोहरदग्गा' शब्द उस लौह युग की स्मृति में अवशिष्ट है। कालान्तर में मुंडाओं का एक दल पृथक् होकर अपने को 'हो' (मनुष्य) कहने लगा। पृथक् गिरोह तथा देश-काल के व्यवधान के कारण 'मुंडा' और 'हो' जातियों की भाषा एवं सामाजिकता मे किंचित् अंतर आ गया, किन्तु मूल संस्कृति की समानता इनमे आज भी बनी हुई है। ये दोनों जातियाँ अपनी सांस्कृतिक परंपरा एवं विश्वासों मे बड़ी ही कट्टर होती हैं। यही कारण है कि लगभग एक सौ वर्षों तक अनवरत रूप से ईसाई मिशनरियों के प्रचार के बावजूद इन प्रजातियों में ईसाइयत का प्रचार बहुत ही कम हो पाया है। ये दोनों जातियाँ भी गाँवों मे निवास करती हैं। कहीं कहीं गाँवों मे मिश्रित आबादी भी पाई जाती है। इनकी महिलाओं का जीवन मुक्त, स्वच्छन्द और सरल होता है। कठिन परिश्रम, निःसंकोच व्यवहार तथा उन्मुक्त नृत्य-गीतमय आनन्द इनके जीवन के नैसर्गिक संबल हैं। प्रकृति की गोद में निरंतर क्रीडारत रहने के कारण इनका स्वास्थ्य स्पृहणीय

१ 'सोसोबोंगा' श्री जगदीश त्रिगुणायत (शिक्षक सहयोग भंडार, राँची)।

होता है। सभ्यता के आलोक के साथ आदिवासी महिलाओं के वस्त्र-परिधान में भी काफी सुधार हुआ है। अब ये साड़ी, कुर्ता आदि का परिष्कृत रूप में व्यवहार करने लगी हैं। नवयुवतियों में स्नो, पाउडर (सुरभित लेप और चूर्ण) तथा सुगंधित केश तैलों और साबुनों का भी व्यवहार होने लगा है।

रोहतासगढ से खदेड़े जाने पर उराँवों ने राँची पठार मे प्रवेश किया। वहाँ उनका सपर्क मुडाओं से हुआ। उराँवों के विस्तार के कारण मुडाओं को दक्षिण की ओर खिसकना पड़ा, किन्तु ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता, जिससे मुडाओं और उराँवों में संघर्ष या युद्ध होने का कोई सूत्र प्राप्त हो सके। उराँव नारियाँ प्रकृति प्रेमी, सगीत नृत्य की उपासिका तथा परिश्रमी तो होती ही हैं वीर और लड़ाकू भी होती रही हैं। कहते हैं, जब रोहतासगढ में शत्रुओं ने इनके गढ पर हमला किया, तब उराँव-नारियाँ बड़ी बहादुरी से लड़ीं और शत्रुओं को इनके प्रहारों के कारण कई बार असफल होना पड़ा। उस वीरता की स्मृति म आज भी उराँव नारियाँ अवसर-विशेष पर त्योहार मनाती हैं।

उराँव गाँवों म कुमारी कन्याओं का एक सार्वजनिक सस्थान होता है, जिसे 'पेलएड्पा' कहते हैं। इसी भाँति नवयुवकों का एक सस्थान धुमकुडिया' भी होता है। 'पेलएड्पा' का सचालन एक प्रौढ महिला करती है, जिसे 'धॅगरिन' कहते हैं। 'पेलएड्पा' में गाँव की अविवाहिता नवयुवतियाँ प्रति रात्रि इकट्ठी होकर नृत्य सगीत की शिक्षा ग्रहण करती हैं। उसी भाँति 'धुमकुडिया' में गाँव के तरुण इकट्ठे होते हैं और गीत-वाद्यों से बड़ी रात तक मनोरजन करते हैं।

उराँव गाँवो म एक विशेष नृत्यस्थली भी होती है, जिसे 'अखड़ा' कहते हैं। यहाँ गाँव के स्त्री पुरुष इकट्ठे होकर बड़ी रात तक नृत्य-गीतों की आनन्द-धारा मे अवगाहन करते रहते हैं। अब पेलएड्पा' तथा धुमकुडिया' की प्रथा प्राय उराँव गाँवों से मिटती जा रही है, किन्तु 'अखड़ा' का प्रचलन अब भी सर्वत्र पाया जाता है।

उराँवों की एक बहुत बड़ी सख्या ईसाई हो गइ है। ईसाई आदिवासियों में अपेक्षाकृत शिक्षा का प्रचार अधिक है तथा उनकी धार्मिक परपरा परवर्तित हो गई है, फिर भी सामाजिक सांस्कृतिक रीति-नीति को वे धर्म परिवर्तन के बाद भी आनुवशिक रूप में पुगाये हुए हैं।

दूसरी मानजीवी श्रेणी में वे लोग हैं, जिनकी बस्तियाँ ऊँची पहाड़ियों के गहन वनों में ही हुआ करती हैं। इस श्रेणी में पहाड़िया (सौरिया पहाड़िया और माल पहाड़िया), खरिया आदि जातियाँ हैं। इनका संबध नागरिक जीवन से प्राय कम ही हुआ करता है। जगली प्रदेशों म ये अस्थायी खेती करते हैं, जो कुरवा' खेती कही जाती है। किन्तु, इस प्रणाली की खेती के द्वारा ये अपनी पूरी जीविका नहीं चला सकते। इस कारण इनमें गरीबी का प्रसार अधिक मात्रा म है, किन्तु मुक्त-स्वच्छन्द जीवन के कारण इन्हें कभी अभाव की चिन्ता नहीं सताती। शिकार, जगली फल, कद, शाक तथा जगली लकड़ियाँ

और 'रावे' पात्र की स्त्री साप्ताहिक हाटों में बेचना तथा उनसे प्राप्त पैसों से जीवनोपयोगी आवश्यक सामग्री खरीदना इनकी जीविका के सहायक साधन हैं।

शिल्पजीवी

तीसरी श्रेणी चमार, लोहार आदि शिल्पजीवियों की है। इनकी आबादी आदिवासी बस्तियों में छिटपुट है। प्रायः प्रत्येक आदिवासी ग्राम में इनके कुछ परिवार निवास करते हैं। इनका मुख्य व्यवसाय ग्रामवासियों के निमित्त कृषि के उपकरणों का निर्माण करना होता है। संभवतः, ये आदिकालीन भट्ठी फूँकनेवाले और लोहा गलानेवाले 'असुरों' के वंशज हैं। इनका विवाह स्वजाति से ही होता है। कुछ सामाजिक भिन्नता होते हुए भी मुख्यतः ये आदिवासी-संस्कृति में ही गुम्फित हैं।

आदिवासियों में 'सिङबोंगा' से लेकर जहाँ अनेक 'बोंगा' (देवता और भूत) पूजनीय हैं, वहाँ 'एँरायें' (देवियाँ) भी अधिकाधिक संख्या में आराध्या हैं। आदिवासियों की सर्वप्रधान देवी 'जोहेर एँरा' (वनों की अधिष्ठात्री देवी) हैं। व ग्राम-देवी के रूप में 'गोसाँई एँरा' (आदिशक्ति महामाया) की पूजा करते हैं।

आदिवासी महिलाओं म 'डायन' का बहुत बड़ा आतंक होता है और उनकी कुदृष्टियों से बचने के लिए वे अपने देवी-देवताओं की पूजा मुर्गे बकरे आदि के बलि-प्रदान द्वारा करती हैं। 'जहेर एँरा' का स्थान प्रत्येक गाँव के बाहर होता है, जिसे 'जहेरथान' कहते हैं।

प्राय सभी प्रजातियों के आदिवासियों में, पारिवारिक जीवन में, महिलाओं का स्थान महत्त्वपूर्ण और स्वच्छन्द होता है। आदिवासी महिलाएँ गृह परिवार की सभी जिम्मेवारियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक निष्ठा से सँभालती हैं। केवल शिकार करना और खेतों मे हल चलाना छोड़कर गृहस्थ जीवन के अन्य सभी कार्यों में महिलाएँ यथार्थ रूप में पुरुष की सहचरी बनी रहती हैं। वे प्रात सूर्योदय से बहुत पहले शय्या-त्याग कर देती हैं। घर की सफाई, आँगन तथा दरवाजे को लीपना और कलेवा बनाना, धान कूटना, पशुओं को चारा देना आदि कार्य वे सूर्योदय के पूर्व ही समाप्त कर लेती हैं। वे प्रातः ही पुरुषों के साथ खेतों में उनकी सहायता करने जातीं और सन्ध्या होने पर लौटती हैं। दिन-भर कठिन परिश्रम करना और सन्ध्या होने पर लौटकर भोजन आदि का प्रबन्ध करना तथा खा पीकर नृत्य-गीत में तल्लीन हो आनन्द-विभोर हो जाना इनके जीवन का प्रायः दैनिक कार्यक्रम है।

अब तो उद्योग क्षेत्रों तथा अन्यान्य स्थानों भी आदिवासी महिलाएँ मजदूरी करने लगी हैं। इन्हें उन क्षेत्रों में 'रेजा' कहते हैं। प्राय खेत-मजदूरनियाँ 'कामिन' कहलाती हैं। पुरुषों की अपेक्षा इन्हें कुछ कम मजदूरी मिलती है। परिवार की अर्थ-व्यवस्था पर महिलाओं का समान या संयुक्त अधिकार होता है। पारिवारिक आवश्यकता की चीजें हाट-बाजारों में विशेषतः महिलाएँ ही क्रय विक्रय करती हैं।

आदिवासी महिलाएँ स्वभावतः निर्भीक, निर्द्वन्द्व और साहसी होती हैं। स्वावलंबिनी होने के कारण वे स्वभावतः स्वाभिमानी भी होती हैं। आत्मसम्मान पर आघात उन्हें रंचमात्र भी सह्य नहीं होता।

आदिवासी स्त्रियों की संपूर्ण गतिविधियाँ प्रायः उनके गृह-परिवार के दायरे में ही केन्द्रित रहती हैं। वे अपने परिवार, जाति तथा समाज की कल्याण-कामना को सबसे अधिक महत्त्व देती हैं। अपने परिवार या जाति के संरक्षण के निमित्त देवताओं, पितरों और भूतों की पूजा में उनकी प्रबल निष्ठा देखी जाती है। वे अपनी सांस्कृतिक परंपराओं को बनाये रखने में अपना गौरव समझती हैं। इसी कारण अपने पूर्वजों की मृतात्माओं के प्रति उनका अनन्य विश्वास देखा जाता है।

प्रत्येक आदिवासी नारी के हृदय में अपने वंश की रक्षा के निमित्त पुत्रोत्पादन की घनीभूत लालसा होती है। जब कभी किसी महिला में पुत्रोत्पत्ति के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं, तब उसके परिवार में आनन्द का पारावार तरंगित होने लगता है।

प्रायः सभी प्रजातियों के आदिवासियों में वैवाहिक सम्बन्ध का बड़ा ही स्वस्थ और नैतिकता-पूर्ण निर्वाह किया जाता है। कभी-कभी कुछ अविवाहित कन्याएँ उन्मुक्त या उच्छृंखल वासना के वशीभूत हो जाया करती हैं; किन्तु विवाहिता पत्नियों का जीवन पूर्णतः संयमपूर्ण होता है।

आदिवासी नारियाँ अपने दैनिक तथा सामाजिक जीवन में प्रगल्भ तथा कार्यपटु होती हैं तथा अपने समाज के लोगों से उनका संबंध संपर्क बेधड़क और निर्भीकता पूर्ण होता है। किन्तु विजातीयों के, जिन्हें ये घृणा से 'दीकू' कहती हैं, संपर्क को बहुत ही संदेहपूर्ण दृष्टि से देखती हैं। किसी भी विजातीय व्यक्ति से सहसा बातें करने में इन्हें बहुत ही झिझक का अनुभव होता है।

अब अनेक आदिवासी-परिवारों में भी शिक्षा का प्रचार होने लगा है। लड़कों के साथ ही लड़कियाँ भी आधुनिक ढंग से शिक्षित होने लगी हैं। आदिवासी अंचलों में सरकार की ओर से समाज-सेवा केन्द्रों की स्थापना की गई है, जहाँ से समाज-सेविकाएँ गाँवों में जाकर आदिवासी महिलाओं को प्रशिक्षित बनाती हैं। फिर भी, जिन अंचलों में अभी तक शिक्षा का अधिक प्रचार नहीं हुआ है, वहाँ की आदिवासी महिलाएँ अपनी-अपनी परम्पराओं को जुगाती हुई आदिम मानवों की संस्कृति को धरोहर की भाँति सँजोये हुई हैं।

यस्य भार्या शुचिर्दक्षा भर्त्तारमनुगच्छति।
नित्यं मधुरवक्त्री च सा रमा न रमा रमा॥

—सुभाषितसुधारत्नभाण्डागार

[अर्थात्, तन-मन से पवित्र, आचार-व्यवहार में कुशल, अपने पति की अनुगामिनी तथा नित्य मधुर बोलनेवाली स्त्री ही यथार्थतः लक्ष्मी है।]

और 'गावे' घास की रस्सी साप्ताहिक हाटों में बेचना तथा उनसे प्राप्त पैसों से जीवनोपयोगी आवश्यक सामग्री खरीदना इनकी जीविका के सहायक साधन हैं।

शिल्पजीवी

तीसरी श्रेणी चमार, लोहार आदि शिल्पजीवियों की है। इनकी आबादी आदिवासी बस्तियों में छिटपुट है। प्रायः प्रत्येक आदिवासी ग्राम में इनके कुछ परिवार निवास करते हैं। इनका मुख्य व्यवसाय ग्रामवासियों के निमित्त कृषि के उपकरणों का निर्माण करना होता है। संभवतः, ये आदिकालीन भट्ठी फूँकनेवाले और लोहा गलानेवाले 'असुरों' के वंशज हैं। इनका विवाह स्वजाति में ही होता है। कुछ सामाजिक भिन्नता होते हुए भी मुख्यतः ये आदिवासी-संस्कृति में ही गुम्फित हैं।

आदिवासियों में 'सिमबोंगा' से लेकर जहाँ अनेक 'बोंगा' (देवता और भूत) पूजनीय हैं, वहाँ 'एँराये' (देवियाँ) भी अधिकाधिक संख्या में आराध्या हैं। आदिवासियों की सर्वप्रधान देवी 'जाहेर एँरा' (वनों की अधिष्ठात्री देवी) हैं। वे ग्राम-देवी के रूप में 'गोसाँई एँरा' (आदिशक्ति महामाया) की पूजा करते हैं।

आदिवासी महिलाओं में 'डायन' का बहुत बड़ा आतंक होता है और उनकी कुदृष्टियों से बचने के लिए वे अपने देवी देवताओं की पूजा मुर्गे बकरे आदि के बलि-प्रदान द्वारा करती हैं। 'जाहेर एँरा' का स्थान प्रत्येक गाँव के बाहर होता है, जिसे 'जहेरथान' कहते हैं।

प्रायः सभी प्रजातियों के आदिवासियों में, पारिवारिक जीवन में, महिलाओं का स्थान महत्त्वपूर्ण और स्वच्छन्द होता है। आदिवासी महिलाएँ गृह परिवार की सभी जिम्मेवारियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक निष्ठा से सँभालती हैं। केवल शिकार करना और खेतों में हल चलाना छोड़कर गृहस्थ जीवन के अन्य सभी कार्यों में महिलाएँ यथार्थ रूप में पुरुष की सहचरी बनी रहती हैं। वे प्रातः सूर्योदय से बहुत पहले शय्या-त्याग कर देती हैं। घर की सफाई, आँगन तथा दरवाजे को लीपना और अल्पना बनाना, धान कूटना, पशुओं को चारा देना आदि कार्य वे सूर्योदय के पूर्व ही समाप्त कर लेती हैं। वे प्रातः ही पुरुषों के साथ खेतों में उनकी सहायता करने जाती और सन्ध्या होने पर लौटती हैं। दिन-भर कठिन परिश्रम करना और सन्ध्या होने पर लौटकर भोजन आदि का प्रबन्ध करना तथा खा पीकर नृत्य गीत में तल्लीन हो आनन्द विभोर हो जाना इनके जीवन का प्रायः दैनिक कार्यक्रम है।

अब तो उद्योग क्षेत्रों तथा अन्यान्य स्थानों भी आदिवासी महिलाएँ मजदूरी करने लगी हैं। इन्हें उन क्षेत्रों में 'रेजा' कहते हैं। प्रायः खेत मजदूरनियाँ 'कामिन' कहलाती हैं। पुरुषों की अपेक्षा इन्हें कुछ कम मजदूरी मिलती है। परिवार की अर्थ-व्यवस्था पर महिलाओं का समान या संयुक्त अधिकार होता है। पारिवारिक आवश्यकता की चीजें हाट-बाजारों में विशेषतः महिलाएँ ही क्रय विक्रय करती हैं।

आदिवासी महिलाएँ स्वभावतः निर्भीक, निर्द्वन्द्व और साहसी होती हैं। स्वावलंबिनी होने के कारण वे स्वभावतः स्वाभिमानी भी होती हैं। आत्मसम्मान पर आघात उन्हें रंचमात्र भी सह्य नहीं होता।

आदिवासी स्त्रियों की संपूर्ण गतिविधियाँ प्रायः उनके गृह-परिवार के दायरे में ही केन्द्रित रहती हैं। वे अपने परिवार, जाति तथा समाज की कल्याण-कामना को सबसे अधिक महत्त्व देती हैं। अपने परिवार या जाति के संरक्षण के निमित्त देवताओं, पितरों और भूतों की पूजा में उनकी प्रबल निष्ठा देखी जाती है। वे अपनी सांस्कृतिक परंपराओं को बनाये रखने में अपना गौरव समझती हैं। इसी कारण अपने पूर्वजों की मृतात्माओं के प्रति उनका अनन्य विश्वास देखा जाता है।

प्रत्येक आदिवासी नारी के हृदय में अपने वंश की रक्षा के निमित्त पुत्रोत्पादन की घनीभूत लालसा होती है। जब कभी किसी महिला में पुत्रोत्पत्ति के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं, तब उसके परिवार में आनंद का पारावार तरंगित होने लगता है।

प्राय सभी प्रजातियों के आदिवासियों में वैवाहिक सम्बन्ध का बड़ा ही स्वस्थ और नैतिकता-पूर्ण निर्वाह किया जाता है। कभी कभी कुछ अविवाहित कन्याएँ उन्मुक्त या उछृंखल वासना के वशीभूत हो जाया करती हैं, किन्तु विवाहिता पत्नियों का जीवन पूर्णतः संयमपूर्ण होता है।

आदिवासी नारियाँ अपने दैनिक तथा सामाजिक जीवन में प्रगल्भ तथा कार्यपटु होती हैं तथा अपने समाज के लोगों से उनका संपर्क बेधड़क और निर्भीकता पूर्ण होता है। किन्तु विजातीयों के, जिन्हें ये घृणा से 'दीकू' कहती हैं, संपर्क को बहुत ही संदेहपूर्ण दृष्टि से देखती हैं। किसी भी विजातीय व्यक्ति से सहसा बातें करने में इन्हें बहुत ही झिझक का अनुभव होता है।

अब अनेक आदिवासी परिवारों में भी शिक्षा का प्रचार होने लगा है। लड़कों के साथ ही लड़कियाँ भी आधुनिक ढंग से शिक्षित होने लगी हैं। आदिवासी अंचलों में सरकार की ओर से समाज-सेवा केन्द्रों की स्थापना की गई है, जहाँ से समाज सेविकाएँ गाँवों में जाकर आदिवासी महिलाओं को प्रशिक्षित बनाती हैं। फिर भी, जिन अंचलों में अभी तक शिक्षा का अधिक प्रचार नहीं हुआ है, वहाँ की आदिवासी महिलाएँ अपनी-अपनी परम्पराओं को जुगाती हुई आदिम मानवों की संस्कृति का धरोहर की भाँति सँजोये हुई हैं।

००

यस्य भार्या शुचिर्दक्षा भर्त्तारमनुगच्छति।
नित्य मधुरवक्त्रा च सा रमा न रमा रमा॥

—सुभाषितसुधारत्नभाण्डागार

[अर्थात्, तन मन से पवित्र, आचार-व्यवहार में कुशल, अपने पति की अनुगामिनी तथा नित्य मधुर बोलनेवाली स्त्री ही यथार्थतः लक्ष्मी है।]

विहार में जैन महिलाओं की सेवाएँ

डॉक्टर नेमिचन्द्र शास्त्री, ज्योतिषाचार्य; जैनसिद्धान्त-भवन, आरा

उत्थानिका

जैनसाहित्य में विहार की पुण्यभूमि को अत्यधिक गौरव प्राप्त है। इस प्रदेश ने बारहवें तीर्थङ्कर वासुपूज्य, उन्नीसवें तीर्थङ्कर मल्लिनाथ, बीसवें तीर्थङ्कर मुनि सुव्रतनाथ, इक्कीसवें तीर्थङ्कर नमिनाथ और चौबीसवें तीर्थङ्कर महावीर को जन्म देकर समस्त भारत की अपूर्व सेवा की है। वैशाली नरेश चेटक की पुत्री और क्षत्रिय कुण्डग्राम के गणतन्त्राधिपति सिद्धार्थ की पत्नी त्रिशलादेवी ने भगवान् महावीर को जन्म देकर भारत के इतिहास के एक नवीन अध्याय का श्रीगणेश किया है।

भगवान् महावीर की धर्म-सभा के व्याख्याता इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त, सुधर्मास्वामी मडिक मौर्यपुत्र, अकम्पिक, अचल, मेतार्य और प्रभास में से अचल और मेतार्य को छोड़ शेष नौ महानुभाव विहार निवासी ही थे। इन्द्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति की माता पृथ्वीदेवी प्राचीन मगध के अन्तर्गत गोवर नामक गाँव की निवासिनी थी। व्यक्त की माता वारुणी, सुधर्मा की भद्रिला, मडिक की विजयादेवी, अकम्पिक की जयन्ती और प्रभास की अतिभद्रा मगध एवं विहार के अन्य प्रदेशों की निवासिनी विदुषी देवियाँ ही थीं। इनके सत्संस्कारों की छाप के कारण ही ये विद्वान् अहिंसा धर्म के प्रचार में प्रयत्नशील हुए थे।[1]

प्रागैतिहासिक विहार के जैनराजाओं में शिशुनाग वंश, ज्ञातृवंश, हैहयवंश और मौर्यवंश का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। शिशुनाग-वंश के शिशुनाग, कामवर्ण, कर्मक्षेपण, उपश्रेणिक, श्रेणिक, बिम्बसार, कूणिक या अजातशत्रु, हर्षक, उदयाश्व, नन्दिवर्धक और महानमि—इन दस राजाओं में से उपश्रेणिक, श्रेणिक और अजातशत्रु को जैन इतिहास में जैन कहा गया है।[2] उपश्रेणिक की राजधानी राजगृह नगरी थी। यह राजा कल्पवृक्ष के समान दानी, सूर्य के समान प्रतापी, इन्द्र-सदृश परम ऐश्वर्यशाली, कुबेर सदृश धनी एवं समुद्र सदृश गम्भीर माना गया है। इसकी पटरानी का नाम इन्द्राणी थी। इस इन्द्राणी के गर्भ से श्रेणिक का जन्म हुआ। यह श्रेणिक भगवान् महावीर की धर्मसभा का प्रधान श्रोता था।[3] अतः, प्रागैतिहासिक काल से ही जैन नारियों द्वारा विहार की धरती की सेवा की जा रही है।

---

१. देखिए 'श्रमण भगवान् महावीर', पृ० ५०।

२. संक्षिप्त जैन इतिहास, पृ० १२-१३।

३. श्रेणिकचरित, पृ० ५-१५।

नर और नारी दोनों ही मिलकर मानव-समाज की सृष्टि करते हैं। प्रत्येक युग में समाज निर्माण में पुरुषों के समान स्त्रियों ने भी हाथ बटाया है। नारियाँ बड़ी तत्परता और दिलेरी के साथ मानवता की सेवा में अग्रगामी रही हैं। यह कहना अनुचित नहीं कि समाज के कितने ही क्षेत्रों में महिलाओं ने पुरुषों से भी अधिक उपयोगी कार्य किये हैं। प्रकृति ने नारी को कितनी ही ऐसी विशेष प्रवृत्तियाँ प्रदान की हैं, जो पुरुषों को प्राप्त नहीं। पुरुष स्रष्टा है, तो नारी सेविका। नारी के विशेष गुण हैं दया और कोमलता, शान्ति और प्रेम, समर्पण और बलिदान। पाशविकता, हिंसा, क्रोध और द्वेष प्रभृति दुर्गुण प्रकृत्या नारी में नहीं पाये जाते। अतः, नारी का सेवा-क्षेत्र पुरुष के सेवा-क्षेत्र से भिन्न है। इसलिए, नारियों के सेवा क्षेत्र की सीमा भी शिक्षा, धर्मायतनों का निर्माण, कला एवं परिवार के अभ्युत्थान तक ही सीमित है। कुछ नारियाँ अवश्य ऐसी मिलती हैं, जिन्होंने जनता के बीच राजनीति और शासन में भी भाग लेकर अपने सेवा-क्षेत्र को विस्तृत किया है।

पौराणिक जैन नारियों की सामूहिक सेवा

प्रस्तुत निबन्ध की उत्थानिका में ही यह बतलाया जा चुका है कि तीर्थङ्करों, विद्वानों गणधरों एवं राजा महाराजाओं की जननी के रूप में तो जैन नारियों ने अपूर्व सेवा की ही है, परन्तु पौराणिक जैन नारियों ने समाज और देश के उत्थान में भी भाग लिया है। अतः, पुराण-काल की जैन महिलाओं का व्यक्तित्व जीवन की सरल रेखाओं में बंधा, व्यावहारिकता के व्यामोह-व्यवधान से परे, मानवीय गुणों की पराकाष्ठा पर चढ़कर प्रेरणा की बालरश्मियों को विकीर्ण करता है। भगवान् महावीर के संघ में रहनेवाली छत्तीस हजार साध्वियों और श्राविकाओं ने अपने अथक परिश्रम द्वारा बिहार भूमि के कण-कण में जागरण की शंखध्वनि की थी तथा समाज की सुषुप्त चेतना को अपने त्याग और तपश्चरण की प्रेरणा देकर उद्बुद्ध किया था। इन्होंने गत्यवरोध उत्पन्न करनेवाली काली कुरीतियों एवं अन्धविश्वासों का ध्वंस कर समाज को स्वस्थ बनाने का प्रयास किया। पौराणिक नारियों के सामूहिक रूप में किये गये सेवा कार्यों का मूल्याङ्कन निम्नलिखित रूपों में किया जा सकता है :

१. धर्मोपदेश द्वारा स्वस्थ, नैतिक और कर्मठ समाज के निर्माण के रूप में। जैन मुनियों के संघ में भ्रमण करनेवाली आर्यिकाएँ प्रत्येक नगर और गाँव में जाकर महिला-समाज को धर्मोपदेश देकर सावधान और सचेत करती थीं। आर्यिकाओं के संघ पृथक् रूप में भी विहार करते थे और ये अपने ज्ञान और तपश्चरण के प्रभाव से जनता को नीति, अध्यात्म और आचार का उपदेश देते थे। बिहार की पावन भूमि में चन्दना-संघ, देवनन्दा-संघ आदि नारी-संघों ने बिहार के विभिन्न प्रदेशों में नर नारियों के बीच श्रमण संस्कृति का खूब प्रचार किया। मानवता के निर्माण में इन नारियों का सहयोग भुलाया नहीं जा सकता।

२. संस्कार गत प्रभाव के रूप में। जैन साध्वियाँ एवं जैन श्राविकाएँ अपने आचरण के श्रेष्ठ संस्कारों का प्रभाव समाज पर डालती थीं, जिससे सत्य, अहिंसा, अचौर्य,

ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के संस्कार समाज पर पड़ते थे। पौराणिक आख्यानों में नारियों की शील-परीक्षा के कई उदाहरण आये हैं, जिनमें बताया गया है कि इन नारियों की शील-सम्बन्धी दृढ़ता का प्रभाव जनता पर बहुत सुन्दर पड़ता था।

३. शिक्षा, शिल्प और कला के प्रचार एवं प्रसार के रूप में। पौराणिक जैन नारियों में ऐसी कई नारियाँ हैं, जो दुःखी जनता की सेवा में अपने जीवन को समर्पित कर देती थीं।

इन सामूहिक कार्यों के अतिरिक्त वैयक्तिक रूप से भी पौराणिक नारियाँ बिहार की सेवा में संलग्न रही हैं। यहाँ कुछ देवियों के कार्यों का निर्देश किया जाता है।

चन्दनबाला की बिहार-सेवा

चन्दनबाला चम्पा के राजा दधिवाहन की पुत्री थी।[1] जैन इतिहास में इसका स्थान अद्वितीय माना जाता है। राजघराने में जन्म लेने पर भी कर्म-संयोग से इसे अपने जीवन में घोर संघर्ष करना पड़ा। इसके जीवन की गाथा बड़ी ही विचित्र है। हम यहाँ इसके जीवन-परिचय पर प्रकाश न डालकर केवल इसकी सेवाओं का ही निर्देश करेंगे।

जैन मान्यतानुसार भगवान् महावीर का संघ चार रूपों में विभक्त था—मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका। चन्दनबाला छत्तीस हजार साध्वियों के संघ की अधिष्ठात्री देवी थी। इसने भगवान् महावीर के चरणों में आर्यिका के व्रत ग्रहण किये और प्रधान साध्वी होकर अपने संघ का समस्त बिहार में परिचालन किया। नारी समाज में अद्भुत चेतना और जागरण की लहर फैलाने का श्रेय इसी को है। इसकी तीन धर्म सभाओं का उल्लेख मुख्य रूप से प्राप्त होता है। पहली धर्मसभा चम्पा नगरी में हुई थी। इसने इस संघ में नारियों को सतीत्व-रक्षण और कर्त्तव्य पालन पर उपदेश किया था। वैशाली में इसकी दूसरी सभा हुई थी। इस सभा में नर नारियों की संख्या अगणित थी। इसने नारियों के व्रत और अनुष्ठानों का विवेचन करते हुए नारी-जागरण पर जोर दिया। नारी शिक्षा के सम्बन्ध में भी पर्याप्त ऊहापोह किया गया। तीसरी सभा राजगृह में हुई थी। मगध की समस्त नारियाँ इसमें सम्मिलित हुई थीं। इसने नारी-समाज के अभ्युत्थान के लिए अनेक आवश्यक बातें बतलायीं तथा नारी-समाज के संगठित होने पर जोर दिया। नारी-सभाओं और नारी-संस्थाओं का गठन भी यहीं से आरम्भ हुआ। बिहार के बाहर भी इसका संघ गया था। अंग, बंग, कौशाम्बी, मथुरा और आगरा में इसके संघ ने नारी-जागरण की शंखध्वनि की थी। श्रावस्ती और कौशाम्बी में इसकी प्रेरणा से उपाश्रम स्थापित किये गये थे।

इस देवी की सेवा बिहार के जन-जागरण के इतिहास में अप्रतिम है। मगध और विदेह की अमराइयाँ आज भी इसके उपदेशों की पुनरावृत्ति कर रही हैं। शिक्षा और

---

१. आवश्यकचूर्णि, पत्र ३१६ ३२०।

पण्डिता ब्रह्मचारिणी चन्दाबाई जैन,
विदुषीरत्न
(परिचय : पृ० ७५ और ३२८)

श्रीमती व्रजबाला देवी जैन,
महिलाभूषण
(परिचय : पृ० ७५)

श्रीमती अघोरकामिनी देवी
(परिचय : पृ० ३४२)

श्रीमती आशा सहाय
(परिचय : पृ०३५७)

सरकारों से वंचित नारी ने इसी देवी के शुभ प्रयास से अपने खोये हुए अधिकार प्राप्त किये। बिहार की पुण्यभूमि ने इसी योग्य साध्वी के नेतृत्व में सदाचार और अध्यात्म के उपदेश प्राप्त कर अपूर्व क्रान्ति की। नारी समाज ने भी समाज में अपने खोये हुए गौरव को प्राप्त किया।

जयन्ती देवी की बिहार-सेवा

जयन्ती देवी यद्यपि मूलतः बिहार की निवासिनी नहीं थी, पर इस देवी को बिहार की पावन भूमि से बहुत प्रेम था। यह देवी कौशाम्बी के राजा सहस्रानीक की पुत्री, शतानीक की बहन और उदयन की फूफी थी। यह आर्हत धर्म की अनन्य उपासिका और धर्म तत्त्व की जानकार भी थी। यह बिहार से कौशाम्बी आनेवाले आर्हत श्रावकों को अपने यहाँ आश्रय देती थी। बिहार के और विशेषतः वैशाली के निवासियों को अपने यहाँ आश्रय देने के कारण इसकी ख्याति बिहार में 'आश्रयदात्री' के रूप में प्रसिद्ध थी।[1] इसने भगवान् महावीर के समवशरण में इन्द्रिय दमन, संयम एवं अध्यात्म-विषयक प्रश्न पूछे थे और उनसे प्रभावित होने के कारण यह साध्वी हो गई थी। भगवान् महावीर के श्रमण-संघ में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान था। इसने बिहार प्रदेश में जन-जागरण का सुन्दर कार्य किया था। राजगृह, पाटलिपुत्र, नालन्दा और वैशाली की कई धर्म सभाओं में इस देवी ने उपदेश किये थे। वैशाली से बहुत प्रेम रहने के कारण इसने वैशाली-अंचल के नारी समाज का अभ्युत्थान और संगठन किया था। आर्हत मत के प्रचार के लिए इस महिला ने अपना संघ निकाला था। यह संघ अहिंसा का प्रचार करता हुआ बिहार, बंगाल और उत्तरप्रदेश में विचरण करता रहा। इस देवी के कार्य निम्नांकित रूपों में विभक्त किये जा सकते हैं।

१ धर्मोपदेशिका के रूप में—साध्वी होकर धर्मोपदेश का कार्य बड़ी योग्यता और तन्मयता से किया। नारियों के अज्ञान और मिथ्यात्व को दूर कर स्वस्थ नारी समाज का संगठन किया।

२ श्राविका के रूप में—बिहार निवासियों को अपने यहाँ आश्रय देकर संकट मुक्त करती थी। गृहस्थावस्था में साधु और सन्यासियों को आहार दान आदि करती थी।

३. निरीह जनता को सन्मार्ग पर लगाने के रूप में—जाति, वर्ण और आश्रम की विभिन्नता को दूर कर स्वस्थ समाज का निर्माण किया। समाज में जो ऊँच नीच की खाई बन गयी थी, उसे अपने उपदेशों द्वारा भरने का प्रयास चन्दनबाला और जयन्ती देवी दोनों ने किया है।

कुमारदेवी और वैशाली गणतन्त्र

कुमारदेवी वैशाली-गणराज्य की अन्तिम अधिष्ठात्री थी। इसका असीम धैर्य, साहस और राजनीतिक चातुर्य महिला समाज के लिए एक अनुपम गौरव प्रदान करता है। वैशाली-

१ कल्पसूत्र (पूर्वार्ध) और श्रमण भगवान् महावीर, पृ० ८२ ८३।

गणराज्य की दिन दूनी रात-चौगुनी प्रगति जब अन्य पड़ोसी राज्यों के लिए शूल बनकर चुभने लगी, इधर लिच्छवि-परिवार में कोई पुरुषार्थी उत्तराधिकारी भी न बचा, तब इस देवी ने वज्जियों का ताज अपने माथे पर रखा और नारी समाज ही नहीं, अपनी समस्त मातृभूमि के गौरव को कितने ही वर्षों तक अक्षुण्ण बनाये रखा। वैशाली-राज्य की भलाई के लिए इसने कई कार्य किये। जनता इसके शासन काल में सुखी और सम्पन्न थी। अहिंसा और सत्य का व्यवहार करने के लिए इसने पर्याप्त प्रचार किया था। भगवान् महावीर के अनुयायियों के प्रति इसकी अपार श्रद्धा थी। जन-साधारण के आर्थिक जीवन को भी उन्नत बनाने में इसने योगदान किया था।

चेलना का सेवा कार्य

चेलना वैशाली-नरेश चेटक की पुत्री[1] और राजगृह के अधिपति श्रेणिक की रानी थी। एक बार यह दम्पती जैन साधुओं की वन्दना कर लौट रहे थे कि उसी समय रास्ते में एक नग्न साधु को खुले मैदान में तपस्या करते देख महारानी के मन में अपार दया उत्पन्न हुई। रात में सोते समय इस सुकुमारी देवी का हाथ पलँग से नीचे लटक गया, जिससे शीत लगने से वह शून्य-सा हो गया। राजा ने तत्काल उसकी परिचर्या कराई। रानी के मुँह से अचानक निकल पड़ा कि ओह! उस बेचारे की क्या स्थिति होगी। रानी के इन शब्दों से राजा के मन में आशंका हुई और उसने इसे दुश्चरित्रा समझा। अगले दिन भगवान महावीर की धर्म सभा में इसके चरित्र के सम्बन्ध में प्रश्न किया गया। गौतम गणधर ने इसके पातिव्रत्य की प्रशंसा करते हुए उस साधु के उग्र तपश्चरण की बात कही, जो राज-दम्पती को मार्ग में तपस्या करते हुए मिला था। कहा गया कि रानी ने उसी साधु के शीत-परीषह के लिए 'ओह' किया है। राजा के मन में पश्चात्ताप हुआ और इस सती के चरित्र के प्रति राजा के मन दृढ़ आस्था उत्पन्न हो गई।

रानी चेलना ने अपने परिवार और जनता की सेवा निम्नांकित रूपों में की—

१. श्रेणिक का मिथ्यात्व छुड़ाकर उन्हें सम्यग्दृष्टि बनाया। परिवार की विशृङ्खलताओं को दूर कर महाराज श्रेणिक को सभी प्रकार के कार्यों में सहयोग किया।

२. महाराज श्रेणिक को जन सेवा के लिए तैयार किया। श्रेणिक चालीस वर्ष की आयु तक बौद्धधर्म का उपासक रहा, पर इसी साध्वी का सम्पर्क पाकर वह जैन-धर्मानुयायी हुआ तथा भगवान् महावीर की धर्मसभा का प्रधान श्रोता बना। अतः, उसने इसी की प्रेरणा से अनेक ऋषि मुनियों के लिए गुफा एवं चैत्य उपाश्रम बनवाये। जैनसंघ को उसने जो भी सहयोग-प्रदान किया, उसमें इसी नारी-रत्न की प्रेरणा थी। इसी के सहयोग का प्रभाव था।

---

१. एत्थो य वेसालीए नगरीए चेडओ राया हेहयकुलसंभूतो। तस्स देवीण अण्णमण्णाण सत्त धूताओ। प्रभावती, पउमावती, मिगावती, सिवा, जेट्ठा, सुजेट्ठा, चेल्लण त्ति।

—आवश्यकचूर्णि, पत्र १६४।

३. इसने स्वयं भी गुफा और उपाश्रम बनवाये। आदर्श श्राविका के व्रतों का पालन कर जनता के लिए एक उत्तम आदर्श प्रस्तुत किया।

४. महारानी होकर भी इसने नारी समाज के उत्थान के लिए कई कार्य सम्पन्न किये।[1]

यह तो हुई जैन नारियों की सेवा की अतीत गाथा। अब वर्त्तमान में जैन नारियों द्वारा बिहार की कितनी और कैसी सेवा की जा रही है, इसका लेखा-जोखा उपस्थित करना भी आवश्यक है। आरा, गया, डालमियानगर, छपरा, डालटेनगंज, राँची, गिरिडीह, हजारीबाग, कोडरमा, भागलपुर आदि स्थानों की जैन नारियाँ इस शताब्दी में बिहार में अपूर्व सेवा कार्य कर रही हैं। यहाँ दो-एक प्रमुख महिलाओं की सेवाओं की चर्चा की जायगी।

माँश्री ब्रह्मचारिणी पंडिता चन्दाबाई

माँश्री चन्दाबाईजी का जन्म विक्रमाब्द १९४६ की आषाढ शुक्ला तृतीया की शुभवेला में वृन्दावन में हुआ था। आपके पिता का नाम श्रीनारायणदास अग्रवाल और माता का नाम श्रीमती राधिकादेवी था। श्रीनारायणदासजी सम्पन्न जमीन्दार, प्रतिभाशाली एवं ग्रेजुएट विद्वान् थे। पाँच वर्ष की अवस्था में आपका विद्या संस्कार किया गया। वैष्णव परिवार में जन्म लेने के कारण रामायण और गीता आपके अध्ययन के प्रिय ग्रन्थ थे। कुछ ही समय में आपकी शिक्षा समाप्त हुई। बारह वर्ष की अवस्था में आपका विवाह-संस्कार बिहार-प्रान्त के आरा नगर के प्रसिद्ध सम्भ्रान्त जमीन्दार जैन-धर्मानुयायी प० प्रभुदास के पौत्र और श्रीचन्द्रकुमारजी के पुत्र श्रीधर्मकुमारजी के साथ सम्पन्न हुआ। दैववशात् श्रीधर्मकुमारजी की मृत्यु विवाह के कुछ समय बाद ही हो गई और केवल तेरह वर्ष की अवस्था में ही वैधव्य की वैधवी कला आपकी चिरसंगिनी बनी। आपके जेठ देवप्रतिम स्वनामधन्य श्रीदेवकुमारजी ने आपकी उच्च शिक्षा का पूरा प्रबन्ध किया। आपने घोर परिश्रम कर संस्कृत के व्याकरण, न्याय, साहित्य और जैनागम एवं प्राकृत भाषा में भी अगाध पाण्डित्य प्राप्त किया। राजकीय संस्कृत-विद्यालय (काशी) की 'पंडिता' परीक्षा में भी उत्तीर्ण हुई, जो वर्त्तमान 'शास्त्री' परीक्षा के समकक्ष है। श्रीदेवकुमारजी ने अपनी अनुजवधू को विदुषी, समाजसेविका और साहित्याराधिका बनाने में कोई कमी नहीं रहने दी।

लोकसेवा कार्य

इस बीसवीं शताब्दी का वह दशक, जिसमें देश ने एक जोर की अँगड़ाई ली और विदेशी शासन-सत्ता की कड़ियाँ तड़ातड़ टूटने लगीं, आपकी देशसेवा एवं जनसेवा के लिए महत्त्वपूर्ण है। यों तो सभी बुद्धिजीवी उस समय भारत-माता को बन्धनमुक्त

---

१. निरयावलियाओ, पृ० २७ तथा श्रेणिकचरित, पृ० ४६-४७।

करने की चेष्टा कर रहे थे। सभी का त्याग और बलिदान भारत के स्वातन्त्र्य आन्दोलन के इतिहास में अपना निजी स्थान रखता है। पर, आपकी मूक सेवा देश के किसी भी नेता से कम नहीं है। यद्यपि आप जेल नहीं गयीं, तथापि आपने कितने ही भाई-बहनों को स्वातन्त्र्य आन्दोलन में भाग लेने की प्रेरणा दी और कितने ही भाइयों को गुप्त रूप से आर्थिक सहयोग प्रदान किया। सन् १६२० ई० में आपने चरखा चलाना आरम्भ किया तथा देश के स्वतन्त्र होने तक अपना यह अनुष्ठान करती चली आयीं। खद्दर पहनने का नियम आजतक ज्यों का-त्यों चला आ रहा है। खद्दर का प्रचार और देश के अन्य आवश्यक कार्यों के लिए चन्दा एकत्र करना तथा स्वयं चन्दा देकर उन कार्यों को सम्पन्न कराना आपका जीवन-व्रत है। दु:खी, गरीब और असहायों की सेवा में आप सदा संलग्न रहती हैं। आप इतनी दयालु हैं कि हरी घास पर चलने में भी संयम रखती हैं। दीन-दु:खी महिलाओं को आर्थिक एवं अन्य प्रकार का आवश्यक सहयोग देकर उन्हें सुखी बनाने में विशेष तत्पर रहती हैं। आपकी लोक सेवा केवल शाहाबाद तक ही सीमित नहीं है, अपितु बिहार तथा भारत के अन्य प्रदेशों में भी व्याप्त है। बाढ़, महामारी और दुष्काल के अवसर पर आप तन-मन धन से जनता की सेवा करती दृष्टिगोचर होती हैं।

नारी जागरण का उद्योग

दासत्व की शृंखला में जकड़ी घूँघट में छिपी, अज्ञान और कुरीतियों से प्रताड़ित नारी की दशा को उन्नत बनाने के लिए आप सदा प्रयत्नशील रहती हैं। आपने सन् १६१८ ई० में भारतीय दिगम्बर जैन महिला-परिषद् की स्थापना कर नारी जागरण का शंख फूँका। इस संस्था के माध्यम से आपने नारी-समाज के अभ्युदय के अनेक कार्य किये हैं। कितनी ही सुयोग्य होनहार छात्राओं को छात्रवृत्तियाँ, विधवाओं और दुःखी बहनों को आर्थिक सहायता एवं आजीविका विहीन नारियों को आजीविका भी दी है। इस संस्था के सहारे आप दु:खी, अपंग, रोगी एवं असहाय नारियों की सेवा के अतिरिक्त रात-दिन नारी-कल्याण के लिए विविध भाँति के महत्त्वपूर्ण कार्य किया करती हैं। आपने इस परिषद् के दसवें वार्षिक अधिवेशन (कानपुर) के अवसर पर नारियों को सचेत करते हुए कहा था—

> "अविद्या-राक्षसी ने हमारी बहनों को मनुष्यत्व से वंचित कर रखा है। जो हमारी वृद्ध माताएँ नारी-शिक्षा की अवहेलना करती हैं तथा पढ़ने-लिखने का कार्य केवल पुरुषों का समझती हैं, वे सचमुच अँधेरे में हैं, दिशा भूली हुई हैं। हमारा विश्वास है कि शिक्षा जितनी पुरुषों को आवश्यक है, नारियों को उससे कहीं अधिक। भावी सन्तान को सुयोग्य और शिक्षित बनाने का दायित्व माताओं पर ही रहता है। अतः, हमें इस बात को सदा याद रखना चाहिए कि देश की उन्नति महिला-जागरण के बिना संभव नहीं है। महिलाओं को जागरित होना ही पड़ेगा। उन्हें इस बात को समझना होगा कि उनकी सेवा का क्षेत्र पारिवारिक सीमा में ही

बँधा नहीं है, बल्कि उससे आगे भी उन्हें सोचना है और अपने दायित्व को सँभालना है। हम देश की नारियों से अपील करती हैं कि वे ज्ञानी, कर्त्तव्य परायण और जागरूक बनें। देश का पुनरुत्थान नारियों के सहयोग के बिना सम्भव नहीं है। समाज, देश और राष्ट्र को सुखी, सम्पन्न और सदाचारी बनाने के लिए नारियों को जागरित होना ही पड़ेगा।"

माँश्री केवल वचनों द्वारा ही नारी-जागरण नहीं करतीं, बल्कि अपना क्रियात्मक योगदान भी करती हैं। आपके प्रयास से बिहार के बाहर भी नारी-शिक्षा संस्थाएँ नारी जागरण का कार्य कर रही हैं।

शिक्षा-सम्बन्धी सेवा

नारी के सर्वाङ्गीण विकास के लिए सन् १६०७ ई० में आपने श्रीदेवकुमारजी द्वारा आरा नगर में एक जैन-कन्या पाठशाला की स्थापना करायी और स्वयं उसकी सचालिका बन नारी शिक्षा का बीज-वपन किया। इस शाला में आप मध्याह्न के समय मुहल्ले की नारियों को एकत्र कर स्वयं शिक्षा देती तथा उन्हें कर्त्तव्य का ज्ञान कराती थीं। इस छोटी-सी पाठशाला की सेवा से आपको सन्तोष नहीं हुआ, अतः सन् १६२१ ई० में आपने नारी-शिक्षा के प्रसार के निमित्त 'श्रीजैनबाला विश्राम' नाम की शिक्षा संस्था स्थापित की। इस संस्था में आपने लौकिक और नैतिक शिक्षा का पूर्ण प्रबन्ध किया। विद्यालय-भवन के साथ छात्रावास की भी सुन्दर व्यवस्था की गयी। इस महिला विद्यापीठ ने नारी-शिक्षा का प्रसार बहुत तेजी से किया। आपके संरक्षण में रहनेवाली महिलाएँ आदर्श देवियाँ बनकर निकलतीं और वे अपने-अपने स्थानों पर जाकर नारी शिक्षा संस्था को जन्म देतीं। फलत, श्रीजैनबाला-विश्राम के केन्द्र के चारों ओर अनेक शिक्षा संस्थाओं की परिधि चक्कर लगाने लगी। यह आदर्श संस्था जयपुर के वनस्थली विद्यापीठ के समान स्वतन्त्र रूप से आज भी नारी-शिक्षा का प्रसार कर रही है। देश-भर में विस्तृत इस संस्था का वातावरण बहुत ही विशुद्ध और पवित्र है। यहाँ पहुँचते ही धवलवसना, हंसवाहिनी, वीणावादिनी सरस्वती आगन्तुकों का स्वागत करने के लिए प्रस्तुत रहती है। छात्रावासों और विद्यालय-भवनों की विशेषता ईंट-चूने से बनी भव्य इमारत में नहीं है, किन्तु रक्तमांस से निर्मित साध्वी माँश्री के व्यक्तित्व के आलोक से उद्भासित होनेवाली अगणित बालाओं के उत्थान में है। आपने इस संस्था में अपना तन मन धन सब कुछ होम दिया है। आपकी तपस्या और आपका इन्द्रिय निग्रह यहाँ की छात्राओं को स्वतः आदर्श बनने की प्रेरणा देते हैं। आपकी सेवा, त्याग और लगन का मूल्य चाँदी के टुकड़ों में नहीं आँका जा सकता। इस संस्था में आरा नगर और बिहार प्रदेश की छात्राएँ ही विद्याध्ययन नहीं करतीं, बल्कि भारत के कोने-कोने की बालाएँ शिक्षा प्राप्त करती हैं। इस संस्था की महत्ता राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी, देशरत्न डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, प्रधान मन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरू, नवयुवक-प्राण श्रीजयप्रकाश नारायण, आचार्य सन्त विनोबा भावे, आचार्य काका कालेलकर आदि

मनीषियों ने स्वीकार की है। आप सभी महानुभावों की शुभ सम्मतियाँ यहाँ की परिदर्शन-पंजी में अंकित हैं।

साहित्यिक सेवा

जिस प्रकार भारतेन्दु का साहित्य हिन्दी साहित्य के नवोत्थान का ज्वलन्त इतिहास है, उसी प्रकार माँश्री की अजस्र साहित्यिक सेवा धारा के तट-प्रान्त में महिला-साहित्य के सुनहले प्रभात का उद्भव और विकास भी हुआ है। साहित्यिक पुरुषत्ववाद की अन्तिम विजयश्री पर माँश्री ने महिला साहित्य को, अपने व्यक्तित्व का आत्मनिर्माण कर, सजाया और सँजोया है—अपने व्यक्तित्व के प्रभवदान से महिला-साहित्य को अनुप्राणित किया है। आपके आदर्श व्यक्तित्व की छाप आपके साहित्य पर अमिट रूप से मिलती है। आपने नपे तुले शब्दों में सत्य, शिवं और सुन्दर की अभिव्यंजना की है। नारी साहित्य में आपकी कृतियाँ स्थायी महत्त्व की हैं।

अबतक आपकी बारह-तेरह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उपदेशरत्नमाला, सौभाग्यरत्नमाला, निबन्धरत्नमाला, आदर्श निबन्ध, निबन्ध दर्पण, आदर्श कहानियाँ आदि मौलिक रचनाएँ हैं। इन रचनाओं के अतिरिक्त आप सन् १६२२ ई० से ही 'जैन महिलादर्श' नामक हिन्दी मासिक पत्र का सम्पादन भी करती चली आ रही हैं। यह पत्र अखिल भारत वर्षीय दिगम्बर जैन-महिला परिषद् का मुखपत्र है। इसमें सामयिक विचार-धाराओं के अतिरिक्त शिक्षा सदाचार, आत्मविश्वास आदि विषयों पर आपकी लेखनी से निःसृत रचनाएँ प्रत्येक महीने पाठकों को प्राप्त होती हैं। संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि आपके साहित्य में नारी-समाज के नवोत्थान की भावना पूर्णरूपेण प्रतिष्ठित है।

सांस्कृतिक सेवाएँ

माँश्री भारतीय संस्कृति के प्रसार में अहर्निश संलग्न रहती हैं। आपने श्रमण संस्कृति के प्रसार के लिए बिहार के राजगृह, पावापुरी, आरा आदि स्थानों में विपुल धन-राशि व्यय कर सुन्दर जैन मन्दिरों का निर्माण कराया है। बिहार के बाहर वृन्दावन में भी एक जिनालय आप द्वारा निर्मित है।

जैनागम में राजगृह बहुत पवित्र माना गया है। यहाँ के विपुलाचल पर अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी का समवशरण आया था तथा बीसवें तीर्थंकर मुनि सुव्रतनाथ की यह उत्पत्तिभूमि भी है। माँश्री ने रत्नगिरि पर्वत पर मुनि सुव्रतनाथ का मन्दिर बनवाया है। जिस उन्नत पहाड़ी भूमि पर यह जिनालय स्थित है, वह स्थान इतना पवित्र और रम्य है कि वहाँ पहुँचते ही मन पावन भावनाओं से भर जाता है। इतना आमोद उत्पन्न होता है कि साधक एक क्षण के लिए सब कुछ भूल जाता है और भक्ति-सरोवर में डुबकियाँ लगाने लगता है। सचमुच, जिनालय निर्माण के लिए इतनी सुन्दर भूमि का निर्वाचन कला और संस्कृति की मर्मज्ञता का परिचायक है। इस मन्दिर के कलश, मिहराब, जालियाँ, झरोखे आदि वास्तु शास्त्र के अनुसार बनाये गये हैं।

आरा में निर्मित मान स्तम्भ माँश्री की सांस्कृतिक सुरुचि का परिचायक है। श्रीजैन-बाला-विश्राम में विद्यालय भवन के ऊपर निर्मित जिनालय और उसकी परिक्रमा, जो बागीचा काटकर बनायी गयी है, अपनी रमणीयता से दर्शकों को लुभाये बिना नहीं रहती। इस परिक्रमा-स्थान पर पड़नेवाली उषःकालीन किरणों की लाली अपनी आभा द्वारा अद्भुत छटा विकीर्ण करती है। उद्यान से होकर आनेवाली शीतल मन्द-सुगन्ध वायु दर्शक के मन को पवित्र कर देती है।

मन्दिरों के अतिरिक्त माँश्री ने अनेक जैन मूर्त्तियों का निर्माण एवं उनकी पञ्च-कल्याणक प्रतिष्ठाएँ भी करायी हैं। हस्त-शिल्प में भी आप प्रवीण हैं, पूजा प्रतिष्ठा के अवसरों पर बनाये जानेवाले माड़नों—नक्शों या चित्रों को आप बड़े ही कलापूर्ण ढंग से बनाती हैं। भगवान् के पूजा-स्तोत्रों में आपकी मधुर अमृतवाणी अत्यन्त प्रभावशालिनी होती है।

आपकी सांस्कृतिक सेवाएँ चार प्रकार की हैं—संस्कृति के आधार-स्तम्भ मन्दिरों, मूर्त्तियों एवं अन्य कलाकृतियों का निर्माण कराना, स्वयं तपःपूत जीवन यापन करते हुए अन्य लोगों को आदर्श और सांस्कृतिक बनने की प्रेरणा देना, दान द्वारा सामाजिक कार्यों में सहयोग देकर उन्हें सफल बनाने में सहायक होना तथा सांस्कृतिक स्थानों का जीर्णोद्धार एवं नवाभ्युदयिक कार्यों का निर्माण कराना। इस प्रकार, आप अपनी विभिन्न प्रकार की सेवाओं द्वारा बिहार के नवनिर्माण और नवोत्थान में सहयोग दे रही हैं। आप वर्ष में दो-एक बार बिहार के जैन तीर्थ भूमियों की वन्दना के लिए जाती रहती हैं, फलस्वरूप बिहार के विभिन्न स्थानों में अपने उपदेश द्वारा भी महिला-जागरण का कार्य करती हैं।

अन्य जैन महिलाओं की बिहार-सेवा

माँश्री चन्दाबाईजी के अतिरिक्त श्रीमती व्रजबाला देवीजी भी सब तरह से बिहार की सेवा में रत हैं। आप माँश्री की छोटी बहन हैं और आपका जीवन भी त्याग एवं तपस्या का है। शिक्षा, साहित्य-निर्माण एवं महिला जागरण के विभिन्न कार्यों द्वारा आप बिहार की सेवा कर रही हैं।

श्रीब्रह्मचारिणी पतासीबाईजी भी अपनी तप पूत साधना द्वारा बिहार की सेवा में संलग्न हैं। आप गया की निवासिनी हैं। आप भाषण, निबन्ध लेखन एवं भ्रमण द्वारा नारी समाज की सार्वजनीन सेवा कर रही हैं।

गया में श्रीमती सौभाग्यवती कपूरीदेवी भी कर्मठ समाज-सेविका हैं। आप वहाँ के महिला समाज की मन्त्रिणी हैं और गया में एक जैनकन्या विद्यालय भी चला रही हैं।

डालमियानगर (शाहाबाद) में दानवीर श्रीमान् साहू शान्तिप्रसादजी जैन की धर्म पत्नी श्रीमती रमारानी जैन ने भी बिहार की सेवा के लिए एक कन्या-विद्यालय स्थापित किया है। इस विद्यालय द्वारा भी नारी शिक्षा का पर्याप्त प्रसार हो रहा है। श्रीमती रमारानी लेखिका, कवयित्री और विचारशील महिला हैं। आपके द्वारा सुसम्पादित 'आधुनिक जैन कवि' एक सुन्दर काव्य संग्रह है। इसमें तरुण और वयस्क दोनों प्रकार के

जैन कवियों की अनेक रचनाओं का आलोचना सहित सम्पादन किया गया है
संसार की प्रसिद्ध प्रकाशन-संस्था भारतीय ज्ञानपीठ (काशी) की आप अध्यक्षा हैं
एवं संस्कृति के कार्यों द्वारा बिहार की सेवा में आप सदैव तत्पर रहती हैं। आ
दान की गयी धनराशि से कितनी ही जैन संस्थाएँ बिहार में समाज और धर्म
सोत्साह कर रही हैं।

इनके अतिरिक्त राँची, भागलपुर, गिरिडीह, छपरा, ईसरी, हजारीबाग, व
पटना प्रभृति बिहार के प्रमुख नगरों में भी जैन समाज द्वारा जैनकन्या-पा
संचालित हो रही हैं, जिनकी संचालिकाएँ उन उन स्थानों की जैन नारियाँ ही हैं
वर्त्तमान काल में भी बिहार की जैन नारियाँ शिक्षा, साहित्य, कला, संस्कृति, जन
आदि विभिन्न क्षेत्रों में कार्य कर रही हैं। इस बीसवीं शताब्दी में बिहार व
महिलाओं की समाज सेवा वस्तुतः बड़ी गौरवमयी है।

सती-प्रथा और बिहार

प्रो० दीनानाथ 'शरण', एम्० ए०; पटना

'सती' शब्द का सीधा अर्थ है—किसी एक ही पुरुष के प्रति नारी की अटूट श्र
और अगाध प्रेम। उस पुरुष के मर जाने पर भी उसी के प्रति स्त्री का अनुराग बनाये र
ही सतीत्व का लक्षण है। दूसरे शब्दों में, ऐसी ही साध्वी नारी को 'पतिव्रता' भी कहते
परवर्त्ती युगों में सती का ही अर्थ मृत पति के साथ चिता में जीते जी जल जाना हो गय
भारतीय शास्त्रों में नारी के इस चारित्रिक गुण की बड़ी महिमा गायी गयी है और सब
सतीत्व पालन का सदैव उपदेश दिया गया है।

स्कन्दपुराण में सती नारी की प्रशस्ति में कहा गया है कि 'जो नारी अ
मृत पति के साथ श्मशान की ओर जाती है, वह पद-पद पर अश्वमेध यज्ञ का फल प्र
करती है। पतिव्रता का चरण जिस धरती का स्पर्श करता है, वह तीर्थ के सम
पावन हो जाती है।'

सुख्यात भारतीय मनीषी वराहमिहिर ने भी अपनी 'बृहत्संहिता' में कहा है ।
'सती स्त्री सहस्र पुरुषों का उद्धार कर देती है। पृथ्वी पर जितने तीर्थ हैं, वे सभी सती

सतीत्व ही भारतीय नारी का आदर्श रहा है और यह बात हमारे प्राचीनतम साहित्य से भी प्रमाणित होती है। वाल्मीकीय रामायण भारतीय सभ्यता और संस्कृति का गौरवमय संकेत देती है। रामायण की सीता, रावण द्वारा अपहरण किये जाने पर, रावण की पत्नी नहीं बन बैठती—वह पति राम के प्रति अक्षय अनुराग का आदर्श उपस्थित करती है।

पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति के प्रतीक महाकवि होमर के 'इलियड' की 'हेलन' तो 'पेरिस' द्वारा अपहृत होने पर उसकी पत्नी बनकर रहती है। स्पष्ट है कि पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति में नारी के लिए यौन पवित्रता तथा एक पुरुष के प्रति अखंड अनुराग का कभी कोई आदर्श नहीं रहा। नारी केवल काम वासना की पूर्ति की मूर्त्ति-भर बनकर रह गयी। और, चूँकि अवयव की सारी कोमलता लेकर वह सबसे हारी है, देह से दुर्बल है, इसलिए जब जो चाहे, उसे अपने शरीर के बल से अपनी भोग्य सामग्री बना सकता है। 'इलियड' की 'हेलन' के साथ ऐसा ही तो हुआ है।

'पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति में नारी के 'सतीत्व' की कोई कल्पना ही नहीं है और यही रहस्य है कि 'पतिव्रता' या 'सती' से जो अर्थ सकेत है, उसके लिए पाश्चात्य भाषाओं में कोई सटीक शब्द नहीं है। किन्तु, भारतीय सभ्यता और संस्कृति में 'सतीत्व' नारी का प्रथम अनिवार्य गुण माना गया है और सतीत्व पालन पर काफी जोर दिया गया है।

वाल्मीकीय रामायण की सीता तो उदाहरण है ही, परवर्त्ती संस्कृत-साहित्य मे भी अनेक उदाहरण मिलते हैं। महाकवि कालिदास ने भी 'अभिज्ञानशाकुन्तल' में महर्षि कण्व के मुख से, शकुन्तला के ससुराल जाते समय के उपदेश में, सतीत्व पालन का ही विराट् सन्देश दिया है। भगवान् मनु ने भी कहा है कि पति परायणता ही नारी का सबसे बडा धर्म है। किन्तु, इसका अर्थ यह कदापि नही है कि भारत में स्त्रियों को सदा बलपूर्वक दबाये रखा गया है। वरन् विपरीत इसके, भारतीय सभ्यता और संस्कृति म नारी को अत्यधिक सम्मानपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है—यहाँतक कि मनु के शब्दों मे 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' और 'प्रसाद' के शब्दो में 'नारी! तुम केवल श्रद्धा हो' कहा गया है। यही कारण है कि सुप्रसिद्ध पाश्चात्य दार्शनिक 'नीत्शे' ने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया है कि I know of no book in which so many delicate and kindly things are said of the woman as in the law book of Manu; these old greyheads and saints have a manner of being gallant to woman which perhaps cannot be surpassed [१]

भारतीय नारी जाति द्वारा, अवश्य श्रेय की बात रही है कि सतीत्व के आदर्श का सदैव पालन किया जाता रहा है और पातिव्रत्य के लिए इतिहास में कई बार वे प्राणों की आहुति देती हुई पायी गयी हैं। रामायण, महाभारत आदि भारतीय इतिहास ग्रंथों, पुराणों और काव्यों मे सतीत्व पालन के उदात्त और विराट् उदाहरण असीम सख्या में विद्यमान हैं।

१ Anti christ, P 214 15

"प्राचीन ग्रंथों में प्रायः यह उल्लेख मिलता है कि प्राचीन काल में आर्य नारियाँ सती होती थीं, हँसती-हँसती पति के शव को गोद में रखकर अपने शरीर को भस्म कर डालती थीं। वेदों में सहमरण का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। स्मृतियों और पुराणों में भी पाया जाता है। श्रीमद्भागवत में आया है कि महाराज पृथु की पत्नी अर्चि ने स्वामी के साथ चितारोहण किया था। महाभारत में पाण्डु पत्नी माद्री तथा वसुदेवजी की चार पत्नियों (देवकी, भद्रा, रोहिणी और मदिरा) के सहमरण का प्रसंग आता है। धृतराष्ट्र-पत्नी गांधारी ने भी पति का अनुगमन किया था। भगवान् श्रीकृष्ण के परम धाम सिधारने पर देवी रुक्मिणी, हैमवती, जाम्बवती आदि सती हुई थीं। (दे० महाभारत, आदिपर्व ६६।६५, १२५।२६; विराटपर्व २३।८, शांतिपर्व १४८।१० और मौसलपर्व ७।१८) ऐसे ही बहुत-से प्रसंग और भी पाये जाते हैं।" [२]

महादेव शिव की पत्नी दक्ष कन्या 'सती', मनु की पत्नी शतरूपा, महर्षि कर्दम की पत्नी मनु कन्या देवहूति, ब्रह्मर्षि वसिष्ठ की पत्नी अरुन्धती, सत्यवान् की पत्नी सावित्री, महर्षि अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा, महर्षि अत्रि की पत्नी अनसूया, कौशिक पत्नी शाण्डिली, महर्षि दधीचि की पत्नी प्रातिथेयी, महाराज नल की पत्नी दमयन्ती, महाराज चित्रवर्मा की पुत्री सीमन्तिनी, महाराज उत्तानपाद की पत्नी सुनीति, दुष्यन्त पत्नी शकुन्तला, श्रीवत्स पत्नी चिन्ता, गंधर्व चित्ररेख की कन्या मालावती, काशिनरेश सुबाहु की पुत्री शशिकला, पाण्डव-पत्नी द्रौपदी, श्रीकृष्ण की बहन सुभद्रा, अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा आदि अनेकानेक सती स्त्रियों की गौरव गाथाएँ भारतीय सांस्कृतिक साहित्य के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में अंकित हैं।

भारतीय इतिहास का मध्ययुग बड़ी ही वीरता और साहसिकता का रोमांचक युग है। मुसलमानों के द्वारा बलात्कार के युग में सतीत्व पालन के लिए भारतीय स्त्रियों के जौहर और आत्मबलिदान की घटनाएँ आज भी इतिहास के पन्नों में अत्यन्त मार्मिकता के स्वर में मुखरित हैं।

सिन्ध के राजा दाहिर (सन् ७१२ ई०) की पत्नी 'लाडी' या रानीबाई मध्यकालीन भारतीय इतिहास की संभवतः पहली सती स्त्री थी, जिसने चिता की आग में जलकर हिन्दू रमणियों के सामने सतीत्व निर्वाह का अद्भुत आदर्श प्रस्तुत किया और यह महान् संदेश दिया कि फूलों की सेज पर सोनेवाली सुकुमारी किस तरह देश, जाति और स्वधर्म के लिए प्राणों की भी आहुति देने में कदापि पीछे नहीं रह सकती।

अजमेर-नरेश धर्मराजदेव की रानी उर्मिला, मेवाड नरेश समरसिंह की रानी पृथा, सम्राट् पृथ्वीराज की रानी संयोगिता, चित्तौड़ नरेश रत्नसिंह की रानी पद्मिनी, सेनापति चूड़ावत की पत्नी हाड़ारानी आदि अनेकानेक स्त्रियाँ मध्यकालीन भारतीय सतीत्व की गौरवमयी आदर्श देवियाँ हैं।

२ 'कल्याण' (नारी विशेषांक) पृ० २३३।

परवर्ती युगों में भी ऐसी महिमावती सती नारियाँ इतिहास के पन्नों पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ गयी हैं, इसमें सन्देह नहीं। इतना होने के बावजूद, श्री के० एम० पन्निकर के ये वाक्य अवश्य भ्रामक और हास्यास्पद हैं—In south india the practice was practically unknown and in north india among the common people there was never any question of Sati[1]

ऐतिहासिक तथ्य यह है कि सतीत्व का निर्वाह प्राचीन काल से भारतीय नारी का आदर्श रहा है और सतीत्व-रक्षा के लिए भारतीय स्त्रियों ने कोई भी उपाय उठा नहीं रखा। कभी वे खुलकर हाथों म तलवार ले लड़ाई के मैदान में कूद पड़ी हैं, कभी परिस्थितियों की विवशता में पड़कर सतीत्व रक्षा के लिए प्राणों की भी बाजी लगायी है। मध्यकालीन भारतीय इतिहास में 'जौहर व्रत' के उल्लेख स्त्रियों द्वारा सामूहिक रूप से सतीत्व-रक्षा के ही ज्वलन्त सकेत हैं।

गौरव की बात है, बिहार की स्त्रियाँ भी इस आदर्श म सदैव आगे रही हैं और उन्होंने इतिहास के पृष्ठों पर अपने बलिदानों की अमिट छाप लगायी है। आज भी बिहार क असख्य गाँवों में सती स्थान पाये जाते हैं, जिनकी पूजा भी होती है। प्रस्तुत प्रसग में बिहार के इतिहास की कतिपय आधुनिक घटनाएँ प्रमाण-स्वरूप उल्लिखित की जाती हैं।

भागलपुर के समीप चम्पानगरी म चन्द्रधर नामक एक धनी वैश्य रहता था। उसके सातवें पुत्र लक्ष्मीचन्द्र का विवाह साधु नामक वैश्य की सती कन्या 'विहुला' के साथ हुआ। चन्द्रधर शिव भक्त था और मनसा देवी से उसका कठोर विरोध था। लक्ष्मीचन्द्र के विवाह की पहली रात को ही मनसा देवी की विषधर नागिन ने उसे डँस लिया, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी। शव जलाया नहीं गया। नववधू विहुला केले के वृक्ष की नाव पर पति के शव के साथ नदी की धार में छ महीने तक बहती रही। लक्ष्मीचन्द्र का शव अस्थिपंजर मात्र अवशिष्ट रह गया था। एक दिन उसने नदी किनारे कपड़े साफ करती हुई एक धोबिन को देखा। उस धोबिन का बच्चा जब रोने लगा, उसने क्रोध में बच्चे को मार डाला, और कपड़े धोकर जब चलने लगी, बच्चे को फिर जीवित कर लिया। विहुला उसके पास गयी। वह धोबिन, दर असल, मनसा देवी की सहेली थी, जिसका नाम नेता था। नेता के कहने पर विहुला ने अपने पति के जीवन के लिए देवलोक में नृत्य किया। देवता द्रवित हो गये। मनसा देवी भी पसीज उठीं। उन्होंने उसके पति को जीवित कर दिया।

दधिवाहन राजा की पुत्री वसुमती भी बिहार प्रदेश की ही सती नारी थी। भगवान् महावीर के समय में चम्पारण्य, आधुनिक चम्पारन में दधिवाहन का राज्य था। कौशाम्बी-नरेश शतानीक द्वारा पराजित होने पर उनकी रानी धारिणी और उनकी पुत्री वसुमती को शतानीक का एक सैनिक योद्धा जबरदस्ती भगा ले गया। धारिणी क बहुत समझाने पर भी जब उसने एक न सुना और जबरदस्ती बलात्कार करने की चेष्टा करने लगा, तब धारिणी ने

---

१ सीमन ऑफ़ इण्डिया सविलिजेशन डिवीजन, दिल्ली, पृ० १२।

सतीत्व-रक्षा के लिए आत्महत्या कर ली। योद्धा को इसपर बहुत आत्मग्लानि हुई और फिर उसने ऐसा आचरण न करने की शपथ ली। वसुमती को वह पुत्री के समान रखने लगा। लेकिन उसकी स्त्री को आशंका हुई कि वसुमती उसकी सौत न बन जाय, इसलिए उसने अपने पति से वसुमती को बेचकर बीस लाख लाने का हठ किया। वसुमती को एक वेश्या खरीदकर जबरदस्ती वेश्या बनाना चाहती थी। भगवान् ने बंदर के वेष में आकर वेश्या के शरीर को लहूलुहान कर दिया और इस तरह सतीत्व की रक्षा में उसकी सहायता की। शतानीक को आत्मग्लानि हुई और उसने दधिवाहन से क्षमा माँगते हुए उसे उसका राज्य वापस कर दिया। इसी समय भगवान् महावीर को कैवल्य-प्राप्ति हुई और उनमें दीक्षा लेनेवाली स्त्रियों में सर्वप्रथम वसुमती ही थी। इस प्रकार, लोक कल्याण के कार्यों में अपने जीवन के शेष दिन व्यतीत करती हुई वह मुक्ति को प्राप्त हुई।

भगवान् महावीर के समकालीन कौशाम्बी नरेश शतानीक की पत्नी और वैशाली के राजा चेटक की पुत्री मृगावती भी बिहार की ऐसी स्त्रियों में परम आदरणीय है। मृगावती की कहानी भारतीय साहित्य में अत्यंत लोकप्रिय रही है। कथासरित्सागर आदि कथा-ग्रंथों, बौद्ध साहित्य, जैन साहित्य और हिन्दी साहित्य में मृगावती की कहानी काफी प्रचलित है। सोलहवीं शती के मुसलमान कवि 'कुतुबन' ने मृगावती की मार्मिक कहानी से द्रवित होकर हिन्दी में एक प्रबंध-काव्य 'मिरगावती' ही लिख डाला है। बीकानेर की अनूप संस्कृत लाइब्रेरी में उसकी एक खंडित प्रति आज भी उपलब्ध है। देवप्रभसूरि (१३वीं शती), विनयसमुद्र (संवत् १६०२), सकलचन्द्र (सं० १६४३), समयसुन्दर आदि जैन मुनियों ने भी मृगावती-विषयक कहानी लेकर काव्य-रचनाएँ की हैं। मृगावती की कहानी संक्षेप में यह है—

शतानीक के राज-दरबार में एक बड़ा ही कुशल चित्रकार था, जिसे यक्ष का वरदान प्राप्त था कि किसी वस्तु की थोड़ी-सी झलक पाकर भी वह उसे हू ब हू चित्र में अंकित कर सकेगा। कुशल चित्रकार ने रानी मृगावती का चित्र बनाया। चित्र में रानी की जंघा पर काले रंग की एक बूँद यों गिरी कि तिल सा बन गया। रानी ने चित्र देखकर चित्रकार के चरित्र पर सन्देह किया और लाख समझाने पर भी उन्होंने उसका दाहिना हाथ कटवा दिया। प्रतिशोध की भावना से दीप्त होकर चित्रकार ने बायें हाथ से ही रानी मृगावती का चित्र बनाया और चित्र लेकर उज्जयिनी के राजा प्रद्योत के दरबार में पहुँचा। प्रद्योत ने मृगावती के रूप पर मुग्ध होकर उसे प्राप्त करने के लिए कौशाम्बी पर चढ़ाई की। शतानीक की मृत्यु हो गयी और प्रद्योत ने मृगावती से शादी करने की ठानी। मृगावती ने प्रद्योत से यह कहला भेजा कि वह स्वयं अभी तो राजा के शोक में उद्विग्न है, पीछे विचार करेगी। प्रद्योत अपने राजनगर वापस लौट गया। इसी बीच भगवान् महावीर कौशाम्बी पधारे और वह उनसे दीक्षा ग्रहण कर भिक्षुणी बन गयी।

बिहार की एक दूसरी सती लालोदाई (या लीलादेवी) की कहानी भी प्रसिद्ध है। लालोदाई सारन-जिले के खानपुर गाँव के प० देवकीनन्दन मिश्र की धर्मपत्नी थी। उनका समय आज से दो सौ वर्ष पूर्व अनुमित है। उनका पातिव्रत्य उच्च कोटि का था। पति की मृत्यु के बाद वह अपने पति के साथ पातिव्रत्य योग से जलकर सती हो गयीं।

तीसरी घटना बस पन्द्रह सोलह साल पहले की है। हजारीबाग जिले में बाढगाँव एक बस्ती है। किसी ब्राह्मण की एक पुत्री थी सुशीला, जिसकी शादी हाल ही हुई थी। पति के मरने पर चिता मे कूदकर उसने सती होना चाहा, लेकिन लोगों ने बलपूर्वक उसे रोक दिया। पुलिस आयी और वह हवालात में बंद कर दी गयी। आधी रात को धडाके की आवाज हुई और पुलिस ने जब हवालात खोली, तब वह मरी पायी गयी। उसने पातिव्रत्य-शक्ति से अपने प्राण त्याग दिये।

सती सम्पति का नाम भी बिहार की सती स्त्रियों में परिगणनीय है। पटना से लगभग बयालीस मील पूरब 'बाढ' नाम के छोटे-से शहर के दक्खिन 'बेढना' नाम की एक बस्ती है। इस गाँव के प० केशव शर्मा की पुत्री 'सम्पति देवी' सवत् १९६४ मे उत्पन्न हुई थी। पटना-जिले के 'सरया' गाँव के पं० सिद्धेश्वरनाथ पाण्डेय से उसका विवाह हुआ। सन् १९२७ ई० में २१ नवम्बर को जब पति की मृत्यु हो गयी, तब उसने सती होना चाहा। पुलिस ने ऐसा करने से रोका और उसे जेल में डाल दिया। लेकिन उसी रात देवी ने अपने सतीत्व के तेज बल से अपने प्राण त्याग दिये। लोगों ने देखा—आसमान में कुछ प्रकाश पुज सा उड़ा और आसमान में ही विलीन हो गया।

बिहार की सती स्त्रियों से सम्बद्ध ऐसी घटनाएँ प्रभूत परिमाण में उपलब्ध हैं। स्थानाभाव के कारण सभी का उल्लेख नहीं किया जा रहा है। किन्तु, इतना स्पष्ट है कि सतीप्रथा, जो भारतीय इतिहास का एक सास्कृतिक पक्ष रही है, बिहार की स्त्रियों द्वारा भी भली भाँति निर्वाहित हुई है और उनके गौरवमय आदर्शों से बिहार के इतिहास के अनेकानेक पृष्ठ स्वर्णवर्णाङ्कित हैं। जिस देश की स्त्रियों में यौन पवित्रता और सतीत्व की चेतना हो, उसका गौरव निश्चय ही सदैव अक्षुण्ण है।

उपरिवर्णित सदर्भों में यथानिवेदित 'सतीत्व' की जब इतनी महिमा है, तब फिर प्रश्न है कि सती-प्रथा आखिर उठा क्यों दी गयी? उसका क्यों विरोध हुआ और वह कानून द्वारा क्यों बद की गयी?

कहा जाता है कि जिस समय उसका विरोध हुआ था और उसे रोकने के लिए कानून बना था, उस समय समाज की लाज से स्त्रियाँ घोर यत्रणा सहकर अनिच्छापूर्वक पति की चिता में जला करती थीं। यहाँतक कि लोग जबरदस्ती पति की चिता में स्त्रियों को निर्ममतापूर्वक जला देते थे। ऐसी स्थिति में सती प्रथा अवश्य निन्दनीय है। नारी यदि स्वेच्छा से पति का अनुगमन नहीं करती, तो चिता पर उसका जबरदस्ती जलना या जलाया जाना निश्चय ही बर्बरता है, घोर अमानुषिकता है। ऐसी परिस्थिति में, सन् १८२९ ई० में

लार्ड विलियम बेंटिक के द्वारा सती-प्रथा-प्रतिबंधक कानून बनाया जाना अवश्य ही उचित था।

फिर भी, सतीत्व ही नारी का अनिवार्य भूषण है, और सच्ची पतिव्रताओं को सती होने से कौन रोक सकता है? भारतीय संस्कृति में तो सतीत्व ही नारी की शोभा, प्रतिष्ठा और पूज्यता का आधार रहा है तथा आज भी है। अतः, आज की स्त्रियों को भी उस उज्ज्वल परम्परा का निर्वाह करना चाहिए।

किन्तु, खेद है कि पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के प्रभाव-स्वरूप भारतीय स्त्रियाँ आज गुमराह हो रही हैं और अपने गौरवमय आदर्श को भूलती जा रही हैं। पाश्चात्य देशों की स्त्रियों के समान अस्वाभाविक और अमर्यादित स्वतन्त्रता के पीछे पगली बनकर वे अपनी सुध-बुध खो बैठी हैं। पैसा और फैशन ही उनका जीवन-सर्वस्व बनता जा रहा है। पाश्चात्य प्रभावाविष्ट भारतीय स्त्रियाँ चारित्रिक पवित्रता या सतीत्व का अब कोई मूल्य या महत्त्व नहीं समझने लगी हैं। असंयत भाव से स्वच्छन्द विचरण, स्वेच्छानुसार हँसना-बोलना और मिलना जुलना अब नारी का जन्मसिद्ध अधिकार माना जाने लगा है। बिना किसी झिझक या हिचक के लज्जा और शील की उपेक्षा 'अप-टु-डेट' फैशन की बात बन गयी है।

पाश्चात्य ढंग के वातावरण में पली विधवाओं और विवाहिताओं की तो बात ही क्या, स्कूल-कॉलेजों में पढ़नेवाली 'अप-टु-डेट' क्वाँरी लड़कियों में भी अनियंत्रित आचरण की झलक पायी जाती है। इसके दुष्परिणाम प्रायः समाचार-पत्रों में पढ़ने को मिलते रहते हैं। 'कुछ ही वर्षों पूर्व लाहौर के एक सुधारक पत्र में एक लेख निकला था कि बारह वर्ष से ऊपर की आयुवाली क्वाँरी लड़कियों में नब्बे प्रतिशत के लगभग गर्भवती और गर्भपात करानेवाली पायी जाती हैं।'[१] यह सामाजिक कलङ्क सतीत्व-प्रधान भारत के लिए अशोभन और असह्य है।

आजकल की सुशिक्षिता युवतियाँ पुरुषों की देखादेखी मनमाने आचरण के लिए नाना प्रकार के तर्क भी उपस्थित करने लगी हैं; पर उन्हें नारी-जाति के ईश्वर-दत्त गुणों पर ध्यान रखकर अपना मूल्य-महत्त्व समझना चाहिए। स्मरण रहे कि चरित्र ही जीवन का मुकुट-मणि है और स्त्रियों के लिए तो चारित्रिक दूषण एक ऐसा दाग है, जो किसी तरह भी मिटाये नहीं मिट सकता। निष्कलङ्क चरित्र और सतीत्व के बिना नारी की सारी सुन्दरता ही हलाहल है—उसके और सारे गुण भी हेय तथा उपेक्षणीय हैं।

●●

१. 'कल्याण' (नारी-विशेषांक), पृ० २०६।

वैशाली के प्रजातंत्र में नारी

डॉक्टर योगेन्द्र मिश्र, पी एच्० डी०, साहित्यरत्न, इतिहास विभागाध्यक्ष, पटना कॉलेज

मुजफ्फरपुर-चपारन क्षेत्र, इससे सटी नेपाल की तराई और सभवत: गंगा के साथ पूर्व की ओर चलता हुआ एक छोटा आयताकार भू भाग वैशाली है। इसमे लिच्छवियों ने स्वतंत्र अथवा अधीनस्थ रूप में लगभग ग्यारह सौ वर्षों तक राज्य किया। स्वतंत्र रूप में उनकी शासन प्रणाली प्रजातंत्री अथवा गणतंत्री थी, स्वतन्त्रता खो चुकने पर वे मगध अथवा पुरुषपुर (पेशावर) के अधीन होते। उनकी स्वतन्त्रता का समय तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

१. वृजि-सघ या वज्जि-सघ की स्थापना लगभग ७२५ ईसवी-पूर्व में हुई थी। लगभग ४८४ ई० पू० में (गौतम बुद्ध के महापरिनिर्वाण के तीन वर्ष बाद) मगध के राजा अजातशत्रु ने इसका नाश कर दिया।

२ शुग राजाओं के कमजोर होने पर वैशाली पुन: (लगभग १४० ई० पू० में या इसके तुरत बाद) स्वतन्त्र हो गयी। यह स्थिति सवा दो सौ वर्षों तक रही। कुषाण राजा कनिष्क (राज्यारोहण ७८ ई०) ने इसपर अधिकार जमाकर इसकी स्वाधीनता नष्ट की।

३. कुषाणों के कमजोर होने पर (ईसा की दूसरी शती में) लिच्छवि पुन: स्वाधीन हो गये। लिच्छवि-कन्या कुमारदेवी और गुप्तवशी राजा चन्द्रगुप्त प्रथम का विवाह होने पर वैशाली राज्य मगध के गुप्त-राज्य (सभवत ३१६ ३२० ईसवी) में मिल गया। इस प्रकार, वैशाली के लिच्छवियों का अंत हो गया।

इस लेख में हम केवल वृजि सघ के युग में नारी की स्थिति का उल्लेख करेंगे, जिसके सबध में बौद्ध और जैनसाहित्य में काफी सामग्री वर्तमान है।

वृजि सघ की केन्द्रीय शासनकर्त्री परिषद् को 'सथा' कहते थे। इसकी बैठक जिस भवन में होती थी, वह 'सस्थागार' (पालि में 'सथागार') कहा जाता था। इसके ७७०७ सदस्य थे, जो 'राजा' कहलाते थे। इतने ही उपराजा, सेनापति और भाडागारिक होते थे। बौद्ध साहित्य के अध्ययन से मालूम होता है कि इनमें कोई नारी न थी। इससे स्पष्ट है कि शासन-कर्म मे नारियों का स्थान नहीं के बराबर था, यह काम पुरुष ही कर लेते थे। किन्तु, इसमें आश्चर्य अथवा बुरा मानने की कोई बात नहीं, क्योंकि उस समय ससार के अन्य देशों में भी शासन कर्म में नारियों का भाग नगण्य ही था।

राजनीतिक क्षेत्र में अधिकार न रहने पर भी सामाजिक क्षेत्र में नारियों का महत्त्वपूर्ण स्थान था। वृजि अथवा लिच्छवि, नारियों का बहुत सम्मान करते थे।

उनके सात प्रमुख नियमों में एक यह भी था कि वे कुल स्त्रियों और कुल-कुमारियों पर जोर-जबरदस्ती नहीं करते थे। गौतम बुद्ध ने वज्जियों के इस नियम की प्रशंसा की थी। पथभ्रष्टा स्त्रियों के लिए कड़े दंड का विधान था।

सौभाग्य से हमें कुछ ऐसी नारियों के नाम मालूम हैं, जिन्होंने प्रजातन्त्र-युग में प्रसिद्धि प्राप्त की और इतिहास में वैशाली (जिसे विशाला भी कहते थे) का नाम उज्ज्वल किया।

ऐसी नारियों में सर्वश्रेष्ठ स्थान माता त्रिशला क्षत्रियाणी का है, जिनकी कुक्षि से चौबीसवें एवं अंतिम जैन तीर्थङ्कर वर्द्धमान महावीर प्रकट हुए थे। व वैशाली के लिच्छवि नायक 'राजा' चेटक की बहन थीं और कुडग्राम (कुडपुर) के ज्ञातृक 'राजा' सिद्धार्थ से ब्याही गयी थीं। उनके तीन नाम थे—त्रिशला, विदेहदत्ता और प्रियकारिणी। उनके तीन संतानें हुई—नंदिवर्द्धन, वर्द्धमान (महावीर) और सुदर्शना। वर्द्धमान की माता होकर वे अमर हो गयी।

'राजा' चेटक के सात पुत्रियाँ थीं—प्रभावती, पद्मावती, मृगावती, शिवा, ज्येष्ठा, सुज्येष्ठा और चेल्लना। प्रभावती वीतभय (सिंधुसौवीर) के उदायन से, पद्मावती चंपा (अंग) के दधिवाहन से, मृगावती कौशाम्बी (वत्स) के शतानीक से, शिवा उज्जयिनी (अवंति) के प्रद्योत से और ज्येष्ठा कुडग्राम के नंदिवर्द्धन ('राजा' सिद्धार्थ के पुत्र और वर्द्धमान के बड़े भाई) से ब्याही गयी थी। मगध के राजा श्रेणिक बिंबिसार ने राजा चेटक से सुज्येष्ठा से ब्याह करने की प्राथना की। परंतु, चेटक ने यह प्रार्थना स्वीकार नहीं की, क्योंकि बिंबिसार उनकी सम्मति में हीन कुल का था। तब श्रेणिक ने सुज्येष्ठा की सहमति से उसके हरण की योजना गढ़ी, पर धोखे से वह सुज्येष्ठा की छोटी बहन चेल्लना का ही हरण कर सका। चेल्लना भी सुन्दरी थी और बिंबिसार से प्रेम करती थी, अतः बिंबिसार ने उसी से ब्याह कर लिया। सुज्येष्ठा आजन्म कुमारी रही और पीछे भिक्षुणी हो गयी।

मगध, वैशाली और कुडग्राम (कुडपुर) के राजकुलों का पारस्परिक रक्त सम्बन्ध निम्नांकित वंश वृक्ष से स्पष्ट हो जायगा। व्यक्तियों के स्थान निर्धारण में बड़ाई छुटाई का ध्यान न रख वंश-वृक्ष तैयार करने की सुविधा ही ध्यान में रखी गई है
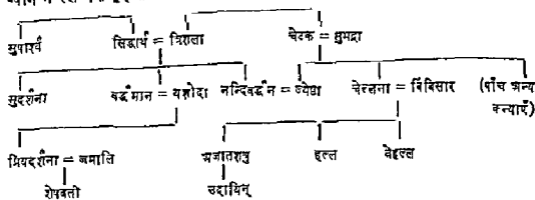
बौद्ध साहित्य में वैशाली के विशेष महत्त्व का एक कारण यह भी है कि यहीं गौतम बुद्ध ने भिक्षुणी सघ की स्थापना की थी। स्थापना के बाद उन्होंने अपने प्रसिद्ध शिष्य आनद से कहा था—"आनद ! यदि तथागत-प्रवेदित धर्म-विनय में स्त्रियाँ प्रव्रज्या न पातीं, तो यह ब्रह्मचर्य चिरस्थायी होता, सद्धर्म सहस्र वर्षो तक ठहरता। लेकिन चूँकि, आनद ! स्त्रियाँ तथागत प्रवेदित धर्म-विनय में प्रव्रजित हुई हैं, इसलिए ब्रह्मचर्य चिरस्थायी न होगा, सद्धर्म पाँच सौ वर्ष ही ठहरेगा।"

भिक्षुणी-सघ की स्थापना के बाद भारत के अन्य भागों के समान वैशाली की स्त्रियाँ भी बौद्धधर्म में प्रवेश करने लगीं। इनमें कई बहुत प्रसिद्ध हुईं। बौद्ध भिक्षुणी को 'थेरी' (स्थविरा) कहते थे। वैशाली की निम्नलिखित भिक्षुणियों (थेरियों) के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं—अबपाली (आम्रपाली या आम्रपालिका), विमला, रोहिणी, सिंहा, जयती और वासिष्ठी।

वैशाली में महानाम नामक लिच्छवि था। उसकी आम्रवाटिका में कदली वृक्ष से एक कन्या उत्पन्न हुई। वह अतीव सुन्दरी थी। उसके अग-प्रत्यंग से लावण्य टपकता था। महानाम ने उसका नाम अबपाली रखा। अंबपाली जब बड़ी हुई, तब उससे विवाह करने के लिए वैशाली के राजकुमारो (=कुलपुत्रों) में लडाई होने लगी। लाचार होकर वहाँ के सघ ने उसे सपूर्ण 'गण' के लिए रख दिया, जिससे सघ में झगडा न बढे। सबसे सुन्दरी स्त्री (वैशाली स्त्रीरत्न) होने के कारण उसे गणिका बन जाना पडा और समग्र 'गण' का उसके द्वारा मनोरजन होने लगा।

अबपाली की प्रसिद्धि दिन दिन बढने लगी। मगध के राजा बिंबिसार ने उसकी प्रशंसा सुनी। इस समय लिच्छवियों से उसका युद्ध चल रहा था, इसलिए खुल्लमखुल्ला वह वैशाली नहीं जा सकता था। तब बिंबिसार ने दूसरा उपाय किया। वह छिपकर वैशाली पहुँचा। अबपाली ने उसका यथोचित स्वागत-सत्कार किया और सात दिनों तक राजा को अपने यहाँ छिपाकर रखा। समय बीतने पर बिंबिसार से अबपाली को एक पुत्र हुआ। अबपाली ने उसे राजा बिंबिसार के पास भेज दिया, जहाँ पहुँचकर वह निर्भीकता से अपने पिता की छाती पर चढ गया। तब राजा ने कहा—'यह बालक भय का नाम तक नहीं जानता।' इस घटना के कारण उसका नाम 'अभय' या 'अभयकुमार' पड़ गया। कहीं-कहीं बिंबिसार से उत्पन्न अबपाली के पुत्र का नाम 'विमल कोण्डञ्ञ' मिलता है। अत में, अबपाली बौद्ध भिक्षुणी हो गयी और उसने 'सघ' के लिए अपने आम्रवन का दान कर दिया। बौद्ध विहार भी उसने बनवा दिया। इस प्रकार, अबपाली ने बौद्धधर्म के इतिहास में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया।

'विमला' वैशाली की एक वेश्या की कन्या थी। वयस्का होने पर वह भी दूषित जीवन बिताने लगी। रूप लावण्य, सुख-सौभाग्य और यश के मद से मतवाली तथा अहकार में मस्त वह अपने को बहुत गौरवमयी समझती थी। मूल्यवान् गहनों से शरीर को सजाये हुई

यह अपने गृह के द्वार पर सतर्क दृष्टि से बैठकर व्याध के समान जाल बिछाया करती थी। पुरुषों को अपनी मुट्ठी में करने के लिए यह अनेक प्रकार की माया रचती थी। एक दिन उसने 'थेर महामोग्गल्लान' (स्थविर महामौद्गल्यायन) को वैशाली में भिक्षाचर्या करते देखा। वह उनपर आसक्त हो गयी। उनके निवास-स्थान पर जाकर वह उन्हें लुभाने की दुश्चेष्टा करने लगी। उन्होंने उसके अशुभ आचरण के लिए उसे फटकारते हुए धर्मोपदेश किया। धर्मोपदेश सुनते ही उसके अंदर लज्जा और ग्लानि की भावना उदित हुई। संघ से वह बहिर्भूत ही रही, किन्तु उपासिका (गृहस्थ शिष्या) के रूप में दीक्षित की गयी। तत्पश्चात् ध्यान का अनुशीलन कर वह 'संघ' में प्रवेश करने की अधिकारिणी मानी गयी और उसने अर्हत्-पद (मोक्ष) प्राप्त किया।

'रोहिणी' का जन्म वैशाली के एक समृद्धिशाली ब्राह्मण कुल में हुआ था। भगवान् बुद्ध के उपदेश सुनकर उसके मन में धर्म के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। बौद्धसंघ में वह अत्यंत अनुरक्त थी। एक दिन अपने पिता के साथ हुए वार्त्तालाप में उसने बतलाया कि उसे बौद्ध भिक्षु क्यों प्रिय हैं। साथ ही, उसने अपने पिता को भी बुद्ध-मत में दीक्षित किया।

'सिंहा' लिच्छवियों के सेनापति 'सिंह' की बहन की पुत्री थी। वह वैशाली में पैदा हुई थी। उसका नाम अपने मामा के नाम पर 'सिंहा' पड़ा था। एक दिन उसने बुद्ध को सारिपुत्र को धर्मोपदेश देते सुना और वह अपने माता-पिता से आज्ञा लेकर 'संघ' में प्रविष्ट हो गयी। मन की एकाग्रता प्राप्त करने के लिए उसने बहुत परिश्रम किया। अत में उसे सफलता मिली और अर्हत्-पद प्राप्त हुआ।

'जयंती' वैशाली के लिच्छवि-राजकुल में उत्पन्न हुई थी। बुद्ध का धर्मोपदेश सुनकर उसने अर्हत् पद प्राप्त किया।

'वासिट्ठी' वैशाली के प्रतिष्ठित राजकुल में उत्पन्न हुई थी। उसके माता-पिता ने किसी योग्य वर से उसका विवाह कर दिया। उसके एक पुत्र हुआ, जो बहुत बचपन में ही मर गया। माता शोक से पागल हो उठी। एक दिन वह घर से भागी। घूमती-फिरती वह मिथिला पहुँची। वहाँ बुद्ध पहले से मौजूद थे। उन्होंने उसका दुःख शांत किया और उसे धर्म की शिक्षा दी। उसने वहीं बुद्धधर्म की दीक्षा ली। शीघ्र ही उसे अर्हत् पद प्राप्त हो गया।

वैशाली में एक निग्गठ (जैन साधु) और एक निग्गठी (जैन साध्वी) रहते थे। वे बड़े तर्कपटु थे। वहीं उनका विवाह हुआ। उनकी पाँच संतानें हुईं—सच्चा, लोला, अववादका, पटाचारा और सच्चक। इनमें प्रथम चार कन्याएँ थीं और पाँचवाँ पुत्र था। ये पाँचों भी बड़े तर्क-प्रवीण निकले। एक दिन चारों बहनों ने श्रावस्ती में सारिपुत्र से शास्त्रार्थ किया। पराजित होने पर चारों ही 'संघ' में प्रविष्ट हो गयीं और चारों ने अर्हत्-पद प्राप्त किया।

इस प्रकार, वैशाली के प्रजातंत्र में नारी ने धार्मिक और सामाजिक क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण भाग लिया।

हरिजन-महिलाएँ आज भी पिछड़ी

श्रीनगेन्द्रनारायण सिंह; मंत्री, विहार-हरिजन-सेवक-संघ, पटना

धूल भरा रूखा सूखा चेहरा। बाल बिखरे हुए। काँसा पीतल के दो-एक गहने। साड़ी फटी-पुरानी, पेवन्ददार, मटमैली। यह रूप-दर्शन सामान्य हरिजन-महिला का है।

घर बाहर सतत श्रम करनेवाली ये महिलाएँ अपना काम करना जानती हैं—बखूबी। हर तरह की मेहनत-मजूरी करना—धान रोपना, खेत निराना या सोहनी-कमैनी, टोरी गिराना और कटनी करना, दीवार में लेवन लगाना और लीपना-पोतना, बोझ ढोना, अन्न ओसाना, अनाज छाँटना-कूटना-पीसना—ये सारे काम इनके बायें हाथ के खेल हैं। विहार की हरिजन-महिलाएँ प्रायः ऐसे ही काम करके रोजी कमाती हैं।

यह सब कुछ बहुत ठीक है। श्रम-रत जीवन ही वास्तविक मानव-जीवन है। सामान्य महिलाएँ, भारतीय परम्परा में, अकर्मण्य कभी न रहीं। हरिजन-महिला अपवाद तो कैसे होती, लेकिन इनका श्रम बेगार का श्रम ही साबित होता रहा है। इनकी बहुमूल्य सेवाओं के लिए जो कुछ समाज इन्हें देता रहा है, उसे नगण्य—जरूरत से बहुत कम ही—कहा जा सकता है। दिन-भर के इनके श्रम के लिए ढाई-तीन सेर अन्न, कच्ची तौल में, नगण्य ही तो है। कहीं-कहीं इससे भी कम, बहुत कम। हरिजन मर्द-औरत, मुख्यतया, खेतिहर मजदूर ही अधिकतर हैं। हरिजन महिलाओं को ही नहीं, इनके पुरुषों को भी मजदूरी बहुत कम ही मिलती रही है। यही कारण है कि हरिजन दोनों जून ठीक से खा नहीं पाते—हरिजन-महिलाएँ अपने घर की आर्थिक दशा सुधार नहीं पातीं।

हरिजन-महिलाओं की कमाई ही स्वल्प नहीं होती, इन्हें काम भी प्रायः नहीं मिलता। घर की हालत पतली। विवश ये खेत-खलिहानों से झाड़-बुहारकर, चूहों के विवर और गोबर से निकालकर, अन्न-संग्रह करती हुई पायी जाती हैं। शहरों में भी बेकारी और लाचारी की फिजूलखर्ची में रहकर ये दुःख दैन्य की ही जिन्दगी बिताती हैं। हरिजन-महिलाएँ भारत की औसत महिला से बुद्धि-ज्ञान और व्यवहार-कौशल में हेठ होती हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। शरीर इनका समर्थ होता है, समझ बूझ भी सही और दुरुस्त। किन्तु, यह सब होने पर भी देश का सबसे पिछड़ा समाज इन हरिजन-महिलाओं की जमात ही है, इसे विधि का विधान नहीं, समाज का अन्याय ही कहा जाना चाहिए।

एक-एक कर आजादी के चौदह-पन्द्रह साल बीत चुके। इस बीच न जाने कितने सारे कानून देश में बने, लागू हुए। इनमें एक है १९५५ का अस्पृश्यता (अपराध)-कानून। इस कानून के बन जाने पर वैधानिक रूप से अछूत अब कोई न रहा। फिर भी, हरिजन-महिलाएँ और हरिजन-पुरुष, कम या अधिक, आज भी अछूत बने हुए हैं, यह छिपी-छिपाई

बात नहीं है। आजादी के विगत चौदह वर्षों में महिलाओं के लिए न जाने कितनी पाठ-शालाएँ खुलीं, कितने विद्यालय और महाविद्यालय खुले, उनके द्वार हरिजन महिलाओं के लिए बन्द न होने पर भी वे उनमें आज भी धड़ल्ले से प्रवेश नहीं पा रहीं। नतीजा यह कि स्कूलों कालेजों में हरिजन छात्राएँ अल्प संख्या में ही पढ़ रही हैं। शिक्षा की ओर काफी संख्या में इनका उन्मुख न होना चिन्त्य है। वैसे, कई हरिजन-महिलाएँ विधान सभाओं में दाखिल हुई हैं—बिहार में एक डोम जाति की महिला भी। यह भी इन महिलाओं की शिक्षा अथवा इनके अध्यवसाय, लोकप्रियता या योग्यता के कारण नहीं, संरक्षण और सबल दलों का समर्थन पाकर ही ये उनमें प्रविष्ट हो सकीं, यह स्पष्ट है।

शिक्षा के क्षेत्र में बिहार के हरिजन-छात्रों को निर्धारित छात्रवृत्तियाँ मिलती रही हैं—स्वल्प संख्या में हरिजन-छात्राओं को भी। हरिजन नौजवान अब ऊँची डिग्रियाँ प्राप्त करने लग गये हैं—मेहतर डोम और मुसहर भी। अच्छी नौकरियों में भी वे प्रवेश पा रहे हैं। यह सर्वथा आवश्यक है कि शिक्षित हरिजन युवकों को शिक्षा-प्राप्त सहधर्मिणी मिलें। हरिजन-महिलाएँ हर क्षेत्र में आगे बढ़कर लोक-जीवन में विशिष्ट भूमिका अदा कर सकें, इसके वास्ते भी यह बिलकुल आवश्यक है कि हरिजन छात्राओं की शिक्षा का विशेष प्रबन्ध हो।

वैसे, बिहार में हरिजन महिलाओं की अपेक्षित और सर्वाङ्गीण उन्नति तभी सम्भव होगी, जब वे उन्नत महिला-समाज के साथ कदम मिलाकर चलने के लिए तत्पर और कटिबद्ध होंगी। ऐसा हो, इसके वास्ते यह जरूरी है कि हरिजन-समाज की सर्वाङ्गीण—आर्थिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक उन्नति हो। साथ ही, समाज में छुआछूत की भावना के नष्ट हुए बिना हरिजनों के मन की हीन भावना मिटनेवाली नहीं है। समाज के लिए यह अपने हित के पक्ष में है कि वह अपने एक निर्बल अंग की परिपुष्टि की ओर शीघ्र ध्यान दे—अगर अपनी अपेक्षित और सर्वाङ्गीण उन्नति वह चाहता है।

●●

न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते।
गृहं तु गृहिणीहीनं कान्तारादतिरिच्यते॥

—सुभाषितसुधारत्नभाण्डागार

[अर्थात्, घर वस्तुतः घर नहीं है, वरन् घरनी ही घर है। घरनी के बिना घर जंगल के

प्राचीन जैनकथाओं में विहार की जैन नारियाँ

श्री श्रीरञ्जन सूरिदेव; सहकारी सम्पादक : त्रैमासिक 'साहित्य' और 'परिषद्-पत्रिका',
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना

हमारा विहार जैनतीर्थ है; क्योंकि यह जैन तीर्थङ्कर भगवान् महावीर की जन्म-भूमि, तपोभूमि, उपदेश-भूमि तथा निर्वाण-भूमि रहा है। भगवान् महावीर के अतिरिक्त अन्य इक्कीस तीर्थङ्करों की निर्वाण-भूमि होने का गौरव भी इस विहार को उपलब्ध है। जैनों की कतिपय प्रसिद्ध सिद्धभूमि (पारसनाथ, पावापुरी, राजगृह, मन्दार, चम्पापुरी, कमलदह, गुणावा आदि) इसी विहार में विराजती हैं।

विहार की राजधानी पाटलिपुत्र (पटना) का जैन संस्कृति के साथ महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है। अनेक जैनकथाओं से ज्ञात होता है कि इस नगर का प्राचीन नाम कुसुमपुर है और भगवान महावीर से भी हजारों वर्ष पहले से इस नगर का जैन संस्कृति से सम्बन्ध रहा है।

स्थविरावली-चरित्र में इस नगर के नामकरण के सम्बन्ध में कहा गया है कि भद्रपुर में पुष्पकेतु नाम का राजा रहता था। उसकी पत्नी का नाम पुष्पवती था। इन दोनों के पुष्पचूल नाम के पुत्र और पुष्पचूला नाम की पुत्री थी। जैनागम पर रानी पुष्पवती की अविचल श्रद्धा थी, अतः उसने जैन श्राविका का व्रत ग्रहण किया। कुछ दिनों के बाद वह राजभोग छोड़कर जैन श्रावकों के साथ गंगातटवर्त्ती 'प्रयाग' नामक तीर्थ में जाकर रहने लगी। इसी स्थान पर गंगा के गर्भ में किसी सत्पुत्र का शरीरान्त हुआ और उसके मस्तक को जल-जन्तु नदी तट पर घसीट लाये। किसी दिन दैवयोग से उस गलित मस्तक में पाटल का बीज गिर पड़ा और समय पर उससे एक पाटल-वृक्ष उत्पन्न हुआ। उस पाटल-वृक्ष को देखकर किसी ज्योतिषी ने भविष्यवाणी की कि यह स्थान अनेक प्रकार की समृद्धियों से युक्त होगा। राजा उदायी को जब इसकी सूचना मिली, तब उसने पाटल-वृक्ष के पूर्व-पश्चिम और उत्तर-दक्षिण सीमा पर एक नगर बसाया, जो 'पाटलिपुत्र' कहलाया। उस समय यह नगर जैनधर्म के विस्तार-प्रसार का केन्द्र था।

जैन आचार्यों और जैन राजाओं के साथ जैन नारियों की कीर्त्ति-गाथा भी विहार से जुड़ी हुई है। भगवान् महावीर के संघ में छत्तीस हजार आर्यिकाएँ (भिक्षुणियाँ) और तीन लाख श्राविकाएँ (व्रतधारिणी गृहस्थ स्त्रियाँ) थीं, जिनमें अधिकांश विहार की निवासिनी थीं। आर्यिकाओं में सर्वप्रमुख राजा चेटक की पुत्री राजकुमारी चन्दना थी। चन्दना की मामी यशस्वती की भी बड़ी प्रसिद्धि थी। चन्दना आजन्मब्रह्मचारिणी थी। एक दिन जब वह राजोद्यान में टहल रही थी, तब एक विद्याधर उसे चुराकर ले गया। किन्तु, विद्याधर ने अपनी विद्याधरी के भय से शोकातुर चन्दना को जंगल में ही छोड़ दिया। वहाँ

उसे एक भील ने प्राप्त किया। भील ने उसे अनेक कष्ट दिये, परन्तु वह सती-धर्म से विचलित नहीं हुई। वहाँ से वह कौशाम्बी के व्यापारी वृषभसेन नामक सेठ को प्राप्त हुई। इस सेठ के घर में ही वन्दिनी चन्दना ने भगवान् महावीर को आहार-दान किया, जिसके प्रभाव से उसकी कीर्ति सर्वत्र फैल गयी। इसके बाद सेठ के घर से मुक्त होकर उसने भगवान् महावीर से दीक्षा ग्रहण की और आर्यिका-संघ की प्रधान बनी।

चन्दना की बहन ज्येष्ठा ने भी भगवान् महावीर से दीक्षा ग्रहण की थी। राजगृह के राजकोठारी की पुत्री भद्रा कुण्डलकेशा ने भी भगवान् से दीक्षा लेकर जैनधर्म और समाज की सेवा की थी। भद्रा कुण्डलकेशा का उपदेश इतना मधुर होता था कि हजारों-हजार की भीड़ एकत्र हो जाती थी और सभी श्रोता मन्त्र-मुग्ध हो जाते थे।

उपर्युक्त तीन लाख श्राविकाओं में चेलना, सुलसा आदि प्रधान हैं। श्रेणिक जैसे विधर्मी राजा को सन्मार्ग की ओर प्रवर्त्तित करानेवाली रानी चेलना की गौरव-गाथा कल्प कल्प तक गायी जायगी। कहना न होगा कि बिहार में जैन आर्यिकाओं और श्राविकाओं की एक सक्रिय परम्परा का उद्घाटन हुआ है।

बिहार के प्रसिद्ध जैनतीर्थ चम्पापुर के विकास का पूर्ण उल्लेख औपपातिकसूत्र में मिलता है। चम्पापुर (चम्पानगर) भागलपुर से पश्चिम चार मील की दूरी पर है। यहाँ १२वें तीर्थङ्कर भगवान् वासुपूज्य ने गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण प्राप्त किये थे। भगवान् महावीर ने चम्पानगर में तीन वर्षावास बिताये थे, कदाचित् इसीलिए इसके पार्श्ववर्त्ती क्षेत्र का नाम नाथनगर पड़ गया। चम्पानगर के रेलवे-स्टेशन का नाम आज भी नाथनगर है। पहले चम्पापुरी अङ्गदेश (मगध प्राचीन) की राजधानी थी। राजा कोणिक ने राजगृह से हटाकर चम्पा को ही मगध की राजधानी बनाया था। भगवान् महावीर के आर्यिका-संघ की प्रधान उपर्युक्त चन्दना या चन्दनबाला यहीं की राजपुत्री थी। चम्पा के राजा का नाम जितशत्रु था, जिसकी रानी रक्तवती नाम की थी। श्वेताम्बर-आगमसूत्रों में बताया गया है कि भगवान् यहाँ के पूर्णभद्र चैत्य नामक प्रसिद्ध उद्यान में ठहरते थे। इस प्रकार, चम्पा का सम्बन्ध भगवान् महावीर से अत्यधिक रहा है।

इस चम्पापुरी से सम्बन्ध रखनेवाली ऐसी अनेक कथाएँ जैनपुराणों, महापुराणों और कथाकोषों में मिलती हैं, जिनमें विविध जैन नारी-रत्न चित्रित हुए हैं। हम यहाँ दो-एक को प्रस्तुत करेंगे।

रानी पद्मावती

चम्पा में दधिवाहन नाम का राजा था। उसकी रानी पद्मावती नाम की थी। एक बार रानी गर्भवती हुई और उस हालत में उसे हाथी पर बैठकर उद्यान-भ्रमण करने की इच्छा हुई। इच्छा के अनुसार भ्रमण की तैयारी हुई। राजा-रानी एक हाथी पर चले। रास्ते में राजकीय हाथी बिगड़ गया और दोनों को लेकर जंगल की ओर भागा। रानी के कहने पर राजा ने एक बरगद की डाल पकड़कर जान बचा ली, पर रानी को लेकर हाथी घोर जंगल में

पहुँचा और वहाँ एक तालाब में जा घुसा। तालाब में घुसते ही रानी हाथी की पीठ से पानी में कूद गयी और तैरकर बाहर निकल आयी। जंगल से किसी प्रकार निकलकर रानी पद्मावती दन्तपुर पहुँची और वहाँ एक आर्यिका से दीक्षा लेकर तपस्या करने लगी।

रानी ने पहले तो अपने गर्भ को गुप्त रखा, किन्तु अन्त में वह मातृत्व की वेदना से अभिभूत हो गयी। यथासमय रानी ने पुत्र-प्रसव किया और वह अपने नवजात पुत्र को अपने नाम की अँगूठी देकर एक सुन्दर कम्बल में लपेटकर नीरव निशीथ में श्मशान में छोड़ आयी। श्मशानपालक ने उस पुत्र का पालन-पोषण किया और शरीर में खाज हो जाने के कारण उस बालक का नाम करकण्डु रखा।

बड़ा होने पर सौभाग्यवश करकण्डु ने कंचनपुर का राज्य प्राप्त किया। एक बार करकण्डु और चम्पा के राजा दधिवाहन (अर्थात्, पिता पुत्र) में किसी बात से मनोमालिन्य हो गया, फलतः दोनों आपस में जूझ पड़े। आर्यिका पद्मावती को जब यह समाचार मिला कि पिता-पुत्र में अजानकारी के कारण युद्ध हो रहा है, तब वह युद्धस्थल पर पहुँची और दोनों का परस्पर परिचय करा दिया। दधिवाहन ने अनावश्यक रक्तपात के रुक जाने के कारण साध्वी पद्मावती का धन्यवाद किया और स्वयं पत्नी का अनुकरण कर सन्यासी हो गया।

रानी रोहिणी

इसी चम्पानगरी में राजा मघवा और रानी श्रीमती से श्रीपाल, गुणपाल, अवनिपाल, वसुपाल, श्रीधर, गुणधर, यशोधर और रणसिंह—ये आठ पुत्र और रोहिणी नाम की एक सुन्दर कन्या हुई। रोहिणी के पिछले जन्मों के सम्बन्ध में कहा गया है कि यह अत्यन्त दुर्गन्धशालिनी अशुभ कन्या थी तथा पाप के प्रभाव से इसे अनेक कष्ट उठाने पड़े थे। इसने रोहिणी व्रत किया था, उसी के प्रभाव से इसे सुन्दर रूप और सम्भ्रान्त कुल प्राप्त हुआ। यह रोहिणी राजा अशोक की रानी बनी। कुछ दिनों के बाद राजा अशोक ने संसार से विरक्त हो स्वामी वासुपूज्य के समवशरण (आम सभा में जिन-दीक्षा ग्रहण की और रोहिणी ने कमलश्री आर्यिका से व्रत लिया। अन्त में तपस्या करती हुई रोहिणी सोलहवें स्वर्ग में देवता हो गयी।

कन्या नागश्री

प्राचीन काल में चम्पापुरी में चन्द्रवाहन नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम था लक्ष्मति। राजा के पुरोहित का नाम नागशर्मा था। नागशर्मा स्वभावतः मिथ्यादृष्टि था, इसलिए उसकी कन्या नागश्री उससे उदास रहती थी। एक बार नागश्री ने आचार्य सूर्यमित्र से पंचाणुव्रत ग्रहण कर लिया। परन्तु, पिता नागशर्मा ने उसी आचार्य को वह व्रत लौटा देने की आज्ञा दी।

जब नागशर्मा अपनी कन्या नागश्री को साथ लेकर मुनि सूर्यमित्र के पास जा रहा था, तब मार्ग में हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार और अनुचित संचय करनेवालों को दण्ड पाते देखकर कन्या ने पिता से अनुरोध किया कि पिताजी, जब पाप करनेवालों को दण्ड

मिलता है, तब फिर मुझे क्यों इस मत को छोड़ने का आदेश देते हैं? नागशर्मा नाम्नी के इस प्रश्न से अतिशय प्रभावित हुआ और उसने पुत्री को मत रखने का आदेश तो दिया ही, स्वयं भी मती हो गया।

इस प्रकार, आध्यात्मिक और आधिभौतिक उत्कर्ष से समृद्ध चम्पानगरी प्राचीन जैन नारी-रत्नों की गौरव रेखाओं से आवेष्टित उस काल की धर्म प्रभावना से प्रवृद्ध नगरों के स्वर्णिम इतिहास की परिचायिका है।

यहाँ बिहार के उन जैन नारी-रत्नों के भी पुण्य नाम स्मरणीय हैं, जिन्होंने तीर्थङ्करों को जन्म देकर अपना मातृत्व सफल किया। प्रथम तो चम्पापुरी के ही बाईसवें तीर्थङ्कर वासुपूज्य हैं, जिनकी माता का नाम जया था। द्वितीय मिथिला के उन्नीसवें तीर्थङ्कर मल्लिनाथ स्वामी हैं, जिनकी माता का नाम प्रभावती था। तृतीय राजगृह के बीसवें तीर्थङ्कर मुनि सुव्रतनाथ हैं, जिनकी माता श्यामा नाम की थी। चतुर्थ मिथिला के ही इक्कीसवें तीर्थङ्कर नमिनाथ हैं, जिनकी जननी विपुला नाम की थी। पंचम कुण्डपुर या कुण्डग्राम (वैशाली) के चौबीसवें जैन तीर्थङ्कर भगवान् महावीर हैं, जिनकी माता का नाम त्रिशला या प्रियकारिणी था। सचमुच, इन मातृरत्नों से बिहार का गौरव सदा उद्दीप्त रहेगा।

जैन कथा-साहित्य के अध्येताओं से यह अविदित नहीं है कि धर्मसेवा और जनसेवा में जैन नारियों का अपना विशिष्ट स्थान है। भारतीय इतिहास से भी यह बात अत्यन्त स्पष्ट है कि पुराकालीन नारियाँ विदुषी, धर्मपरायणा एवं कर्त्तव्यनिष्ठ होती थीं। तत्कालीन नारियों के 'अबला' की संज्ञा प्राप्त करने का उदाहरण कदाचित् ही मिलता है। निर्भय, धीर तथा अपने समाज और सतीत्व के संरक्षण में सावधान एवं सदा सतर्क और सतत प्रबुद्ध नारियों के अनेक उद्धरण पुराणों में मिलते हैं। यह सर्वविदित है कि नारियों में निसर्गतः सेवा करने की अपूर्व क्षमता होती है। कथा-ग्रन्थों में ऐसे कितने ही भव्य उदाहरण भरे-पड़े हैं कि नारियों ने अपने पातिव्रत्य और गृहिणीत्व की मर्यादा अक्षुण्ण रखते हुए राज्य के संरक्षण में अद्भुत कार्य किया है। साथ ही, अवसर आ पड़ने पर युद्ध में भी सम्मिलित होकर शत्रुओं के दाँत खट्टे किये हैं।

वैदिक परम्परा में भी मैत्रेयी, कात्यायनी, गार्गी, गौतमी जैसी महीयसी महिलाओं के दिव्य दर्शन होते हैं। इनके विमल आचरण और विस्मयजनक वैदुष्य की बात आज भी जन मानस को प्रेरित करती है।

श्रमण-संस्कृति के काल में नारियों का अभूतपूर्व उत्थान हुआ जिसका मूल कारण है भगवान् महावीर का नारियों के प्रति उदार दृष्टिकोण। इसी का फल है कि श्रमण संस्कृति में अनेकानेक नारियों ने आत्मसाधना एवं धर्मसाधना के साथ ही जन-जागरण के मार्ग में सदैव अग्रगति होने का प्रयास किया है और इसमें सफल भी हुई हैं।

प्रख्यात जैनाचार्य जिनसेन (१११० ई०) के आदिपुराण ग्रन्थ से यह पता चलता है कि उस समय नारियों का सहयोग सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक

एवं साहित्यिक सभी क्षेत्रों में प्राप्त था। जैनकाल में नारी केवल भोगैषणा की पूर्त्ति का साधन नहीं थी, वरन् उसे भी स्वतंत्र रूप से विकसित और पल्लवित होने की समुचित सुविधाएँ प्राप्त थीं। कन्या, गृहिणी, जननी और विधवा सभी अपने स्वार्थ का सदुपयोग करने के साथ ही परार्थ में भी तत्पर थीं। आचार्य जिनसेन के कथनानुसार जैन नारियाँ इसे अपना मूलमंत्र मानती थीं—

तदेव ननु पाण्डित्यं यत्संसारात्समुद्धरेत्।

अर्थात्, संसार से उद्धार पा लेना ही पंडिताई या चतुराई है। वस्तुतः, जैनकालीन नारियाँ आदर्श की कोटि में परिगणनीय थीं।

बुद्धकालीन बिहार की नारियाँ

श्रीहवलदार त्रिपाठी 'सहृदय', साहित्याचार्य; बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना

मौर्यकाल के आसपास या उसके कुछ पूर्व भारतीय जन जीवन पर जितना अधिक प्रकाश बौद्ध ग्रन्थों से पड़ता है, उतना दूसरे स्रोत से नहीं। ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत, मनुस्मृति, कौटिल्य अर्थशास्त्र और पुराणों से भी हमारी सामाजिक स्थिति का बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त होता है; किन्तु एकान्त भाव से सच्चे जन जीवन पर विस्तृत प्रकाश डालनेवाले ग्रन्थ पालि-भाषा के ही हैं।

दूसरी बात यह कि उक्त संस्कृत-ग्रन्थों की प्राचीनता के सम्बन्ध में आजतक विद्वानों में मतभेद चला ही आ रहा है;[1] पर पालि-भाषा के बौद्ध ग्रन्थों की प्राचीनता ईसा-पूर्व काल तक सभी ने मान ली है। इसलिए प्रामाणिकता के खयाल से, बौद्ध ग्रन्थों के आधार पर, जो कुछ भी लिखा जाता है, प्राचीनता की दृष्टि से वह मान्य होता है।

हम भी यहाँ उन बौद्ध ग्रन्थों के आधार पर ही, भगवान् बुद्ध अथवा मगध के शिशुनागवंशी सम्राटों के समय की कुछ बिहारी नारियों के सम्बन्ध में चर्चा करेंगे। इन नारियों के जीवन-वृत्त से बिहार के तत्कालीन नारी समाज की स्थिति पर बहुत-कुछ प्रकाश पड़ता है।

१. उपर्युक्त संस्कृत ग्रन्थों के सम्बन्ध में मेरे मन में ऐसा संशय नहीं है कि उनकी रचना बौद्ध ग्रन्थों के बाद हुई है। हाँ, इतना मैं भी मानता हूँ कि स्मृतियों, पुराणों आदि में यत्र तत्र कुछ अंश परिवर्तित-परिवर्द्धित होकर बाद में जुड़े हैं, पर इनकी मूल रचना बौद्ध ग्रन्थों से पहले हुई है। इन संस्कृत-ग्रन्थों की प्राचीनता के सम्बन्ध में ऐसा मत मेरे विचार की न तो कोरी उपज है या न केवल अनुमान। वे बौद्ध ग्रन्थ ही बतलाते हैं कि उनके विचारों और कथाओं की आधार-शिला कहाँ है तथा उनकी रचना की मूल उपर्युक्त संस्कृत-ग्रन्थों में ही बिखरी पड़ी है।—ले०

बुद्धकाल (ईसा पूर्व पाँचवीं शती) में भारतीय नारियों की सामाजिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं कही जा सकती। बिहार की नारियों के सम्बन्ध में भी यही बात लागू है। उस समय भी नारियों का प्रमुख कार्य गृह प्रबन्ध ही था। गृहकार्य के भीतर गृहशिल्प भी था, जिसमें उस समय की महिलाएँ बहुत दक्ष थीं। गृहस्थी का भार स्त्रियों पर बहुत बढ़ गया था। कोशल देश की 'मुत्ता' नामक नारी गृहस्थी के कामों से ऊबकर बौद्ध भिक्षुणी हो गयी थी। वह इस बात के लिए अत्यन्त प्रसन्न थी कि उसे तीन टेढ़ी वस्तुओं—ऊखल, मूसल और कुबड़ा पति—से छुटकारा मिल गया।

केवल उच्च वर्ग की स्त्रियाँ ही सामाजिक कार्यों में हाथ बँटाती थीं। सर्वसाधारण स्त्रियों को न तो वैसी शिक्षा प्राप्त होती थी और न उन्हें गृहकार्य से अवकाश ही मिल पाता था। पति की आज्ञाकारिणी होना उनके लिए आवश्यक था। आर्थिक मामले में न तो वे स्वतन्त्र थीं और न पति के धन पर ही उनका अधिकार होता था। पर्दा प्रथा की कड़ाई तो नहीं थी, परन्तु पर्दे की एक मर्यादा अवश्य थी।

उदय जातक की बौद्ध भिक्षुणी ऋषिदासी की कथा बतलाती है कि लड़कियाँ बेची और खरीदी भी जाती थीं। विशेष स्थिति में पति और पत्नी दोनों की ओर से तलाक की प्रथा भी थी। सगोत्र और सपिण्ड विवाह होता था, पर इनका बराबर उत्तम माना जाता था।

थेरीगाथा के 'शुभा' चरित्र से मालूम होता है कि स्त्रियों पर अनाचार और बलात्कार उस समय भी होता था, पर इसके लिए राजा की ओर से कड़ा दण्ड दिया जाता था। वेश्या प्रथा उस समय भी थी और समाज में उत्तम कोटि की वेश्याओं की बड़ी धाक तथा प्रतिष्ठा थी। ऐसी ही वेश्याओं में प्रमुख थीं वज्जि-संघ की अम्बपाली, राजगृह की सालवती और उज्जैन की पद्मावती (जो कालान्तर में बिम्बिसार के पास राजगृह चली आयी थी)।

'धम्मपद' की टीका (४ और ८) से पता चलता है कि न्याय के लिए स्त्रियाँ न्यायालय की भी शरण लेती थीं। 'संयुत्तनिकाय' (३, २, ६) से ज्ञात होता है कि समाज में कन्या का जन्म उस समय भी उत्साहवर्द्धक नहीं था। राजा-महाराजा कन्या के पिता से बलपूर्वक भी लड़कियाँ छीन लेते थे। कन्या का पिता भी अपनी लड़की को उन्हें प्रसन्न करने के लिए धन की तरह सौंप देता था। पुरुष का स्थान नारी से श्रेष्ठ था। ऐसी श्रेष्ठता बौद्धसंघ में भी कायम थी।

'विनयपिटक' के 'पाचित्तिय' प्रकरण में भिक्षुणियों के लिए जैसे कठोर नियम बनाये गये हैं, वैसे भिक्षुओं के लिए नहीं। 'पाचित्तिय' के नियमों से ऐसा आभास मिलता है कि भगवान् बुद्ध के मन में नारियों के प्रति शंका की भावना काम कर रही थी। आखिर दो भिक्षुणियों को एक ही आवास में शयन करने का निषेध क्यों किया गया, जब भिक्षुओं के लिए ऐसा निषेध नहीं था। यह तो स्पष्ट ही है कि संघ में नारियों के प्रवेश से भगवान्

बुद्ध सन्तुष्ट नहीं हुए थे। फिर भी, समाज में ऐसी नारियाँ उस समय भी थीं, जो पुरुषों की बराबरी करती थीं तथा ज्ञान-विज्ञान में भी अग्रणी थीं।

समाज-सुधार के कामों में जैन और बौद्धसघों ने उस समय क्रान्तिकारी कदम उठाया था। नारियों के उत्थान कार्य में भी इन दोनों सघों ने बिहार में बहुत बडा हाथ बँटाया। बौद्ध भिक्षुणियों के सघ के पहले ही जैनसघ में भिक्षुणियों का सघटन हो गया था। जैनों की देखा-देखी ही भिक्षु 'आनन्द' ने बौद्धसघ मे नारियों का प्रवेश कराया था, क्योंकि आनन्द को बौद्धसघ एकागी दीख रहा था। बौद्धसघ में जब नारियों के प्रवेश का द्वार खुला, तब बुद्ध की मौसी महाप्रजापति गौतमी एक साथ ही पाँच सौ नारियों को लेकर सघ में घुसी और उसने तुरत एक अलग भिक्षुणी-परिषद् स्थापित कर ली।

भिक्षुणी-परिषद् को सुदृढ बनाने में जिस नारी ने सबसे बड़ा काम किया, वह बिहार के मुँगेर जिले में जनमी थी। वह भद्दिया (आधुनिक 'बतिया') की रहनेवाली थी। बौद्ध इतिहास में वह 'विशाखा नाम से प्रसिद्ध है।

विशाखा

विशाखा का पितामह 'मेण्डक' श्रेष्ठी, बिम्बिसार के राज्य में, सबसे बड़ा सेठ था। उसके पुत्र का नाम 'धनजय' था और पतोहू का 'सुमना'। इन्हीं दोनों से विशाखा का जन्म हुआ था। जब वह सात साल की बच्ची थी, तब भगवान् बुद्ध अपने साढे बारह सौ शिष्यों के साथ इसके नगर 'भद्दिया' में पहुँचे थे।

महावग्ग (६, ५, १, १) बतलाता है कि मेण्डक पाँच महापुण्यों से युक्त था। ये पाँच महापुण्य थे—मेण्डक की पत्नी चन्द्रप्रभा, उसका पुत्र धनजय, उसकी पुत्रवधू सुमना, उसका दास पूर्णक और स्वय वह। बुद्ध का शुभागमन सुनकर मेण्डक ने उनकी अगवानी में अपनी सात साल की पोती विशाखा को, पाँच सौ कुमारी कन्याओं और पाँच सौ दासियों के साथ, स्वागत में भेजा था। विशाखा ने अपनी सभी सहेलियों के साथ नगर से बाहर निकलकर विविध नैवेद्य युक्त पाँच सौ आरती थालों से भगवान् बुद्ध का स्वागत किया था। ऐसा सौभाग्य सात साल की उम्र में ही 'विशाखा' को मिला था।

कोसल के राजा प्रसेनजित् ने बिम्बिसार से याचना की थी कि मेरे राज्य में बड़े श्रेष्ठियों का अभाव है, कृपया अपने पाँच महासेठों में से एक को यहाँ बसने के लिए भेज दीजिए। मन्त्रियों के मशवरानुसार सेठ तो कोई नहीं भेजा गया, पर मेण्डक गृहपति का लड़का 'धनजय' ही भेज दिया गया। इसीलिए, विशाखा को अपने पिता के साथ 'साकेत' (अवध) में जाकर बसना पड़ा। उस समय इसकी अवस्था बारह वर्ष की थी।

विशाखा का विवाह श्रावस्ती के श्रेष्ठीपुत्र 'पुण्यवर्द्धन' से हुआ था। इसके विवाह में वर पक्ष से स्वय कोसल नरेश प्रसेनजित् सम्मिलित हुआ था। सारी बरात बरसात के चार मासों तक साकेत में टिकी रह गयी थी। स्वय प्रसेनजित् चारों मास, सदल बल

उस बरात में सम्मिलित रहा। बरात के लिए बरसात में जब सूखी लकड़ी घट गयी, व विशाखा के पिता ने हस्तिशाला, अश्वशाला, गोशाला आदि उजड़वाकर ईंधन के काम में लगवा दिया। इतने पर भी जब काम न चला, तब धनंजय ने कपड़े का गोदाम खुलवा दिया। कपड़े के थान तेल में भिगोकर जलाये गये। पन्द्रह दिनों तक सारी बरात का भोजन कपड़ों की तेल-बोथी बत्तियों से पका था।

विशाखा का एक दूसरा नाम 'मिगार-माता' भी था। बौद्धभिक्षु इसको इसी नाम से अभिहित करते थे। 'मिगार' इसके ससुर का नाम था। वह जैनधर्मोपासक था। बौद्धों से उसकी सख्त चिढ़ थी। इधर बौद्धों के प्रति विशाखा अमित श्रद्धा रखती थी। जब यह ससुराल आयी, तब नित्य पाँच सौ बौद्धभिक्षुओं को भोजन कराकर ही अन्न ग्रहण करती थी। यह देख 'मिगार' जलने लगा। घर में खींचतान चलने लगी। ससुर चाहता था कि पतोहू बौद्धों से विमुख होकर निगण्ठों (जैनों) में भक्ति रखे। पतोहू चाहती थी कि मेरा ससुर निगण्ठों की भक्ति त्याग कर बौद्धों की भक्ति में मन लगाये। इस तरह का द्वन्द्व बरसों चला। यहाँतक कि 'मिगार' ने पंचायत बैठायी। इसने पंचायत में स्पष्ट कह दिया कि मैं जो कुछ व्यय करती हूँ, अपने पिता के दिये धन से, मेरे ससुर का उसपर कोई अधिकार नहीं है। इतना आपसी मनमुटाव होने पर भी इसकी ओर से कभी ससुर की उपेक्षा नहीं हुई। इसने अपनी सेवा, सुशीलता, धर्म निष्ठा और श्रद्धा-भक्ति से ससुर को प्रसन्न कर लिया। फलस्वरूप, 'मिगार' इसका ऐसा अनुगत बन गया कि निगण्ठों की भक्ति छोड़ बौद्ध-भिक्षुओं में निष्ठावान् हो गया। इसी के उपदेश से वह बौद्ध बना। इसीलिए, बौद्ध लोग इसको मिगार का गुरु मानते और 'मिगार-माता' कहते थे।

विशाखा ने श्रावस्ती में बौद्धसंघ की भिक्षुणियों के लिए एक 'पूर्वाराम' नामक विहार बनवाया था, जिसका नाम 'मिगारमातुपसाद' भी था। ऐसा बौद्धग्रन्थों में मिलता है। यह विहार दोमंजिला बना था। दोनों तल्लों में पाँच पाँच सौ कमरे थे। इसका निर्माण नौ मासों में ही हुआ था। इसके निर्माण के समय भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में ही उपस्थित थे। विहार बनवाने का भार महामौद्गल्यायन ने लिया था। इसमें सत्ताईस करोड़ मुद्राएँ व्यय हुई थी। इन मुद्राओं के संग्रह की कहानी भी बड़ी दिलचस्प है।

'धम्मपद' अट्ठकथा से ज्ञात होता है कि एक दिन विशाखा, अपनी दासी 'सुप्रिया' के साथ, बुद्ध का उपदेश सुनने के लिए, श्रावस्ती के विहार में गयी। जब कभी यह भगवान् बुद्ध के सामने जाती थी, निराभरण होकर सादा वेश बना लेती थी। अपने वैभव के मद से अभिभूत होकर या सज-धज कर यह कभी उनके समक्ष नहीं गयी। उस दिन भी जब यह विहार के द्वार पर पहुँची, अपने सारे रत्नमय आभूषणों को उतारकर 'सुप्रिया' को रखने के लिए दे दिया। दासी एक गठरी में आभूषणों को बाँधकर धर्मोपदेश सुनने लगी। उपदेश समाप्त होने पर जब यह विहार से बाहर आयी, दासी से आभूषणों को माँगा। दासी के होश उड़ गये। उसने बड़े दीनभाव से विहार में ही गठरी के छूट जाने की बात कही।

इसने दासी को यह आदेश देकर गठरी लाने के लिए भेजा कि किसी भिक्षु ने यदि उसे छू दिया हो तो न लाना।

उधर सभी के चले जाने के बाद आभूषणों की गठरी पर 'आनन्द' की दृष्टि पड़ी। उन्होंने बड़े यत्न से गठरी उठाकर रख दी। दासी आभूषणों की गठरी को ढूँढती जब विहार में आयी, तब आनन्द ने गठरी का सुरक्षित स्थान बतलाया। दासी ने जब जाना कि आनन्द ने गठरी को उठाकर रखा है, तब अपनी मालकिन का आदेश सुनाते हुए कहा—'इसे अब आप ही रखें।' आनन्द ने कहा—'मैं इसे लेकर क्या करूँगा? भिक्षुओं के लिए धातु ग्रहण वर्जित है। अपनी मालकिन से जाकर कहो कि इसे मँगा लें।'

विशाखा ने आनन्द का कथन सुनकर आभूषणों को मँगा तो लिया, किन्तु निश्चय किया कि इनका उपयोग बौद्धसंघ के लिए ही होना चाहिए, क्योंकि आनन्द ने इसका स्पर्श कर दिया है। आखिर जब श्रावस्ती के बाजार में आभूषण बिकने गये, तब एक भी खरीदार सेठ वहाँ न मिल सका। विशाखा को जब यह बात मालूम हुई, उसने स्वयं नौ करोड़ मुद्राओं में खरीद लिया। इसी निधि से 'पूर्वाराम विहार' के लिए जमीन खरीदी गयी।

विशाखा बुद्ध की कैसी शिष्या थी और भगवान् बुद्ध का उसपर कितना स्नेह था, यह इसी बात से जाना जा सकता है कि स्वयं बुद्ध ने कुलवन्ती नारियों के आठ गुणों का उपदेश उसे उसके घर में दिया था। उन आठों उपदेशों की चर्चा 'अंगुत्तरनिकाय' (४, २६७) में है। वे उपदेश भारतीय नारियों के लिए आठ वैदिक ऋचाएँ हैं।

विशाखा एक सौ बीस वर्ष की बूढ़ी होकर मरी थी। बुढ़ापे में इसे पौत्र-मृत्यु का दुःख भी भोगना पड़ा था। पानी की तरह धन बहाकर बौद्ध भिक्षुणी संघ को इसने सुदृढ बनाया था।

वैशाली की चार बहनें

वैशाली में चार सगी बहनें थीं—सच्चा, लोला, अववादका और पटाचारा। इनके पिता और माता जब कुमार कुमारी थे, तभी दोनों में वैशाली में ही बड़ा शास्त्रार्थ हुआ था। इनका पिता लिच्छवियों के कुलगुरु-वंश का था। पिता-माता दोनों एक एक हजार विद्याओं में पारंगत थे। लिच्छवियों ने दोनों का विवाह इसीलिए कराया था कि ऐसे माता पिता की सन्तानें ठीक हमारे गुरुकुल के अनुरूप होंगी और जिनके पाण्डित्य का जोड़ कहीं मिलेगा नहीं।

इन बहनों के भाई का नाम सच्चक (सत्यक) था, जो लिच्छवियों का गुरु था। यह बड़ा ही उच्च कोटि का जैन विद्वान् था। वैशाली में भगवान् बुद्ध के साथ उसका वह विख्यात शास्त्रार्थ हुआ था, जिसमें वज्जि संघ के सभी विशिष्ट पुरुषों और विद्वानों की परिषद् बैठी थी। उस परिषद् की तैयारी में कई दिन लगे थे। किन्तु, उस शास्त्रार्थ में 'सच्चक' पराजित हुआ, जिससे लिच्छवियों के मन में भी ग्लानि हुई थी।

इन चारों बहनों का भी यही हाल था। विद्या के मद के कारण ये विवाह नहीं करती थीं। सर्वत्र घूम घूमकर विद्वानों के विद्या गर्व को खर्व करना ही इनका काम था। शास्त्रार्थ में इनका कहीं कोई जोड़ नहीं था। इनकी जीभ की खुजली मिटानेवाला कोई विद्वान् द्वन्द्व मिलता नहीं था। शास्त्रार्थी लोग तो इनकी प्रतिज्ञा सुनकर इनसे भिड़ते ही नहीं थे। जो भिड़े भी, वे मुँह की खाकर औंधे गिरे।

इनकी प्रतिज्ञा थी कि कोई गृहस्थ यदि हमें शास्त्रार्थ में पराजित कर देगा, तो हम चारों उसकी पत्नी बनकर सेवा करेंगी और यदि कोई साधु सन्यासी पराजित कर देगा, तो हम उसकी शिष्या बनकर शुश्रूषा करेंगी। जिस नगर या गुरुकुल में ये जाती थीं, विद्वानों में तहलका मच जाता था। ये चौराहे के बीच अथवा गुरुकुल के मुख्यद्वार पर जामुन की डाल गाड़कर घोषणा करा देती थीं कि जो कोई शास्त्रार्थ करना चाहे, हमारे द्वारा गाड़ी हुई डालों को उखाड़ दे। इसके अतिरिक्त अपनी उपर्युक्त प्रतिज्ञा की भी घोषणा करा देती थीं। ये चारों जैनमतावलम्बिनी थीं।

एक बार ये शास्त्रार्थ क्रम में घूमती-फिरती श्रावस्ती पहुँचीं। वहाँ उस समय बौद्ध-संघ भी निवास कर रहा था। चारों बहनों ने संघ के सामने मुख्यद्वार पर जामुन की डालें गाड़ दीं और शास्त्रार्थ की घोषणा करा दी। डाल गाड़ने के बाद ये नगर में भ्रमण करने चली गयीं। बौद्धसंघ में भगवान् बुद्ध के प्रमुख शिष्य 'सारिपुत्त' भी उस समय वहीं थे। संयोग कि उस समय वे भी पिण्डपात के लिए बाहर गये थे। बौद्धसंघ में जितने भी विद्वान् वहाँ थे, उनमें किसी को यह साहस न हुआ कि डालों को उखाड़कर चारों बहनों की चुनौती स्वीकार कर ले। सभी सारिपुत्त की राह देखते रहे।

सारिपुत्त जब बाहर से आये, तब भिक्षुओं ने दौड़कर उन्हें सारी बातें बतलायीं। सारिपुत्त की विद्वत्ता और ज्ञान गरिमा का तो कहना ही क्या। उन्होंने चारों बहनों की चुनौती स्वीकार कर ली और डालियों को उखाड़ फेंका। नगर से भ्रमण कर जब चारों बहनें लौटीं, तब उखाड़ी गयी डालों को देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने इसकी कल्पना भी नहीं की थी कि बौद्धसंघ में कोई ऐसा साहस कर सकेगा।

शास्त्रार्थ के लिए गोष्ठी जमी। चारों बहनों ने बारी बारी से प्रश्नों की झड़ी लगा दी। सारिपुत्त सबको यथोचित उत्तर देकर मूक करते गये। अन्त में चारों ने सारिपुत्त की वन्दना की। उनसे निवेदन किया—'प्रभो, हमारा ज्ञान मद आज चूर हो गया। अब आप अपनी शिष्या बनाकर हमारा उद्धार करें।'

किन्तु, सारिपुत्त कभी किसी नारी को दीक्षा नहीं देते थे। उन्होंने कहा—'मेरी कोई शिष्या है ही नहीं, मेरे गुरु भगवान् बुद्ध की शिष्या बनो, उन्हीं की शरण में जाओ।'

चारों बहनों ने वैसा ही किया। भगवान् बुद्ध ने इन्हें आशीर्वाद और उपदेश दिया। इन चारों में पाटाचारा बड़ी ही तेजस्विनी भिक्षुणी थी।

क्षेमा

क्षेमा मगध सम्राट् बिम्बिसार की सबसे छोटी और सबसे प्यारी सुन्दरी पत्नी थी। यह सागल (स्यालकोट) के राजा की बेटी थी। इसके रूप और गुण की प्रशंसा सुनकर ही बिम्बिसार इसे ब्याह लाया था। यह ऐसी रूपवती थी कि अपने सौन्दर्य के घमण्ड में भगवान् बुद्ध को भी कुछ नहीं समझती थी। बिम्बिसार जब-जब इससे भगवान् के दर्शन करने के लिए चलने को कहता, यह टाल देती। यह कहती कि श्रमण गौतम शारीरिक सौन्दर्य और रूप शृंगार को हेय दृष्टि से देखते हैं। रूप और सौन्दर्य ईश्वर का दिया हुआ बहुत बड़ा वरदान है। इसको जो तुच्छ समझता है, वह ईश्वर का अनादर करता है। ऐसा साधु ईश्वर का विरोधी है, उससे मेरा कौन काम।

किन्तु बिम्बिसार, भगवान् बुद्ध में, अत्यन्त श्रद्धाशील था। वह चाहता था कि ऐसे ज्ञानी महात्मा के दर्शन से मेरी प्यारी पत्नी वञ्चित न रहने पाये। अतः उसने अपनी रानी से छल किया, जो स्वयं उसी के लिए बहुत महँगा पड़ा।

एक दिन बिम्बिसार ने क्षेमा से कहा—'आज की सन्ध्या बड़ी सुहावनी है, हमलोग उद्यान-विहार के लिए चलें।' क्षेमा शीघ्र तैयार हो गयी। उद्यान विहार के बहाने बिम्बिसार अपने रथ को वहाँ लिवा ले गया, जहाँ भगवान् बुद्ध अपने पारिषदों के साथ बैठे थे। रथ से उतरने पर क्षेमा ने अपने आगे भगवान् बुद्ध को देखा। अपने पति को उन्हें प्रणाम करते देख उसे भी क्षेमा ही करना पड़ा। दोनों पति-पत्नी भगवान् बुद्ध के पास ही बैठे।

भगवान् बुद्ध अपनी तपस्या और अपने ज्ञान के बल से अन्तर्यामी ऋषि बन गये थे। उन्होंने क्षेमा के मन में बैठे रूप-गर्व को जान लिया। उसके सौन्दर्याभिमान को तोड़ने के लिए उन्होंने तपोबल से ऐसी दो अप्सराओं को प्रकट किया, जिनके रूप सौन्दर्य के सामने क्षेमा का रूप तुच्छ से भी तुच्छ था। वे दोनों अप्सराएँ भगवान् बुद्ध को दोनों ओर से पखा झल रही थीं। क्षेमा ने वैसा सौन्दर्य कभी देखा न था। वह अपने रूप की हेठी देख लज्जित हो गयी। फिर, थोड़ी ही देर बाद देखा कि उन विश्वमोहिनी अप्सराओं की जवानी ढल गयी क्रमशः वे बूढ़ी होने लगीं। बाद देखा कि दोनों का मुँह पोपला हो गया, शरीर का चमड़ा सिकुड़कर झूलने लगा आँखें गढ़े में धँस गयीं, सिर के केश सफेद हो झड़ गये—ठूँठी झाड़ू बन गये। देखते-देखते दोनों के शरीर की शक्ति इतनी क्षीण हो गयी कि उनके हाथ से पंखे गिरने लगे—अन्त में गिर ही पड़े।

यह सारा दृश्य वहाँ केवल क्षेमा ही देख रही थी। दूसरा कोई व्यक्ति तपस्या के तेज का चमत्कार न देख सका। वह सोचने लगी—हाय, जिस शारीरिक सौन्दर्य पर मुझे बहुत घमण्ड है, उसकी आखिर यही परिणति है? वह चिल्ला उठी और भगवान् बुद्ध के चरणों पर गिर पड़ी।

भगवान् बुद्ध ने उसे उपदेश देकर उसके चित्त की अशान्ति को दूर किया। वह अब नित्य ही बुद्ध के उपदेश सुनने लगी। अन्त में सारा वैभव विलास त्याग कर भिक्षुणी बन गयी। बिम्बिसार के लिए सचमुच यह सौदा बड़ा महँगा पड़ा।

क्षेमा को साधिका बनने में घोर कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। बार-बार उसका मन भिक्षुणी-जीवन के कष्टों से घबराता था; पर वह साधना के पथ से विचलित नहीं हुई। स्वयं बिम्बिसार तो चाहता ही था कि भिक्षुणी-धर्म छोड़कर क्षेमा पुनः रानी बने। किन्तु, क्षेमा ने जब एक बार पैर आगे बढ़ा दिया, तब पीछे हटना उसने नारी समाज का अपमान समझा। अन्त में वह बहुत बड़ी साधिका हुई। अपने चरित्र तथा ज्ञान का झंडा उसने सदा ऊँचा रखा। उसकी सिद्धि यहाँतक बढ़ी कि एक बार उसने कोसलराज प्रसेनजित् को ज्ञान का उपदेश किया। प्रसेनजित् घंटों श्रवण करता रहा। कैसा विलक्षण था वह दिन, जिस दिन इस बिहार की एक सम्राज्ञी माथा मुँड़ाये, काषाय-वस्त्र पहने, हाथ में भिक्षा-कपाल उठाये, गाँव-गाँव घूमकर बौद्धधर्म का उपदेश कर रही थी।

भद्रा कुण्डलकेशा

इसका असली नाम भद्रा था। यह राजगृह के एक धनाढ्य सेठ की परम लाड़ली बेटी थी। इसका पिता सम्राट् बिम्बिसार का कोषाध्यक्ष था। लाड़-प्यार और राजसी भोग-विलास के वातावरण में पलने के कारण यह शौक-मिजाज लड़की थी।

राज-पुरोहित के लड़के का नाम 'सत्थुक' था। वह भी बचपन से ही अत्यधिक दुलार के कारण आवारा हो गया था। उसी के साथ भद्रा का प्रेम हो गया था। एक बार चोरी के अपराध में उसको फाँसी की सजा मिल गयी। भद्रा को जब यह बात मालूम हुई, उसने अन्न-जल छोड़ दिया। अपने पिता से कहा, चाहे जैसे हो सके, राजपुरोहित-पुत्र को छुड़ा लाइए, नहीं तो मैं प्राण त्याग दूँगी। इतना ही नहीं, उसने स्पष्ट कह दिया कि राज-पुरोहित-पुत्र के साथ ही मेरा विवाह होगा, नहीं तो मैं जीवित नहीं रहूँगी।

भद्रा के पिता ने उसे बहुत समझाया, किन्तु भद्रा हठ पर अड़ी रह गयी। लाचार होकर सेठ ने चोरी गये धन का दुगुना धन राजकोष में जमा कर 'सत्थुक' को छुड़ाया। भद्रा का ब्याह उससे हो गया। सेठ ने बहुत सा धन और आभूषण देकर भद्रा की विदाई की। भद्रा मनचाहा पति पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुई।

सत्थुक अत्यन्त लोभी प्रकृति का लम्पट युवक था। चरित्र नाम की वस्तु उसके पास थी ही नहीं। उसे भद्रा के रूपवती होने से कोई मतलब न था। वह तो उसके कंचन और आभूषणों का भूखा था। एक दिन 'सत्थुक' ने अपनी नवविवाहिता पत्नी से कहा—"प्रिये! जिस दिन चोरी के अपराध में मुझे दण्ड मिला था, उस दिन मैंने वध-स्थान के देवता की मनौती मानी थी कि मैं किसी तरह यदि बच जाऊँगा, तो पूजा चढाऊँगा। देवता ने मुझे बचा लिया। चलो, हमलोग देवता को पूजा चढ़ा आवें।"

पतिपरायणा भद्रा ने बड़ी प्रसन्नता से पूजा की सामग्री तैयार की। विविध अमूल्य आभूषणों से सज धज कर पति और दास दासियों के साथ देव स्थान की ओर चली। कुछ दूर जाने पर 'सत्थुक' ने दास दासियों को लौटा दिया। पत्नी के साथ अकेला ही पहाड़ की निर्जन चोटी पर चढ गया, जहाँ देवता का स्थान था। वहाँ पहुँचने पर सत्थुक ने कहा—'भद्रे! अपने शरीर पर एकमात्र वस्त्र को छोड सारे वस्त्राभरण उतार दो। मुझे अब तुमसे कोई प्रयोजन नहीं।'

पति की राक्षसी आकृति देखकर भद्रा सहम गई। उसने गिडगिड़ाकर कहा—'स्वामी! ऐसा क्यों? ये आभूषण क्या हैं, मैं भी तो आपकी ही हूँ। मुझमे कौन-सी चूक हुई है?'

सत्थुक ने डाँटते हुए कहा—'चुपचाप आभूषणों को उतार दो और मरने के लिए तैयार हो जाओ।'

अपने को सर्वथा असहाय पाकर भद्रा ने अत्यन्त करुण स्वर मे कहा—'नाथ, मैं मरने के लिए तैयार हूँ, पर मेरी एक अंतिम कामना आप पूरी कर दें। मैं तब बड़ी प्रसन्नता से मरूँगी। मेरी आत्मा को शान्ति मिल जायेगी।'

सत्थुक उसकी करुणा-भरी वाणी से पिघल गया। उसने पूछा—'तुम्हारी अन्तिम कामना क्या है?' भद्रा ने कहा—'बस एक बार आप प्रेम से मेरा गाढालिंगन कर लें, यही मेरी अन्तिम कामना है।'

सत्थुक ने उसकी बात मान ली। जैसे ही वह दोनों भुजाओं को पसारकर गाढालिंगन करने आगे बढा कि भद्रा ने बड़े जोर का झटका दिया, जिससे वह लम्पट पहाड़ की चोटी के नीचे खन्दक मे जा गिरा और वहीं उसका काम तमाम हो गया।

पति की मृत्यु से सन्त्रस्त अभागी भद्रा ने पिता के घर आना उचित न समझा। उसने माता पिता से विरोध करके सत्थुक से ब्याह किया था। अब उसको संसार से विरक्ति हो गयी। वहाँ से चलकर वह सीधे जैनसंघ में गयी। जैन-भिक्षुणी होने पर जैन संस्कार के अनुसार उसके सिर के सारे केशों का लुंचन हुआ। उसके बाद उसके सिर में जो केश जमे, वे कुंडल की आकृति के घुँघराले हो गये, इसीलिए वह 'भद्रा कुण्डलकेशा' कहलाने लगी।

जैनसंघ में रहकर उसने विभिन्न शास्त्रों का अध्ययन किया। कुछ ही वर्षों मे वह एक प्रसिद्ध विदुषी बन गयी। तर्कशास्त्र मे वह पारंगत पण्डिता हुई। अन्य जैन विद्वानों की तरह शास्त्रार्थ करने लिए वह स्थान स्थान घूमने लगी। जहाँ जाती, उसे विजयश्री मिलती थी। जैनधर्म की इस प्रसिद्ध भिक्षुणी ने बड़े बड़े धर्माचार्यों के विद्या मद को चूर किया था।

एक बार संयोगवश एक आश्रम में भगवान् बुद्ध के परम तेजस्वी शिष्य 'सारिपुत्त' से उसका साक्षात्कार हुआ। अपने विद्या गर्व में उनसे शास्त्रार्थ में भिड़ गयी, किन्तु उसकी

भी यही दशा हुई, जो वैशाली की पूर्वोक्त चार बहनों की हुई थी। उसने भी अपने को सारिपुत्र के चरणों पर चढ़ा दिया। शिष्या बना लेने के लिए उनसे आग्रह किया; पर सारिपुत्र ने उसे शिष्या बनाने के लिए भगवान् बुद्ध के पास भेज दिया।

राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर भद्रा ने भगवान् बुद्ध के दर्शन किये। सारिपुत्त ने शिष्या बनाने के लिए उसे भेजा है, यह निवेदन उसने भगवान् बुद्ध से किया। उनसे दीक्षा लेकर वहीं बौद्धधर्म में वह प्रव्रजित हुई। अपनी विद्वत्ता के कारण बौद्ध भिक्षुणी-संघ में वह महोपदेशिका के पद पर प्रतिष्ठित हुई। वहाँ भी उसने अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा की। उसने पचास वर्षों तक अंग, मगध, वज्जि, काशी और कोशल में घूम-घूमकर बौद्धधर्म का प्रचार किया था। उसने सैकड़ों नारियों को बौद्धधर्म में दीक्षित करके उस धर्म का झंडा ऊँचा उठाया था।

सिंहा

'सिंहा' लिच्छवियों के सेनापति 'सिंह-सेनापति' की बहन की लड़की थी। सिंह सेनापति वज्जि संघ की सेना का सर्वश्रेष्ठ सेनापति था। वज्जि-संघ इसकी तलवार की छाया में अपने को निरापद मानता था। यह जैनधर्मावलम्बी था। जैनसंघ को दान देने में इसका खजाना सर्वदा खुला रहता था। यह जब बुद्ध से एक बार मिलने गया, तब इसके साथ पाँच सौ सजे-सजाये रथों पर अन्य लिच्छवि भी गये थे। जब यह जैनधर्म छोड़कर बौद्धसंघ में दीक्षित हुआ, तब इसकी भानजी 'सिंहा' ने भी बौद्धधर्म अपनाया।

सिंहा बचपन से ही मामा के घर रहकर वैभव-विलास में पली थी। वह वज्जि-संघ की अपूर्व सुन्दरी थी। वह बड़ी ही कामुक प्रकृति की नारी थी। इसलिए जब बौद्ध हुई, तब साधना में उसको बड़ी कठिनाई उठानी पड़ी। सात वर्षों तक वह साधना करती रही; पर उसकी वासना गयी नहीं। अन्त में उसने निश्चय किया कि वासना की तृप्ति के लिए पूरा भोग करके ही साधना का मार्ग पकड़ना अच्छा होगा। उसने साधना छोड़कर सांसारिक सुख-भोगों को पुनः अपना लिया। खुलकर भोग-विलास में लिप्त हो गयी। पर 'मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों ज्यों दवा की' के अनुसार भोग-विलास से वासना की तृप्ति तो हुई नहीं, सुख-भोग ने अग्नि में आहुति का काम किया। इस तरह के भोगमय जीवन से वह ऊब उठी। वह अपने जीवन से भीतर-ही-भीतर छटपटाती रही, पर धीरे-धीरे मकड़ी के जाल में और भी फँसती ही गयी।

अन्त में उसने अपने वासना-व्यसनी जीवन से छुटकारा पाने के लिए आत्महत्या करने का संकल्प किया। एक दिन अवसर और एकान्त पाकर भगवान् बुद्ध का स्मरण करते हुए उसने जैसे ही आँखें बन्दकर फाँसी की रस्सी गले में डाली कि उसका चित्त समाधि में डूब गया। बस, आत्मा की उद्विग्नता शान्त हो गयी। उसे उसी क्षण समाधि और चित्त-निरोध का मार्ग मिल गया। उसके बाद वह पुनः बौद्ध भिक्षुणी हो गयी। बौद्धसंघ की साधिकाओं में उसने क्रमशः अपना विशिष्ट स्थान बना लिया।

हताश नारियों को श्रेयस्कर मार्ग प्रदर्शित करने में 'सिंहा' का जीवन-वृत्त आदर्श है। उसका घरेलू नाम कुछ दूसरा था।

भद्रा कापिलायनी

यह 'भद्रा' मद्र देश के सागल की लड़की थी, पर इसका विवाह मगध में हुआ था। बुद्ध के मरने के बाद बौद्धसंघ में सबसे तेजस्वी और प्रतापशाली जो व्यक्ति था, उसी की यह पत्नी थी। उस व्यक्ति का नाम 'महाकाश्यप' था। उसके प्रताप की कहानी सभी बौद्ध-साहित्यप्रेमी जानते हैं। वह राजगृह के पश्चिमोत्तर कोण में स्थित 'तित्थिया' ग्राम का निवासी था। इस ग्राम की पहचान आज 'तेतरिया' नाम से की जा सकती है।

महाकाश्यप का घरेलू नाम 'पिप्पली माणवक' था। वह मगध का एक अतिशय धनाढ्य और विद्वान् ब्राह्मण था। जब उसने बौद्धधर्म ग्रहण किया, तभी भद्रा भी गृहस्थ-जीवन त्यागकर संन्यासिनी हो गयी। बौद्धसंघ में तब स्त्रियों का प्रवेश निषिद्ध था। इसलिए यह अपने ही 'तित्थिया' ग्राम के जैनसंघ में भिक्षुणी होकर रहने लगी। इसी 'तित्थियाराम विहार' में इसने पाँच वर्षों तक साधना की, किन्तु साधना काल में भी पतिभक्ति से कभी विमुख नहीं हुई। बाद जब बौद्धसंघ में प्रजापति गौतमी भिक्षुणी बनकर आयीं, तब यह भी जैनधर्म छोड़कर पति के पदानुसरण में बौद्ध भिक्षुणियों में सम्मिलित हो गयी। इसने प्रजापति गौतमी से बौद्धधर्म की दीक्षा ली। इसके पति ने जब अर्हत्व प्राप्त कर लिया, तब इसने भी कठोर साधना करके अर्हत्व प्राप्त किया।

यद्यपि इसने बौद्धधर्म ग्रहण किया था, तथापि इसकी दृष्टि में बुद्ध के बाद सबसे ऊँचे 'महाकाश्यप' ही थे। यह जहाँ भी रहती, सर्वदा अपने पति महाकाश्यप के ही गुणों का गान करती रहती। यह कहती थी—'शान्त समाधिनिष्ठ महाकाश्यप भगवान् बुद्ध के योग्य उत्तराधिकारी पुत्र हैं।'

महाकाश्यप का गोत्र कापिलायन था, अतः यह भी अपने को 'भद्रा कापिलायनी' कहती थी। इसने बुद्ध-शासन की तीनों विद्याओं (पूर्वजन्म-ज्ञान, जन्म-मरण ज्ञान और आस्रवक्षय ज्ञान) का साक्षात्कार कर लिया था। मृत्यु पर भी विजय लाभ किया था।

यद्यपि जीवन भर भद्रा ने दाम्पत्य जीवन का सुखभोग नहीं किया, तथापि सदैव पतिपरायणा बनी रही। जब महाकाश्यप ने बौद्धधर्म ग्रहण नहीं किया था, तब भी भद्रा के साथ उनका दैहिक सम्बन्ध कभी न रहा। पर भद्रा ने भारतीय नारियों की चारित्रिक ऊँचाई को अपनी पति-परायणता से और भी ऊँचा उठाया था।

शुक्ला

बौद्धधर्म में जितनी भी बौद्ध भिक्षुणियाँ थीं, उनमें राजगृह की दो नारियाँ ऐसी थीं, जिनके धर्मज्ञान और वक्तृत्व शक्ति के आगे दूसरी कोई भिक्षुणी नहीं ठहरती। राजगृह की इन दो नारियों के नाम थे—धर्मदिन्ना और शुक्ला।

हताश नारियों को श्रेयस्कर मार्ग प्रदर्शित करने में 'सिंहा' का जीवन-वृत्त आदर्श है। उसका घरेलू नाम कुछ दूसरा था।

भद्रा कापिलायनी

यह 'भद्रा' मद्र देश के सागल की लड़की थी, पर इसका विवाह मगध में हुआ था। बुद्ध के मरने के बाद बौद्धसंघ में सबसे तेजस्वी और प्रतापशाली जो व्यक्ति था, उसी की यह पत्नी थी। उस व्यक्ति का नाम 'महाकाश्यप' था। उसके प्रताप की कहानी सभी बौद्ध-साहित्यप्रेमी जानते हैं। वह राजगृह के पश्चिमोत्तर कोण में स्थित 'तितिथया' ग्राम का निवासी था। इस ग्राम की पहचान आज 'तेतरिया' नाम से की जा सकती है।

महाकाश्यप का घरेलू नाम 'पिप्पली माणवक' था। वह मगध का एक अतिशय धनाढ्य और विद्वान् ब्राह्मण था। जब उसने बौद्धधर्म ग्रहण किया, तभी भद्रा भी गृहस्थ-जीवन त्यागकर सन्यासिनी हो गयी। बौद्धसंघ में तब स्त्रियों का प्रवेश निषिद्ध था। इसलिए यह अपने ही 'तितिथया' ग्राम के जैनसंघ में भिक्षुणी होकर रहने लगी। इसी 'तितिथयाराम विहार' में इसने पाँच वर्षों तक साधना की, किन्तु साधना काल में भी पतिभक्ति से कभी विमुख नहीं हुई। बाद जब बौद्धसंघ में प्रजापति गौतमी भिक्षुणी बनकर आयीं, तब यह भी जैनधर्म छोड़कर पति के पदानुसरण में बौद्ध भिक्षुणियों में सम्मिलित हो गयी। इसने प्रजापति गौतमी से बौद्धधर्म की दीक्षा ली। इसके पति ने जब अर्हत्व प्राप्त कर लिया, तब इसने भी कठोर साधना करके अर्हत्व प्राप्त किया।

यद्यपि इसने बौद्धधर्म ग्रहण किया था, तथापि इसकी दृष्टि में बुद्ध के बाद सबसे ऊँचे 'महाकाश्यप' ही थे। यह जहाँ भी रहती, सर्वदा अपने पति महाकाश्यप के ही गुणों का गान करती रहती। यह कहती थी—'शान्त समाधिनिष्ठ महाकाश्यप भगवान् बुद्ध के योग्य उत्तराधिकारी पुत्र हैं।'

महाकाश्यप का गोत्र कापिलायन था, अतः यह भी अपने को 'भद्रा कापिलायनी' कहती थी। इसने बुद्ध-शासन की तीनों विद्याओं (पूर्वजन्म-ज्ञान, जन्म-मरण ज्ञान और आस्रवक्षय ज्ञान) का साक्षात्कार कर लिया था। मृत्यु पर भी विजय लाभ किया था।

यद्यपि जीवन भर भद्रा ने दाम्पत्य जीवन का सुखभोग नहीं किया, तथापि सदैव पति-परायणा बनी रही। जब महाकाश्यप ने बौद्धधर्म ग्रहण नहीं किया था, तब भी भद्रा के साथ उनका दैहिक सम्बन्ध कभी न रहा। पर भद्रा ने भारतीय नारियों की चारित्रिक ऊँचाई को अपनी पति-परायणता से और भी ऊँचा उठाया था।

शुक्ला

बौद्धधर्म में जितनी भी बौद्ध भिक्षुणियाँ थीं, उनमें राजगृह की दो नारियाँ ऐसी थीं, जिनके धर्मज्ञान और वक्तृत्व शक्ति के आगे दूसरी कोई भिक्षुणी नहीं ठहरती। राजगृह की इन दो नारियों के नाम थे—धर्मदिन्ना और शुक्ला।

धर्मदिन्ना की शिष्या थी सुक्का। इसका जन्म राजगृह के एक सम्भ्रान्त परिवार में हुआ था। बौद्धसंघ की ओर से महोपदेशिका के रूप में यह नियुक्त थी। यह बड़ी ही ओजस्विनी भाषा में भाषण करती थी। बड़े-बड़े सभा सम्मेलनों में इसकी वक्तृत्व शक्ति और भी प्रखर हो जाती थी। इसके भाषण सुनने के लिए अनेक नर-नारी चातक की नाईं प्यासे और टक लगाये रहते थे। हजारों-हजार श्रोता मंत्रमुग्ध हो इसका भाषण सुनते घंटों बैठे रह जाते थे। इसके भाषण के सम्बन्ध में लोगों की धारणा थी कि इसने किसी देवता को सिद्ध करके वक्तृत्व-कला में ऐसी सिद्धि प्राप्त की है। बौद्ध साहित्य बतलाता है कि राजगृह की इस भिक्षुणी के भाषण सुनकर वन्य पशु पक्षी और पेड़ पौधे भी स्तब्ध रह जाते थे। ज्ञानी पुरुष तो प्यासे पथिकों की नाईं वर्षा के निर्मल जल की तरह इसकी अमृत-वाणी का पान करते कभी अघाते न थे।

धर्मदिन्ना

धर्मदिन्ना भी राजगृह में जनमी थी। यह एक वैश्य सेठ की पुत्री थी। इसका विवाह राजगृह के ही एक श्रेष्ठिपुत्र से हुआ था, जिसका नाम विशाख था। यह बड़ी ही पति-परायणा और धर्मभावना-निष्ठ नारी थी।

इससे पहले इसके पति 'विशाख' के ही मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ। उसने एक रात भोजन करते समय, जब यह पास ही बैठी भोजन करा रही थी, इससे कहा—"प्रिये! मैं अब तुम्हारे प्रेम का पात्र नहीं रहा। मेरा मन वैराग्य की ओर मुड़ गया। अब मैं भगवान् बुद्ध के संघ में जाऊँगा। मुझसे तुम्हें अब किसी तरह की सुख-प्राप्ति नहीं होगी। तुम मेरा सारा धन लेकर अपने पिता के घर चली जाओ और वहीं सुख से जीवन बिताओ।"

पहले तो इसने पति को कुछ समझाने की चेष्टा की, पर बात बनती न देखकर इसने कहा—"स्वामिन, मेरे सब-कुछ आप ही हैं। मैं पिता के घर नहीं जाऊँगी और न आपका धन ही लूँगी। अब मैं भी आपके ही मार्ग का अनुसरण करूँगी।"

दोनों साथ-ही साथ बौद्धसंघ में प्रव्रजित हुए। अपने अपने पराक्रम के अनुसार साधना की सिद्धि में दोनों लग गये, किन्तु साधना में पत्नी ने पति से बाजी मार ली। चित्त-वृत्तियों पर इसने शीघ्र ही विजय प्राप्त कर ली। धर्म के तत्त्वज्ञान में भी इसने अपने पति से अधिक सिद्धि अर्जित कर ली। सम्पूर्ण बौद्धसंघ में इसके जोड़ की पण्डिता कोई भिक्षुणी नहीं थी। धर्म-प्रचार-कार्य में जितनी भी भिक्षुणियाँ लगी थीं, उनमें इसका स्थान प्रथम था। इसका दावा था कि जड़ व्यक्ति भी यथोचित साधना करे, तो वह चित्त-वृत्तियों का दमन कर लेगा और उसे विषय भोग की लालसा से मुक्ति मिल जायगी। इसके भाषण का मुख्य विषय होता था—नियावाद में पूर्ण निष्ठा और आचरण। इस तरह के आचरण करनेवाले को यह 'ऊर्ध्वस्रोत' कहती थी।

'मज्झिमनिकाय' (१, ३, ४) से पता चलता है कि इसके पति विशाखा ने इसके पास जाकर सत्काय, सत्काय समुदय, सत्काय-निरोध, सत्काय निरोधगामिनी प्रतिपद्, उपादान, उपादान-स्कन्ध, सत्कायदृष्टि आदि अनेक विषयों का ज्ञान उपलब्ध किया था। स्वयं बुद्ध इसके धर्मज्ञान से मुग्ध थे। उन्होंने भरी परिषद् के बीच राजगृह की इस भिक्षुणी के सम्बन्ध में कहा था —'धमदिन्ना महापण्डिता है, महाप्रज्ञा है।'

इस तरह, हम देखते हैं कि मौर्यकाल के पूर्व बिहार की नारियाँ पाण्डित्य, धर्मनिष्ठा, दार्शनिकता, भाषण पटुता और ज्ञान गरिमा में पुरुषों की बराबरी करती थीं।

ऊपर जिन नारियों की चर्चा है, उनके अतिरिक्त भी उस काल में वैशाली की वत्सा, छला, जयन्ती, विमला, वासिष्ठी, रोहिणी, अम्बपाली तथा मगध की शुभा, चापा, चाला, उपचाला, शिशुपचाला, विजया, सोमा, दन्तिका, सालवती, अभयमाता, मैत्रिका, चित्रा आदि बड़ी ही प्रतिभाशालिनी नारियाँ हमें बौद्ध साहित्य में मिलती हैं।

●●

बिहार में स्त्रीशिक्षा और शैक्षणिक संस्थाएँ

श्रीरामेश्वर शर्मा 'नयन', बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना

भारतीय स्वाधीनता प्राप्ति के पद्रह वर्ष व्यतीत हो चुके। इस अवधि में राजनीतिक परिस्थितियों के साथ-साथ देश के सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षणिक क्षेत्रों में भी महान् परिवर्त्तन हुए हैं। समाज की प्राचीन रूढ़ियाँ छिन्न-भिन्न हुई हैं। देश प्रगति के प्रशस्त पथ पर अग्रसर होता चल रहा है। पुरुषों की भाँति स्त्रियों में भी चेतना की लहर दौड़ गयी है। पर्दा प्रथा, छूत अछूत की प्रथा, ऊँच-नीच की भावना, स्त्री पुरुष में छोटाई बड़ाई का भेद धीरे धीरे मिटता जा रहा है। अब स्त्रियाँ काल जर्जर शृंखला की कड़ियाँ तोड़कर द्रुत गति से विकास के पथ पर बढ़ती जा रही हैं।

भारत के नये संविधान में स्त्री पुरुष दोनों को समान राजनीतिक तथा सामाजिक अधिकार प्राप्त हैं। वस्तुतः स्त्रियाँ समाज या परिवार रूपी रथ के उन चक्कों के समान हैं, जिनके अभाव में रथ चल ही नहीं सकता। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर नौकरियों तथा अन्य क्षेत्रों में भी पदों या अवसरों की समानता उन्हें प्रदान की गयी है।

स्त्रियों के जीवन की वास्तविकता और उपयोगिता का ज्ञान हम भारतीयों को अति प्राचीन काल से ही उपलब्ध है, तथापि मध्ययुग में सदियों की दासता के फलस्वरूप कुछ कुप्रवृत्तियों ने हमारी बुद्धि पर पर्दा डालकर हमारे ही द्वारा हमारी देवियों का अनिष्ट

कराया। फलतः, घर की चहार-दीवारी के भीतर, नियन्त्रण के भारी बोझ से दबकर, हमारी देवियों की वाणी मौन और भावनाएँ अप्रस्फुटित रहीं तथा व्यक्तित्व कुंठित रह गया।

स्त्रीशिक्षा और बिहार

भारत के इतिहास में बिहार को जो गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है, वह सर्वविदित है। बिहार का अतीत इतना देदीप्यमान है कि आज भी संसार का अर्द्धांग उसी की ज्योति पाकर उद्भासित हो रहा है। अति प्राचीन काल से ही यह बिहार वसुन्धरा ज्ञान यज्ञ की कर्मभूमि रही है। सर्व गोविन्द बुद्ध के साथ ही तमसो मा ज्योतिर्गमय का मन्त्रद्रष्टा यह बिहार ज्ञान का वह प्रकाश-स्तम्भ था, जिसकी ज्योति से सारे भारत को क्या, विश्व को भी विभासित होने का अवसर प्राप्त हुआ था।

प्राचीन काल में बिहार की महिलाओं ने पुरुषों के कन्धे से कन्धा भिड़ाकर जितने भी कार्य किये, उनमें शिक्षा प्रचार-सम्बन्धी साहाय्य-प्रदान विशेष उल्लेख्य है। शिक्षा जगत् में बिहारी महिलाओं ने वैदिक काल से ही अभूतपूर्व चमत्कार कर दिखलाया है। आदिकाल में बिहार की महिलाओं ने पुरुषों को अपरिमित शास्त्रीय सहयोग प्रदान किया। गार्गी, मैत्रेयी, भारती, लखिमा आदि आदर्श महिलाएँ इसी बिहार की वह चन्द्रकान्त मणि थीं, जिनके प्रकाश में शताब्दियों तक भारतीय दर्शन जगत् प्रकाशित होता रहा। उस काल में, अरण्य गुरुकुलों में ब्रह्मचारियों के साथ ब्रह्मचारिणियाँ भी रहा करती थीं।

वेदकालीन स्त्रीशिक्षा

प्राग्वैदिक काल में नारी जाति को पुरुष-जाति से उच्चतर स्थान उपलब्ध था। भारतीय संस्कृति में स्त्रियों का लौकिक स्थान एक विशिष्ट दार्शनिक पद्धति पर निरूपित है, जिसके अनुसार परब्रह्म का स्वत्व उसकी आदिशक्ति पर ही आश्रित है। इस आदिशक्ति के कारण ही वह भारतीय दर्शन में परम शक्तिमान् के रूप में प्रतिष्ठित है। ब्रह्म गुणी है और आदिशक्ति उसके गुण, जिससे वह स्वतः आच्छादित रहता है—ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।[1]

गुण-रूपी यही महाशक्ति ज्ञान, बल, क्रिया आदि अनेक रूपों में उस महाशक्तिमान् की सहकारिणी एवं सहधारिणी बनी रहती है। वह शक्ति परा एवं अपरा प्रकृति भी कहलाती है। भारतीय संस्कृति के सुदीर्घ इतिहास में स्त्रियों का यह आधारभूत महत्त्व सर्वथा अक्षुण्ण रहा है। ऋग्वेद में स्त्रियाँ, लौकिक एवं पारलौकिक दोनों ही क्षेत्रों में, कल्याणकारिणी सत्ता के रूप में आयी हैं, पर वर्त्तमान काल में प्रसिद्ध धन की देवियों में लक्ष्मी, शक्तियों में देवी दुर्गा आदि की तरह ही वैदिक साहित्य में भी अदिति, उषा, इन्द्राणी, भारती, श्रद्धा आदि वैदिक देवियाँ अनेक सत्त्वों की अधिष्ठात्री कही गयी हैं। इनमें अदिति

१. ऋग्वेद, मनु० १।

सबसे अधिक शक्तिशालिनी मानी गयी है। अदिति ही अन्तरिक्ष, माता, पिता, पुत्र आदि की प्रतीक है—

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।[1]

इन्हीं मान्यताओं पर उस युग में 'दम्पति' शब्द का प्रयोग पत्नी के लिए भी होता था। समाज में उनको समान प्रतिष्ठा तथा मान्यता प्राप्त थी। वे पशु-रक्षिणी एवं वीर प्रसविनी दोनों हुआ करती थीं। यज्ञानुष्ठान तथा अन्य उत्सवों में वे खुलकर भाग लेती थीं। उस काल की अनेक स्त्रियाँ उच्चतम शिक्षा प्राप्तकर ब्रह्मवादिनी तथा ऋषिका की संज्ञा भी प्राप्त कर चुकी थीं। ये ऋषिकाएँ मन्त्रस्रष्ट्री एवं मन्त्रद्रष्ट्री दोनों ही थीं। ऋग्वेद की 'विश्ववारा' परम विदुषी थीं। उन्होंने ऋग्वेद के पाँचवें मण्डल के द्वितीय अनुवाक के अठाईसवें सूक्त की रचना की थी। इसी प्रकार, वैदिक काल में बिहारी महिलाओं ने शिक्षा के क्षेत्र में कितने ही आश्चर्यजनक करतब कर दिखाये थे। ऋग्वेद में वर्णित देश (मगध) भी तत्कालीन शिक्षा का केन्द्र बिन्दु था।

बिहार की वैदिकोत्तरकालीन स्त्रीशिक्षा

वेदों के बाद ब्राह्मण ग्रंथों और उपनिषदों के पर्यालोचन से भी ज्ञात होता है कि इनके काल तक पहुँचकर शिक्षा के क्षेत्र में बिहार की महिलाओं का प्रमुख हाथ हो चुका था। उपनिषद्-साहित्य में बिहार की महिलाओं का गौरवपूर्ण स्थान है। इनका ज्ञान बहुत ही उच्चकोटि का था। ये महिलाएँ धार्मिक सम्मेलनों में भाग लेकर अपनी विद्वत्ता का परिचय देती थीं। मिथिलेश जनक की सभा में याज्ञवल्क्य तथा वाचक्नवी और गार्गी के प्रश्नोत्तर इतिहास प्रसिद्ध हैं। अपनी प्रतिभा तथा अपने तर्क से गार्गी ने समस्त विद्वानों को आश्चर्य में डाल दिया था। उसके प्रश्नों से याज्ञवल्क्य बड़े प्रभावित हुए थे।

अतिप्रश्ना वै देवतामतिपृच्छति में गार्गी ने गूढ़ातिगूढ़ दार्शनिक प्रश्नों की व्यवस्था चाही थी। बहुमूल्य आभूषणों की अपेक्षा मैत्रेयी के लिए दर्शन ज्ञान कहीं अधिक रुचिकर था। गूढ़ आध्यात्मिक विषयों के सम्बन्ध में वह अपने पति से शंका-समाधान करती रहती थी—

सा होवाच मैत्रेयी। येनाहं नामृता स्याम् किं तेन कुर्यामिति।[2]

बिहार की महिलाओं में ज्ञान की इस अभिव्यक्ति के साथ साथ संगीत एवं अन्य सांस्कृतिक ललित कलाओं के प्रति भी अटूट श्रद्धा थी।

बिहार में स्त्रीशिक्षा और सूत्रकाल

शिक्षा के क्षेत्र में बिहारी स्त्रियों की वैदिक परंपरा सूत्रकाल में भी जीवित थी। उस काल में स्त्रियों के दो भेद मिलते हैं—ब्रह्मवादिनी तथा सद्योवधू। ब्रह्मवादिनी स्त्रियों में

---

१ ऋग्वेद, अदिति वर्णन प्रसंग।

२ छान्दोग्योपनिषद्।

उपनयन की व्यवस्था उस काल में मिलती है। पत्नी होने के पूर्व स्त्रियों को अनिवार्यरूपेण शिक्षित होना पड़ता था।

न हि खलु अनधीत्य शक्नोति पत्नी होतुमिति ।[1]

इसी तरह की मिलती-जुलती बात यमस्मृतिकार ने भी कही है—

पुराकल्पे तु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते ।
अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवचनं तथा ॥[2]

बिहार में मौर्यकाल तक स्त्रियों के उपर्युक्त अधिकार अक्षुण्ण रहे। मौर्यकालीन कवयित्रियों में 'विद्या' अथवा 'विज्जका' नाम की कवयित्री की रची हुई एक पुस्तक प्राप्त हुई है। उस पुस्तक का नाम 'कौमुदी-महोत्सव' है। इसके अतिरिक्त सुभद्रा, मदलेखा, इन्द्रलेखा, भयदेवी आदि कितनी ही कवयित्रियाँ उस युग में बिहार की शोभा बढ़ाती थीं। इन कवयित्रियों की रचनाएँ उपलब्ध नहीं हो रही हैं, पर इनकी कीर्त्ति-कथा लुप्त नहीं हुई है।

बिहार की दार्शनिक महिलाएँ

दर्शन के क्षेत्र में बिहार की उर्वरता को जो प्राथमिकता प्राप्त हुई है, उसका एकमात्र श्रेय है यहाँ की तत्कालीन विदुषियों के गंभीर दर्शन-ज्ञान को। राजा जनक को सर्वप्रथम जब विराग हुआ, तब उनकी धर्मपत्नी 'सुलभा' ने ही उन्हें गार्हस्थ्य धर्म की विशेषता समझायी थी। उसने ही उन्हें राजर्षि बनने को बाध्य किया था। उसी के सहयोग से उन्होंने गृहस्थ रहकर भी योग, समाधि और मोक्ष-जैसे गम्भीर विषयों पर चिन्तन और मनन किया था। स्वयं सुलभा ने ही इन दार्शनिक विषयों पर विद्वत्तापूर्ण प्रवचन उनके लिए किया था। जनक जैसे राजर्षि को महा ज्ञानी बनाने का सारा श्रेय सुलभा को ही प्राप्त हुआ।

उस अतीत युग में मिथिला-जनपद शिक्षा का वह केन्द्र था, जहाँ देश-विदेश के लोग आकर अपनी ज्ञान-पिपासा को तृप्त करते थे। षड्दर्शनकारों में कई मुनियों ने इसी बिहार की पावन भूमि पर जन्म ग्रहण किया था। उनकी पत्नियों ने उन्हें मनसा-वाचा-कर्मणा सहयोग दिया था। यही कारण है कि नर-नारी के पारस्परिक सहयोग से बना भारतीय दर्शन सर्वाङ्गपूर्ण है। दर्शन के अतिरिक्त अन्य विषयों में भी बिहारी महिलाओं ने दक्षता प्राप्त की थी। मण्डनमिश्र की विदुषी पत्नी 'भारती' ने अपने पति तथा शंकराचार्य के शास्त्रार्थ में निर्णायिका का काम किया था।

विधाय भार्यां विदुषीं सदस्यां विधीयतां वादकथा सुधीन्द्र ॥[3]

---

१. गोभिल-गृह्यसूत्र।

२. यमस्मृति, अ० १, श्लो० ४१।

३. शङ्करदिग्विजय।

रामायण-काल में जनकनन्दिनी सीता के कारण विहार का मस्तक गर्वोन्नत है। महाभारत के अनुसार जनक की सभा में अष्टावक्र की शिक्षिका एक ब्रह्मचारिणी वृद्धा थी। गार्ग्य ऋषि की पुत्रियाँ भी ब्रह्मचारिणी थीं। वे भी ब्रह्मचारियों को यथोचित शिक्षा देती थीं तथा मिथ.सम्भाषण करती थीं।

बौद्धकाल में भी स्त्रियाँ सांस्कृतिक विकास तथा सामाजिक सेवा के कार्यों में सहर्ष भाग लेती थीं। बौद्धसंघ की छत्रच्छाया में अनेक विहारी महिलाओं ने उच्चतम आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त किया तथा अपनी विद्वत्ता से संघ को भी गौरवान्वित किया। स्वयं बुद्ध ने उन सुयोग्य स्त्रियों को सराहा है, जिनमें धम्मदिन्ना प्रमुख थी। विहारी महिलाओं की इस गौरवमयी परम्परा के निर्वाह के लिए सम्राट् अशोक ने मगध से अपने पुत्र महेन्द्र के साथ अपनी पुत्री संघमित्रा को भी सिंहलद्वीप (लंका) भेजा था। बौद्ध साहित्य के अनुसार ब्रह्मचारिणी भिक्षुणियाँ भी पुरुष भिक्षुओं की आचार्या हुआ करती थीं।

बौद्धकाल के बाद मुस्लिम शासन ने इस देश की अपार ज्ञानराशि के भाण्डार—विश्वविद्यालयों और पुस्तकालयों—का सर्वनाश कर दिया। कहा जाता है कि केवल नालन्दा के पुस्तकालय की पुस्तकें जलाकर बख्तियार खिलजी के फौजी सिपाहियों ने कई महीनों तक भोजन बनाया था। नारियों के लिए यह विशेष संकट का समय था। उनकी स्वतंत्रता खतरे में पड़ गयी। उनकी लाज लुटने लगी। सुन्दरियों का अपहरण होने लगा। भारतीय भाषाओं का स्थान अरबी फारसी ने ले लिया। पर्दा प्रथा प्रबल हो उठी। नारियों की शिक्षा के लिए विद्यालय के द्वार प्रायः बन्द से हो गये। उनके अपहरण के कारण उनके सतीत्व के अस्तित्व का प्रश्न भी कठिन हो गया। कहते हैं कि इसी काल में अष्टवर्षा भवेद्गौरी जैसे वचन को आर्षवाक्य कहलाने का मौका मिला था। लोगों ने लड़कियों के जबरदस्ती अपहरण के आतंक से पीड़ित होकर सामाजिक मर्यादा की रक्षा के लिए कम उम्र में ही उनकी शादी करनी शुरू कर दी। इस तरह स्त्रियों की शिक्षा दीक्षा तो असंभव हो ही गयी, उन्हें स्वास्थ्य-रक्षा के लिए स्वच्छ वायु का सेवन भी दुर्लभ हो गया। घरों और पर्दों के घेरों में बन्द रहने के कारण उन्हें सुखमय जीवन व्यतीत करने से भी वञ्चित होना पड़ा। यदि सच पूछा जाय, तो नारियों का चौमुखी ह्रास इसी समय से होने लगा।

जब अँगरेजों का शासन-काल आया, तब धीरे धीरे स्त्रीशिक्षा का प्रचार बढ़ने लगा। किन्तु, उस काल में भी विहार में स्त्रीशिक्षा का यथेष्ट विकास नहीं हो सका। उसकी प्रगति बहुत मन्द ही रही। कहना चाहिए कि विहार की महिलाओं में उस समय भी बहुत ही कम सुशिक्षिता हो सकीं।

स्वतंत्रता-संघर्ष-कालीन विहार की स्त्रीशिक्षा

समय ने पलटा खाया। देश में स्वतंत्रता की लड़ाई छिड़ी। भारत के अन्य प्रदेशों की तरह विहार में भी इसकी लहर आयी। विहार की महिलाओं में भी जागरण उत्पन्न हुआ। उन्होंने भी पुरानी रूढ़ियाँ तोड़कर स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया। असहयोग और

अहिंसात्मक आन्दोलन तथा सन् १९४२ ई० के मुक्ति-संग्राम में 'भारत छोड़ो' का नारा लगाती बिहारी ललनाओं ने भी बहुत बड़ी संख्या में महात्मा गांधी का साथ दिया। बिहार की नारियों ने उसी समय पर्दा प्रथा के द्वारा फैली हुई कुप्रथाओं को समझा। इस सिलसिले में दरभंगा के सुप्रसिद्ध देशभक्त पं० रामनन्दन मिश्र का नाम सर्वप्रथम आता है। इन्होंने साबरमती-आश्रम से मनभाई, कुमारी राधा बहन और दुर्गाकुमारी बाई को बिहार में लाकर पर्दा-प्रथा के उन्मूलन का शंख फूँका तथा महिलाओं की शिक्षा के लिए मझौलिया (दरभंगा) में एक महिला विद्यापीठ की भी स्थापना की। उनके इस कार्य का यद्यपि उस काल में घोर विरोध हुआ, तथापि अपनी अटूट श्रद्धा के कारण उन्होंने बिहार के सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता बाबू व्रजकिशोर प्रसाद और सर गणेशदत्त जैसे महापुरुषों की सहायता प्राप्त की। इन लोगों के द्वारा प्रोत्साहित होकर उन्होंने महिला-शिक्षा-जगत् में क्रान्ति ला दी। बिहार-प्रान्त के कोने कोने में इस जागरण के प्रति लोग सचेत हो गये। राष्ट्रीय आन्दोलन ने महिलाओं की शिक्षा की प्रगति के साथ-साथ अन्य क्षेत्रों में भी महिला-आन्दोलन को प्रोत्साहन दिया। फलत, देशरत्न डॉ० राजेन्द्र प्रसाद तथा अन्य नेताओं ने, सन् १९२८ ई० की १० मई को एक प्रस्ताव पारित कराकर, बिहार से पर्दा-प्रथा के उन्मूलन के लिए लोगों से अपील की। इसका समाज पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। क्रमशः लोग अपनी बहू-बेटियों को शिक्षा देने में अग्रसर होने लगे। इस प्रकार, बिहार के नारी समाज में नवयुग की चेतना जगने लगी। हवा का रुख पाकर महिलाओं में सामाजिक, राजनीतिक तथा शैक्षणिक क्रान्ति ने उग्र रूप धारण किया।

बिहार की जिन महिलाओं ने राष्ट्रीय जागरण के पहले शिक्षा के क्षेत्र में पूर्णरूप से सहयोग प्रदान किया था, उनमें स्व० डॉ० सच्चिदानन्द सिन्हा की धर्मपत्नी श्रीमती राधिका सिन्हा तथा श्रीमती विद्यादेवी के नाम स्मरणीय हैं। पटना की सुप्रसिद्ध सिन्हा लाइब्रेरी एवं लक्खीसराय (मुँगेर) का बालिका-विद्यापीठ क्रमश इनके कीर्ति स्तम्भ के रूप में आज भी कार्यरत हैं।

यद्यपि १९०४ ई० में लार्ड कर्जन ने स्त्रीशिक्षा के सम्बन्ध में कुछ सुझाव पेश किये थे, तथापि उसका विशेष असर बिहार पर नहीं पड़ा था। उस समय वह बंगाल का पुछल्ला था। सन् १९१३ ई० में पुन स्त्रीशिक्षा-सम्बन्धी विधान बना। उसका अच्छा असर हुआ। सन् १९२१-२२ ई० तक सारे भारत में स्त्रीशिक्षा की लहर दौड़ गयी। परन्तु, फिर भी बिहार में उस समय तक अच्छे माध्यमिक बालिका-विद्यालयों एवं महिला कॉलेजों का अभाव-सा था। प्राथमिक शिक्षा भी करीब-करीब बालकों के साथ ही मिल-जुलकर उन्हें प्राप्त करनी पड़ती थी। सन् १९२१ से १९३७ ई० तक यही स्थिति बनी रही। इस लम्बी अवधि में मिस्टर हार्टग के प्रयास से एक कमिटी ने भारत में स्त्रीशिक्षा के प्रसार और सुधार के लिए काफी प्रयत्न किया। उसी समय से बिहार में लड़कियों के लिए माध्यमिक शिक्षा के साथ-साथ उच्च शिक्षा का भी द्वार खुला।

इस समय बिहार के जिला नगरों में तो स्त्रीशिक्षा के लिए उच्चांग्ल-विद्यालय और कला-महाविद्यालय खुल ही गये हैं, पर भारतीय प्रणाली का ध्यान रखते हुए स्त्रीशिक्षा के उन्नयन में नवीनराय (मुँगेर) और मझौलिया (दरभंगा) के महिला विद्यापीठ प्रशंसनीय कार्य कर रहे हैं। पटना, राँची, मुजफ्फरपुर, भागलपुर, छपरा, दरभंगा, आरा, गया, मुँगेर आदि प्रमुख नगरों में केवल महिलाओं की उच्च शिक्षा के लिए जो सुसंचालित और सुव्यवस्थित कॉलेज हैं, वे दिन-दिन प्रगति-पथ पर अग्रसर हो रहे हैं। कई बड़े नगरों में तो महिला-प्रशिक्षण-महाविद्यालय भी सफलता से चल रहे हैं। कहा जाता है कि स्त्रीशिक्षा-प्रचार में पटना के बाद मुँगेर का ही स्थान है। यहाँ के पुराने हिन्दी-साहित्यसेवी श्रीश्यामललितजी अनेक वर्षों से हिन्दी साहित्य के अध्ययन अनुशीलन में बालिकाओं का पथ प्रदर्शन कर रहे हैं। उनके अध्यापन-कौशल से हिन्दी की साहित्यिक परीक्षाओं में अनेक महिलाओं ने सराहनीय सफलता पायी है। उनके समान वयोवृद्ध साहित्यकार की एकान्त साधना बिहार के महिला-शिक्षा-जगत् में अपूर्व और अतुलनीय है।

बिहार के महिला शिक्षा जगत् में प्राचार्या नन्दी, प्राचार्या शकुन्तला शर्मा, प्राचार्या शारदा वेदालंकार, डॉक्टर श्रीमती गीतालाल, प्रोफेसर सम्पत्ति अर्याणी, प्रो० रत्नाकुमारी शर्मा, प्रो० शान्ति उपाध्याय, श्रीमती कलावती त्रिपाठी, श्रीमती यमुना वर्मा, सुश्री आयशा अहमद आदि विदुषी देवियों की उपलब्धियाँ और सेवाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। इन प्रगतिशीला देवियों के अतिरिक्त जिन्होंने राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार से अपनी अदम्य कर्मठता दिखलायी है, उनमें श्रीमती लक्ष्मी मेनन, श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा, श्रीमती रामदुलारी देवी, श्रीमती रामप्यारी देवी, श्रीमती मनोरमा देवी, श्रीमती मनोरमा वर्मा श्रीमती किशोरी देवी, श्रीमती सुमित्रा देवी, श्रीमती राजकुमारी देवी, श्रीमती सरस्वती देवी, श्रीमती शान्ति गुर्टू, श्रीमती शान्ति 'रमण', श्रीमती विन्ध्यवासिनी देवी, सुश्री लीलावती सिन्हा, श्रीमती स्वर्णलता प्रसाद, श्रीमती प्रभावती गुप्त, श्रीमती विद्यावती गुप्त, श्रीमती कुमुद शर्मा, श्रीमती उमा सिन्हा, सुश्री नीलिमा वसु, श्रीमती अरुणा हाल्दार आदि के नाम भी प्रशस्त हैं।

बिहार के स्त्रीशिक्षा-सम्बन्धी विद्यालयों और महाविद्यालयों में कितनी ही विदुषी महिलाएँ बड़ी योग्यता और सफलता से अध्यापन कार्य कर रही हैं। बिहार के नारी-समाज के विकास और अभ्युदय में उनकी सेवाएँ बड़े महत्त्व की मानी जायँगी।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद बिहार में स्त्रीशिक्षा

स्वाधीनता मिलने के बाद बिहार की स्त्रियों ने शिक्षा के क्षेत्र में आशातीत सफलता प्राप्त की है। आजादी मिलने के पहले यहाँ केवल बालिकाओं के लिए विद्यालय तक कम पाये जाते थे, वहाँ अब महाविद्यालयों की संख्या बढ़ती जा रही है। सम्प्रति बिहार में ५०·७ प्रतिशत बालिकाएँ पढ़ रही हैं। आज से दस वर्ष पूर्व बिहार के माध्यमिक

विद्यालयों में १३३८ लड़कियाँ पढ़ती थीं, परन्तु आज उनकी संख्या १८,५०० हो गयी है। करीब दस प्रतिशत छात्राएँ माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा पा रही हैं। दो हजार शिक्षिकाएँ भी उनके अध्यापन-कार्य में संलग्न हैं। समस्त बिहार-राज्य में लगभग डेढ़ सौ उच्चांग्ल-विद्यालय हैं, जिनमें ७०,००० छात्राएँ पढ़ती हैं और २५०० अध्यापिकाएँ पढ़ाती हैं।

विश्वविद्यालय-स्तर की शिक्षा में भी बिहारी महिलाओं ने आजादी के बाद अपूर्व उत्साह दिखलाया है। आजादी के पहले भी कुछ महिलाओं ने इसमें अपना प्रवेश सिद्धिकार प्राप्त किया था; किन्तु आजादी के बाद तो इस दिशा में स्पृहणीय प्रगति हुई है। बी० ए० (ऑनर्स), एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्० आदि उपाधियाँ भी यहाँ की महिलाओं ने प्राप्त की हैं। प्रयाग के साहित्य-सम्मेलन और देवघर-विद्यापीठ की हिन्दी परीक्षाओं में भी बिहारी महिलाओं की सफलताएँ आशा और उत्साह बढ़ानेवाली हैं। बहुत संभव है कि निकट भविष्य में बिहार के गाँवों की देहाती स्त्रियाँ भी शिक्षा के आलोक से वंचित न रह सकेंगी।

बिहार में महिलाओं की वर्त्तमान स्थिति

श्रीमन्मथकुमार पाठक, बी० ए०; जनगणना-कार्यालय, पटना

आदि काल से आजतक नारी, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, पुरुषों की सहयोगिनी रही है। यदि पुरुषों ने अपने कार्यों द्वारा युगों के प्रवाहों को मोड़ा है, तो ऐसे भी उदाहरण हैं कि नारियों ने भी नवीन इतिहासों का निर्माण किया है। भारतीय इतिहास जितना पुरुषों की वीर-गाथाओं से पूर्ण है, उतना ही नारियों के आत्मत्याग से भी दीप्त है।

कहा गया है—यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता.। मनु की इस उक्ति से स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय विचार-धारा नारी को कितना सम्माननीय एवं महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान करती है। परन्तु, क्या नारी वस्तुतः समाज द्वारा इतनी ही पूज्य, इतनी ही सम्मान्य समझी गयी है? यह प्रश्न स्वभावतः उठ खड़ा होता है और जब हम इसका उत्तर खोजने के लिए अपने समाज में नारी की स्थिति का सहृदयता से निरीक्षण परीक्षण करते हैं, हमारा मस्तक लज्जा से झुक जाता है। हमारे सम्मुख समाज का वह रूप उभर उठता है, जो नारी जाति की दासता की कहानी को ही अपने अन्तर में छिपाये हुए है।

हाँ, प्राचीन भारतीय समाज अवश्य उक्त कथन का अपवाद है। प्राचीन से हमारा मतलब वैदिक युग के भारतीय समाज से है; क्योंकि उस युग में नारी वस्तुतः सम्मानित थी; उसे समाज में उच्च स्थान प्राप्त था। वैदिक युग के पश्चात् के समाज का इतिहास पुरुषों की

बेड़ियों और सामाजिक बन्धनों में जकड़ी हुई नारी का इतिहास है, जिसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

भारत के अन्य राज्यों की अपेक्षा हमारे बिहार राज्य में महिलाओं की स्थिति सुधरी हुई नहीं कही जा सकती। बिहार राज्य में आज वस्तुत महिलाओं की क्या स्थिति है, यह गत सन् १६५१ ई० और सन् १६६१ ई० की जनगणनाओं के आँकड़ों से स्पष्ट हो जाता है। इस राज्य की जन-सख्या की वृद्धि में महिलाओं की सख्या-वृद्धि भी शामिल है। सन् १६५१ ई० की जनगणना के अनुसार बिहार में महिलाओं की कुल सख्या १,६२ ६३,२१८ थी, पर सन् १६६१ ई० की जनगणना के अनुसार यह बढकर २,३१,५४, १६१ हो गयी। तात्पर्य यह कि दस वर्ष की अवधि में ही ३८,६०,६४३ की वृद्धि हुई।

ध्यान देने की बात यह है कि इस राज्य में कुछ जिले ऐसे हैं, जहाँ महिलाओं की कुल सख्या पुरुषों की कुल सख्या से कहीं अधिक है। गया जिले मे महिलाओं की कुल सख्या पुरुषों की कुल सख्या से १८,५४४ अधिक है। इसी प्रकार, सारन जिले में ऐसी सख्या २,२६,२४८, मुजफ्फरपुर जिले में ६४,२१८ और दरभगा जिले में १,२७,२६७ है।

जहाँतक शिक्षित महिलाओं का प्रश्न है, सन् १६५१ ई० की जनगणना के अनुसार इनकी सख्या ८,३६,७६० थी, पर सन् १६६१ ई० तक यह सख्या बढकर १५,६६,८७८ हो गयी है। स्पष्ट है कि गत दस वर्षों में महिलाओं की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया, फलस्वरूप शिक्षित महिलाओं की सख्या में ७,५७,११८ की अतिरिक्त वृद्धि हुई।

सन् १६६१ ई० की जनगणना के अनुसार शिक्षित महिलाओं में साक्षर महिलाओं की सख्या १३,४३,३२२ है। बाकी प्राथमिक शिक्षा-प्राप्त महिलाओं की सख्या १,४५,३०२ है। इसके अलावा माध्यमिक, उच्चतर माध्यमिक एव विश्वविद्यालय की उपाधि पाई हुई महिलाओं की सख्या सम्प्रति बिहार में १२,००० है, जिनमें ४१६ प्रशिक्षित शिक्षिकाओं, २२३ प्रशिक्षित चिकित्सिकाओं एव ६ तकनीकी शिक्षा प्राप्त महिलाओं की सख्या भी सम्मिलित है। बाकी अशिक्षित महिलाओं की सख्या १५,५७,२८३ है।

सन् १६५१ ई० की जनगणना के अनुसार बिहार राज्य में अनुसूचित जाति एव अनुसूचित जनजाति की महिलाओं की कुल सख्या क्रमश २५,५०,७४४ और २०,३१, ७६६ थी, पर सन् १६६१ ई० के अनुसार वह सख्या क्रमश ३३,१७,६४० और २१,१६, ७७६ है। इसी प्रकार, सन् १६५१ ई० की जनगणना के अनुसार, खेतिहर मजदूर महिलाओं की सख्या २,१२,५१७ थी, जो सन् १६६१ ई० में बढकर ३४,३५,६१४ हो गयी।

बिहार-राज्य की सन् १६६१ ई० की जनगणना के आधार पर विभिन्न कार्यों में लगी हुई शिक्षित एव अशिक्षित महिलाओं के आँकड़े भी सकलित किये गये, जिनके अनुसार खान-मजदूर महिलाओं की सख्या १,१०,६७२, गृह-उद्योग में लगी महिलाओं की सख्या ४,५४,६४२ और वस्तु उत्पादन के धन्धे में लगी महिलाओं की सख्या ४०,५०० है।

सन् १९५१ ई० की जनगणना के अनुसार व्यापार में लगी महिलाओं की संख्या ३४,७०८ थी, जो सन् १९६१ ई० तक बढ़कर ७४,४६२ हो गयी। इस प्रकार, स्पष्ट है कि गत दस वर्षों में व्यापार के क्षेत्र में भी महिलाओं का योगदान अधिक ही रहा है।

इसी तरह, यातायात सेवा में संलग्न महिलाओं की संख्या सन् १९५१ ई० की जनगणना के अनुसार २,१३७ थी, जो सन् १९६१ ई० में बढ़कर २,७८० हो गयी।

सन् १९६१ ई० की जनगणना के अनुसार अन्यान्य सेवा-कार्यों में लगी हुई महिलाओं की कुल संख्या ३,०६,६४१ है, जिसमें विभिन्न कार्यालयों में काम करनेवाली तथा सैन्य-सेवा में संलग्न महिलाओं की संख्या भी सम्मिलित है। इसके अलावा १,६८,७५,००५ महिलाएँ ऐसी हैं, जो किसी प्रकार का काम नहीं करतीं। इनमें बच्ची, बूढ़ी, रोगी (आश्रित) और गृहिणी की संख्या ही सम्मिलित है। शेष संख्या बेकार महिलाओं की है।

जहाँतक बिहार में महिलाओं की वैवाहिक स्थिति का प्रश्न है, सन् १९५१ ई० की जनगणना के समय, इसपर विशेष ध्यान नहीं दिया गया था, जिससे इसके सही आँकड़े प्राप्त न हो सके थे। लेकिन, सन् १९६१ ई० की जनगणना के समय इसपर विशेष ध्यान दिया गया और इसके विभिन्न आँकड़े तैयार किये गये। तदनुसार, समस्त बिहार-राज्य में अविवाहिता महिलाओं की कुल संख्या ९१,५८,४१४, विवाहिताओं की १,१३,९९,०३८, विधवाओं की २५,२५,४०८ और तलाक दी हुई महिलाओं की कुल संख्या ५४,९९३ है। १६,३०८ महिलाएँ ऐसी हैं, जिनकी वैवाहिक स्थिति का ठीक-ठीक पता नहीं लग सका।

इस प्रकार, उपर्युक्त विवरण से, बिहार में महिलाओं की वर्त्तमान स्थिति का आभास मिल जाता है। अब हम ऊपर दिये गये आँकड़ों को एक नजर में देखें—

चक्र (क)

वर्ष	कुल महिलाओं की संख्या	अनुसूचित जाति	अनुसूचित जनजाति	शिक्षित	अशिक्षित
१९५१	१,९२,९३,२१८	२५,५०,७४४	२०,३१,७६६	८,३९,७६०	१,८४,५३,४५८
१९६१	२,३१,५४,१६१	३३,१७,९४०	२१,१६,७७६	१५,९६,८७८	२,१५,५७,२८३

काम का ब्योरा

वर्ष	कृषक	कृषि मजदूर	खान मजदूर	गृह उद्योग	वस्तु उत्पादन	निर्माण	व्यापार	यातायात	अन्य क्षेत्र	बेकार
१९५१	२,१२,५३७						३४,७०८	२,१३७	२,६२,३०७	
१९६१	३४,३५,६१४	१८,४४,२३६	२,१०,६७२	४,५४,६४२	४०,५००	६,००३	७४,४६२	२,७८०	३,०७,७४१	२,६८,७५,००५

चक्र (ख)

जनगणना १९६१, बिहार (शैक्षणिक स्तर)

कुल महिलाओं की संख्या	शिक्षित (साक्षरों को छोड़कर)	प्राथमिक एवं निम्न बुनियादी	माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक	तकनीकी (Tech Dip)	अ तकनीकी (Non Tech. Dip)	स्नातक एवं स्नातकोत्तर
२,३१,५४,९६२	१३,४३,२३२	२,१६,८२४	३१,२०० ग्रामीण क्षेत्रों में (६,७७८) माध्यमिक एवं उचशिक्षाप्राप्त	१६६	६३	४,७१५
				शहरी क्षेत्रों में		

जनगणना १९६१, बिहार (शैक्षणिक स्तर)

इंजीनियरिंग	चिकित्सा (Medical)	कृषि शास्त्र	पशु-चिकित्सा	टेक्नोलॉजी	शिक्षिकाएँ (प्रशिक्षित)	अन्य
	२२१			६	४१६	३
शहरी क्षेत्रों में						

चक्र (ग)

जनगणना १९६१, बिहार (वैवाहिक स्थिति)

कुल महिलाओं की संख्या	अविवाहिता	विवाहिता	विधवा	तलाक-प्राप्त	अनिश्चित
२,३१,५४,१६१	६१,५८,४१४	१,७३,६६,०३८	२५,२५.४०८	५४,६६३	१६,२०८

जनगणना के उपर्युक्त आँकड़ों पर विहङ्गम दृष्टिपात करने से यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि बिहार-राज्य में सन् १९५१ ई० की जनगणना के बाद महिलाओं की स्थिति में काफी सुधार हुआ है। सन् १९५१ ई० और सन् १९६१ ई० की इस दस वर्ष की मध्यावधि में बिहार की महिलाओं की उन्नति हर क्षेत्र में दृष्टिगोचर होती है। इस प्रकार का क्रमिक विकास भविष्य में भी होता रहा, जैसी आशा भी है, तो संभव है कि सन् १९७१ ई० की जनगणना तक बिहार की महिलाएँ हर क्षेत्र में बहुत आगे बढ़ी हुई दीख पड़ेंगी।

तृतीय पंचवार्षिक योजना में महिलाओं की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया है। लगभग पौने चार सौ कन्या-विद्यालय खोले जानेवाले हैं। अभी विभिन्न प्रशिक्षण केन्द्रों में महिलाओं के लिए कुछ निश्चित स्थान सुरक्षित रखे जाने की व्यवस्था की गयी है। बिहार में महिलाओं की स्थिति सुधारने के और भी कितने ही प्रयत्न, सरकार की ओर से और सार्वजनिक रूप में भी बड़े या छोटे पैमाने पर, हो रहे हैं। निकट भविष्य में उत्साह-वर्द्धक परिणाम के प्रकट होने की आशा है।

●●

तद्यज्जायामामन्त्रयतेऽर्धो ह वा एष आत्मनो यज्जाया।
तस्माद्यावज्जायां न विन्दते नैव तावत्प्रजायतेऽसर्वो हि तावद्भवति॥

—शतपथब्राह्मण, ५।२।१।१०

[अर्थात्, पत्नी निश्चय ही शरीर का आधा भाग है। अतः, जबतक पुरुष अपनी पत्नी को प्राप्त नहीं कर लेता, तबतक वह सन्तान नहीं पैदा कर सकता और जबतक वह सन्तान नहीं पैदा करता, तबतक वह अपूर्ण है।]

बिहार की पौराणिक महिलाएँ

श्रीलल्लन पाण्डेय, साहित्य-पुराणाचार्य, साहित्यालंकार; 'आर्यावर्त्त'-कार्यालय, पटना

भारतीय जन-जागरण में जैसे बिहार के पुरुष-सिंहों ने प्राचीन काल से ही प्रशंसनीय योगदान किया है, वैसे ही संस्कृति और सभ्यता के उन्नयन में सृष्टि के आदिकाल से ही बिहार की महिलाओं ने भी अपूर्व कर्म कौशल दिखाया है। जिस तरह बिहार ने राजर्षि जनक और याज्ञवल्क्य तथा गौतम बुद्ध और तीर्थङ्कर महावीर जैसी विभूतियाँ संसार को देकर ज्ञान और सुख शान्ति का प्रचार-प्रसार किया, उसी तरह महारानी सीता, अदिति, मैत्रेयी, गार्गी, कात्यायनी, प्रातिथेयी, वैशालिनी, सुकन्या, सुनयना, जरा आदि आदर्श महिलाओं को जन्म देकर उनके चरित्र तथा ज्ञान के प्रकाश से जगत् को आलोकित किया है।

महिलाएँ स्वयं शक्ति स्वरूपा हैं, जगज्जननी हैं। पुरुष उन्हीं से ज्योतित और प्रसारित हुए हैं। सभी शास्त्र पुराण प्रमाण हैं कि महिलाएँ जीवन के हर व्यापार-क्षेत्र में पुरुषों से आगे रही हैं। मार्कण्डेयपुराण और देवीभागवतपुराण ने तो स्पष्ट शब्दों में कहा है—

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः

स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।

अर्थात्, समस्त विद्याएँ और समस्त महिलाएँ देवी के रूप में ही हैं।—वास्तव में प्रकृति, बुद्धि, कीर्त्ति, श्री, लज्जा, शोभा, दीप्ति, नीति, विजय, सभी देवी स्वरूपा ही हैं।

जगज्जननी सीता

जगज्जननी सीता और मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र का विवाह वस्तुतः पौरुष और शक्ति का संयोग था। शक्ति से ही पुरुषार्थ चरितार्थ होता है। सीता ही राम की अमोघ शक्ति थीं। विधाता ने यह अच्छी जोड़ी मिलायी थी। जैसे रामचन्द्र वेद शास्त्रों के ज्ञाता थे, वैसे ही सीता भी अनेक विद्याओं में पारंगत थीं। जब कैकेयी ने रामचन्द्र को वनवास दिलवाया, तब राज्य के लोभ ने रामचन्द्र को अपने आदर्श से तनिक भी विचलित नहीं किया। सीता भी अपने पतिदेव के साथ वन जाने को तैयार हुई। वे पलँग और सिंहासन छोड़ पतिदेव के साथ नंगे पैर कंटकाकीर्ण वन-मार्गों पर चलती रहीं। अत्यन्त सुकुमार कोमलाङ्गी होने पर भी वे जंगल के सभी दुःखों को सहर्ष सह लेती थीं। साथ ही, अपने पतिदेव को भी तनिक दुःख नहीं होने देती थीं। लंका में भी वे अपने सत्य और धर्म से नहीं डिगीं। रावण ने उन्हें बहुत लोभ और भय दिखाया, लेकिन उन्होंने उसे कड़ी फटकार सुनायी, उसकी ओर कभी आँख उठाकर देखा तक नहीं। राम ने अपनी एक भी प्रजा की

असन्तुष्टि का सहन न करके सीता को निर्वासित किया। किन्तु, पति के सुख-सन्तोष को ही अपना सुख सन्तोष माननेवाली सीता पति-प्रेम में पगी भावित हुईं। निर्वासन-काल के समस्त कष्टों को सहकर भी उन्होंने पति के जीवन को कलंकित होने से बचाया। इसीलिए वाल्मीकीय रामायण में कहा है—

प्रेम्णानुवृत्त्या शीलेन प्रश्रयावनता सती।
धिया हृदा च भावज्ञा भर्त्तुः सीताहरन्मनः॥

प्रेम के व्यवहार से, विनम्रता से, गौरवान्वित स्थान प्राप्ति से, बुद्धि और हृदय से पति के विचारों को जाननेवाली विनम्र सती सीता ने, अपने पतिदेव के मन को आकृष्ट कर लिया।

ऐसी थीं सती सीमन्तिनी सीता।

मैत्रेयी और कात्यायनी

महर्षि याज्ञवल्क्य की दो स्त्रियाँ थीं—मैत्रेयी और कात्यायनी। कात्यायनी तपस्विनी थी, मैत्रेयी विदुषी। मैत्रेयी को उसके पिता मित्र ऋषि ने बचपन में ही वेद शास्त्र का अच्छा ज्ञान करा दिया था। याज्ञवल्क्य के साथ विवाह हो जाने पर मणि काचन संयोग हो गया। कई पुराणों में मैत्रेयी का वर्णन आया है। किन्तु, पुराणों की अपेक्षा वृहदारण्यक-उपनिषद् की भाषा रोचक और हृद्य है।

याज्ञवल्क्य जब वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करने की तैयारी करने लगे, तब उन्होंने अपनी सम्पत्ति अपनी दोनों पत्नियों म बाँट दी। मैत्रेयी को यह अच्छा नहीं लगा। उसने कहा—'पतिदेव, मैं धन लेकर क्या करूँगी? यदि धन से सुख होता—जीव अमरत्व प्राप्त करता, तो आप इसे छोड़कर क्यों जाते। इससे सिद्ध है कि इसमें सुख नहीं है।'

मैत्रेयी के तर्कपूर्ण कथन को सुनकर याज्ञवल्क्य बहुत प्रसन्न हुए। महर्षि ने कहा—'प्रियतमे। सुनो, जैसे पति से पत्नी की आत्मा को सुख प्राप्त होता है, वैसे ही पत्नी से पति की आत्मा को आनन्द-लाभ होता है। इसीलिए, कहा जाता है कि आत्मा के सुख के लिए ही पति पत्नी का सम्बन्ध है।'

इस तरह दम्पति के वाद विवाद के बाद ब्रह्मवादिनी मैत्रेयी ने अपने पतिदेव के चरणों का स्पर्श कर प्रणाम किया और कहा—

असतो मा सद् गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्माऽमृतं गमय।

अर्थात्, हे परमात्मन्! मुझे असत्य से हटाकर सचाई की राह पर ले चलो, अन्धकार से हटाकर प्रकाश म ले चलो, जीवन मरण के बन्धन से छुड़ाकर मुझे अमृतत्व (निर्वाण) पद प्रदान करो।

कहा जाता है, आजतक जितनी प्रार्थनाएँ शास्त्रों में हैं, उनमें मैत्रेयी की प्रार्थना सर्वोपरि है। इसीलिए, उपनिषद् में इसे स्थान प्राप्त है।

मैत्रेयी मिथिला की किसी विख्यात वैदिक पाठशाला में अध्यापिका का कार्य करती थी। तात्पर्य यह कि मैत्रेयी शिक्षादात्री भी थी। उसी युग से बिहार की महिलाएँ शिक्षिका का काम करती आ रही हैं।

प्रातिथेयी

देवी प्रातिथेयी महर्षि दधीचि की पत्नी थी। महर्षि दधीचि का जन्म गोदवरी-तीर पर बताया जाता है। किन्तु, जो दधीच्याश्रम छपरा जिले में सरयू के तट पर है, उससे प्रमाण मिलता है कि यहाँ उनका कार्य क्षेत्र था। उनकी पत्नी प्रातिथेयी उनके साथ रहती थी। पुराणों के वर्णनों से पता चलता है कि महर्षि दधीचि का आश्रम बिहार में सरयू तट पर अवश्य रहा होगा। आज भी छपरा नगर का सरयू तटस्थ 'दहियावाँ' महल्ला इसी कारण प्रसिद्ध है।

कहा जाता है, प्रातिथेयी ऐसी पतिव्रता थी कि कई अवसरों पर अपने पातिव्रत्य-धर्म के बल से अपने मृत पतिदेव को जीवित कर सकी थी। जिस समय महर्षि की हड्डियाँ तक दान में दी जा रही थीं, उस समय पति की आज्ञा से उसने चूँ तक न करके पतिदेव के बताये इस सिद्धान्त का पूर्णत. पालन किया—

उत्पद्यते यत्तु विनाशि सर्वं न शोच्यमस्तीति मनुष्यलोके।
गोविप्रदेवार्थमिह त्यजन्ति प्राणान् प्रियान् पुण्यभाजो मनुष्या ॥

—ब्रह्मवैवर्त्त पुराण, ११०।६३

अर्थात्, इस ससार में जो कुछ भी उत्पन्न होता है, सब-का-सब नश्वर है, इसीलिए इस मनुष्य-लोक में शोचनीय कोइ वस्तु नहीं है। इसी उद्देश्य की पूर्त्ति की दृष्टि से पुण्यवान् लोक अपने प्रिय प्राणों को भी गाय, विप्र और देवताओं के लिए त्याग देते हैं।

प्रातिथेयी को सरयू नदी और गोदावरी नदी बड़ी प्रिय थी। अपने आश्रम (दधीच्याश्रम= दहियावाँ) में वह महर्षि की अनुपस्थिति में विद्यार्थियों को पढाया करती थी। उसने अहिसा और दान धर्म का पूर्णरूपेण प्रचार किया। वह कहा करती थी—

गोविप्रार्थं वत्स मृत्युं मनेथा।

प्रातिथेयी ने पेड़-पौधों की भी सेवा की—पुत्रवत् उनके साथ व्यवहार किया। पेड़ और पुत्र में उसने तनिक भी भेद नहीं माना। उसके पुत्र का भरण पोषण पिप्पल-वृक्ष ने अपने पके फल खिलाकर किया था, इसीलिए उस पुत्र का नाम 'पिप्पलाद' रखा गया।

पिप्पलाद भी एक सिद्ध महात्मा हुए। वे सच्चे अतिथि सेवक थे। उनकी कथा महाभारत में वर्णित है। उनके यहाँ का नियम था कि अतिथि जो माँगे, दे दो। इसकी जाँच के लिए स्वय विष्णु आ गये। उनकी पत्नी से विष्णु ने रतिदान की याचना की।

पिप्पलाद की पत्नी ने कहा—'पुत्र-सहवास के लिए शृंगार करना जरूरी है, मैं शृंगार करने जा रही हूँ, कृपया आप विराजें।'

इसी बीच पिप्पलादजी पहुँच गये। पत्नी ने सारी कहानी कह सुनायी। पिप्पलाद को तनिक संकोच न हुआ। उन्होंने कहा—'गृहस्थ के लिए अतिथि देवता होता है। उसकी यही याचना है, तो तुम तैयार होकर जाओ।'

ऐसा आदेश मिलने पर पत्नी ने भी अतिथि से कहा—'हे अतिथिदेव! कृपया भीतर चलिए, मैं तैयार हो गयी।'

इस बात को सुनकर भगवान् विष्णु ने अपना रूप प्रकट कर दिखाया और कहा कि हे पिप्पलाद! तू इस अग्नि परीक्षा में पूर्णतः सफल हो गया। आज से यह मैं (विष्णु) नियम कर देता हूँ कि दान में सर्वस्व-दान हो सकता है; किन्तु उस सर्वस्व-दान में पत्नी नहीं शामिल रहेगी। आज से पत्नी-रहित ही सर्वस्व दान महापुण्य समझा जायगा।

उसी समय से यह नियम प्रचलित हो गया कि कोई यदि सर्वस्व-दान करता है, तो उसमें उसकी पत्नी सम्मिलित नहीं मानी जाती।

इस तरह, पुराणों के अनुशीलन करने पर पता चलता है कि दधीचि की पत्नी प्रातिथेयी और उसकी पुत्रवधू ने बिहार में रहकर जगत् को ज्ञान ज्योति दी है।

सुकन्या

दक्षिण बिहार में शर्याति नामक राजा राज्य करते थे। एक दिन ससैन्य राजा वन विहार करने गये। उनकी पुत्री सुकन्या भी साथ गयी। सुकन्या ने दीमक की मिट्टी से बना एक टीला देखा। उसने कौतूहल वश बेल के काँटे से उसमें दीख रहे दो जुगनुओं को छेद दिया। छिद्र से खून की धारा बहने लगी। वस्तुत, उस टीले में थे महर्षि च्यवन, जो तपस्या की समाधि में लीन थे। उनकी देह पर दीमकों की बाँबी बन गयी थी। सिर्फ दोनों आँखें जुगनू की तरह चमक रही थीं। उन्हें भी सुकन्या ने फोड़ दिया। महर्षि की समाधि टूटी। उन्होंने शाप दे दिया। राजा के परिवार और राज्य-भर में शाप का प्रभाव फैल गया। सब लोगों के मल-मूत्र का वेग बन्द हो गया। राज्य-भर में कुहराम मच गया।

गुरुदेव धौम्य ऋषि बुलाये गये। उनसे कारण पूछा गया। उन्होंने राजा को बताया, तुम्हारी बेटी ने महर्षि च्यवन की आँख फोड दी है। सुकन्या से पूछा गया। उसने सारी बातें स्वीकार कर लीं। उसका कहना था कि कुतूहल वश मैंने ऐसा किया है।

राजा ने धौम्य[1] ऋषि से उपस्थित सकट के निवारण का उपाय पूछा। ऋषि ने बताया—'आप अपनी बेटी को च्यवन ऋषि की सेवा के लिए दे दीजिए, वह अपनी सेवा से उन्हें प्रसन्न करे, क्योंकि वे सुकन्या के कारण ही अन्धे हो गये हैं।'

१ संभवत धौम्य नाम पर 'धनबाद' का नामकरण हुआ होगा।—ले०

सुकन्या को साथ लेकर राजा शीघ्र ही च्यवन ऋषि के आश्रम में गये। च्यवन ऋषि से राजा ने आग्रह किया—'मेरी बेटी का अपराध क्षमा करें, इसे अपनी सेवा में रखें, आज से यह अपना सारा जीवन आपकी सेवा में बितायेगी।'

ऋषि ने सारी बातें स्वीकार कर लीं। राजा ने तत्काल कन्यादान कर दिया। सुकन्या उसी समय से च्यवन-ऋषि की सेवा में लग गयी। सेवा और तपःसाधना के प्रभाव से सुकन्या में सौन्दर्य और तेज पहले से अधिक बढ़ गया।

एक दिन नदी-तट पर अश्विनीकुमारों (देवताओं के वैद्यों) ने तेजस्विनी सुकन्या को देखकर पूछा—'तुम कौन हो?' सुकन्या ने अपना पूरा परिचय दिया। वैद्यों ने गुप्त परीक्षा में सुकन्या को सुपथ से विचलित करने का पूरा प्रयास किया; किन्तु सुकन्या अपने सत्पथ पर हिमालय की तरह अडिग रही। इससे प्रभावित होकर देव-वैद्यों ने सुकन्या को आशीर्वाद दिया कि तुम्हारा पति युवा और स्वस्थ हो जायगा। कहा जाता है कि देव वैद्यों ने सुकन्या को च्यवन के तप से जर्जर शरीर की पुष्टि के लिए कुछ ओषधियाँ भी बतायीं। वही ओषधि 'च्यवन-प्राश' के नाम से प्रसिद्ध हो गयी और वृद्धता दूर करने की महौषधि समझी जाने लगी।

पद्मपुराण की एक कथा में यह भी आया है कि सुकन्या ने रवि षष्ठी-व्रत (कार्त्तिकी छठ) करनेवाली स्त्रियों से नदी-तट पर पूछा था कि इस व्रत के करने से क्या लाभ होता है, तो महिलाओं ने बताया था कि इस (छठ) व्रत के प्रभाव से शरीर के सभी रोग दूर हो जाते हैं और आँखों की ज्योति बढ़ती है।

सुकन्या ने भी छठ व्रत किया। उसी के प्रभाव से उसके पतिदेव युवा और सुन्दर शरीरवाले हो गये। सारांश यह कि सुकन्या ने अपने पतिदेव च्यवन को स्वस्थ और युवा करने के लिए जो विविध प्रकार के प्रयास किये, वे सफल हो गये।

यह निर्विवाद है कि छठ व्रत बिहार में ही होता है। सुकन्या और च्यवन की कथा छठ व्रत से सम्बद्ध है, जिसका वर्णन पुराणों में मिलता है। इससे सिद्ध है कि सुकन्या बिहार की महिला थी। पहले कहा भी गया है कि वह दक्षिण-बिहार की एक राजकुमारी थी।

सुनयना

महारानी सुनयना राजा जनक की धर्मपत्नी थीं। लक्ष्मीनिधि नामक इन्हें एक पुत्र था, कन्या नहीं थी। राजा विदेह ने एक बार अकाल पड़ने पर सुवर्ण के हल से यज्ञार्थ धरती जोतते समय एक कन्या (सीता) प्राप्त की। सीता को पुत्री के समान पालने और राम के समान जामाता पाने का सौभाग्य सुनयना को ही प्राप्त हुआ। विदेह के समान योगी और ज्ञानी राजर्षि की राजमहिषी होने का सौभाग्य तो उन्हें प्राप्त ही था। अपने स्वनामधन्य पति की वे छाया ही थीं। उनकी ज्ञानगरिमा का ध्यान रखकर ही महात्मा तुलसीदास ने 'मानस' के चित्रकूट-प्रसंग में कौसल्या से सुनयना के प्रति कहलाया है—

को विवेकनिधिवल्लभहि तुमहिं सकइ उपदेसि ।

वास्तव में वे विवेकनिधिवल्लभा ही थीं, उस समय कोई उनकी समता में न था।

वैशालिनी

राजा विशाल और उनकी विशाला नाम की नगरी का उल्लेख पुराणों में है। वैशाली उसी विशाला का दूसरा नाम है। उसी राजा विशाल की बेटी का नाम वैशालिनी था। इसकी कथा मार्कण्डेयपुराण में भी आयी है। अयोध्या के राजा करन्धम के पुत्र अवीक्षित से इनका विवाह हुआ था। इनके पुत्र का नाम था मरुत्त, जो महाप्रतापी राजा हुआ था।

कहा जाता है कि वैशालिनी के लिए जब स्वयंवर रचा गया, तब राजा महाराजाओं के बीच से वैशालिनी का हरण कर अवीक्षित अपने रथ पर बिठा भाग गया। राजाओं ने अवीक्षित को पापिराज बताया। इससे क्षुब्ध होकर अवीक्षित विवाह करने से इनकार कर रहा था; किन्तु इस बिगड़ते हुए मामले को सुधारने के लिए अवीक्षित की माता ने किमिच्छक व्रत करने की घोषणा कर दी। किमिच्छक व्रत का नियम है कि व्रतधारी के पास जो कोई भी शुभ इच्छा प्रकट करे, उसकी पूर्त्ति की जाय। अपने व्रत के विषय में माता ने अवीक्षित से घोषणा करने के लिए कहा। अवीक्षित ने राज्य भर में घोषणा कर दी कि मेरी माता ने किमिच्छक व्रत धारण कर लिया है, जिस किसी को कोई शुभ याचना करनी हो, मेरी माता से करे, उसकी पूर्त्ति की जायगी।

सबसे पहले उसके पिता ही उसकी माता के पास पहुँचे। उन्होंने इच्छा प्रकट की, मुझे एक पौत्र हो जाय। अपने पिता करन्धम की याचना को सुनकर अवीक्षित को आश्चर्य तो हुआ; किन्तु माता का व्रत भग न हो, इसलिए माता की आज्ञा का पालन करने को वह तैयार हो गया। फलस्वरूप, वैशालिनी से उसका विवाह हुआ। दादा करन्धम ने 'मरुत्त' नामक पौत्र पाकर अपना मनोरथ पूरा किया। नाना विशाल ने 'मोद' (आनन्द) मनाया, उन्हें भी अपनी पुत्री लता का 'फल' (पुत्र) देखने को मिला।

मरुत्त के जन्म से जो मोद एव फल की प्राप्ति हुई और उत्सव सम्पन्न किये गये, कहते हैं, इसी कारण उस स्थान का नाम 'मोद फल पुर' (मुजफ्फरपुर) रखा गया।

वैद्या जरा

मगध के महाबली जरासंध की कथा पुराण-प्रसिद्ध है। जरासंध की राजधानी राजगृह में थी। भीम और जरासंध में कुश्ती वहीं हुई थी—वह भी तीन सप्ताह से अधिक समय तक। भीम ने जरासंध को चीर डाला था। उसकी देह के दो भाग जोड़े हुए थे। राजगृह की ही रहनेवाली, जड़ी बूटी की दवा बनानेवाली, 'जरा' नामक वैद्या ने उसकी देह के दोनों फटे अंगों को पुनः अपनी चिकित्सा से जोड़ दिया था, इसीलिए राजा का नाम जरासंध पड़ा था। 'जरया सन्धित इति जरासन्धः', अर्थात् 'जरा' नामक वैद्या से

जिसका शरीर जोड़ा गया, वह जरासंध कहलाया। तात्पर्य यह है कि इसी बिहार में राजगृह की महिला 'जरा' वैद्या का यश अभी तक कायम है।

कर्कटी

पुराणों में कीकट कहते हैं मगध देश को। मगध में 'गया' नामक एक महान् राक्षस हो गया है, जिसके नाम पर 'गया' नगर बसा हुआ है। कहा जाता है कि महाराक्षस गया की धात्री का नाम कर्कटी था, जो मगध की एक प्रसिद्ध ब्रह्मवादिनी महिला थी। उसके ही लालन पालन से गया का शरीर अत्यन्त बलिष्ठ और बृहदाकार हुआ था। उसी की शिक्षा का प्रभाव था कि गया ने भगवान् विष्णु को अपने पास बुलाकर ही छोड़ा।

गार्गी

बिहार राज्य के मिथिला क्षेत्र में गार्गी एक विदुषी महिला हो गयी है। राजा जनक ने उसकी वाचालता की प्रसिद्धि सुनी थी, इसलिए जनक ने पण्डितों की एक सभा की। उसमें न्याय, वेदान्त आदि विषयों के प्रश्न रखे गये। देश-विदेश के सभी समागत पण्डित हार गये। अन्त में गार्गी और याज्ञवल्क्य में शास्त्रार्थ होने लगा। महर्षि याज्ञवल्क्य और गार्गी में कई दिनों तक वाद-विवाद जारी रहा। गार्गी के प्रश्नों से याज्ञवल्क्य व्याकुल हो उठे। उनको विवश होकर कह देना पड़ा—'देवी गार्गी, मैं तुमसे पराजित हो गया।'

गौतमी

न्यायाचार्य गौतम ऋषि का स्थान (आश्रम) सारन जिले के रिविलगंज थाने के 'गोदना' नामक स्थान में था। वहीं सरयू तट पर, जो गंगा के भी निकट है, अहल्या का उद्धार हुआ था। अभी तक वहाँ जो संस्कृत-विद्यालय है, उसमें न्याय-शास्त्र की पढ़ाई होती है। स्वर्गीय पण्डित देवीदत्त पाण्डेय ज्योतिषी (दौलतगंज, छपरा) ने संस्कृत कॉलेज की स्थापना के समय जो भाषण किया था, उससे स्पष्ट है कि गोदना में न्याय शास्त्र की पढ़ाई होती थी और गौतम ऋषि की पत्नी गौतमी ने न्याय शास्त्र का अच्छा अध्ययन किया था। वहीं पर अध्ययन करके उसने दिग्दिगन्त में न्याय की पताका फहरायी थी।

उर्मिला

उर्मिला रामानुज लक्ष्मण की धर्मपत्नी थी। इनकी अन्य बहनें भी सर्वगुणागरी थीं। किन्तु, उनमें से उर्मिला का नाम अग्रणी इसलिए है कि इन्होंने भी पति के वियोग में चौदह वर्षों तक धर्मव्रतधारिणी रहकर वियोगिनी का जीवन बिताया और पतिदेव के कर्तव्य पालन में साधिका बनीं, बाधिका नहीं। ये मौन तपस्विनी थीं।

बिहार की कुछ पौराणिक महिलाओं के जीवन की यह झाँकी-मात्र ही है। इस तरह यदि सचमुच देखा जाय, तो पौराणिक युग की बिहारी महिलाओं के यशोगान से दिग्दिगन्त आज भी गुंजायमान है।

बिहार की देहाती स्त्रियाँ

श्रीसिद्धेश्वरीप्रसाद; शिवबालक पुस्तकालय, बगहवार (शाहाबाद)

देहाती क्षेत्र की बिहारी स्त्रियों के कई वर्ग हैं। धनी घराने की स्त्रियों की वेशभूषा और रहन-सहन देखने से उन्हें सुखी ही कहा जा सकता है। मध्यम श्रेणी के गृहस्थों की स्त्रियों को अन्न वस्त्र का कष्ट तो विशेष नहीं है, पर उनका जीवन आज भी कई तरह के बन्धनों में जकड़ा हुआ है। निम्न श्रेणी के परिवारों में स्त्रियों को न भोजन वस्त्र की यथेष्ट सुविधा है और न जीवन का स्वाभाविक सुख ही सुलभ है। गरीब परिवारों की स्त्रियाँ तो मेहनत मशक्कत करके अपनी रोजी कमा लेती हैं और रूखा सूखा खाकर अपना जीवन भी किसी तरह बिताती ही हैं, पर निम्न श्रेणी के उन निर्धन परिवारों की स्त्रियाँ प्रायः अभाव-जनित कष्ट में ही समय काटती हैं, जिन्हें अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा की रक्षा के खयाल से अपनी स्त्रियों को घर से बाहर निकलकर काम काज करने देने में हिचक है। देहातों में ऐसे परिवारों की कमी नहीं है। ऐसे परिवारों के पुरुषों में जड़ता और मूढ़ता भी कम नहीं है। यदि वे बनावटी या झूठी मर्यादा के फेर में न पड़कर पर्दा प्रथा के कठोर बन्धन में अपने घर की स्त्रियों को बाँधे न रहते, तो उन स्त्रियों को कष्ट झेलना न पड़ता। वे गुप्त रीति से कूट पीसकर अपने परिवार के पुरुषों का भी पोषण करती हैं। कभी किसी तीर्थ या मेले में जाने का अवसर पाने पर ही उनको बाहरी दुनिया की हवा नसीब होती है।

बिहार-राज्य के सभी अंचलों में देहाती स्त्रियों के उपर्युक्त वर्ग पाये जाते हैं। राज्य के चाहे जिस भाग के गाँवों में जाकर देखिए, इन वर्गों की स्त्रियाँ—कहीं कुछ परिवर्त्तित परिस्थिति में भी—अवश्य मिलेंगी। उच्च वर्ग की पर्दानशीन स्त्रियाँ कई तरह के घरेलू उद्योग-धन्धों से भी रोजी कमाती हैं। शहर के पास के गाँवों में रहनेवाली स्त्रियों को कुटीर-शिल्प से अधिक लाभ होता है। किन्तु, जो गाँव अच्छी सड़क या रेलवे स्टेशन या हाट-बाजार से दूर हैं, उनमें बसनेवाली इस वर्ग की स्त्रियों को कठिनाइयों में ही जीवन बिताना पड़ता है। हाँ, अब गाँवों में भी नौकरी-पेशा लोगों की संख्या दिन-दिन बढ़ती जा रही है। मध्यम और निर्धन श्रेणी के लोगों की तो बात ही क्या, धनी घराने के लोग भी नौकरी करने लगे हैं, बल्कि मध्यम और निम्न श्रेणी के लोगों में बेकारों की संख्या भी काफी है। बेकारी में दिन काटनेवाले पुरुषों की स्त्रियों का हाल किसी से छिपा नहीं है।

धनी और सुखी घरानों की स्त्रियाँ

जमीन्दार और रईस तो अब देहातों में कहीं भी न रह, पर नौकरी या तिजारत के पेशे से धनी हुए लोग कहीं-कहीं देहातों में भी दीख पड़ते हैं। ऐसे लोगों के घर की अधिकांश

स्त्रियाँ अब देहातों में बहुत कम रहा करती हैं। जिन स्त्रियों के पति या पुत्र या ससुर परदेसी हैं—कहीं बाहर कोई नौकरी या रोजगार करते हैं, वे अधिकतर अपने उन्हीं सगे-सम्बन्धियों के साथ गाँव में न रहकर बाहर ही रहती हैं। ऐसी स्त्रियों का ठाट-बाट शहरी हो जाता है। उनके खान-पान, बोल-चाल और रहन-सहन के तरीके भी बदल जाते हैं। सदा गाँव में रहनेवाली स्त्रियों से वे सभी बातों में सुधरी हुई दीख पड़ती हैं। यहाँतक कि एक ही परिवार की ग्रामीण और परदेसी स्त्रियों में स्पष्ट भेद नजर आता है। ऐसा भी देखने में आता है कि कमासुत पति की पत्नी जब शहर की हवा खा चुकती है, तब गाँव में उसका मन ही नहीं लगता। इस तरह बाहर निकली हुई स्त्रियाँ देहाती जीवन कम पसन्द करती हैं।

बहुत-से ऐसे भी नौकरी पेशा या व्यवसायी लोग हैं, जिनकी स्त्रियाँ गाँव के घर में ही सदा रहती हैं, उन्हें कभी-ही-कभी रेल की यात्रा करने का अवसर मिलता है। दशहरा आदि की परवी छुट्टियों में उन्हें तीर्थस्थान आदि देखने का भी सौभाग्य प्राप्त होता है। इसी सिलसिले में वे कई दर्शनीय स्थानों और दृश्यों को भी देख लेती हैं। सिनेमा देखने का भी मौका मिल जाता है। अब तो छोटे-छोटे शहरों में भी सिनेमा-घर खुल गये हैं, इसलिए उन शहरों के पड़ोसवाले गाँवों की स्त्रियाँ भी कभी-कभी सिनेमा देख पाती हैं। मगर यह सौभाग्य विशेषतः उन्हीं स्त्रियों को प्राप्त होता है, जिनके घर में नगद रुपये पैसे का अभाव नहीं रहता।

ईश्वर ने जिन स्त्रियों को धन-जन का सुख दिया है, वे अगर देहात में भी रहती हैं, तो उन्हें चिकना ही खाना-कपड़ा नसीब होता है। वे अपने स्नेहियों से चिट्ठी-पत्री करती रहती हैं। उनका शौक पूरा होने में कोई कसर नहीं रहने पाती। लेकिन, ऐसे घराने में भी उन स्त्रियों के बहुतेरे हौसले पूरे नहीं हो पाते, जिनके पति या पुत्र काफी पैसे नहीं कमाते। एक ही परिवार की स्त्रियाँ जब अपने-अपने पति के साथ घर से बाहर रहने लगती हैं या अपने अपने पति या पुत्र की कमाई पर नजर रखने लगती हैं, तब उनमें पारस्परिक अथवा पारिवारिक प्रेम कम रह जाता है, इसीलिए अब सम्मिलित परिवार की प्रथा देहातों में भी बहुत कम कायम रह गई है।

जिन घरों में नौकरी या व्यापार से पैसे आने लगते हैं, उन घरों की स्त्रियों में शौकीनी भी बढ़ने लगती है। इस प्रकार के देहाती परिवारों में भी शहरी सिंगार के साधनों का प्रचार हो रहा है। यहाँतक कि पान बीड़ी, सिगरेट, चप्पल, चोटी, पाउडर, सेण्ट, हारमोनियम आदि भी इन स्त्रियों में घर करते जा रहे हैं। कहानी और उपन्यास की पुस्तकें तथा पत्रिकाएँ भी इन स्त्रियों में पहुँचने लगी हैं। गुरुजनों के प्रति शील संकोच का बन्धन क्रमशः ढीला हो रहा है। लज्जा की घटा फट रही है। कोई पढ़ी-लिखी बहू आ जाती है, तो पुरानी रूढ़ियों और परम्पराओं को लाँघने में सकुचाती नहीं। उस लाडिली के कर्त्तव्यों में सास ससुर की सेवा शुश्रूषा और देवर-ननद के प्रति स्नेह-प्रदर्शन की गिनती नहीं होती।

धन धान्य से भरे घरों की बूढ़ी स्त्रियों में पूजा-पाठ का अनुराग आज भी देहातों में देखा जाता है। पुरानी पीढ़ी की बची खुची कितनी ही स्त्रियाँ नियमित रूप से धर्माचरण में लगी देखी जाती हैं। प्रौढ़ा स्त्रियाँ भी व्रत त्योहार मनाने में उत्साह दिखाती हैं। वे दान-पुण्य में भी श्रद्धा रखती हैं; किन्तु नयी पीढ़ी की नारियों में इन गुणों की कुछ कमी नज़र आती है। भारतीय संस्कृति में इन नई नवेलियों का अनुराग उचटा हुआ-सा जान पड़ता है। इनमें भारतीय परम्परा की श्रद्धा भी कम ही है। धार्मिक कार्यों में इनका उत्साह केवल उत्सव का आनन्द लेने तक ही दीख पड़ता है। रामायण, प्रेमसागर, सुखसागर आदि जो ग्रन्थ बड़ी-बूढ़ी महिलाओं द्वारा घर में प्रायः रोज पढ़े जाते थे, वे अब वेठन में बँधे रह जायँगे; क्योंकि उनकी जगह कहानियों की रँगीली छबीली पत्रिकाओं ने ले ली है। नौकरी या व्यापार करनेवाले बाबू लोग जब बाहर से घर आते हैं, तब तेल-फुलेल के साथ ये साहित्यिक सौगात भी लाया करते हैं। नयी पीढ़ी की बहू-बेटियों के धार्मिक और सांस्कृतिक विचार को सँवारने-सजानेवाला साहित्य देहात में कम ही पहुँच पाता है।

मध्यम श्रेणी के परिवारों की स्त्रियाँ

यही मध्यम श्रेणी बिहार के विभिन्न अंचलों में विभिन्न परिस्थितियों के अधीन देखी जाती है। इस श्रेणी की स्त्रियों की दशा थोड़े-बहुत हेरफेर के साथ प्रायः सर्वत्र लगभग समान ही है। इनके परिवार की आर्थिक दशा कामचलाऊ है। थोड़ी खेती होती है या कोई छोटा मोटा उद्योग धन्धा ही होता है और नौकरी-चाकरी से भी काम चलाया जाता है। मनमाने ढंग से खर्च करने की गुंजाइश नहीं रहती। रुपये पैसे की जरूरत पड़ने पर हमेशा मनचाही रकम नहीं मिलती, इसलिए स्त्रियों को सादगी की जिन्दगी निबाहने में हर कदम पर किफायतसारी से काम लेना पड़ता है। भोजन-वस्त्र, तेल-साबुन, मेला-तमाशा आदि के लिए उन्हें सोच-समझकर सँभले हाथों से पैसे खर्च करने पड़ते हैं।

मध्यम श्रेणी की स्त्रियों में कितनी ऐसी भी हैं, जो देहाती स्कूलों या पाठशालाओं में लड़कियों को पढ़ाकर रोजी कमाती हैं। दस्तकारी के कामों से भी अपने परिवार के खर्च में हाथ बँटाती हैं। अपने पति या पुत्र की कमाई पर गुजर करनेवाली नारियाँ रुपये-पैसे सँजोने पर भी ध्यान रखती हैं। खेती की सीमित पैदावार से घरेलू खर्च की नियमित और निश्चित व्यवस्था करनेवाली गृहिणी इस श्रेणी में अधिक पाई जाती हैं। इस श्रेणी के पुरुष खेत की उपज या व्यापार की आमदनी या नौकरी की कमाई से जो कुछ घर में लाते हैं, उन सबकी रक्षा का प्रबन्ध घरनी ही करती है। गृहस्वामिनी सबको खिलाकर खुद खाती है और सारे परिवार की सुविधा का हरदम खयाल रखती है। जहाँ सम्मिलित परिवार नहीं है, वहाँ भी पारस्परिक स्नेह का सम्बन्ध चालू देखने में आता है। एक ही परिवार की स्त्रियाँ एक ही गृह मण्डप या आँगन के अन्दर अलग अलग खाती-पकाती और मिल-जुलकर रहती हैं। कुछ परिवारों में स्वार्थ-संघर्ष के कारण कलह भी उत्पन्न होता है, जिसके फल-

स्वरूप स्त्रियों के आग्रह से पुरुषों में फूट पड़ जाती है। इस श्रेणी में कलहकारिणी नारियाँ भी कुछ अवश्य हैं; पर युगधर्म के प्रभाव से पारिवारिक व्यवस्था में जो परिवर्त्तन देखे जा रहे हैं, उनके कारण कलह की रेखाएँ मिटती जा रही हैं, क्योंकि स्त्रियों में अलगाव की भावना जोर पकड़ रही है—व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की ओर उनकी रुचि बढ़ रही है—वे अपने पति और अपनी सन्तानों तक ही अपने परिवार की सीमा बाँधने में सन्तोष का अनुभव करती हैं।

इस श्रेणी में जो पिछली पीढ़ी की स्त्रियाँ हैं, उनमें धार्मिक भावना अधिक है, किन्तु अगली पीढ़ी की स्त्रियों में वह भावना धीरे धीरे घटती जाती है। कारण यह जान पड़ता है कि खेती की उपज काफी न होने या रोजगार-धन्धा करने के लिए पूँजी न होने से घर के पुरुषों को अधिकतर नौकरी ही करने के लिए विवश होना पड़ता है। अब देहात में इस श्रेणी के अनेक पुरुष कोई-न कोई नौकरी करने लगे हैं या उसकी तलाश में परेशान हैं। जिन्हें नौकरी नसीब हो गयी है, उनकी पत्नी और सन्तान को छोटा मोटा अभाव खलने नहीं पाता। नौकरी पेशा लोगों की लुगाइयाँ देहात में भी सुख-चैन से ही रहती हैं और परदेसी होने पर शहरी बन जाती हैं। इस वर्ग में भी फैशन का शौक बढ़ रहा है। शौकीन स्त्रियाँ तो चूल्हे चक्की से भी परहेज करने लगी हैं। कितनी ही ऐसी महिलाओं को सन्तान के पालन पोषण में भी पति के सहयोग की अपेक्षा होने लगती है। प्राय बच्चों को सँभालने पर ही पति को रसोई से छुटकारा मिलता है, नहीं तो अब नौकर या नौकरानी से ही रसोइया का काम लिया जाता है। तब भी इस श्रेणी के समाज में पतिपरायणा स्त्रियों की कमी नहीं है। देहात के मध्यम परिवारों में कितनी ही ऐसी सुशिक्षिता देवियाँ भी हैं, जो घर के सारे काम काज स्वयं करती हैं। इन देवियों में जो परदेसी पति के साथ बाहर रहती हैं, वे बच्चों की देख भाल से लेकर चौका चूल्हा तक सँभालकर अपने पति को नौकरी बजाने और समाज में विचरने का काफी अवकाश देती हैं।

देश के स्वतन्त्रता संग्राम में इसी श्रेणी की नारियों में से अनेक देशभक्त देवियाँ निकली थीं। उन्होंने बड़े धैर्य और साहस से घर सँभालकर अपने परिवार के पुरुषों को राष्ट्रीय आन्दोलन में जूझने की सुविधा दी थी। चर्खा और खादी के प्रचार में भी इन्हीं महिलाओं का उत्साह सबसे अधिक था। इस मध्यम वर्ग को हम समाज का मेरुदण्ड कह सकते हैं और उस मेरुदण्ड की आन्तरिक शक्ति हमारी देवियाँ ही हैं। देहाती समाज की यह आन्तरिक शक्ति आज भी बहुलांश में भारतीय सांस्कृतिक परम्परा की रक्षा कर रही है—यद्यपि पाश्चात्य प्रणाली की शिक्षा और सभ्यता का थोड़ा-बहुत असर देहातों में भी पहुँचकर उसमें कसर पैदा करने लगा है। हाँ जिन नारियों को कभी घर से बाहर जाने या रहने का अवसर नहीं मिला है, वे अभी बाहरी या शहरी हवा के असर से बहुत कुछ अछूती हैं। उन्हें कोई देहाती या पिछड़ी हुई भले ही कहे, पर नयी रोशनी के अवांछनीय प्रभाव से वे अबतक बची हुई हैं। नयी रोशनी की रंगीन किरणें आहिस्ता आहिस्ता ठेठ

देहात में भी घुसकर चकाचौंध पैदा करने लग गयी हैं। पर्दा प्रथा का बन्धन ढीला हो रहा है। नारी-समाज में स्वच्छन्द विचरण की उत्सुकता जग रही है। नयी पीढ़ी की जो लड़कियाँ अब शिक्षा पाती हैं, वे अपने घर की अधेड़ या बूढ़ी नारियों के विचारों को झकझोर रही हैं। नतीजा यह नजर आता है कि निकट भविष्य में देहात का नारी-समाज वर्तमान प्रगतिशील युग के साथ कदम मिलाकर चलने लगेगा।

निम्न श्रेणी के परिवारों की स्त्रियाँ

निम्न श्रेणी में उच्च वर्ण के परिवार उतनी संख्या में नहीं हैं, जितनी संख्या में छुटभैयों के परिवार हैं। छुटभैया से मेरा मतलब उन लोगों से है, जिनके परिवार की नारियों में पर्दा प्रथा की कड़ाई नहीं है। ऐसे परिवारों के पास खेती-बारी के लिए जमीन की कमी है, पर जो कुछ भी है, उसी में स्त्री पुरुष मिल-जुलकर भरपूर परिश्रम करते हैं और मध्यम वर्ग के जोतदारों से भी जमीन लेकर अपने परिवार की जरूरत के मुताबिक अनाज उपजा लेते हैं। इन घरों की नारियाँ निरन्तर शारीरिक परिश्रम करते रहने से प्रायः पूर्ण स्वस्थ रहती हैं। वे हल चलाने के सिवा खेती बारी के सारे काम कर डालती हैं। पशुओं के चराने और सानी पानी करने से लेकर गाय भैंस दूहने और घास छीलने या चारा जुटाने तक सब काम चौकसी से कर लेती हैं। घर-आँगन को लीपना-पोतना, ढेंकी-चक्की चलाना, पानी भरना, रसोई करना, फटे पुराने कपड़े सीना खेत से खलिहान तक कटी फसल के बोझे और फिर खलिहान से घर की कोठी तक अन्न की राशि ढो लाना उनके कठोर परिश्रम का परिचायक है। ये अपने पति और पुत्र को खेत की जुताई और सिंचाई में भी सहायता पहुँचाती हैं—उनके लिए घर से दाना या खाना लेकर खेत पर जाती हैं और खेतों में पानी पटाने का काम भी कर लेती हैं। इतना ही नहीं, गोएँड़ खेत में उपजी हुई साग-भाजी और गाय भैंस का दही भी सिर पर लादकर गाँव-जवार में बेच आती हैं। इस प्रकार, ये नारियाँ अपने पसीने की कमाई से अपने बहुतेरे अभावों को दूर हटाने में समर्थ होती हैं। फिर भी, इन्हें अच्छे भोजन वस्त्र और जीवन के दूसरे साधारण सुख साधन भी बहुत कम मिल पाते हैं। आजकल इनकी लड़कियों में से भी कुछ पढ़ने लिखने लग गयी हैं, इसलिए इनकी अगली पीढ़ी गँवारी न रह सकेगी, लेकिन मेहनत मशक्कत में वह पीढ़ी इनकी तुलना में ढीली रहेगी।

इस श्रेणी में जो उच्च वर्ण के परिवार हैं, उनकी नारियाँ घर के अन्दर अपने सारे घरेलू काम अपने ही हाथों कर लेती हैं मगर घर से बाहर के कुल काम पुरुष ही करते हैं। देहात के मध्यम परिवारों से ढेंकी चक्की लगभग विदा हो चुकी है, लेकिन इस श्रेणी के घरों में अभी उनका अस्तित्व शेष है, क्योंकि इन घरों की नारियाँ उत्तम और मध्यम वर्ग के परिवारों से भी अन्न लाकर कूटती पीसती हैं। पर्दानशीन होने से, घरेलू काम-काज करते रहने पर भी, इनमें से कुछ स्त्रियाँ प्रायः अस्वस्थ रहा करती हैं और अर्थ संकट के कारण उनकी

दवा भी ठीक तरह नहीं हो पाती। इस वर्ग की नारियाँ भी हस्त-शिल्प से कुछ कमा लेती हैं। जिनके घरों में गाय-भैंस हैं, उनकी स्त्रियाँ नित्य दही मथकर घी निकालती हैं, जिसे उनके पुरुष बाजार ले जाते हैं। दही बिलोने के बाद जो मट्ठा निकलता है, वह घर में ही खर्च होता है, बाहर बिकने नहीं जाता ; क्योंकि उच्च वर्ण के लोग घी के सिवा दही बेचना अपनी हेठी समझते हैं। उच्च वर्ण की लाज रखने का भाव इन नारियों में अभी-तक प्रबल है। इसीलिए, इन्हें अपने पुरुषों की कमाई पर ही निर्भर रहना पड़ता है, जिससे इनमें से कितनों की जिन्दगी बड़ी कसमसाहट में बीतती है। इनकी कितनी ही लालसाएँ इनके दिल के अन्दर ही घुट जाती हैं। रुपये-पैसे की तंगी से ये तीर्थाटन के लिए या मेले-तमाशे में भी कम ही जा पाती हैं। इनमें जो साधारण पढ़ी-लिखी नारियाँ हैं, वे अपने नाते-रिश्ते में अच्छरकट्टू की तरह चिट्ठी पत्री लिख लेती हैं और टटोलकर भूलते-भटकते कुछ पढ़ भी लेती हैं। इनको सबसे बड़ा कष्ट यह है कि इनके घरों में कुएँ और शौचालय नहीं हैं।

शहर या गुलजार बाजार से दूर के गाँवों में इस श्रेणी की नारियाँ सन्तोषजनक स्थिति में नहीं हैं। उनकी दशा यदि दयनीय नहीं मानी जायगी, तो शोचनीय अवश्य कही जायगी। यातायात की कठिनाइयों के कारण उनके पुरुषों के हाथ-पाँव बँध से गये हैं और उन बेचारियों की हस्त कला भी कुण्ठित हो गयी है। आधुनिक युग के प्रकाश की कोई रेखा उधर झाँकने भी नहीं जाती। इस उन्नत वैज्ञानिक युग में भी वे महिलाएँ लगभग एक सदी पिछड़ी हुई हैं। इस प्रान्त के जो उजाड़-झखाड़ स्थान अब कारखानों के खुलने से आबाद होने लगे हैं, उनके आसपास में रहनेवाली उच्च वर्ण की निर्धन नारियाँ अपने पुरुषों की बेकारी दूर हो जाने की आशा से सुख की साँस लेने लगी हैं ; पर जबतक वे आधुनिक दृष्टि से पुरुषों के समकक्ष होकर कार्यक्षेत्र में नहीं उतरतीं, तबतक उनकी अवस्था नहीं सुधर सकती।

गरीब परिवारों की स्त्रियाँ

गरीब परिवार वे हैं, जिनके पास नाम-मात्र की भूमि भी जोतने के लिए नहीं है। यहाँ-तक कि हल-बैल का भी ठिकाना नहीं है, इसलिए बटाईदारी की जमीन भी इन्हें नहीं मिलती। ऋण भी इनको बड़ी कठिनाई से थोड़ा ही मिल पाता है। ये बेगारी या मजदूरी या धनी वर्ग की सेवा-टहल करके जीते हैं। इनकी नारियाँ भी पुरुषों के समान ही खटती हैं। ये या ऐसे परिवार देहातों में जो कष्ट झेलते हैं, उनका वर्णन करके वास्तविक स्थिति को ठीक-ठीक समझाना अत्यंत कठिन है। सचमुच, इन परिवारों के स्त्री पुरुष अपने बाहुबल से कमाकर किसी तरह मोटा-झोटा खा-पी लेते हैं, मैला कुचैला पहन-ओढ़कर धरती-माता की गोद में ही सो लेते हैं और अज्ञान वश उसी को सुख मानकर मस्त-मगन भी रहते हैं; पर वे पशु-तुल्य जीवन ही बिताते हैं—यह मानना पड़ेगा। इन गरीब स्त्रियों और इनके बच्चों की दशा देखकर समझदार का दिल दहल जाता है। गाँव गाँव में इन स्त्रियों और बच्चों का झुण्ड दीख पड़ेगा। उत्तम और मध्यम वर्ग के लोग इनसे कसकर काम लेते हैं और

पैंसे की दर से मजदूरी देते हैं। जहाँ शहर या कोई अच्छा बाजार नजदीक है, वहाँ वे स्त्रियाँ किसी-न किसी उपाय से कुछ पैसे कमा लेती हैं। दतौन, ईन्धन, पत्तल, चटाई, कन्द-मूल फल, मटर की छीमी, हरा चना, शहद, रस्सी आदि अनेक प्रकार के उपयोगी पदार्थ बेचने के लिए बाजार में ले जाती हैं। इन स्त्रियों के पुरुष भी दिन रात हाथ पैर चलाकर कुछ-न-कुछ कमाते ही हैं। तब भी इन स्त्रियों को भर पेट अन्न के लाले पड़े रहते हैं। इनके बच्चों को दूध नहीं मिलता। प्रसूतियों को यथोचित भोजन और रोगिणियों को दवा दारू की कमी से कभी-कभी प्राणों से भी हाथ धोना पड़ता है। सरकारी अस्पतालों में भी इन अभागिनों की देख रेख अच्छी तरह नहीं हो पाती।

इसी दलित वर्ग की नारियों पर विधर्मियों का जादू चल जाता है। नारियों के साथ पुरुष और बच्चे भी शिकार बन जाते हैं। इसके लिए हमारा उत्तम मध्यम कोटि का समाज ही दोषी है। यदि उच्च स्तर का समाज इन नर-नारियों के साथ मनुष्यता का व्यवहार करता, तो इनके जीवन में पशुता नहीं रहने पाती। दुःख की बात यह है कि इन गरीब नारियों को अन्न-वस्त्र के साथ जल का भी कष्ट भोगना पड़ता है। इन गरीबों के टोले में कुएँ की भी कमी है। कहीं कहीं तो बेचारी नारियों को ही बहुत दूर दूर से पानी भर लाना पड़ता है। पुरुष तो कभी नदी-तालाब तक पहुँच जाते हैं, पर स्त्रियों को बड़ी कंजूसी से जल का उपयोग करना पड़ता है, बल्कि कुछ घड़ों के जल में ही पुरुष भी घर में हिस्सा बँटा लेते हैं, इसीलिए इन नारियों के शरीर और फटे चिटे कपड़े में सफाई नहीं रहने पाती। इन नारियों और इनके बच्चों के तन पर गन्दे चीथड़े देखकर बड़ी करुणा उत्पन्न होती है। जब इन्हें बरसात में खेती का काम करना पड़ता है, तब भीगे हुए कपड़े बदलने के लिए इनके पास सूखे चीथड़े भी नहीं रहते। घर भी प्रायः घास फूस का छोटा झोपड़ा ही होता है, जिसमें रहने-सोने की तंगी के कारण एक ही घर में सास पतोहू को गुजर करना पड़ता है। इनकी राम-मड़ैया तो नारियों के चलते साफ सुथरी रहती है, पर आसपास की गन्दगी से इनके टोले-मुहल्ले का वायु मण्डल शुद्ध नहीं रहने पाता। गरीबी प्रायः उत्साह को मन्द कर देती है और उसकी मजबूरियों से आलस्य को भी पैर पसारने की सुविधा मिल जाती है। नहीं तो इन गरीब नारियों के परिश्रम में कोई कोर कसर नहीं देखी जाती।

साराश यह कि गरीब नारियाँ नाना प्रकार की असुविधाओं, अभावों और कठिनाइयों के भार से दबी हुई हैं। उनकी कष्ट कथा कवि कल्पना में भी नहीं समा सकती। उनका उद्धार भगवान् की कृपा पर ही आश्रित है। मानवता के नाते यदि सम्पन्न समाज की सहानुभूति उधर रुख करती और इन दीन-दुखियों में ही ईश्वर की सत्ता खोजती, तो देश का यह पीडित अंग दयनीय दशा में नहीं रहने पाता।

मजदूर महिलाएँ

उपर्युक्त निम्न श्रेणी के छुटभैया परिवारों और गरीब घरों की महिलाएँ ही मजदूरी करती हैं—चाहे खेत खलिहान में या कल कारखाने में। इन महिलाओं की दशा वहाँ कुछ

अच्छी रहती है, जहाँ कोई गल्ले की बड़ी मंडी या कोई व्यापार केन्द्र निकटस्थ होता है। बड़े पैमाने का बाजार और कारखाना भी पड़ोस में रहता है तो इन महिलाओं को समय-समय पर काम-धन्धा मिलता रहता है। देहातों में ऐसी सुविधा कहीं कहीं तो है, पर अधिकतर स्थानों में कृषि कर्म ही इनका सहारा है। देहात में अगर कहीं सड़क बनने लगती है, तो इनके पुरुष मिट्टी काटते हैं और ये ढोती हैं। जब गाँव में कोई मकान बनने या कुआँ खुदने लगता है, तब भी इनके श्रम की आवश्यकता पड़ती है। आजकल हर जगह ठेठ देहात में पक्के मकान बनाने के सामानों की बड़ी कमी है। नगरों के पड़ोस की मजदूरिनों को प्राय बेकारी के दिन नहीं काटने पड़ते। औद्योगिक केन्द्रों में तो इन महिलाओं के परिवारों के लिए अच्छे मकान भी बन गये हैं और बनते जा रहे हैं तथा आगे भी बननेवाले हैं, पर ऐसे केन्द्र इस राज्य में गिने चुने ही हैं। अत, जहाँ मजूरी मिलने के साधन नहीं हैं या कम हैं, वहाँ की महिलाओं को साल के कई महीने बेकारी में ही खेपने पड़ते हैं। इस तरह औसत निकालकर देखा जाय तो बिहार की अधिकांश मजदूर-महिलाओं को भुखमरी का ही सामना करना पड़ता है।

किसान-महिलाएँ

किसान-महिलाओं के साधारणत दो वर्ग हैं—किसान-गृहस्थों के परिवार की महिलाएँ और स्वयं किसानी करनेवाली महिलाएँ। किसान गृहस्थों में धनी, गरीब, मध्यम और निम्न श्रेणी के लोग भी हैं। बिहार के सभी जिलों में कई बड़े बड़े धनी किसान हैं और मध्यम श्रेणी में भी कुछ अच्छे पैसेवाले किसान हैं। ये दोनों प्राय स्वयं अपने हाथों खेती के काम नहीं करते, मजदूर नर नारियों से कराते हैं। इनके घर की नारियाँ भी खेत-खलिहान तक नहीं जातीं। मध्यम वर्ग के किसानों की नारियाँ अपने घर के भीतर ही रहकर कृषि सम्बन्धी आवश्यक कार्य करती हैं। बहुत बड़े किसान के परिवार की महिलाएँ अमीरी और शौकीनी में दिन बिताती हैं। कहीं कहीं वे सावन में हिंडोले पर भी झूलती हैं। कितनी ही सुशिक्षिता होने के कारण पुस्तक, पत्रिका आदि भी पढ़ा करती हैं। बैल-गोड़े या मोटर की सवारी से शहरों में भी जाकर आराम से रहती हैं, किन्तु मध्यम श्रेणी के किसान की नारियाँ उतनी मौज से नहीं रहतीं। इन्हें खाने पहनने की सुविधा है, पर स्वतन्त्र भाव से बाहरी दुनिया देखने के अवसर इन्हें कम मिलते हैं। इनमें भी कई शिक्षिता हैं, जो देहात में रहना पसन्द नहीं करतीं, बल्कि शहर में रहने के लिए अवसर की ताक में रहती हैं। कुछ तो इनमें ऐसी भी पायी जाती हैं जो गाँव के घर में रहकर गृहस्थी की सुन्दर व्यवस्था करके अपने परिवार की उन्नति भी करती हैं। इनके जीवन में कोई खलने योग्य अभाव नहीं है, पर मन मसोसकर रह जाने को विवश करनेवाले कुछ बन्धन अवश्य हैं।

निम्न श्रेणी के किसानों की महिलाएँ बहुत कम ही सुखी हैं। जो उच्च वर्ण की हैं, उनका जीवन तो कष्टों और बन्धनों में ही बीतता है। उन्हें कई तरह के अभावों के बीच

मन मारकर रहना पड़ता है। वे प्रायः अन्न-वस्त्र के कष्ट भी भोगती हैं। जिनके घर में कोई नौकरीवाला कमासुत है, उनको थोड़ी राहत मिल जाती है। किन्तु, जो नारियाँ उच्च वर्ण की नहीं हैं, वे पर्दे में नहीं रहतीं, बल्कि शारीरिक परिश्रम करके अपनी रोजी कमा लेती हैं और अपने पुरुषों को किसानी में भी मदद देती हैं। इसीलिए, उनका स्वास्थ्य अच्छा रहता है, पर उच्च वर्ण की पर्दानशीन नारियों में बहुतेरी बीमार और कमजोर होती हैं। सचमुच, अभावों की चिन्ता और पर्दानशीनी उन्हें यथेष्ट स्वस्थ तथा सुखी नहीं रहने देती।

गरीब किसान निम्न श्रेणी के किसानों में ही हैं; किन्तु खेतिहर मजदूरों को भी गरीब किसान कह सकते हैं। इनके पास धन-धरती कुछ भी नहीं है। गाय-भैंस पालने की सुविधा भी नहीं है। देहात से गोचर-भूमि गायब हो गयी। इनके मकान या झोपड़े भी किसी तरह गुजर करने लायक ही होते हैं। इनकी नारियाँ छोटे-बड़े जोतदारों के खेत-खलिहानों में मजदूरी करती हैं। जिन नारियों के पुरुष किसी भू-स्वामी के सहयोग दान अथवा अनुग्रह से थोड़ी-सी खेती कर पाते हैं, वे नारियाँ अपनी खेती भी सँभाल लेती हैं। इस तरह, गरीब किसान-महिलाएँ हड्डतोड़ मेहनत करके ही कमाती-खाती हैं। परन्तु, जहाँ उपजाऊ जमीन नहीं है या किसी कारण सूखा पड़ जाता है, वहाँ इन नारियों को भुखमरी झेलनी पड़ती है। अब ये भी अपने परदेसी पुरुषों के साथ कृषि-कर्म छोड़कर तिजारती जगहों में रोजी कमाने जाने लगी हैं, अतः देहात में मजदूरी महँगी और दुर्लभ हो रही है।

अन्यान्य ग्रामीण महिलाएँ

पूर्वोक्त महिलाओं के अतिरिक्त देहात में और भी कई तरह की महिलाएँ हैं— सोहाग के सामान बेचनेवाली, बच्चे पैदा करानेवाली, गोदना गोदनेवाली, जोंक लगानेवाली, ओझाई और टोना-टोटका करनेवाली, लोकगीत गाकर या नाच-बजाकर गृहदेवियों को रिझानेवाली, महिलोपयोगी अथवा बालोपयोगी शहरी चीजें देहात में लाकर दूना चौगुना दाम ठगनेवाली बिसातिन आदि नारियों का भी एक दल या वर्ग देहातों में है। यह वर्ग अपना पेट पालने में चतुर है। चोर-डाकुओं की ओर से घर के भेद लेनेवाली जासूसी स्त्रियाँ भी कहीं-कहीं पायी गयी हैं।

ऊपर जितने प्रकार की महिलाओं की चर्चा की गयी है, उनमें स्थान और परिस्थिति के भेद से कहीं कुछ अन्तर भी है। मिथिला और मगह के देहातों में स्त्रियाँ सुपारी और पान प्रायः खाती हैं। आदिवासी महिलाएँ पुरुष नर्तकों के दल में सम्मिलित होकर नाचती-गाती हैं और कहीं-कहीं की नारियाँ मेले-ठेले में माता-पुत्री का मिलन होने पर गले मिलकर रोती भी हैं। सामान्यतः बिहार की देहाती नारियाँ भोली भाली, निरीह और निश्छल होती हैं।

बिहार की सर्वश्रेष्ठ महिला 'सीता'

श्रीमती मिथिलेश्वरी देवी, विद्याविनोदिनी, साहित्यरत्न; जनकपुर

सृष्टि के आदिकाल से आधुनिक काल तक बिहार में सती-शिरोमणि सीता के समान कोई आदर्श महिला नहीं हुई। मैं तो यहाँतक कहने का साहस करती हूँ कि बिहार में ही क्यों, समस्त भारत में भी, बल्कि विश्व-भूमण्डल में सीता की तुलना की कोई महिला नहीं है। वैदिक, पौराणिक और ऐतिहासिक युगों की महिलाओं पर विहंगम दृष्टि डालिए, सीता की चारित्रिक ऊँचाई और बड़ाई सर्वोपरि दीख पड़ेगी। उनके प्राणेश्वर मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्र जैसे संसार-भर के पुरुषों में अद्वितीय हैं, वैसे ही जगती तल की नारियों में सीता भी अतुलनीय हैं।

सीता का शुभ जन्म नर नारी के संसर्ग से नहीं हुआ था। वे रत्नगर्भा वसुन्धरा की पुत्री थीं। आज का तार्किक युग उन्हें पृथ्वी की पुत्री मानने या समझने में शंकाकुल हो सकता है; किन्तु आज भी नारी-समाज में उनके जन्म की जो कहानी सर्वत्र कही-सुनी जाती है, वह अलौकिक होने पर भी सर्वथा सत्य है। उस कहानी की अन्तरंग परीक्षा करके उसका तत्त्व-महत्त्व समझना चाहिए।

प्रचलित और प्रसिद्ध कहानी है कि रावण ने 'कर' के रूप में ऋषि मुनियों से रक्त-दान लिया था। उस रक्त को एक भाण्ड में भरकर उसने मिथिला की भूमि में गड़वा दिया था। महान् तपस्वियों के उस रक्त-कुण्ड के प्रभाव से ही मिथिला की उर्वरा धरती ऐसी परितप्त हुई कि घोर दुर्भिक्ष से प्रजा पीड़ित हो उठी। प्रजा को बड़ा आश्चर्य हुआ कि राजर्षि विदेह जनक के समान धर्मनिष्ठ और ज्ञानी-शिरोमणि तथा सिद्ध योगी राजा के राज्य में ऐसा भारी अकाल क्यों पड़ा! राजा जनक के दरबार में बड़े बड़े धुरन्धर विद्वानों का जमघट था। एक-से एक दैवज्ञ ज्योतिषी भी थे। उन लोगों ने राजा जनक को सोने का हल चलाकर भूमि जोतने की सलाह दी। संयोगवश वही क्षेत्र चुन लिया गया, जिसमें वह रक्त-भाण्ड गड़ा था। राजा के हल का अग्रभाग उस गड़े हुए रक्त-भाण्ड में जा लगा। भाण्ड का मुँह खुलते ही उसमें एक सुन्दर बच्ची दीख पड़ी। ऋषि-मुनियों का रक्त निर्जीव और निर्बीज नहीं था। उसमें उनके जीवन भर की तपस्या का तेज भरा था। उसका एक-एक कण प्राणवान् और शक्ति-सम्पन्न था। वह अमोघवीर्य साधकों का चिर-सञ्चित जीवन-कोष था। वह कभी निष्फल नहीं हो सकता था। उसका तेजःपुञ्ज सीता के रूप में साकार होकर ही रहा।

यह निर्विवाद है कि जैसी होनहारी होती है, वैसी ही बुद्धि उत्पन्न होती है। अत्याचारी रावण का सर्वनाश अवश्यम्भावी था; इसीलिए ऋषि-मुनियों से रक्त का 'कर' वसूलने

की बुद्धि उनमें उत्पन्न हुई। उसी रत्न-राशि से उत्पन्न सीता उनके सर्वस्व नाश का कारण बनीं। कहा तो यह भी जाता है कि शिवजी को अपनी आराधना से वशीभूत करके उसने सारी सम्पदा और अजेय शक्ति पायी थी; पर उसके अनाचार से असन्तुष्ट होकर ही उसके धन जन का ध्वंस करने के लिए शिवजी ने महावीर हनुमान के रूप में अवतार-ग्रहण किया था। वास्तव में, परमेश्वर ही वैभव और प्रताप देता है तथा उससे मदान्ध होने पर वही उसका हरण भी कर लेता है। भगवान किसीको सीधी तरह डण्डे से नहीं मारता, वह बुद्धि का ही पेंच ढीला कर देता है।

हल के फाल को भी 'सीता' कहते हैं, अतः हल के फाल से बनी पृथ्वी की द्रोणी में से प्रकट होने के कारण 'सीता' नाम प्रसिद्ध हुआ। राजा जनक के राजमहल में वह अपूर्व सुन्दरी कन्या बड़े लाड़-प्यार से पाली-पोसी गयी। उसके जन्म के बाद ही दुर्भिक्ष दोष दूर हो गया। अन्नपूर्णा लक्ष्मी के शुभागमन से फिर पहले की तरह मिथिला धन धान्य से परिपूर्ण हो गयी। राजा जनक के कोई अपनी सन्तान नहीं थी, इसलिए नवजात कन्या ने अपने अद्भुत रूप गुण-तेज के प्रभाव से अपने प्रतिपालक पिता को स्नेह पाश में बाँध लिया। राजर्षि जनक तो पहुँचे हुए योगी और सच्चे अर्थ में विदेह थे, फिर भी मनुष्य थे, हृदयहीन नहीं थे। उनकी पालिता पुत्री होने से ही वह कन्या जानकी, वैदेही, मैथिली आदि नामों से भी प्रसिद्ध हुई।

प्रकृति-देवी की गोद में पले हुए ऋषि-मुनियों के जीवन्त ज्वलन्त रक्त कणों से रचित-गठित सीता का शरीर तो परम दिव्य था ही, उनका लालन पालन भी ऐसे राजभवन में हुआ, जो दिन-रात धर्म और ज्ञान की चर्चा से ही गूँजता रहता था। सुनयना और जनक के समान माता-पिता, कौसल्या और दशरथ के समान सास-ससुर, राम जैसा पति और लक्ष्मण जैसा देवर उन्होंने पाया था, जो उनके पुण्य प्रताप और सौभाग्य का ही सूचक है। वनवास और निर्वासन तो उनकी अग्नि परीक्षा के साधन-मात्र थे। पति प्रेम के आनन्द में उन्होंने वनवास के कष्टों को अत्यन्त तुच्छ समझा। अशोक वाटिका में रहते समय भी पतिभक्ति में ही तल्लीन रहीं। निर्वासन के समय भी उनका पति-प्रेम रत्तीमात्र कम न हुआ। उन्हें पति के आदेश-पालन से हुए सुख-सन्तोष का ही अनुभव होता रहा। वे अपने प्रति राम के अविरल प्रेम की सचाई भली भाँति जानती थीं। वे यह भी समझती थीं कि प्रजारंजक राजा के कर्त्तव्य-पालन में रानी का भी हार्दिक सहयोग अनिवार्यतः अपेक्षित है। किसी दशा में राम से उनका मन मैला न हुआ। राम भी वैसे ही उनके अनन्य प्रेमी थे। उनके विरह में राम का मन भी सदा अधीर और अशान्त ही रहता था।

राम और सीता का दाम्पत्य प्रेम अभूतपूर्व था। 'हनुमन्नाटक' में दो श्लोक इसके अनूठे प्रमाण हैं—

सद्यः पुरीपरिसरेषु शिरीषमृद्वी
गत्वा जवात्त्रिचतुराणि पदानि सीता।

गन्तव्यमस्ति कियदित्यसकृद् ब्रुवाणा
रामाश्रुणः कृतवती प्रथमावतारम् ॥१॥
अरुणदलनलिन्या स्निग्धपादारविन्दा
कठिनतनु धरण्यां यात्यकस्मात्स्खलन्ती ।
अवनि तव सुतेयं पादविन्यासदेशे
त्यज निजकठिनत्वं जानकी यात्यरण्यम् ॥२॥

अर्थात्, अयोध्यापुरी से (वन-गमन के समय) तुरत निकलते ही सिरिस के फूल के समान कोमल अंगोंवाली सीता ने—बार-बार यह पूछकर कि अब कितनी दूर चलना है—राम के आँसुओं का पहले पहल अवतार कराया। (साम्राज्य और परम प्रिय माता-पिता को छोड़कर वन जाते समय भी राम की आँखों में आँसू नहीं आये, पर भोली-भाली प्यारी सीता के अनाड़ीपन की बात सुनते ही राम के नयनों में आँसू उमड़ पड़े) ॥१॥ (राम सहसा बोल उठे) हे पृथ्वी ! लाल कमल-दल के समान चिकने चरण कमलवाली तुम्हारी यह पुत्री सीता कठोर पृष्ठवाली धरती पर प्रायः ठोकर खाती और गिरती-पड़ती चलती है, इसलिए जहाँ जहाँ वह पाँव रखती है, (कम-से-कम वहाँ-वहाँ भी) तुम अपनी कठोरता छोड़ दो, (क्योंकि तुम्हारी ही पुत्री) जानकी जंगल में जा रही है ॥२॥

पहले श्लोक में सुकुमारी सीता का भोलापन और दूसरे में राम की प्रीतिमयी करुण वाणी किसी प्रेमासक्त दम्पत्ति के ही समझने योग्य है। लंका में सीता ने हनुमान् से राम की अँगूठी पाकर अपना विरह-निवेदन करते हुए जब भाव-विह्वल होकर अँगूठी को बार-बार नयनों से लगाकर चूमा, तब उस अँगूठी के व्याज से ही हनुमान् ने भी बड़े कौशल के साथ राम का हाल सुना दिया। 'हनुमन्नाटक' का ही श्लोक है—

एनां व्याहर मैथिलाधिपसुते नामान्तरेणाऽधुना
रामस्त्वद्विरहेण कङ्कणपदं ह्यस्यै चिरं दत्तवान् ॥

अर्थात्, हे मिथिलेशनन्दिनी ! अब इस अँगूठी को दूसरे नाम से पुकारिए; क्योंकि राम ने आपके वियोग से कृश होने के कारण बहुत दिनों से इसको कङ्कण का पद दे दिया है। (भाव यह कि आपसे कुछ भी कम विरह दुःख राम को नहीं है, वे इतने क्षीण हो गये हैं कि यह अँगूठी उनके हाथ में अब कंगन बनकर रहती है)।

राम की नर-लीला में सहायिका होकर सीता इस संसार में आयी थीं। वे राम की आह्लादिनी शक्ति थीं। उन्हीं के माध्यम से राम ने भू-भार भंजन किया। वे न होतीं, तो रामायण महाकाव्य न बना होता। ईश्वरीय प्रेरणा से ही महर्षि विश्वामित्र ने राम और सीता का जोड़ मिलाया। डॉक्टर दामोदर सातवलेकर ने वाल्मीकीय रामायण की अपनी टीका की भूमिका में इस बात का विस्तृत वर्णन किया है कि विश्वविजयी रावण के अत्याचार से संसार की रक्षा के लिए ही ऋषि-मुनियों की गुप्त मंत्रणा से विश्वामित्र ने राम-सीता का गठबन्धन कराया। राम-सीता का विरह-विलाप तो दिखाऊ था—नर-

सीता का प्रदर्शन-मात्र था। वे दोनों मानव-जाति को अगाध उत्पीड़न से उबारने के लिए मानव रूप में ही आये थे। देवता बने रहकर वे मानव-जाति की सेवा कदापि न कर सकते। उन दोनों ने सदैव अपनी दिव्यता का गोपन किया। उनका देवत्व व्यक्त हो जाता, तो अपना काम न सरता।

श्रीमद्भगवद्गीता में लीलापुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने जहाँ अर्जुन को अपने अवतार ग्रहण के कारण बतलाये हैं कि धर्माभ्युदय और दुष्ट-दलन के लिए ही युग-युग में जन्म लेता हूँ, वहीं (अध्याय ४, श्लोक ९ में) यह भी स्पष्ट कर दिया है कि मेरा जन्म तथा कर्म दिव्य होता है और उसे जो तत्त्व से जानता है, वही मुक्ति पाता है। फिर, सातवें अध्याय के पचीसवें श्लोक में और भी खोलकर कह दिया है कि 'अपनी योगमाया से छिपा हुआ मैं सबके प्रत्यक्ष नहीं होता हूँ, इसलिए अज्ञान मनुष्य मुझ अजन्मा अविनाशी को तत्त्व से नहीं जानता है—मुझे जनमने-मरनेवाला साधारण मनुष्य समझता है'। ठीक इसी भगवद्वचन के अनुसार राम सीता का जन्म और कर्म भी दिव्य था। अवतारी महापुरुष राम अपनी योगमाया सीता के साथ लोक-कल्याण के निमित्त ही प्रकट हुए थे।

महात्मा गांधी जबतक जीते रहे, तबतक उनमें ईश्वरीय अवतार का चमत्कार संसारी आँखों को नहीं सूझा। जिस अँगरेजी राज्य के विषय में नरम दल के लोग समझते थे कि उस साम्राज्य का पाया शेषनाग के फन पर जमा हुआ है, उस उदय-अस्त तक फैले राज्य को महात्मा गांधी ने देखते-देखते उखाड़ फेंका और तब भी संसार के मोहान्ध नेत्र न खुले। किसीने उनके जीते जी उनकी दिव्य शक्ति को नहीं परखा। जिसने परखा, वह धन्य धन्य हो गया। अदृश्य ईश्वरीय शक्ति का चमत्कार ऐसे ही अज्ञात रूप में प्रत्यक्ष होकर करामात दिखा जाता है और संसारी आँखों पर पर्दा पड़ा ही रह जाता है। सीता के दिव्य रूप में यह अलौकिक चमत्कार देखने के लिए हिये की आँखें चाहिए।

नारी-जीवन का ऊँचा-से ऊँचा आदर्श अपने आचरण द्वारा दिखाकर संसार में नारी-जाति की महत्ता स्थापित करने के लिए ही सीता इस लोक में आयी थीं। वनवास के लिए प्रस्थान करते समय राम ने उनको अयोध्या में ही रहकर सास ससुर की सेवा करने का उपदेश दिया और हर तरह से समझा-बुझाकर बहुत आग्रह भी किया, किन्तु वे महल का राजसी सुख भोगने के लिए नहीं आयी थीं। राम जानते थे कि सीता मेरी छाया बनी रहकर ही जी सकती हैं, पर उन्होंने सीता का दिल टटोलकर नारी के सर्वोच्च कर्त्तव्य का प्रकृत रूप संसार को दिखा दिया। लंका में सीता पर राक्षसियों का पहरा था। राम की दर्शनोत्कण्ठा से वे बहुत व्याकुल थीं। हनुमान् ने उनसे कहा कि आज्ञा हो, तो मैं आपको राम के पास ले चलूँ। किन्तु, सीता अपने उद्धार का श्रेय अपने प्रियतम राम को ही देना चाहती थीं, राम के दूत को नहीं। फिर, पराये पुरुष का अंग-स्पर्श भी नहीं कर सकती थीं, रावण द्वारा हरण होने के समय तो वे सर्वथा विवश थीं। असह्य पीड़ाओं में दिन रात व्यग्र रहते हुए भी वे हनुमान् के साथ नहीं गयीं, क्योंकि हनुमान् उन्हें चुपके से

लेकर उड़ जाते, तो रावण का मान मर्दन कैसे होता। वे महाप्रतापी रावण की कैद में रहने पर भी अत्यन्त निर्भय होकर रावण की बातों का मुँहतोड़ उत्तर देती थीं और उसे खूब फटकारती दुतकारती भी थीं। रावण भी सती के तेज से अपरिचित नहीं था। सती की आह के दाह की कोई थाह नहीं है। हनुमान् की स्तुति के एक पद में कहा भी गया है कि उन्होंने सीता की आह की आग लेकर ही लंका जलायी। सती नारी के अपमान का फल रावण को भोगना पड़ा। यही सीता के पवित्र चरित्र का निष्कर्ष है।

राम और सीता का पारस्परिक प्रेम अपना सानी नहीं रखता। सीता जिस पृथ्वी से निकली थीं, उसीमें जब समा गयीं, तब राम भी उद्विग्न हो उठे। अश्वमेध यज्ञ के समय जब राम से कहा गया कि पत्नी के अभाव में यज्ञकर्म नहीं सम्पन्न हो सकता, तब वे यज्ञ के लिए दूसरी पत्नी स्वीकारने को तैयार न हुए, क्योंकि राम के लिए सीता के अतिरिक्त दूसरी नारी इस संसार में थी ही नहीं, इसीलिए राम की बगल में सोने की सीता मूर्त्ति स्थापित करके ही यज्ञ हुआ और सीता की स्वर्णमूर्त्ति की प्राण प्रतिष्ठा में अलग एक यज्ञ करना पड़ा। यह भी सीता व राम के अटूट प्रेम का ही परिचायक है।

सीता ही राम की जीवन शक्ति थीं। सीता के पाताल प्रवेश के बाद राम ऐसे अशक्त हो गये कि उनका जीवन नीरस हो गया—संसार ही सूना हो गया। नारी ही पुरुष की प्राण सत्ता होती है। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व निराधार है। भारतीय देवताओं के नाम में सबसे पहले उनकी शक्तिमती देवी का ही नाम संलग्न है—लक्ष्मीनारायण, गौरीशंकर, सीताराम, राधाकृष्ण आदि प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। 'शिव' में जो इकार की मात्रा है, वह शक्ति की प्रतीक है। उसके बिना कल्याण स्वरूप 'शिव' भी 'शव' मात्र रह जायेंगे। इस प्रकार सीता के बिना राम भी अमृत रहित चन्द्रमा के समान हैं। सीता गोरी थीं और राम साँवले थे। मेघ में बिजली और फूल पर भ्रमर की जो शोभा है, वही राम और सीता के अभिन्न रूप की झाँकी है। उस झाँकी में सीता की झलक दिखानेवाला बिहार धन्य है।

●●

नास्ति भार्यासमो बन्धुर्नास्ति भार्यासमा गतिः।
नास्ति भार्यासमो लोके सहायो धर्मसंग्रहे॥
यस्य भार्या गृहे नास्ति साध्वी च प्रियवादिनी।
अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम्॥

—महाभारत, १२।१४५।१६-१७

[अर्थात्, संसार में पत्नी के समान अन्य कोई बन्धु आश्रय या धर्म कार्य में सहायक नहीं है। घर में जिसे साध्वी और मधुरभाषिणी पत्नी न हो, उसे जंगल चला जाना चाहिए, क्योंकि ऐसी पत्नी से विहीन व्यक्ति के लिए घर और जंगल दोनों बराबर हैं।]

बिहार में स्त्रीशिक्षा की वर्त्तमान प्रगति

श्रीबलदेव प्रसाद, एम्० ए०, शिक्षक, पाटलिपुत्र विद्यालय तथा किशोरी-विद्यालय, पटना

प्राचीन काल में प्रायः बिहारी स्त्रियों को धार्मिक शिक्षा तो दी ही जाती थी, गृह शिल्प सम्बन्धी व्यावहारिक शिक्षा भी दी जाती थी, जिसका उल्लेख हमारे प्राचीन साहित्य में पाया जाता है। उस काल में व उच्च शास्त्रीय शिक्षा भी पाती थीं। उनकी शिक्षा में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं था, क्योंकि वे शक्तिस्वरूपा देवी मानी जाती थीं।

बौद्धों और जैनों के समय में विदुषियाँ तो बिहार में कई हुईं, पर स्त्रीशिक्षा का क्षेत्र कुछ संकुचित हो गया। मुसलमानी काल में तो सामाजिक कठिनाइयाँ इतनी बढ़ गयीं कि स्त्रीशिक्षा का बहुत कुछ ह्रास ही हो गया। मध्यकालीन युग में भी स्त्रीशिक्षा की ओर जनता का ध्यान कम ही रहा। धनीमानी अमीर लोग अपनी कन्याओं की शिक्षा का प्रबन्ध अपने ही घर में किया करते थे। सार्वजनिक महिला-विद्यालयों का अभाव होने से सामान्य जनता अपनी बालिकाओं को शिक्षा देने में असमर्थ रही। इसके अतिरिक्त आर्थिक परिस्थितियों, सामाजिक कुरीतियों और प्रचलित अन्धविश्वासों के कारण भी जनता अपनी बालिकाओं की शिक्षा की ओर से उदासीन रहती थी।

अँगरेजी राज्य में स्त्रीशिक्षा की धीमी प्रगति सन् १८५४ ई० से शुरू होती है। उस समय भी बिहारी स्त्रियों के लिए स्कूल कॉलेज की शिक्षा दुर्लभ ही रही। बालिकाओं के लिए स्कूलों तक का अभाव तो था ही, लोग बालिकाओं की उच्च शिक्षा को अनुपयुक्त भी समझते थे। बाल विवाह भी शिक्षा में महान् बाधक रहा।

बीसवीं शताब्दी के शुरू में बिहार की जनता नारियों की माध्यमिक शिक्षा की ओर ध्यान देने लगी। देश में बड़े-बड़े समाज सुधारक पैदा हुए। अखबार भी निकलने लगे। जनता के दृष्टिकोण में कुछ परिवर्त्तन हुआ। तब भी करीब दो प्रतिशत बालिकाएँ ही विद्यालयों में पहुँच सकीं। इस राज्य में स्त्रीशिक्षा-संस्थाएँ भी तब नगण्य ही रहीं।

सन् १९२१–२७ ई० के बीच बिहार-राज्य के नारी समाज में जागरण की नयी लहर पैदा हुई। स्त्रियों के संरक्षक और अभिभावक स्त्री-शिक्षा का महत्त्व समझने लगे। इसी अवधि में 'हार्टग' ने अपने शिक्षा-सम्बन्धी विवरण में कहा था—"शिक्षा में प्रगति करने का अधिकार नारी तथा पुरुष दोनों को है। इनमें से कोई भी प्रगति के पथ पर अकेला नहीं बढ़ सकता। यदि कोई ऐसा करेगा, तो इससे न केवल सामाजिक तथा राष्ट्रीय हितों को आघात पहुँचेगा बल्कि स्वयं उस व्यक्ति की भी क्षति होगी। अब वह समय आ गया है कि नारी और पुरुष—दोनों की शिक्षा को संतुलित किया जाय।"

राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी तथा अन्यान्य बिहारी नेताओं की प्रेरणा से इस काल में बिहार की महिलाओं की व्यक्तिगत तथा सामाजिक स्थिति में काफी सुधार हुआ।

सन् १९३७-४७ ई० के बीच बिहार-राज्य में स्त्रीशिक्षा की वांछनीय प्रगति होने लगी। यह प्रगति उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भी रही। महिलाओं में उच्च शिक्षा पाने की यह प्रेरणा द्वितीय महायुद्ध की देन कही जा सकती है। महायुद्ध ने विभिन्न व्यवसायों को उपस्थित कर शिक्षित महिलाओं की माँग बढ़ा दी। जीवन की बढ़ती हुई आवश्यकताओं ने नारी-समाज को शिक्षा की महान् प्रेरणा दी। इस अवधि में बिहार की अनेक महिलाएँ प्रतिष्ठित पदों पर आसीन थीं।

अँगरेजी शासन के डेढ़-दो सौ वर्षों में भी इस राज्य में स्त्री शिक्षा की कोई निश्चित योजना प्रस्तुत नहीं की गयी। शासक वर्ग अपनी व्यक्तिगत रुचि और विचारधारा के अनुसार शिक्षा का निर्देशन करता रहा। फलस्वरूप, इस राज्य में स्त्रीशिक्षा का अधिकांशतः विकास केवल शहरी क्षेत्रों में ही हो सका। गाँवों की दशा कारुणिक ही बनी रही। हाँ, सन् १९४७—१९५२ ई० के बीच स्वतन्त्रता का उन्मुक्त वातावरण मिला और बिहार-राज्य में स्त्रीशिक्षा की गति तीव्र हो गयी। स्कूलों और कॉलेजों के सिवा विश्वविद्यालय में भी छात्राओं की संख्या में वृद्धि होने लगी। इस वृद्धि का अनुमान निम्नलिखित आँकड़े से किया जा सकता है—

	सन् १९४६-४७ ई०	सन् १९५१-५२ ई०
स्त्रीशिक्षा की स्वीकृत संस्थाओं की संख्या	२,११९	२,४४३
बालिका-शिक्षा की स्वीकृत संस्थाओं में छात्राओं की संख्या	८३,८२६	१,१४,६६९
नारी-शिक्षा की संस्थाएँ		
कॉलेज	३	६
हाइ स्कूल	२३	३६
मिड्ल तथा सीनियर स्कूल	९५	१३१
प्राथमिक तथा जूनियर बेसिक स्कूल	१,९५४	२,१८७
कुल जोड़	२,०७५	२,३६०

इसी अवधि में महिलाओं के लिए व्यावसायिक शिक्षा का एक कॉलेज भी खुला।

सन् १९५३ ई० की अवधि में बिहार राज्य में बालिकाओं के २,२६८ प्राइमरी (प्रारम्भिक) विद्यालय थे, जिनमें शिक्षिकाओं की संख्या २,८११ थी। इस अवधि में बालिकाओं के लिए तीन जूनियर तथा चार सीनियर स्कूल थे। मार्च, १९५४ ई० तक ३७ उच्च बालिका-विद्यालय और १४१ मिड्ल स्कूल थे। मिड्ल और हाइ स्कूलों को मिलाकर शिक्षिकाओं की कुल संख्या १,४५० थी।

कन्या-शिक्षा को अधिक आकर्षक बनाने के लिए सन् १९५४–५५ ई० की अवधि में बिहार-सरकार ने शिक्षा-संहिता को अधिक उदार बनाया। फलस्वरूप, लड़कियों को माध्यमिक परीक्षा में सम्मिलित होने में कठिनाई नहीं रह गयी। गैर-सरकारी स्कूलों को सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से ३०,००० रुपये पूर्व स्वीकृत अनुदान के अतिरिक्त दो लाख रुपये का विशेष अनुदान दिया गया।

सन् १९५५-५६ ई० में लड़कों के उच्च विद्यालयों पर औसत व्यय १८,००० था, जबकि बालिकाओं के उच्च विद्यालयों पर यह व्यय २७,००० रुपये से बढ़कर ३७,००० रु० हो गया। माध्यमिक स्तर पर लड़कों के स्कूलों पर औसत व्यय ४,५०० रु० से बढ़कर ४,८०० रु० हो गया, जबकि लड़कियों के स्कूलों पर ६,८०० रु० से बढ़कर ७,४०० रु० हो गया।

प्रथम पंचवार्षिक योजना की अवधि में बिहार-राज्य के अधिकांश बालिका-विद्यालयों में विज्ञान की पढ़ाई का प्रबन्ध किया गया। सभी सरकारी बालिका-विद्यालयों में शिल्प शिक्षा की भी व्यवस्था की गयी। शिल्प सम्बन्धी यह शिक्षा प्राचीन काल से ही हमारी शिक्षा का विशेष अंग रही है। ऋग्वेद के अनुसार 'कन्याएँ तथा महिलाएँ रुई धुनतीं, सूत कातती, वस्त्र बुनतीं और कसीदा भी काढ़ती थीं।'

बिहार राज्य में महिला-शिक्षा की प्रगति निम्नलिखित आँकड़ों से जानी जा सकती है—

	सन् १९५०-५१ ई०		सन् १९५५-५६ ई०	
बालिका-विद्यालयों में छात्राओं की संख्या	१,२२,७५८		१,६५,५०३	
सरकारी कोष से व्यय	१४,६५,११५ रु०		२१,८१,५०३ रु०	
बालिका-शिक्षा की संस्थाएँ	सरकारी	गैर सरकारी	सरकारी	गैर-सरकारी
कॉलेज	२	४	२	४
हाइ स्कूल	१५	२१	१७	४४
श्रेष्ठ बुनियादी स्कूल	४	×	७	×
मिड्ल स्कूल	३२	६५	४४	६६
अवर बुनियादी स्कूल	३	×	४	×
प्राथमिक स्कूल	११	२,१७३	१	२,३६८
रोजगारी ,,	५	२०	८	२०
विशेष ,,	×	५६	१	२७८
शिशु ,,	१	×	१	×
कुल जोड़	७३	२,३६६	८५	२,८१३

सन् १९५६-५७ ई० के शुरू में कन्याओं के लिए बिहार में २,७२७ प्राइमरी तथा १५९ मिड्ल स्कूल थे, जिनमें छात्राओं की संख्या क्रमशः १,१२,६६८ और २४,३६०

तथा शिक्षकाओं की संख्या ४,४६८ थी। इस अवधि में उच्च विद्यालयों तथा महाविद्यालयों (कॉलेजों) में भरती होनेवाली लड़कियों की संख्या में काफी प्रगति हुई।

महिला-शिक्षा की इस प्रगति से बिहार में स्त्रियाँ समाज के संकुचित दायरे से निकलकर देश के विकास तथा शासन कार्य में योग देने लगीं। सरकारी कार्यालयों में प्रवेश करने के अलावा कॉलेजों तथा विश्वविद्यालयों के अध्यापन-कार्य में भी स्त्रियाँ कार्यरत हुईं। राजनीति के क्षेत्र में भी वे आगे बढ़ीं। दूसरे आम चुनाव में वे अनेक क्षेत्रों से विधायिका चुनी गयीं, जिनकी नामावली यह है—सर्वश्रीमती केतकी देवी (चनपटिया), शकुन्तला देवी अग्रवाल (मोतिहारी), प्रभावती गुप्ता (केसरिया), पार्वती देवी (हरसिधी), अनसूया देवी (महाराजगंज), उमा पाण्डेय (बनियापुर), बनारसी देवी (महनार), सुदामा चौधरी (पुसरी उत्तर), रामदुलारी शास्त्री (लौकहा), कृष्णा देवी (बहेरा, दक्षिण), शांति देवी (मोहिउद्दीनगर), रामसुकुमारी देवी (वारिसनगर), श्यामकुमारी (सिंघिया), विश्वेश्वरी देवी (सहरसा) शांति देवी (पलासी), रानी ज्योतिर्मयी देवी (पाकुर), शैलबाला राय (देवघर), सरस्वती देवी (सुलतानगंज), विन्ध्यवासिनी देवी (बाँका), लीला देवी (शेखपुरा), लक्ष्मी देवी (परबत्ता), सरस्वती चौधरी (मसौढ़ी), जोहरा अहमद (पटना, पूर्व) मनोरमा देवी (बिक्रम), मनोरमा पाण्डेय (चिक्रमगंज) सुमित्रा देवी (पीरो), शांति देवी (बोधगया), राजकुमारी देवी (हसुआ), शशांकमंजरी देवी (बड़कागाँव), मनोरमा सिन्हा (तोपचाँची), राजेश्वरी सरोजदास (गढ़वारा), इल्सी ओगीर (मनोनीत)।

स्त्रीशिक्षा को और भी अधिक व्यापक बनाने तथा अध्यापिकाओं के प्रशिक्षण में यथोचित सहायता देने के लिए द्वितीय पंचवार्षिक योजना में निम्नलिखित व्यवस्थाएँ की गयीं—

	(लाख रुपयों में)
महिला अध्यापिकाओं का प्रशिक्षण (गावृत्ति कोर्स)	५ ३५
महिला प्रशिक्षण-केन्द्रों की २,००० विद्या माताओं का प्रशिक्षण	१ ०५
दो हजार विद्या माताओं की नियुक्ति	१४.४०
सरकारी मध्यविद्यालयों में नये विषयों की पढ़ाई शुरू करना और उनका सुधार	१७ ६६
गैर सरकारी मध्यविद्यालयों का सुधार और विस्तार	४.००
सरकारी उच्च बालिका विद्यालयों का विकास	२२ ६१
गैर-सरकारी उच्च विद्यालयों का विकास और विस्तार	३२.००
बालिकाओं के निमित्त स्वतंत्र अनुशिक्षण-वर्ग (ट्यूशन क्लास) चलाने के लिए स्वैच्छिक संस्थाओं को सहायता	५ ००

इस द्वितीय पंचवार्षिक योजना के फलस्वरूप बिहार राज्य में स्त्रीशिक्षा में विकास की गति अधिक तीव्र हो गयी। सन् १९६०-६१ ई० में छः से ग्यारह वर्ष तक की आठ लाख लड़कियाँ विद्यालयों में पहुँचीं। सन् १९६५-६६ ई० में इस संख्या के बढ़कर अठारह लाख हो जाने का अनुमान है। सन् १९६०-६१ ई० तक ग्यारह वर्ष से चौदह वर्ष तक की ६०,००० बालिकाएँ विद्यालयों में दाखिल हुईं। अनुमान है कि यह संख्या सन् १९६५-६६ ई० तक ८५ हजार हो जायगी। सन् १९६०-६१ ई० में उच्च विद्यालयों में छात्राओं की संख्या २० हजार थी। सन् १९६५-६६ ई० में इस संख्या के ६० हजार हो जाने का अन्दाज लगाया गया है। कालेजों और विश्वविद्यालयों में भी लड़कियों की संख्या में दिन दिन वृद्धि होती जा रही है।

शिक्षा के विकास के साथ ही बिहार की महिलाओं से अन्धविश्वास, संकुचित विचार और परावलम्बन की भावना तथा अबला कहलाने का भाव दूर होता जा रहा है। उनमें अब देश, समाज, साहित्य, संस्कृति आदि की सेवा करने की मधुर कल्पनाएँ जाग्रत् हो रही हैं। अब वे ग्रामीण क्षेत्रों में भी जाकर शिक्षा का प्रचार तथा समाज सुधार के भावों का प्रचार करने लगी हैं।

तृतीय महानिर्वाचन में बिहार की महिलाओं ने काफी उत्साह दिखलाया। राजनीति के पंकिल क्षेत्र में महिलाओं का सोत्साह प्रवेश उनके संरक्षकों की उदार नीति का तथा स्वयं उन नारियों के भी देशानुराग का परिचायक है। गत निर्वाचन में इस राज्य की ४८ महिलाओं ने विधान-सभा के चुनाव में भाग लिया, जिनमें निम्नलिखित २५ महिलाएँ विधायिका चुनी गयीं—सर्वश्रीमती शकुन्तला देवी (मोतिहारी), राजकुमारी देवी (मशरक, दक्षिण), उमा पाण्डेय (बनियापुर), सुन्दरी देवी (छपरा), मीरा देवी (महनार), गिरिजा देवी (सीतामढ़ी), प्रतिभा देवी (सुरसंड), कृष्णा देवी (बड़ेरा, दक्षिण), श्यामकुमारी (दरभंगा, पूर्व), शांति देवी (मोहिउद्दीननगर), रामसुकुमारी देवी (नारिमनगर), यशोदा देवी (किशनगंज), शैलबाला राय (देवघर), माया देवी (गोपालगंज), लीला देवी (बरबिगहा), लक्ष्मी देवी (परबत्ता), प्रेमा देवी (बलिया), गिरीशकुमारी सिंह (बछवारा), सरस्वती चौधरी (ममोदी), जोहरा अहमद (पूर्वी पटना), मनोरमा देवी (बिक्रम), सुमित्रा देवी (आरा), मनोरमा पाण्डेय (विक्रमगंज), राजकुमारी देवी (हसुआ), शशांकमंजरी देवी (बड़कागाँव)।

केन्द्रीय संसद् के लिए चुनी जानेवाली बिहारी महिलाओं में सर्वश्रीमती ललिता राज्यलक्ष्मी और राजमाता (रामगढ़) तथा तारकेश्वरी सिन्हा और रामदुलारी सिन्हा हैं। श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा केन्द्रीय मंत्रिमंडल में उप-वित्तमंत्रिणी हैं।

●●

बिहार की कत्तिन महिलाओं का स्वावलम्बन

श्री रामदेव ठाकुर; अध्यक्ष, बिहार-खादी-ग्रामोद्योग-संघ,
प्रधान कार्यालय : सर्वोदय ग्राम, मुजफ्फरपुर

देश को स्वतन्त्रता दिलाने के साथ-साथ देश की समग्र उन्नति कैसे हो, यह बात गांधीजी के ध्यान में बराबर बनी रहती थी। और, वह उन्नति केवल विचार के द्वारा ही न हो, अपितु उसके अनुसार काम करके हो, ऐसा वे चाहते थे।

स्त्रियों के विषय में बिहार बहुत पिछड़ा हुआ प्रदेश है, खासकर शिक्षा और रहन सहन के सम्बन्ध में। जब मैं सन् १६२१ ई० में बक्सर-जेल में था, तब श्रीराहुलजी बाबू नारायणप्रसाद सिंह (एक बार एम्० पी० भी थे, अब स्वर्गीय) से विनोद किया करते थे कि आपने पर्दा-प्रथा के कारण अपनी पत्नी को वर्षों तक नहीं देखा है। यह कोई गलत बात नहीं थी। पर्दा इतना जबरदस्त था कि ऐसा ही होता था। समाज में बहनों की कोई इज्जत नहीं थी। गुजारे के लिए बहनों को एकमात्र सहारा पुरुषों का ही था।

जब से गांधीजी का चर्खा चालू हुआ, बहनों को चर्खा चलाकर कुछ आत्म-विश्वास हुआ। उनके परिवार में उनका सम्मान बढ़ा। कई विधवा बहनों को मैं जानता हूँ कि जबतक चर्खा अथवा कमाई का साधन उनके हाथ में नहीं आया था, तबतक उनके नैहर और ससुराल के लोग उन्हें उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे। पेट पालने के लिए उन्हें ससुराल से नैहर और नैहर से ससुराल भटकना पड़ता था। अनैतिक कार्य भी करना पड़ता था। पर जब से वे चर्खा चलाकर कुछ कमाई करने लगीं या चर्खा संघ में कार्यकर्ता हो गयीं, तब से नैहर और ससुरालवाले उन्हें आदर से अपने यहाँ रखने लगे, क्योंकि उनके द्वारा उनलोगों की आमदनी बढ़ गयी—उनलोगों के जीवन यापन में बहुत सहूलियत होने लगी।

शुरू में तो चर्खे से चार-पाँच रुपये मासिक से अधिक आमदनी नहीं हो पाती थी। पर तो भी उस समय साधारण भोजन में तीन-चार रुपये मासिक ही लगते थे और विधवा बहनें एक वेला खाकर ही रहती थीं। इस तरह रुपये बचाकर वे साल में एक-दो बार पण्डितों को बुलाकर गाँववालों के साथ कथा पुराण सुनती थीं या गाँववालों को भोज भी खिला देती थीं। सन् १६४० ई० में, मुझे पूरा याद है कि तीन गांवों में, तीन बहनों ने केवल चर्खे की कमाई से कुएँ खुदवाये थे। एक बहन ने तो, हमलोगों के सुझाव से, हरिजनों के लिए, केवल एक चर्खे की कमाई से पैसे बचाकर, एक कुआँ खुदवाया था, जो अबतक मौजूद है।

चर्खा चलाने से बहनों में अब आत्मविश्वास पैदा हुआ है। अपने पैरों पर वे कैसे खड़ी हों, इसके सम्बन्ध में वे खुद सोचने लगी हैं। जब चर्खे नहीं चलते थे, तब भी गाँवों में स्वराज्य के काम से जाना पड़ता था और अब भी जाना पड़ता है। पहले तो मालूम नहीं पड़ता था कि गाँवों में स्त्री नामक कोई जीव रहती है। परन्तु, अब आप गाँवों में जायेंगे और जहाँ चर्खे चलते हैं, वहाँ देखेंगे कि स्त्रियाँ आपका स्वागत करेंगी, बातें करेंगी और अपनी शिकायतें आपके सामने खुले दिल से रखेंगी।

उपर्युक्त बातें तो मैंने अम्बर चर्खे के आविष्कार के पहले की लिखी हैं। पर अम्बर-चर्खे के आने से तो स्त्रियों की स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। कपड़े के सम्बन्ध में उन्हें पहले घर के मालिक का मुहताज होना पड़ता था, महीनों खुशामद करने पर उनके लिए कपड़े आते थे। पर अब तो आप अम्बर-चर्खेवाले घरों में जाकर देखें, तो कपड़ों की कमी नहीं रह गयी है। मैं हाल ही में दूसरे प्रान्तों के कुछ प्रमुख कार्यकर्ताओं को साथ लेकर दूसरे क्षेत्र के कई गाँवों में गया था। कई परिवार के लोगों से पूछा कि आपने कितने कपड़े खादी के लिये? उन्होंने जो आँकड़े बताये तो हमें विश्वास नहीं हुआ, ऐसा उनकी समझ में आ गया। तब उन्होंने लगभग डेढ़ सौ रुपये के कपड़े लाकर हमारे सामने आनन्द के साथ रख दिये। बहनों के बदन पर, जहाँ अम्बर चर्खे चलते हैं, फटे कपड़े नहीं हैं, ऐसा मैंने पाया। अब वे आनन्द से कहती हैं कि कपड़े की दिक्कत नहीं है। आत्मविश्वास जम गया है। अब वे समझने लगी हैं कि अपनी आजीविका के लायक वे स्वयं उपार्जन कर सकती हैं।

कितने परिवारों की तो ऐसी हालत है कि लड़कियाँ शादी करने के पहले ही अपने लिए काफी कपड़े, जो शादी में चाहिए, इकट्ठा कर लेती हैं, जिस कारण उनके अभिभावकों का बोझ हल्का पड़ जाता है। नकद पैसे भी अपने लिए जमा कर लेती हैं। ऐसी बहनों के परिवार के लोग आनन्द से उनको प्यार करते हैं।

मैंने तो कई बहनों को देखा है कि अम्बर-चर्खा चलाकर अपने पति के स्कूल या कॉलेज में अध्ययन करने का खर्च दिया है और दे रही हैं। क्या ऐसा दृश्य साधारण लोगों में बगैर चर्खे के देखने को मिलने की सम्भावना है? बहनों को उपार्जन करने का साधन दिया जाय, तो वे अपने पूर्व गौरव को प्राप्त कर सकती हैं।

●●

अनुकूलामवाग्दुष्टां दक्षां साध्वीं प्रजावतीम्।
त्यजन्भार्यामवस्थाप्यो राज्ञा दण्डेन भूयसा॥
—नारदस्मृति, १५।९५

[अर्थात्, जो पुरुष अनुकूल, प्रियवदा, कुशल, साध्वी और प्रजावती (बाल बच्चोंवाली) पत्नी का परित्याग करता है, राजा का कर्त्तव्य है कि वह उस पुरुष को प्रचुर दण्ड दे और उसे उसी पत्नी के साथ रहने को विवश करे।]

विहार में मध्यवर्गीय महिलाओं की समस्याएँ

श्रीभुवनेश्वरप्रसाद सिंह 'भुवनेश' ; पटना

आज नारी के समक्ष अनेक समस्याएँ उपस्थित हैं। उसका जीवन ही एक समस्या बन चुका है। ये समस्याएँ उपस्थित तो हैं नारी-वर्ग के समक्ष, पर उनके समाधान के लिए पुरुष वर्ग को भी एँड़ी चोटी का पसीना एक करना पड़ता है। यही कारण है कि आज की नारी, पुरुष-वर्ग के लिए, स्वयं एक समस्या बनी हुई है।

नारी जिस समय नवजात शिशु के रूप में इस वसुन्धरा पर आकर सर्वप्रथम भगवान अंशुमाली की किरणों के दर्शन करती है, उसी समय से उसके परिवार में उसके प्रति एक तिरस्कार की भावना जाग्रत् हो जाती है। फर्ज कीजिए—मध्यवर्ग के एक परिवार में कन्या का जन्म हुआ। बहू के ससुर ने यह सुनते ही नाक-भौं सिकोड़ लिया। बूढ़ी सास ने तो अपना सिर पीट लिया—हाय राम! कितनी उम्मीदें थीं कि पोते को गोद में खेलाऊँगी, पर, बहू कुलच्छनी निकली, आशा पर पानी फेर दिया।

घर-पड़ोस की खेदजनक बातें सुनते-सुनते बेचारी बहू का मन भी छोटा हो जाता है। पर, आखिर कन्या भी तो उसका खून ही है। बच्ची पर तो उसके मातृत्व का साया वैसा ही रहेगा, जैसा पुत्र पर रहता। फिर भी, न जाने क्यों, उस माँ के हृदय के किसी कोने में भी यह भावना अवश्य उपस्थित रहती है कि उसे कन्या न होकर पुत्र ही होता, तो उसका मान बढ़ता। भला, एक नारी के हृदय में ही नारी के प्रति यह उपेक्षा क्यों?

हाँ, कितने ही ऐसे भी परिवार हैं, जहाँ कन्या का आगमन लक्ष्मी का आगमन अवश्य माना जाता है। कुछ परिवार वैसी स्थिति मे भी आनन्द मनाते हैं, जब पुत्री आकर पुत्र के अभाव को पूरा करती है। किन्तु ऐसे उदार परिवार इने गिने ही देखे जाते हैं।

कन्या के बड़ी होने पर उसे पढ़ने के लिए पाठशाला तक तो भेजा जाता है, पर आगे की शिक्षा में काफी अड़चनें पैदा होने लगती हैं। मध्यवर्गीय लोगों का विचार है कि लड़कियाँ ऊँची शिक्षा प्राप्त कर अपनी कुल-मर्यादा को भूल जाती हैं—आदर्श गृहिणी न बनकर अहंकारी गृह-स्वामिनी बन जाती हैं—अपने सास ससुर की सेवा और पति की आज्ञा का पालन न कर उलटे उनपर हुकूमत करने लगती हैं तथा उनसे ही अपनी सेवा कराना चाहती हैं। ऐसी स्थिति में साधारण शिक्षा ही लड़कियों के लिए पर्याप्त है। अपढ़ स्त्रियाँ तो यहाँतक कहती हैं कि लड़की रामायण और चिट्ठी पत्री भर पढ़ ले—यही काफी है।

उक्त विचारों को मैं मान्यता नहीं देता। वे अदूरदर्शितापूर्ण और अप्रगतिशील हैं। सुशिक्षिता नारी जितनी अच्छी गृहिणी बन सकती है, अपढ़ और मूर्खा नहीं। शिक्षा के प्रभाव से ही विचार मे उच्चता आती है। नारी के लिए केवल गृहिणी बनकर ही जिन्दगी

को गुजार देना पर्याप्त नहीं है। देश और समाज में ऐसे बहुत से कार्य अधूरे पड़े हैं, जिन्हें करने का अधिकार पुरुषों के साथ साथ नारियों को भी प्राप्त है। अधिकार स्त्री और पुरुष दोनों को समान है। फिर, नारी के अधिकार को छीनकर केवल पुरुष ही उसका उपभोग करे, यह कहाँ का न्याय है?

स्त्री कोई मशीन नहीं, जो सिर्फ बच्चे पैदा करने के लिए ही बनी हो। हिन्दुस्तान की हर नारी को विजयालक्ष्मी, इन्दिरा गांधी और सरोजिनी नायडू बनने का अधिकार है। पर, खेद है कि यथोचित शिक्षा न देकर उसके विचार कुचल दिये जाते हैं। उसके संस्कार और उसकी आत्मा तक को पहले ही इतना कुंठित बना दिया जाता है कि वह बिलकुल बेचारी बनकर रह जाती है—और रह जाती है मात्र दया और सहानुभूति की पात्री बनकर।

समाज और कानून ने तो नर-नारी को समान अधिकार दे रखे हैं, पर वास्तविकता और व्यावहारिकता जब सामने आती है, तब समाज और कानून को भी चुप रह जाना पड़ता है। कानून ने दहेज पर पाबंदी का बिल पास कर दिया है, हमारा समाज नारी-जागरण का हिमायती बन बैठा है, पर नारी के लिए जब पति चुनने का समय आता है, तब समाज और कानून उसे इस अधिकार से वंचित कर देते हैं।

तिलक-दहेज के आधिक्य के कारण भी कन्या के विवाह में बाधाएँ होती हैं। लाख हाथ-पाँव मारने के बाद भी साधारण स्थिति के माँ बाप अपनी बेटी के लिए सुयोग्य वर ढूँढने में सफल नहीं हो पाते। जहाँ घर मिलता है वहाँ माँगें ही इतनी अधिक होती हैं कि बेचारे बाप को उलटे पाँव लौट आना पड़ता है। फलस्वरूप, कन्या की उम्र बढ़ती जाती है। इस बीच सामाजिक प्रतिबंधों, शंकाओं एवं चर्चाओं के कारण विवाह की उम्र तक पहुँचते-पहुँचते उसके हृदय की सारी प्रफुल्लता समाप्तप्राय हो जाती है। वह पुरुष वर्ग से ही उदासीन-सी दीखने लगती है। ऐसी स्थिति में क्या उससे यह आशा की जा सकती है कि वह आगे चलकर सफल एवं सुखी गृहिणी बन सकेगी?

बाल-विवाह का प्रचलन भी नारी वर्ग के लिए एक जटिल समस्या है। यह विवाह मध्यवर्गीय लोगों में ही अधिक प्रचलित है। आर्थिक कठिनाइयाँ तो साथ लगी ही हैं, ये अल्पशिक्षित मध्यवर्गीय परिवार रूढ़ियों के भी इतने बड़े पुजारी हैं कि अपने हानि लाभ की परवा किये बगैर आँख मूँदकर लकीर के फकीर बने बैठे हैं—जाति पाँति, कुल-परम्परा, लोकाचार आदि के बनावटी बन्धनों में उलझे रहकर मूढ़ता का फल भोगते हैं। लड़की दस साल की हुई नहीं कि लग गये वर की खोज में। अपने इस बोझ को शीघ्र उतार फेंकने के लिए वे कमसिनी में ही बेटी का विवाह कर देते हैं—उसकी जिन्दगी की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते। बेचारी बाल वधू क्या अपने सुहाग-सिन्दूर को भी पहचान पाती है? वह तो अपने इस विवाह को गुड्डे का खेल ही समझती है। वास्तविकता का ज्ञान तो उसे तब होता है, जब या तो वह विधवा होकर मर मरकर जीने के लिए मजबूर हो जाती है या अपने ही स्वास्थ्य को खोकर जीवन-भर बिस्तर पर पड़ी कराहती रहती है।

बाल विवाह से ही विधवाओं की संख्या बढ़ती है। बाल-विधवाएँ आज निराश्रय होकर आठ-आठ आँसू बहा रही हैं, पर उनके इस करुण क्रन्दन को सुननेवाला कोई नहीं है। क्या उन्हें भी सुहागिनों की तरह सुखपूर्वक जीने का अधिकार नहीं है? यदि है, तो उन्हें पुनर्विवाह का अधिकार क्यों नहीं दिया जाता? बाल विधवा होने के लिए दोषी कौन है—ये अबलाएँ या बाल विवाह करनेवाला पुरुष-समाज?

बाल-विवाह के दुष्परिणाम के बारे में एक स्थान पर महात्मा गांधी ने कहा है—"दूसरा परिणाम बाल माताओं की बड़ी संख्या है जिनका संतान होते ही देहान्त हो जाता है। इस प्रकार की मृत्यु भारत में २,००,००० प्रतिवर्ष है। इससे हर घण्टे २० मृत्यु होती है और इनमें से बहुत सी तो २० साल से नीचे ही मर जाती हैं। माताओं की मृत्यु की हमारे पास कोई सही तादाद नहीं, परन्तु भारत में हर हजार में २०५ होती हैं, जबकि इंगलैंड में केवल ४५।"

बाल-विवाह से माँ के ही ऊपर बुरा प्रभाव नहीं पड़ता, बच्चे पर भी पड़ता है। बाल-माता की संतानें भी कमजोर और रोगग्रस्त हुआ करती हैं तथा अधिक संख्या में जन्म लेते ही मर जाती हैं।

महात्मा गांधी ने दूसरे स्थान पर कहा है—"किसी पाशविक प्रथा की धर्मपुष्टि करना धर्म नहीं, अधर्म है। स्मृतियों में परस्पर विरोधी वाक्य भरे पड़े हैं। इन विरोधों से तो इतमीनान के काबिल एक यही नतीजा निकल सकता है कि उन वाक्यों को जो प्रचलित और सर्वमान्य नीति के तथा खासकर स्मृतियों में ही लिखित आदेशों के विपरीत हैं—क्षेपक समझकर छोड़ देना चाहिए। एक ही पुरुष एक ही समय में आत्मसंयम का उपदेश देनेवाला और पशुवृत्ति को उत्तेजित करनेवाला वाक्य नहीं लिख सकता। जिसे आत्म-संयम से कुछ भी सरोकार न हो और जो पाप में डूबा हुआ हो, वही कह सकता है कि कन्या के ऋतुमती होने के पूर्व ही उसका विवाह न करने से पाप लगता है। मानना तो यह चाहिए कि रजस्वला होने के बाद भी कुछ वर्ष तक लड़की का विवाह करना पाप है। उसके पहले तो विवाह का खयाल भी नहीं किया जा सकता है।"

पर्दा प्रथा मध्यवर्गीय नारी जाति की कोढ़ है, जो उसके सामाजिक शरीर को दिनानुदिन गलाती जा रही है। उच्चवर्गीय नारी तो शैक्षिक और सामाजिक क्षेत्र में भी इतना आगे बढ़ चुकी है कि वह पर्दा प्रथा को महत्त्व नहीं देती। पिछड़ी जाति की महिलाओं को पर्दे से क्या वास्ता? उन्हें तो दिन-रात खेतों में ही काम करना पड़ता है। इस पर्दा प्रथा के कारण केवल मध्यवर्गीय नारी का ही जीवन कैदी के जीवन सा हो गया है। इसी कुप्रथा ने नारी को वधू बनाकर घर की छोटी सी चहारदीवारी के अन्दर कैद कर रखा है। यह पर्दा तो मध्यम नारी-वर्ग के पैरों की बेड़ी है, जो उसे बाहरी संसार से दूर रखती है—कुएँ के मेढक की तरह।

पुरुष की जननी है नारी। किन्तु, जिस पुत्र की माता ही अपढ़, गँवार और अनाड़ी हो, वह स्वयं कहाँतक समाज और राष्ट्र का कर्णधार बन सकता है। पुरुष को जन्म देना मात्र ही नारी का काम नहीं है, बल्कि उसका पालन-पोषण करके उसे सुशिक्षित और सुयोग्य बनाना भी नारी का परम कर्तव्य है।

बच्चों में अनुकरण करने की प्रवृत्ति अधिक होती है। वह माता की गोद से ही अपनी माँ के कार्य कलाप एवं बोल-चाल का अनुकरण करना प्रारम्भ कर देता है। बहुधा देखा गया है कि अपढ़ और गँवार स्त्रियाँ अपने बच्चे को प्राय ताड़ना ही देती रहती हैं—प्यार और दुलार बहुत ही कम। दूसरों की निंदा करने और सुनने में उन्हें मजा आता है। बच्चे अपनी माँ के अवगुणों का अनुकरण करेंगे ही। इस प्रकार, बच्चों का भविष्य बिगड़ जाता है।

उपर्युक्त समस्याओं का समाधान तभी सम्भव है, जब नारी वर्ग को उन्नति की ओर ले जाने में *मध्यम श्रेणी का पुरुष-वर्ग सदा सचेष्ट रहे। नारी के प्रति श्रद्धा और समानता* का भाव-व्यवहार सबसे पहले अपेक्षित है। साथ-साथ निम्नांकित कुछ बातों की ओर यदि मध्यम नर-नारी वर्ग परस्पर मिलकर ध्यान दें, तो उक्त समस्याओं का समाधान सम्भव है—

१. नारी को भी पुरुष की भाँति प्रत्येक स्थान पर समान अधिकार प्राप्त हो।
२ उसे अपने पति के चुनाव में पूर्ण स्वच्छन्दता प्राप्त रहे।
३. तिलक-दहेज की प्रथा का सर्वथा उन्मूलन हो।
४ लड़कों की तरह लड़कियों को भी ऊँची शिक्षा दिलाने का प्रयत्न किया जाय।
५ बाल विवाह की रोक थाम की जाय।
६. पर्दा प्रथा को हटा दिया जाय।
७ प्रत्येक स्त्री को गृहिणी बनाकर घर की चहारदीवारी के अन्दर न बाँधा जाय, बल्कि जो अपनी योग्यता द्वारा आगे बढ़ने लायक है, उसे बढ़ने दिया जाय।
८. प्रशासन की ओर से मध्यवर्गीय समाज की आर्थिक दशा सुधारने के उपाय और प्रयास किये जायँ तथा उसके नारी वर्ग को सुशिक्षित बनाने के लिए उत्साहवर्द्धक आर्थिक व्यवस्था की जाय।

●●

अन्योऽन्यस्याव्यभीचारो भवेदामरणान्तिक।
एष धर्मं समासेन ज्ञेय स्त्रीपुसयो पर॥

—मनु० ९।१०१

[अर्थात्, सामान्यतया पति पत्नी का परम धर्म यह है कि दोनों आमरण एक दूसरे के प्रति पवित्र और सच्चे रहें।]

वाल्मीकि की 'सीता'

पण्डित जगदीश शुक्ल, साहित्यालंकार, काव्यतीर्थ, गच्छई, सूर्यपुरा (शाहाबाद)

आदिकवि वाल्मीकि मुनि ने अपनी रामायण में सीता का जो चरित्र-चित्रण किया है, वह नारी-जाति के लिए सारी जीवनोपयोगी कल्याणप्रद शिक्षाओं से परिपूर्ण है। सीता का परम पावन समुज्ज्वल चरित्र वाल्मीकीय रामायण के सभी स्त्री चरित्रों से अधिक व्यापक, अधिक विस्तृत, उच्चतम और महत्तम है।

सीता का आदर्श चरित्र अलौकिक तो है ही, व्यावहारिक भी है। वह आदर के ही नहीं, अनुकरण के भी योग्य है। आप समस्त संसार की स्त्रियों में अग्रगण्य, भारतीय महिलाओं के लिए चरम आदर्श, सतियों में शिरोमणि और अपने निष्कलंक चरित्र से सम्पूर्ण मानव समाज को पवित्र करनेवाली हैं। आपमें अतुल पातिव्रत्य, निर्भयता, पुरुषकारत्व, लोकोत्तर शील, अपार करुणा, विलक्षण वत्सलता, अनुपम क्षमा, सहज सौहार्द, निर्मम त्याग, सर्वोत्तम सदाचार, अदम्य साहस, चरित्र की दृढ़ता, स्वाभाविक सत्यमादि गुण वर्तमान हैं। एक पात्र में इतने सद्गुणों का समावेश महिला-जगत् में सीता की अद्वितीयता का पक्का प्रमाण है। सीता का उच्चादर्श संसार के इतिहास में सादर चिरस्मरणीय रहेगा।

महाशक्ति सीता और सर्वशक्तिमान् राम एक ही ब्रह्म के दो रूप हैं। लीला के लिए ये दोनों पति पत्नी रूप में पृथक् हुए—

स एवात्मानं द्वेधाऽपातयत् ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम्। (बृहदारण्यकोपनिषद्)

सूर्य का अपनी प्रभा से, चन्द्रमा का अपनी चाँदनी से, शरीर का अपनी छाया से और शक्तिमान् का अपनी शक्ति से जैसा अविच्छेद्य सम्बन्ध होता है, वैसा ही अभेद्य सम्बन्ध राम का सीता से है। भगवती सीता स्वयं कहती हैं—

अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा। (वाल्मीकीय रामायण, ५।२१।१५)

"जैसे सूर्य की प्रभा सूर्य से पृथक् नहीं होती, वैसे ही मैं राघव राम से अभिन्न हूँ।"

भगवान् राम ने भी सीता की अभिन्नता की स्वीकृति दी है—

अनन्या हि मया सीता भास्करस्य प्रभा यथा। (वाल्मी० ६।११८।१८)

---

१. इस लेख में पण्डित चन्द्रशेखर शास्त्री और पण्डित द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी द्वारा अनूदित वाल्मीकीय रामायण से उद्धरण दिये गये हैं। संभव है कि अन्यान्य संस्करणों से कुछ पाठ भेद हो। किन्तु भाव-भेद कहीं नहीं है। मैंने काण्ड का नाम न देकर उसकी संख्या ही दी है। यथा बाल के लिए १ और सुन्दर के लिए ५ तथा काण्ड-संख्या के बाद अध्याय और श्लोक की संख्या दी गयी है।—ले०

"सीता का मेरे साथ उसी प्रकार अभिन्न सम्बन्ध है, जिस प्रकार सूर्य का अपनी प्रभा से होता है।"

सीता फिर कहती हैं—

धर्माद्विचलितुं नाहमलं चन्द्रादिव प्रभा। (वाल्मी० २। ३६। २८)

"जैसे चन्द्रमा से उसकी चन्द्रिका अलग होकर नहीं रह सकती, वैसे ही मैं आपके साथ नित्य-निवास के धर्म से विचलित नहीं हो सकूँगी।"

वनयात्रा-काल में अयोध्या-निवासी कहते हैं—

कृतकृत्या हि वैदेही छायेवानुगता पतिम्। (वाल्मी० २। ४०। २४)

"छाया के समान पति का अनुगमन करनेवाली विदेह-पुत्री सीता कृतार्थ हैं।"

'सीता' शब्द का अर्थ 'हल का फाल' भी होता है। हल के फाल से प्रकट होने के कारण ही 'सीता' नामकरण हुआ था—

उत्पन्ना मैथिलकुले जनकस्य महात्मनः।
सीतोत्पन्ना तु सीतेति मानुषैः पुनरुच्यते॥ (वाल्मी० ७। १७। ३७)

"महात्मा जनक के मैथिल-वंश में हल के फाल से (सीता) उत्पन्न हुईं, इससे मानव इनको सीता कहते हैं।"

सीता साक्षात् लक्ष्मी थीं। सीता के अग्नि प्रवेश के बाद राम की स्तुति करते हुए ब्रह्मा कहते हैं—

सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः। (वाल्मी० ६। ११७। २७)

"सीता लक्ष्मी हैं, आप विष्णु हैं, आप प्रजापति कृष्ण हैं।"

इस प्रकार, सीता और राम की अभिन्नता दिखाते हुए आदिकवि वाल्मीकि ने सीता के सद्गुणों का जो परिचय दिया है, उसका यहाँ दिग्दर्शन-मात्र कराया गया है। आप देखें कि वाल्मीकि की सीता कैसी अतुलनीय आदर्श महिला हैं।

अतुल पातिव्रत्य

महर्षि वाल्मीकि ने सीता के पातिव्रत्य का बड़ा स्वाभाविक वर्णन किया है। सीता के कथन और आचरण से ही उनकी पतिभक्ति का गौरव प्रकट कर दिया है।

अपने पतिदेव राम को वन यात्रा के लिए प्रस्तुत देखकर सीता ने झटपट अपने कर्त्तव्य का निर्णय कर लिया। वे राम से बोलीं—

आर्यपुत्र पिता माता भ्राता पुत्रस्तथा स्नुषा।
स्वानि पुण्यानि भुञ्जानाः स्वं स्वं भाग्यमुपासते॥
भर्त्तुर्भाग्यं तु नार्येका प्राप्नोति पुरुषर्षभ।
अतश्चैवाहमादिष्टा वने वस्तव्यमित्यपि॥ (वाल्मी० २।२७।४-५)

"हे आर्यपुत्र! पिता, माता, भाई, पुत्र तथा पुत्रवधू—ये सब के सब अपने-अपने कर्म के अनुसार सुख दुःख का भोग करते हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! एकमात्र पत्नी ही पति के कर्मफलों की भागिनी होती है। अतएव, आपके लिए वनवास की जो आज्ञा हुई है, वह मेरे लिए भी हुई इसलिए मैं भी वनवास करूँगी।"

सीता ने पुनः यह भी स्पष्ट कह दिया—

अनुशिष्टास्मि मात्रा च पित्रा च विविधाश्रयम्।
नास्मि सम्प्रति वक्तव्या वर्तितव्यं यथा मया॥ (वाल्मी० २।२७।१०)

"अपने माता पिता के द्वारा मुझे अनेक बार शिक्षा प्राप्त हो चुकी है, इसलिए इस विषय में अब आप शिक्षा न दें। इस समय मुझे जैसा करना चाहिए, वह मुझे मालूम है।"

सीता की इस उक्ति में कितना आत्मविश्वास और कितनी कर्त्तव्य दृढ़ता है! जिन राजर्षि जनक से ज्ञान प्राप्त करने के लिए बड़े बड़े ब्रह्मर्षियों की मंडली सदैव आया करती थी, जिन महाज्ञानी मिथिलेश्वर के ज्ञान का लोहा सम्पूर्ण संसार मानता था, उनके द्वारा बार-बार दिये गये उपदेश का प्रभाव ऐसा क्यों न हो? सीता ने पिता जनक, माता सुनयना और सास कौसल्या की शिक्षाओं का सदैव ध्यान रखा और बड़ी ही तत्परता के साथ उनका पालन भी किया।

पतिपरायणा पत्नी अपने पति के कर्त्तव्य को समझती है और उस पति कर्म के सहायक रूप अपने कर्त्तव्य को भी जानती है। इसीलिए, आदर्श पतिव्रता पत्नी अपने पति के अनुचित आदेश को बदलवाने का भी प्रेमाग्रह करती है और ऐसा करना अपना अधिकार मानती है। ऐसे प्रेमाग्रह का उद्देश्य पत्नी का स्थूल स्वार्थ नहीं होता, पति हित और पति प्रेम ही उसका लक्ष्य होता है।

सीता ने राम के मन की शंका समझकर यह भी साफ कह दिया—

फलमूलाशना नित्यं भविष्यामि न संशयः।
न ते दुःखं करिष्यामि निवसन्ती त्वया सदा॥ (वाल्मी० २।२७।१६)

"मैं सदा फल मूल खाकर रहूँगी। आपके साथ वन में रहकर आपको किसी भी बात के लिए दुःखी न करूँगी।"

जो स्त्री अपने पति के लिए दुःखदायिनी या भार बन जाय, वह पतिव्रता कैसी? पतिव्रता तो वह है, जो पति का दुःख घटावे, पति का कर्त्तव्य पति से पूरा करावे और उसका जी बहलावे।

सीता फिर राम को पूर्ण आश्वस्त करने की इच्छा से कहती हैं—

अनन्यभावामनुरक्तचेतसं
त्वया वियुक्तां मरणाय निश्चिताम्।
नयस्व मां साधु कुरुष्व याचनां
नातो मया ते गुरुता भविष्यति॥ (वाल्मी० २।२७।२३)

"आपमें ही मेरा हृदय अनन्य भाव से अनुरक्त है—आपके अतिरिक्त और कहीं भी मेरा चित्त आसक्त नहीं। आपके वियोग में मेरी मृत्यु निश्चित है। मुझे साथ ले चलिए, मेरी प्रार्थना सफल कीजिए। मुझे ले चलने से आपको कोई भार न होगा।"

वन-यात्रा के समय ही सीता ने राम से यह भी प्रतिज्ञा की थी--'मैं नियमपूर्वक ब्रह्मचारिणी रहकर आपकी सेवा करूँगी।'

शुश्रूषमाणा ते नित्यं नियता ब्रह्मचारिणी। (वाल्मी० २।२७।१२)

अपने पति से प्रार्थना करती करती सीता प्रेम-विह्वल हो गयीं। वे पति से लिपटकर जोर-जोर से रोने लगीं। उनकी आँखों से स्फटिक के समान स्वच्छ आँसू बहने लगे। वे संज्ञाहीन-सी होने लगीं। तब राम ने दोनों हाथों से उनका आलिंगन करके उन्हें वनयात्रा की अनुमति देते हुए कहा—

न देवि तव दुःखेन स्वर्गमप्यभिरोचये।
न हि मेऽस्ति भयं किञ्चित्स्वयम्भोरिव सर्वतः॥
तव सर्वमभिप्रायमविज्ञाय शुभानने।
वासं न रोचयेऽरण्ये शक्तिमानपि रक्षणे॥ (वाल्मी० २।३०।२७-२८)

"हे देवि! मैं उस स्वर्ग को भी नहीं चाहता, जहाँ तुम्हारे वियोग का दुःख हो। जैसे स्वयम्भू ब्रह्मा को किसी का भय नहीं रहता, उसी प्रकार मुझे किसी का भय नहीं है। हे *शुभानने! तुम्हारी रक्षा के लिए मैं समर्थ हूँ,* किन्तु ठीक-ठीक अभिप्राय जाने बिना तुम्हारा वनवास मैं उचित नहीं समझता था। तुम मेरे साथ वनवास के लिए चलो।"

अपने पुनीत प्रेम से पति के हृदय को जीतकर सीता वन में गयीं। वहाँ निरन्तर पति-सेवा में संलग्न रहने से जनकपुर और अयोध्या के राजोचित भोग तथा ऐश्वर्य उन्हें विस्मृत-से हो गये। उन्होंने ऋषि-पत्नी अनसूया से कहा भी—

यद्यप्येष भवेद्भर्त्ता अनार्यो वृत्तिवर्जितः।
अद्वैधमत्र वर्त्तव्यं तथाप्येष मया भवेत्॥
किं पुनर्यो गुणश्लाघ्यः सानुक्रोशो जितेन्द्रियः।
स्थितानुरागो धर्मात्मा मातृवत्पितृवत्प्रियः॥ (वाल्मी० २।११८।३-४)

"यदि मेरे पति अनार्य और जीविका-रहित होते, तो भी मैं बिना किसी दुविधा के इनकी सेवा में लगी रहती। फिर, जब ये अपने गुणों के कारण ही सबके प्रशंसा-पात्र बने हुए हैं तथा दयालु, जितेन्द्रिय, धर्मात्मा, स्थायी प्रेम करनेवाले और माता-पिता की भाँति हितैषी हैं, तब इनकी सेवा के विषय में कहना ही क्या है?"

सीता को यह विश्वास था कि—

न पिता नात्मजो नात्मा न माता न सखीजनः।
इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा॥ (वाल्मी० २।२७।६)

"स्त्री के लिए इस लोक में और परलोक में पति ही गति है। पिता, पुत्र, माता, सखियाँ तथा अपनी देह भी सच्ची गति नहीं है।"

सीता तो अपने सतीत्व के तेज से ही रावण को भस्म कर सकती थीं; किन्तु पति की आज्ञावर्त्तिनी पत्नी भला पति की आज्ञा के बिना कुछ करे तो कैसे? पापात्मा रावण की कुत्सित मनोवृत्ति की धज्जियाँ उड़ाती हुई पतिव्रता सीता कहती हैं—

असन्देशात्तु रामस्य तपसश्चानुपालनात्।
न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्हतेजसा॥ (वाल्मी० ५।२२।२०)

"हे रावण, तुम्हें जलाकर भस्म कर देने का तेज रखती हुई भी मैं रामचन्द्रजी का आदेश नहीं होने के कारण और तपोभंग के भय से तुम्हें जलाकर भस्म नहीं कर रही हूँ।"

हनुमान् की पूँछ में आग लगाने की बात जब सीता को ज्ञात हुई, तब उन्होंने अग्निदेव से प्रार्थना की—

यद्यस्ति पतिशुश्रूषा यद्यस्ति चरितं तपः।
यदि वा त्वेकपत्नीत्वं शीतो भव हनूमतः॥ (वाल्मी० ५।५३।२६)

"हे अग्निदेव! यदि मैंने पति की सेवा की है, यदि मैंने तपस्या की है, यदि मैं एक राम की ही पत्नी रही हूँ, तो तुम हनुमान् के लिए शीतल हो जाओ।"

अपनी अग्नि-परीक्षा के समय भी उन्होंने प्रज्वलित अग्नि से प्रार्थना की थी—

यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात्।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः॥ (वाल्मी० ६।११६।२५)

"हे लोक-साक्षी पावक! यदि पति राम से मेरा मन कभी अलग न हुआ हो, तो आप सब प्रकार से मेरी रक्षा करें।"

महासती सीता की प्रार्थना से हनुमान् के लिए अग्निदेव सचमुच शीतल हो गये और लंका के लिए दाहक बन गये। सीता के सच्चे पातिव्रत्य की गवाही अग्नि परीक्षा के बाद, स्वयं अग्निदेव ने भी दी थी—

विशुद्धभावां निष्पापां प्रतिगृह्णीष्व मैथिलीम्।
न किञ्चिदभिधातव्या अहमाज्ञापयामि ते॥ (वाल्मी० ६।११८।१०)

"हे राम! सीता के भाव शुद्ध हैं, यह निष्पाप है, तुम इसे स्वीकार करो। अब इससे कुछ न कहना—यह मेरी आज्ञा है।"

सीता के जिस पातिव्रत्य ने धधकती हुई आग को भी चन्दन-सा शीतल बना दिया, जिस पातिव्रत्य के साक्ष्य के लिए स्वयं अग्निदेव को प्रकट होकर अपना वक्तव्य देना पड़ा; उस पातिव्रत्य की तुलना संसार की किस पतिव्रता के सतीत्व से की जाय और कैसे की जाय? इसीलिए तो यह कहना पड़ता है कि सीता का पातिव्रत्य दिव्य और वरेण्य, अतएव विश्ववन्द्य है।

निर्भयता

सीता की निर्भयता उनके सतीत्व की तेजस्विता व्यक्त करती है। जिस विश्वविजयी रावण का नाम-धाम सुनकर इन्द्रादि देवता भी दहल जाते थे, उसी रावण को मुँहतोड़ उत्तर देते हुए सीता ने भली भाँति उसका मान-मर्दन कर दिया—

त्वं पुनर्जम्बुकः सिंहीं मामिहेच्छसि दुर्लभाम् ।
नाहं शक्या त्वया स्प्रष्टुमादित्यस्य प्रभा यथा ॥
यो रामस्य प्रियां भार्यां प्रधर्षयितुमिच्छसि ।
अग्निं प्रज्वलितं दृष्ट्वा वस्त्रेणाहर्तुमिच्छसि ॥
कल्याणवृत्तां यो भार्यां रामस्याहर्तुमिच्छसि ।
अयोमुखानां शूलानां मध्ये चरितुमिच्छसि ॥

(वाल्मी० ३ । ४७ । ३७, ४३ ४४)

"(हे रावण) तू सियार मुझ दुर्लभ सिंहनी की इच्छा करता है ? जैसे कोई सूर्य की प्रभा को छू नहीं सकता, वैसे ही तू मेरा स्पर्श भी नहीं कर सकता। यदि तू राम की प्रिय पत्नी पर बलात्कार करना चाहता है, तो अवश्य ही धधकती आग को देखकर भी उसे कपड़े में बाँधकर ले जाना चाहता है। रामचन्द्रजी की सच्चरित्रा पत्नी का जो अपहरण करना चाहता है, वह लोहे के चोखे-तीखे शूलों पर विचरना चाहता है।"

स्वजनों से बहुत दूर रहने तथा भयावनी राक्षसियों से दिन रात डराये धमकाये जाने पर भी सीता महापराक्रमी रावण से डरीं या दबीं नहीं; बल्कि उन्होंने राक्षसराज की धज्जियाँ उड़ा डालीं। चोरी से अपने अपहरण किये जाने का प्रमाण देते हुए उन्होंने रावण के दम्भ-पूर्ण वीरत्व का कच्चा चिट्ठा खोलकर उसके सामने रख दिया—उसे पानी पानी कर दिया—उसकी साम दाम-भय-विभेद नीति ने सीता के आगे घुटने टेक दिये और उस मुँहफट को मुँह की खानी पड़ी। उसके प्रलोभन-पूर्ण प्रस्ताव पर सीता का करारा उत्तर सूने ताल पर कड़ककर गिरी हुई बिजली-सा था—

न मां प्रार्थयितुं युक्तस्त्वं सिद्धिमिव पापकृत् ।
अकार्यं न मया कार्यमेकपत्न्या विगर्हितम् ॥
शक्या लोभयितुं नाहमैश्वर्येण धनेन वा ।
अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा ॥
जनस्थाने हतस्थाने निहते रक्षसां बले ।
अशक्तेन त्वया रक्षः कृतमेतदसाधु वै ।
आश्रमं तत्तयोः शून्यं प्रविश्य नरसिंहयोः ।
गोचरं गतयोर्भ्रात्रोरपनीता त्वयाधम ॥
नहि गन्धमुपाघ्राय रामलक्ष्मणयोस्त्वया ।
शक्यं सन्दर्शने स्थातुं शुना शार्दूलयोरिव ॥

क्षिप्रं तव सनाथो मे रामः सौमित्रिणा सह।
तोयमल्पमिवादित्यः प्राणानादास्यते शरैः ॥
गिरिं कुबेरस्य गतोऽथवा लयं
सभां गतो वा वरुणस्य राज्ञः।
असंशयं दाशरथेर्विमोक्ष्यसे
महाद्रुमः कालहतोऽशनेरिव ॥
(वाल्मी० ५।२१। ४, १५, २६-३१, ३३ ३४)

"(हे रावण) जैसे पापी सिद्धि की प्रार्थना नहीं कर सकता, वैसे ही तू मुझसे प्रार्थना (याचना) करने के योग्य नहीं। मैं पतिव्रता हूँ, इसलिए निन्दित अकर्त्तव्य कार्य मैं नहीं कर सकती। जैसे प्रभा सूर्य की सहचरी है, वैसे ही मैं रामचन्द्र की अनन्य पत्नी और अनुचरी हूँ। मैं धन और ऐश्वर्य के लोभ में नहीं आ सकती।"

"सारी राक्षस-सेना के निहत हो जाने पर जनस्थान (दण्डकारण्य) राक्षस शून्य हो गया। इसके प्रतिशोध में असमर्थ होकर तूने परस्त्री हरण का यह पापकर्म किया है। पुरुषसिंह राम लक्ष्मण से रहित सूने आश्रम में प्रवेश कर तूने मेरा हरण किया। तू अधम है। जैसे दो बाघों के सामने कुत्ता नहीं ठहर सकता वैसे ही राम और लक्ष्मण की गंध पाकर भी तू उनके सामने टिक नहीं सकता। जैसे सूर्य थोड़े जल को सहज ही सोख लेता है, वैसे ही लक्ष्मण-सहित मेरे स्वामी रामचन्द्र अपने बाणों से तेरे प्राण ले लेंगे। काल सिर पर नाच रहा है, इसलिए तू कुबेर के पर्वत पर जा या वरुण की सभा में, किन्तु शक्तिमान् राम से बच नहीं सकता। जैसे विशाल वृक्ष को वज्र मटियामेट कर देता है, वैसे ही तेरा भी काम तमाम होगा।"

बेबसी की उस अत्यन्त दयनीय परिस्थिति में भी सीता की ये निर्भीक उक्तियाँ आज भी महिला-समाज में शक्ति और साहस का सचार कर सकती हैं—हमारी गृह-देवियों को दुर्गा और लक्ष्मीबाई बना सकती हैं। मुझे याद है, अहिंसा के सच्चे पुजारी हमारे राष्ट्रपिता जब नोआखाली गये थे, तब वहाँ की भयभीत महिलाओं को उन्होंने सीता और लक्ष्मीबाई बनने का ही उपदेश दिया था।

कौन कहता है कि स्त्री 'अबला' है? स्त्री में यदि अपने सतीत्व की शक्ति हो, तो वह अकेली ही ब्रह्माण्ड को भी हिला सकती है। अदिति अनसूया, सावित्री आदि असंख्य भारतीय सतियों की कथाएँ पुराण-प्रसिद्ध हैं। सती नारी को सिद्ध योगी के समान अमोघ शक्ति प्राप्त है। सतीत्व का तेज ही अबला को महाप्रबला बनाता है।

पुरुषकारत्व

जीवों के परम कल्याण के लिए सीता निरन्तर व्याकुल रहती थीं। कोई जीव जैसे ही भगवान् राम की शरण में आता था, आप उसके सारे अपराधों को क्षमा कराने के लिए

प्रयत्न आरम्भ कर देती थीं—भगवान् की कृपा को उद्दीप्त कर शरणागत जीव का उद्धार करा देती थीं। सीता का यही कार्य 'पुरुषकार' कहलाता है।

कौए का रूप धरकर इन्द्र का पुत्र जयन्त राम की शक्ति परीक्षा के लिए वन में आया। राम जब सो रहे थे, सीता के वक्षःस्थल को छत-विक्षत कर डाला। जब रक्त की बूँदें टपकने लगीं, तब राम जगे। कुपित सर्प के समान फुफकारते हुए सीता से बोले—

केन ते नागनासोरु विक्षतं वै स्तनान्तरम्।
कः क्रीडति सरोषेण पञ्चवक्त्रेण भोगिना॥ (वाल्मी० ५।३८।२५)

"हे हस्तिशुण्ड-सदृश जाँघोंवाली सीते! तुम्हारे वक्षःस्थल में किसने घाव किया! बताओ, क्रुद्ध पँचमुँहे साँप के साथ कौन खिलवाड़ कर रहा है!"

राम ने अपराधी का पता पूछा। किन्तु, प्राणिमात्र को पुत्र माननेवाली सीता ने सामने ही उपस्थित उस अक्षम्य अपराधी को भी बचाना चाहा। इसीलिए मौन रह गयीं—क्रुद्ध पति को अपराधी पुत्र का पता नहीं दिया।

किन्तु, दुष्ट काक तो सर्वशक्तिमान् राम की परीक्षा के लिए आया था, अतः अपने रक्तरंजित तीखे नखों को दिखाता हुआ सामने ही डटा हुआ था। फलतः, राम ने उसे अनायास ही देख लिया। फिर तो क्रुद्ध राम ने उसके ऊपर ब्रह्मास्त्र ही छोड़ दिया। कौआ उस ब्रह्मास्त्र से बचने के लिए ब्रह्माण्ड के प्रत्येक लोक से घूम आया; किन्तु कहीं भी उसे शरण नहीं मिली। अन्त में वह राम की शरण में ही आकर गिर गया—

त्रींल्लोकान् सम्परिक्रम्य तमेव शरणं गतः। (वाल्मी० ५।३८।३२)

उस कुपुत्र को भी शरणागत देखकर सीता का वात्सल्य उमड़ आया—करुणा की मंदाकिनी बह चली और क्षमा का गम्भीर समुद्र हिलोरें लेने लगा। महर्षि व्यास ने 'पद्म-पुराण' में इस प्रसंग का बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन किया है—

पुरतः पतितं देवी धरण्यां वायसं तदा।
तच्छिरः पादयोस्तस्य योजयामास जानकी॥
प्राणसंशयमापन्नं दृष्ट्वा सीताऽथ वायसम्।
त्राहि त्राहीति भर्त्तारमुवाच दयया विभुम्॥
तमुत्थाप्य करेणाथ कृपापीयूषसागरः।
ररक्ष रामो गुणवान् वायसं दययैक्षत॥

"पृथ्वी पर सामने पड़े हुए, प्राण संकट से त्रस्त उस कौए को सीता ने उठाया और उसके मस्तक को भगवान् राम के चरणों पर रखकर अपने ही कर-कमलों से साष्टांग प्रणाम का विधान सम्पन्न करा दिया। फिर, दयार्द्र होकर राम से बोली—'इसकी रक्षा कीजिए।' फिर तो करुणामृत के समुद्र परम गुणवान् राम ने अपने ही कर-कमलों से उसे उठा लिया और अपनी दया-दृष्टि से देखकर उसकी रक्षा की।"

जयन्त के अपराध पर आग बबूला होकर मर्यादा-पुरुषोत्तम राम ने तो ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर दिया, किन्तु करुणामयी सीता की दयालुता उस कठोर अपराधी पर भी बरस पड़ी और उसका भी उद्धार कराकर ही छोड़ा। सीता का अपना अपराधी था जयन्त। उसने निरपराध सीता के सुकुमार शरीर को लहूलुहान कर डाला था। फिर भी, क्षमामूर्त्ति सीता ने शरणागत होने पर उसे क्षमा ही प्रदान कर अपने स्वामी राम से भी उसे प्राण दान दिलवाया। यह अनोखा उदाहरण है सीता के पुण्यकारत्व का। सीता के इन अद्भुत गुणों के सामने राम के गुण भी छोटे और हल्के लगने लगते हैं। तभी तो 'श्रीगुणरत्नकोष' के रचयिता भट्टार्यस्वामी ने लिखा है—लघुतरा रामस्य गोष्ठीकृता, अर्थात् 'राम के गुण समूह को सीता के गुण समूह ने छोटा कर दिया।'

सीता और राम में अभेद्य सम्बन्ध होने के कारण सम्पूर्ण राम कथा तो सीता-कथा भी है ही, किन्तु सच पूछिए, तो रामायण में राम-चरित से सीता-चरित ही महान् है। इसीलिए महर्षि वाल्मीकि ने लिखा है—सीतायाः चरितं महत्। रामत्व की पूर्णता और स्वधर्म पालन के लिए सीता ने सबसे अधिक कष्ट झेले। इसी कारण, सीता-चरित की महत्ता राम चरित से भी अधिक है।

लोकोत्तर शील

यद्यपि सभी ऊँचे मानवोचित गुण 'शील' के अतर्गत आ जाते हैं। तथापि मन से, वचन से और कर्म से भी सभी प्राणियों में प्रेम, दया और दान का भाव होना शील का स्थूल स्वरूप है—

> अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
> अनुग्रहश्च दानञ्च शीलमेतत् प्रशस्यते॥

(महाभारत, शान्तिपर्व, शीलनिरूपण)

रावण ने छल से सीता हरण किया था—भयावनी राक्षसियों के द्वारा उन्हें दिन रात भयभीत रखा—उनका धर्म बिगाड़ने के लिए कोई उपाय उठा नहीं रखा। तब भी उस महापातकी असुराधम के लिए सीता के हृदय में सदैव कल्याण भावना ही जाग्रत् रही। सीता उसको भी अपना प्रमत्त पुत्र मानकर अन्त तक उसकी भलाई के लिए सचेष्ट रहीं। किन्तु, उस मदान्ध ने अपनी सच्ची जननी की एक न सुनी। सीता ने जब देखा कि यह अभिमानी भगवान् राम की शरणागति के लिए तैयार नहीं हो सकता, तब उनसे मित्रता करने के लिए ही उससे अनुरोध किया—

> मित्रमौपयिकं कर्त्तुं रामः स्थानं परीप्सता।
> वधं चानिच्छता घोरं त्वयासौ पुरुषर्षभः॥
> विदितः सर्वधर्मज्ञः शरणागतवत्सलः।
> तेन मैत्री भवतु ते यदि जीवितुमिच्छसि॥

प्रसादयस्व त्वं चैनं शरणागतवत्सलम् ।
मां चास्मै प्रयतो भूत्वा निर्यातयितुमर्हसि ॥

(वाल्मी० ५।२१।१९-२१)

"हे रावण ! यदि तू अपने अधिकार को बचाना चाहता है, अपना नाश नहीं चाहता, तो पुरुषोत्तम राम से मैत्री करना तेरा कर्त्तव्य है। महान् अपराधी होने पर भी यदि तू जीना चाहता है और अपनी प्यारी लंका को श्मशान बनाना नहीं चाहता, तो राम से मैत्री कर ले। वे सारे धर्मों को जाननेवाले और शरणागत पर प्रेम करनेवाले हैं। उनको तू प्रसन्न कर। मुझे भक्ति-भाव से वहाँ ले चलकर उनको समर्पित कर देना तेरा कर्त्तव्य है।"

पर वह मूढ लाख समझाने-बुझाने पर भी न माना।

अनुपम क्षमा

रावण-वध के बाद राम के आदेश से लंका में जाकर हनुमान् ने सीता को सुखद संवाद सुनाया। सीता को अपूर्व आनन्द हुआ। पवनकुमार राक्षसियों के द्वारा सीता का सताया जाना अपनी आँखों देख चुके थे, इसलिए उन राक्षसियों पर उनका बड़ा क्रोध था। सीता को प्रसन्न देखकर इन्होंने राक्षसियों को मारने के लिए उनसे आज्ञा माँगी—

घोररूपसमाचाराः क्रूराः क्रूरतरेक्षणाः ।
राक्षस्यो दारुणकथा वरमेतत् प्रयच्छ मे ॥
मुष्टिभिः पाणिभिः सर्वाश्चरणैश्चैव शोभने ।
इच्छामि विविधैर्घातैर्हन्तुमेताः सुदारुणाः ॥
घातैर्जानुप्रहारैश्च दशनानां च पातनैः ।
भक्षणैः कर्णनासानां केशानां लुञ्चनैस्तथा ॥
नृशंसकारैर्बहुभिर्विप्रकारैर्यशस्विनि ।
हन्तुमिच्छाम्यहं देवी तवेमाः कृतकिल्बिषाः ॥

(वाल्मी० ६।११६।३२-३४, ३६)

"हे शोभने ! ये भयावने रूप और दुराचारोंवाली तथा क्रूर दृष्टिवाली निर्दय राक्षसियाँ आपको कठोर बातें कहा करती थीं। इन सभी भयंकरी राक्षसियों को मुक्कों, थप्पड़ों, लातों और तरह तरह के प्रहारों से मैं मारना चाहता हूँ। इन्हें घुटनों से मसलकर, इनके दाँत तोड़कर नाक-कान चबाकर बालों को नोचकर तथा पटक-पटककर इन्हें मारना चाहता हूँ। हे यशस्विनि ! तुम्हें सतानेवाली इन सभी पापिनियों को अनेक प्रकार के आघातों से मैं कूटना-पीटना चाहता हूँ। मुझे यह वर (आदेश) दो।"

यह सुनकर सीता ने हनुमान् को समझाया—

राजसंश्रयवश्यानां कुर्वन्तीनां पराज्ञया ।
विधेयानां च दासीनां कः कुप्येद्वानरोत्तम ॥

आज्ञप्ता रावणेनैता राक्षस्यो मामतर्जयन् ।
हते तस्मिन्न कुर्युर्हि तर्जनं वानरोत्तम ॥
न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम् ।
समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः ॥
पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणां प्लवङ्गम ।
कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति ॥
लोकहिंसाविहाराणां रक्षसां कामरूपिणाम् ।
कुर्वतामपि पापानि नैव कार्यमशोभनम् ॥

(वाल्मी० ६।११६।३८,४१,४३—४५)

"हे वानरोत्तम ! ये दासियाँ हैं, राजाश्रित होने के कारण लंकेश्वर की आज्ञा पाल रही थीं। इनपर क्रोध कौन करे ? इन राक्षसियों ने रावण के आदेश से ही मुझे सताया था। आज जब रावण मारा गया है, तब ये मुझे नहीं डाँटतीं डपटतीं। दूसरे के बुरे कार्य देखकर वैसा ही करना ठीक नहीं है। प्रत्येक प्राणी को अपने आचार की रक्षा करनी चाहिए। आचार की रक्षा करना ही सज्जनोचित शोभा है। हे वानरोत्तम ! चाहे कोई पापात्मा, धर्मात्मा या वध योग्य ही क्यों न हो, किन्तु सज्जन को उसपर करुणा ही करनी चाहिए; क्योंकि ऐसा कोई नहीं है, जिससे अपराध न हो जाता हो। लोकहिंसा जिनका खेल है, उन इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले और पापाचरण में लगे हुए राक्षसों की भी बुराई नहीं करनी चाहिए।"

ये हैं सीता के हृदयोद्गार ! सीता की यह अमृत वाणी ही हमारे राष्ट्रपिता बापू के अहिंसा-सिद्धान्त की आधार शिला है।

जिन राक्षसियों ने सीता को दिन-रात नाना प्रकार से डराया-धमकाया और डाँटा-डपटा, उन्हीं अपराधिनियों को बिना माँगे ही क्षमा-दान देनेवाली सीता सचमुच जगज्जननी कही जाने योग्य हैं।

नारी के अन्दर जो अतीव सुकुमार मातृ हृदय है, वही नारी को जगदम्बा के रूप में प्रतिष्ठित कराता है और उसी के कारण नारी का आसन स्वर्ग से भी ऊँचा माना जाता है। नारी तो प्रत्यक्ष ही जगन्माता है। स्नेह-प्रदर्शन और सेवा-शुश्रूषा करने में कोई उसकी बराबरी का है ही नहीं। वह साक्षात् देवी है। बच्चा सर्वप्रथम माता को ही जानता पहचानता और मानता है। फिर, माता के बतलाने पर ही अन्य स्वजनों को भी पहचानता है। किन्तु, उसका स्नेह-केन्द्र जननी ही रहती है। जननी बच्चे को उबटन-चुमट और साज-सँवार करके पिता की गोद में देती है। पिता ऐसे ही बच्चे को दुलारता-पुचकारता है। किन्तु बच्चे ने यदि मल-त्याग किया, तो फिर माता ही उसे सँभालती है। इसीलिए, माता का स्थान पिता से हजार गुना अधिक माना जाता है—

पितुर्दशशतं माता गौरवेणातिरिच्यते। (मनुस्मृति, २।१४५)

अतएव, हम माता पहले कहते हैं, पिता पीछे—सीता पहले कहते हैं, राम पीछे। माता की महिमा सर्वोपरि है। नारी-जाति ही मातृ-जाति है।

चरित्र की दृढ़ता

सीताजी के चरित्र की दृढ़ता में हम हिमालय की अविचलता पाते हैं। अशोक-वाटिका में जिस कठोर परिस्थिति में आप रखी गयी थीं, उससे और अधिक कठोर परिस्थिति हो ही नहीं सकती। किन्तु, ऐसी भयावनी परिस्थिति की कसौटी पर भी आप खरी उतरीं—अपने धर्म-पालन से किसी प्रकार भी नहीं डिगीं। मृत्यु का आलिंगन करने को प्रस्तुत हो गयीं, किन्तु मृत्यु की भयावनी परिस्थितियों के सामने सिर नहीं झुकाया। आप परिस्थितियों की स्वामिनी ही रहीं, अनुगामिनी नहीं। आपने क्रूर राक्षसियों को ललकार कर कहा—

> चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम्।
> रावणं किं पुनरहं कामयेयं निशाचरम्॥
> छिन्ना भिन्ना प्रभिन्ना वा दीप्ता वाग्नौ प्रदीपिता।
> रावणं नोपतिष्ठेयं किं प्रलापेन वश्चिरम्॥

(वाल्मी० ५।२६।८,१०)

"इस राक्षस रावण को चाहने की तो बात ही क्या है, मैं इसे अपने बायें पैर से भी नहीं छू सकती। मुझे भाले से छेद डालो, तलवार से काट डालो, कुल्हाड़ी से टुकड़े-टुकड़े कर डालो, पका डालो या जला डालो, किन्तु मैं रावण को स्वीकार नहीं कर सकती, तुमलोग व्यर्थ बकवक मत करो।"

पतिसेवा-रूप स्वधर्म पालन के लिए ही आपने सारे भोगों को ठुकराकर अपने पति का अनुगमन किया। पति को निष्कलंक और स्वधर्मारूढ़ रखने के लिए ही आपने निर्मम त्याग को भी अपने वरदान के समान ही स्वीकार किया। अन्त में, पाताल प्रवेश कर अपनी विमल-धवल कीर्ति कौमुदी से दिग्दिगन्त को धवलित कर दिया।

सीता का सम्पूर्ण जीवन ही संयममय, प्रेममय, सेवामय, त्यागमय, तपस्यामय और परीक्षामय है। महिलाओं के लिए सीता का आदर्श जीवन प्रत्येक परिस्थिति में मार्ग निर्देशक है। अथ से इति तक सीता के चरित्र की ऐसी कोई घटना नहीं है, जिससे हमारी मातृ जाति का उत्तम मार्ग निर्देश न होता हो। पञ्चवटी में लक्ष्मण को कटु वचन कहकर सीता ने जो भूल की थी, उस पर पर्याप्त पश्चात्ताप भी किया था। यह एक ही त्रुटि यह प्रमाणित कर देती है कि सीता का सम्पूर्ण जीवन-चरित्र सत्य, स्तुत्य और अनुकरणीय है। यदि वह कवि-कल्पना होता, तो उसमें यह त्रुटि क्यों रह पाती?

अग्नि-परीक्षा

सीता की अग्नि-परीक्षा भी लोक-दृष्टि में सीता चरित्र को निष्कलंक प्रमाणित करने के लिए ही हुई थी। जब धधकती आग में पैठी हुई सीता के लिए अग्नि शीतल हो गयी,

तब अग्निदेव साक्षात् प्रकट हुए तथा सर्वथा निष्पाप सीता को राम के आगे सौंपते हुए बोले—

एषा ते राम वैदेही पापमस्या न विद्यते।
नैव वाचा न मनसा नैव बुद्ध्या न चक्षुषा ॥ (वाल्मी० ६।११८।६)

"हे राम! यह सीता आपकी है। इसमें किसी प्रकार का पाप नहीं है। वचन से, मन से, बुद्धि से और आँखों से भी इसने कभी अपना चरित्र दूषित नहीं किया है।"

सीता के अग्नि-प्रवेश करते ही विमानों से देवता आ गये। ब्रह्मा ने राम की बड़ी स्तुति की। इसके बाद अग्नि की बात सुनकर और अत्यन्त प्रसन्न होकर राम सभी उपस्थित दिक्पालों के आगे बोले—

अवश्यं चापि लोकेषु सीता पावनमर्हति।
दीर्घकालोषिता हीयं रावणान्तःपुरे शुभा ॥
बालिशो बत कामात्मा रामो दशरथात्मजः।
इति वक्ष्यति मा लोको जानकीमविशोध्य हि ॥
अनन्यहृदया सीता मच्चित्तपरिरक्षिणीम्।
अहमप्यवगच्छामि मैथिलीं जनकात्मजाम् ॥
इमामपि विशालाक्षीं रक्षितां स्वेन तेजसा।
रावणो नातिवर्तेत वेलामिव महोदधि ॥
न च शक्तः सुदुष्टात्मा मनसापि हि मैथिलीम्।
प्रधर्षयितुमप्राप्यां दीप्तामग्निशिखामिव ॥
नेयमर्हति वैक्लव्यं रावणान्तःपुरे सती।
अनन्या हि मया सीता भास्करस्य प्रभा यथा ॥
विशुद्धा त्रिषु लोकेषु मैथिली जनकात्मजा।
न विहातुं मया शक्या कीर्तिरात्मवता यथा ॥
अवश्यं च मया कार्यं सर्वेषां वो वचो हितम्।
स्निग्धानां लोकनाथानामेवं च वदतां हितम् ॥

(वाल्मी० ६।११८।१३—२०)

"लोगों के सन्तोष के लिए सीता की पवित्रता की परीक्षा आवश्यक थी, क्योंकि यह बहुत दिनों तक रावण के घर में रह चुकी थी। यदि मैं सीता की परीक्षा नहीं करता, तो लोग मुझे कहते कि दशरथ का यह पुत्र राम कामी और बुद्धिहीन है। सीता का हृदय सदैव मुझमें ही लगा रहता है—यह सदा मेरी इच्छाओं का ही अनुसरण करती है, मैं भी यह जानता हूँ। विशालनयना सीता स्वयं अपने तेज से सुरक्षित है। जैसे समुद्र अपने तट का उल्लंघन नहीं करता, वैसे ही रावण इसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता था। जैसे कोई जलती अग्नि शिखा को वश में नहीं कर सकता, वैसे ही दुष्टात्मा रावण इसपर

मन से भी अधिकार नहीं कर सकता था; क्योंकि उसके लिए सीता की प्राप्ति असम्भव थी। जैसे सूर्य की प्रभा सूर्य से अभिन्न है, वैसे ही यह भी मुझसे अभिन्न है। इसलिए, रावण के घर में रहने पर भी इसपर कोई अत्याचार नहीं कर सकता था। जनक-नन्दिनी सीता तीनों लोकों में पवित्र है। आत्माभिमानी मानव जैसे अपनी कीर्त्ति का त्याग नहीं कर पाता वैसे ही मैं सीता का त्याग नहीं कर सकता। आप लोकपाल मेरे प्रेमी हैं और मेरे हित की बात कह रहे हैं, इसलिए मैं आपलोगों की हितकरी बात अवश्य मानूँगा।"

राम की यह उक्ति प्रमाणित करती है कि सीता पर उनका अगाध प्रेम था। सीता की पवित्रता पर भी उनका पूर्ण विश्वास था। किन्तु, लोक दृष्टि में सीता को पवित्र प्रमाणित करने के लिए ही राम ने उनकी अग्नि-परीक्षा ली थी।

निष्ठुर निर्वासन

गर्भवती नारी से उसकी कामना पूछकर पूरी की जाती है। यह परम्परा आज भी कायम है। सीता ने भी राम के पूछने पर अपनी मनोवान्छा बतलायी थी—

> तपोवनानि पुण्यानि द्रष्टुमिच्छामि राघव ।
> गङ्गातीरोपविष्टानामृषीणामुग्रतेजसाम् ॥ (वाल्मी० ७। ४२। ३३)

"हे राघव! गंगा-तट पर रहकर कठोर तपस्या करनेवाले ऋषियों के तपोवन मैं देखना चाहती हूँ।"

राम को उधर गर्भवती सीता की इच्छा मालूम हो गयी थी, इधर अपने विशिष्ट मित्रों के साथ गुप्त वार्त्तालाप में उनको पता चला कि सीता के सम्बन्ध में सम्पूर्ण राज्य में लोकापवाद फैल रहा है। अतः, लोकापवाद मिटाने के ख्याल से सीता की इच्छा-पूर्त्ति के लिए प्रजावत्सल राम को सीता के परित्याग का निर्णय करना पड़ा। उन्होंने सोचा— 'यदि सीता के शील पर प्रजा को सदेह है, तो राजधर्म-पालन और प्रजारंजन के लिए भी सीता-जैसी प्रियतमा का त्याग ही हितकर तथा श्रेयस्कर है। जब लोक लोचन के सामने ही सीता की कठिन अग्नि-परीक्षा हुई और स्वयं अग्निदेव द्वारा सीता की पवित्रता उद्घोषित हुई, तब भी लोक भावना विकृत ही रह गयी। ऐसी स्थिति में राजा की देखा-देखी प्रजा में भी भ्रष्टाचार फैलने की आशंका है। अत, लोकमंगल की भावना से अतिशय प्रिय से भी प्रिय वस्तु का स्वेच्छापूर्वक त्याग करना ही राजधर्म है।'

राजा राम ने हृदय पर हिमालय रखकर लक्ष्मण को अनिवार्य आदेश दिया कि तपोवन दिखाने के व्याज से सीता को वाल्मीकि आश्रम के पास छोड़ आओ। लक्ष्मण ने भी अपना कलेजा कड़ा किया। बेबसी के आँसू बहाते हुए उन्हें कठोर राजाज्ञा का पालन करना पड़ा। वाल्मीकि-आश्रम के पास पहुँचने पर उन्हें फूट फूटकर रोते देख सीता को ज्ञात हुआ कि मिथ्या लोकापवाद के भय से मुझे निष्पाप जानते हुए भी राजा राम ने मेरा

परित्याग कर दिया है। वे पृथ्वी पर गिरकर संज्ञाहीन-सी हो गयीं। बहुत कुछ विलाप करने के बाद लक्ष्मण के द्वारा राम को जो संदेश उन्होंने भेजा, वह भारतीय ललनाओं के लिए हृदय की मंजूषा में सहेज रखने की वस्तु है—

जानासि च यथा शुद्धा सीता तत्त्वेन राघव ।
भक्त्या च परया युक्ता हिता च तव नित्यशः ॥
अहं त्यक्ता च ते वीर अयशोभीरुणा जने ।
यच्च ते वचनीयं स्यादपवादः समुत्थितः ॥
मया च परिहर्त्तव्यं त्वं हि मे परमा गतिः ।
वक्तव्यश्चैव नृपतिर्धर्मेण सुसमाहितः ॥
यथा भ्रातृषु वर्त्तेथास्तथा पौरेषु नित्यदा ।
परमो ह्येष धर्मस्ते तस्मात्कीर्त्तिरनुत्तमा ॥
यत्तु पौरजने राजन्धर्मेण समवाप्नुयात् ।
अहं तु नानुशोचामि स्वशरीरं नरर्षभ ॥
यथापवादः पौराणां तथैव रघुनन्दन ।
पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः ॥
प्राणैरपि प्रियं तस्माद्भर्त्तुः कार्यं विशेषतः ।

(वाल्मी० ४८।१२—१८)

"हे राघव ! आप जानते हैं कि सीता सर्वथा विशुद्ध है, आपमें भक्ति रखनेवाली और सदा आपका हित चाहनेवाली है। हे वीर ! अपनी अपकीर्त्ति से डरकर ही आपने मेरा परित्याग किया है। आप मेरे आश्रय हैं, इसलिए आपकी जो निन्दा और जो अपवाद हो रहा है, उसको मैं दूर करूँगी। आप मेरे निन्दक पुरवासियों से भी अपने भाइयों जैसा व्यवहार करें। यह परम धर्म है। इससे उत्तम कीर्त्ति प्राप्त होती है। हे राजन् ! पुरवासियों के प्रति धर्मानुकूल आचरण से जो प्राप्त होता है, वह परमार्थ है। हे नर शार्दूल ! मैं अपने शरीर के विषय में कुछ भी नहीं सोचती। मेरे विषय में पुरवासियों का जैसा अपवाद है, वह बना-का बना रहे, इसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं; क्योंकि पति ही स्त्रियों का देवता है, गुरु है, बन्धु है। अतएव, प्राणों से भी पति का प्रिय करना चाहिए— शरीर के अपवाद का मुझे कष्ट नहीं है, त्याग का भी दुःख नहीं है; क्योंकि इससे आपके सुयश की रक्षा होती है।"

यह है सती-शिरोमणि सीता का मर्मस्पर्शी उद्‌गार ! उनके दुःख और शोक ने कभी उन्हें कर्त्तव्य अथवा धर्म से विमुख नहीं किया। उन्हें इस बात का आन्तरिक सन्तोष था कि धर्म-रक्षा के निमित्त मेरा पति अपने प्राणों से भी बढ़कर प्रिय वस्तु का परित्याग करने में समर्थ है। नारी के सुख की उस समय कोई सीमा नहीं रहती, जिस समय वह कोटि कोटि लोक-कण्ठ से अपने पतिदेव की प्रशंसा में धन्य-धन्य की ध्वनि सुनती है।

सीता संवरण

महर्षि वाल्मीकि वनस्थली में स्वयं आकर सीता को आश्रम में ले गये। ऋषि-पत्नियों के साथ उन्हें सम्मान-पूर्वक रखा। वहीं सीता के गर्भ से कुश और लव का जन्म हुआ। रामचन्द्रजी के अश्वमेध यज्ञ में, वाल्मीकि मुनि की आज्ञा से, जब कुश और लव ने वाल्मीकि निर्मित रामायण का संगीत-स्वर में मधुर गान किया, तब उस रामचरित का गान सुनते सुनते यह रहस्य भी प्रकट हो गया कि कुश और लव सीता के ही पुत्र हैं। उसी समय राम के आदेश से, सीता वहाँ बुलायी गयीं। सीता को साथ लेकर वाल्मीकि मुनि स्वयं यज्ञशाला में आये। उपस्थित ब्रह्मर्षियों, राजाओं और जन-समूह के बीच वे राम को संबोधित करके बोले—

इयं दाशरथे सीता सुव्रता धर्मचारिणी।
अपवादात्परित्यक्ता ममाश्रमसमीपत ॥
लोकापवादभीतस्य तव राम महाव्रत।
प्रत्ययं दास्यते सीता तामनुज्ञातुमर्हसि ॥
इमौ तु जानकीपुत्रावुभौ च यमजातकौ।
सुतौ तवैव दुर्धर्षौ सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥
प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघवनन्दन।
न स्मराम्यनृतं वाक्यमिमौ तु तव पुत्रकौ ॥
बहुवर्षसहस्राणि तपश्चर्या मया कृता।
नोपाश्नीयां फलं तस्या दुष्टेयं यदि मैथिली ॥
इयं शुद्धसमाचारा अपापा पतिदेवता।
लोकापवादभीतस्य प्रत्ययं तव दास्यति ॥
तस्मादियं नरवरात्मज शुद्धभावा,
दिव्येन दृष्टिविषयेण मया प्रदिष्टा।
लोकापवादकलुषीकृतचेतसा या।
त्यक्ता त्वया प्रियतमा विदितापि शुद्धा ॥

(वाल्मी० ७।९६।१५ १६,२२-२३)

'हे दशरथनन्दन राम! यह सीता धर्मचारिणी और उत्तम व्रतनिष्ठ है। लोकापवाद के कारण मेरे आश्रम के पास छोड़ी गयी थी। हे राम! लोकापवाद से भीत तुमको अपनी सीता पवित्रता का विश्वास दिलायेगी। तुम उसे आज्ञा दो। सीता के ये दोनों यमज पुत्र हैं। मैं तुमसे यह सत्य कह रहा हूँ कि ये दोनों तुम्हारे ही पुत्र हैं। मैं प्रचेता का दसवाँ पुत्र हूँ। मुझे अपने असत्य भाषण की स्मृति नहीं है। मैं कहता हूँ, ये दोनों तुम्हारे ही पुत्र हैं। कई हजार वर्षों तक मैंने तपस्या की है। यदि इस सीता में पाप हो, तो उस तपस्या का फल मुझे न मिले। यह शुद्धाचारिणी, पापशून्या और पति को

देवता माननेवाली है। लोक-निन्दा से डरे हुए तुमको यह विश्वास दिलायेगी। हे राजकुमार! मैंने दिव्यदृष्टि से यह देख लिया है कि सीता पवित्र है। तुम भी इसे शुद्ध जानते हो, किन्तु लोकापवाद से व्याकुल होकर तुमने अपनी प्रियतमा का त्याग किया है।"

वाल्मीकि की बात सुनकर राम ने सीता की ओर देखा। हाथ जोड़कर बोले—'महाराज! आपका कथन बिलकुल ठीक है। मैं भी इसे शुद्ध जानता था; किन्तु लोक-निन्दा से डरकर मैंने इसका त्याग किया था। आप मेरे इस अपराध को क्षमा करें।'

सीता की शपथ का समय जब आ गया, ब्रह्मादि सभी देवता वहाँ उपस्थित हो गये। सभी लोगों के एकत्र हो जाने पर काषाय वस्त्रधारिणी नम्रमुखी सीता वहाँ आयीं। हाथ जोड़कर बोलीं—

यथाहं राघवादन्यं मनसाऽपि न चिन्तये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥
मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥
यथैतत्सत्यमुक्तं मे वेद्मि रामात्परं न च।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥

(वाल्मी० ७।९७।१४—१६)

"यदि मैं रामचन्द्रजी के अतिरिक्त किसी दूसरे का मन से भी चिन्तन नहीं करती, तो पृथ्वी देवी मुझे स्थान दें। यदि मैं मन, कर्म और वाणी से रामचन्द्रजी की ही आराधना करती हूँ, तो पृथ्वी देवी मुझे स्थान दें। मेरा यह कथन यदि सत्य हो कि राम के अतिरिक्त मैं किसी को नहीं जानती, तो पृथ्वी देवी मुझे स्थान दें।"

इस प्रकार सीता शपथ कर ही रही थीं कि पृथ्वी वहीं फट गयी। एक दिव्य सिंहासन पृथ्वी के भीतर से ऊपर निकला। दिव्य देहधारी नाग अपने सिरों पर उस सिंहासन को लिये हुए थे। पृथ्वी माता उसपर बैठी हुई थीं, उन्होंने सीता का अभिनन्दन किया। उन्हें अपने हाथों थामकर सिंहासन पर बिठा लिया। उस समय सीता के ऊपर दिव्य सुमनों की लगातार वृष्टि होने लगी; सभी देवताओं की ओर से साधुवाद उच्चरित होने लगा। दर्शक विस्मय-विमुग्ध-से देखते रह गये। देखते ही-देखते वह सिंहासन पाताल में प्रवेश कर गया। सीता के जयजयकार से आकाश मंडल गूँज उठा।

सीता के इस लोकोत्तर आत्मदान से रामचरित के आदर्श में भी चार चाँद लग गये—नारी का नारीत्व और राम का रामत्व भी महिमा-मंडित हो गया। सती सुन्दरियों में मूर्द्धन्य ऐसी स्वनामधन्य देवी से मेरी यही प्रार्थना है—

कृपारूपिणि कल्याणि रामप्रेयसि जानकि।
कारुण्यपूर्णनयने कृपादृष्ट्याऽवलोकय॥

●●

भोजपुरी कहावतों और लोकगीतों में नारी

श्रीविक्रमादित्य मिश्र, एम्० ए०, साहित्यरत्न; लोकभाषा-अनुसंधान-विभाग,
बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना

[१]

मनुष्य के परम्परा-संचित व्यावहारिक ज्ञान एवं उसकी अनुभूतियों का प्रतिफलन कहावतें हैं। अनादिकाल से मनुष्य जो कुछ भी देखता, सुनता और अनुभव करता आया है, उसको वह सूत्र-रूप में प्रकट करता रहा है। इन्हीं सूत्रों को 'कहावत' कहते हैं। कहावतें 'गागर में सागर' अथवा 'बूँद में समुद्र' होती हैं। इनका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। जीवन के प्रत्येक पहलू से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। जीवन-मरण, सुख-दुःख, आचार-विचार, रीति-नीति, खान पान, शकुन-अपशकुन, आहार-विहार, खेती बारी, पशु पक्षी, जीव-जन्तु, नर-नारी आदि से सम्बद्ध अनेक कहावतें पायी जाती हैं। जीवन का कोई सूक्ष्म-से-सूक्ष्म पहलू भी इनसे अछूता नहीं है।

भोजपुरी लोक-साहित्य में भी कहावतों का प्रमुख स्थान है। इन कहावतों में नारी के विविध रूप पाये जाते हैं। उसके जीवन के प्रत्येक पहलू पर, समाज में उसकी वास्तविक स्थिति पर और उसके प्रति समाज की सामान्य मनोवृत्ति पर इन कहावतों के अध्ययन से पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

कहावतों का प्रचलन विशेष रूप से नारी-समाज में ही पाया भी जाता है। जहाँ भी दो-चार स्त्रियाँ आपस में मिलती हैं, परस्पर वार्त्तालाप के क्रम में, वे कहावतों का प्रयोग अक्सर करती हैं। प्रसंग चाहे जो भी हो, अनायास उनके मुख से कहावतों की लड़ी-सी निकलती रहती है। खासकर जब दो या दो से अधिक स्त्रियाँ आपस में बतराती या झगड़ती हैं, तब तो एक से एक मजेदार कहावतों का प्रयोग सुनते ही बनता है।

वैदिक युग में स्त्री और पुरुष, दोनों को समान अधिकार प्राप्त था। पति और पत्नी एक-दूसरे के सखा होते थे। उनके स्वत्व समान थे। इसीलिए, पत्नी पति का आधा अंग मानी जाने लगी।

उसके बाद के युग में अवस्था और व्यवस्था पलट गयी। पति और पत्नी के पारस्परिक सम्बन्ध में असमानता आ गयी। देश में राजनीतिक उथल-पुथल होने से सामाजिक परिस्थिति में हेर फेर हो जाता है। विधर्मियों के आक्रमण और शासन तथा साहित्य का प्रभाव भी समाज पर पड़ा। पति और पत्नी में स्वामी और दासी की भावना घर कर गयी। इस प्रकार कालक्रम से नारी का स्थान उत्तरोत्तर हीन होता गया। इसमें

तिलक दहेज की कुप्रथा भी सहायक हुई—यद्यपि गृहस्थों के घर नारी कभी दासी नहीं मानी गयी, वह आज भी अपने पति की रानी मानी जाती है, समाज और परिवार में उसका आदर तथा महत्त्व कभी पुरुष से कम न हुआ—न है ही।

तब भी नारी के प्रति हीनभावना का प्रतिबिम्ब हमें कहावतों में मिलता है। नारी से सम्बद्ध अनेक कहावतें उसके दोष पक्ष को ही प्रकट करती हैं, क्योंकि कहावतों की रचना विशेष रूप से समाज की कुरीतियों, अनियमितताओं, पाखंडों, आडम्बरों आदि पर तीखे व्यंग्य करने के उद्देश्य से ही हुई है। अत, समाज के चाहे जिस-किसी पक्ष से सम्बद्ध कहावतें क्यों न हों उनमें अधिकांश निन्दात्मक ही हैं, प्रशंसात्मक कम।

यदि किसी को चार संतान की कामना है, तो वह चाहता है कि भरसक कन्या एक ही हो—वह भी पहले नहीं, सबसे अन्त में यदि तीन पुत्रों के बाद चौथी बार कन्या हुई, तो बहुत ही अच्छा, लेकिन इसके विपरीत यदि तीन कन्याओं के बाद पुत्र हुआ तो वह, अशुभ माना जाता है। इसीलिए कहावत प्रचलित है—

तेतर बेटी राज रजावे, तेतर बेटा भीख मगावे।

अर्थात्, तीन पुत्रों के बाद की कन्या (तेतर) राजयोग का कारण होती है और तीन कन्याओं के बाद जन्म लेनेवाला पुत्र भीख मँगवाता है।

युग प्रभाव से समाज के लोग ऐसे स्वार्थांध हो गये हैं कि पैसे के सामने आदमी का मोल नहीं समझते। इसलिए, तिलक दहेज के कारण शादी ब्याह के अवसर पर कन्या पक्ष के लोगों को दब्बू बनकर रहना पड़ता है। वर पक्ष की प्रत्येक माँग को उन्हें हाथ जोड़कर स्वीकार करना पड़ता है। ऐसी दशा में कन्या का पिता यदि सामाजिक अभिशाप से खिन्न होकर ऐसी कामना करे, तो सर्वथा स्वाभाविक है—

बिना बियाहे धेगी मूए, ठाढ़े ऊख बिकाय।
बिना मारले दुसमन मूए, तीनू काम सफल होइ जाय॥

अर्थात्, शादी के पूर्व ही कन्या की मृत्यु हो जाय, खेत में लगी (खड़ी) ईख बिक जाय और बिना मारे ही दुश्मन मर जाय, तो इन तीनों ही कामों को सफल हुआ मानना चाहिए।

नारी को वश मे रखना आसान नहीं होता। इसके लिए शक्ति की आवश्यकता होती है। पौरुष ही नारी का मन जीतता है। वह पुरुषत्व का ही आदर करती है। प्रेमपूर्ण संरक्षण और सद्भावपूर्ण नियंत्रण में वह निर्भय रहती है। अत, उसकी रक्षा केवल समर्थ और शक्तिशाली व्यक्ति ही कर सकता है—

जोरू, जमीन जोर के, नहीं त कोई और के।

अर्थात्, जोरू और जमीन, ये शक्ति के बल से ही अपनी बनाकर रखी जा सकती हैं। शक्ति में जरा भी कमी हुई, तो इनके हाथ से निकल जाने की संभावना रहती है। इसलिए कहावत है—

परिवार मेहरारू कुल के नाश।

अर्थात्, स्त्री शक्तिशाली हुई (और पुरुष अशक्त), तो उससे कुल की वृद्धि नहीं हो सकती।

इसलिए, नारी को वश में रखने के निमित्त आरंभ से ही शक्ति का सदुपयोग करना आवश्यक होता है। कारण यह है कि—

आवते बहुरिया, जनमते लरिकया; जवन लय लगायीं तवन लय लागे।

अर्थात्, घर में आते ही नयी बहू के तथा जन्म के बाद से ही बच्चे के साथ जिस तरह का व्यवहार किया जायगा, जैसी आदत लगायी जायगी, वैसी ही इनकी जिन्दगी का रवैया होगा।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्राचीन काल और मध्ययुग में भी संसार की बड़ी बड़ी लड़ाइयों की जड़ में अक्सर नारियाँ ही रही हैं। उन्हीं की मान-मर्यादा की रक्षा के लिए पुरुषों ने लोहे बजाये हैं। कितने ही संघर्षों में नारियों को भी जूझना और आत्मबलिदान करना पड़ा है। इसीलिए कहावत है—

जोरू जमीन जर, तीनू झगड़ा के जर।

अर्थात्, जोरू, जमीन और ज़र (सम्पत्ति), ये तीनों ही लड़ाई-झगड़े के मूल कारण हैं।

भारतीय सभ्यता के अनुसार वंश संस्कार की रक्षा के लिए नारी की पवित्रता का संरक्षण अत्यन्त आवश्यक और महत्त्वपूर्ण माना जाता है। गृहस्थ के लिए नारी ईश्वर की दी हुई परम पावन धरोहर है। मनुष्य के सांसारिक जीवन को नारी ही सुखशान्तिमय बनाती है। अपनी स्वाभाविक मनोहरता, कोमलता, सरलता और करुणा से वह गृह-परिवार को आनन्दमय बनाये रहती है। इसीलिए, वह धन-धान्य से भी अधिक संरक्षणीय समझी जाती है। उसके चरित्र पर उसके संरक्षक के अंकुश रखने का दूसरा कोई कारण नहीं है। नारी का चरित्र ही समाज का मूल धन और गौरव है। उसकी रक्षा में सजग रहना समाज का कर्त्तव्य है। समाज ने ही अपने अनुभवों के आधार पर कहावतें गढ़ी हैं। समाज अपनी गौरवभूता नारियों को तामसी वृत्तियों से बचाये रखने के लिए ही कहता है—

एक नार दोसर से रसी, जैसे एक वैसे असी।

आशय यह कि जब कोई स्त्री दूसरे पुरुष की सरसता से आकृष्ट होती है, तब उसके लिए एक और अनेक में कोई अन्तर नहीं रह जाता।

मानव-स्वभाव की सहज दुर्बलता का ध्यान रखकर ही समाज ने उक्त कहावत गढ़ी होगी। मनुष्य के मन की अधोमुखी प्रवृत्ति से सावधान रहने के लिए यह कहावत संकेत करती है। समाज-भूषण नारी को सांसारिक दूषणों से बचाये रखने के लिए समाज ने उसे अनिष्टकर कुलक्षणों से बचे रहने की भी चेतावनी दी है। निम्नांकित कहावत में कुलच्छनी का जो चित्र है, वह नारी को सुलक्षण बनने की सीख देता है। राजनीति, समाज, धर्म

और साहित्य, सबमें सुधार और सद्विचार लाने के लिए व्यंग्य-चित्रों का उपयोग किया जाता है। प्रस्तुत व्यंग्य-चित्र की मार्मिकता परखिए—

> आँख चले, भौं चले, चले पपनी;
> सभ घरे लाई लावे, ईहे कुटनी।

अर्थात्, जिस स्त्री की आँखें, भौं तथा आँखों की पपनियाँ चलती हों (चंचल रहती हों), और जो सभी घरों में जाकर इधर की बातें उधर करती हो, उसे कुटनी (चुगली करनेवाली) समझना चाहिए।

कर्कशा और दुष्ट प्रकृति की स्त्रियों के संबंध में भी अनेक कहावतें मिलती हैं। जो स्त्री डायन (टोनही) होती है, वह टोना करके हरे पेड़ सुखा देती है, आदमी की बस्ती के लिए मंगलकारी बाँस के झुरमुट को सुखवा देती है, परिवार-के-परिवार का सफाया करके बस्ती को खँड़हर बना देती है, वह शीतला की तरह घर-के-घर उजाड़ देती है। ऐसी कुलच्छनी के संसर्ग से सुशीला नारी को बचना चाहिए। कुसंगति से बचना प्रत्येक महिला के लिए कल्याणकारी है। डायन का रूप कैसा भयावना है—

> बाँस उखदली, डीह परवली, ठूँठ कइली पीपर;
> ईहे जगदम्बा आवताड़ी हाथ के लेहले मूसर।

अर्थात्, (जादू-टोने के बल से) बाँस उखाड़ दिये (हरे बाँस सुखा दिये), लोगों की जान लेकर बस्ती को खँड़हर कर डाला, पीपल के पेड़ को भी ठूँठ बना दिया। अब यही जगदम्बा हाथ में मूसल लिये आ रही है।

तात्पर्य यह कि डायन के टोने से इतने अधिक लोगों की जान चली गयी कि अरथी के लिए काटे गये बाँसों के मारे सभी बाँस के झाड़ सूख गये, बस्तियों का नाम-निशान मिट गया, बड़े-बड़े घरानों में कोई नामलेवा पानीदेवा न बचा। रामलीला में प्रायः सूपनखा के हाथ में मूसल देखा जाता है। उस नककटी ने सारे कुल को चौपट कर दिया था। 'जगदम्बा' में भी गहरा व्यंग्य है। शीतला के हाथ में झाड़ू का वर्णन भी प्रतीकात्मक है।

कहावतों में विभिन्न स्वभाव और वर्ग की नारियों पर यथार्थ उक्तियाँ पायी जाती हैं। वैसी ही उक्तियाँ पुरुषों के सम्बन्ध में भी मिलती हैं। बालकों, युवकों, वृद्धों और जाति-विशेष पर भी बड़ी सटीक कहावतें हैं। कहावतों का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। चराचर मात्र इनकी लपेट में आ गया दीख पड़ता है। इनमें बेधड़क दो टूक बातें कही गयी हैं। मानव समाज के गहरे अनुभव इनमें सञ्चित हैं। इनकी उपज किसी तरह के ईर्ष्या-द्वेष से नहीं हुई है, बल्कि अनुभूत सत्य के स्पष्टीकरण के लिए ही हुई जान पड़ती है। एक कहावत की वास्तविकता देखिए।

हमारे समाज के उच्च वर्ग में ऐसी स्त्रियाँ भी मिलती हैं, जिन्हें अपने माता-पिता की दयनीय आर्थिक स्थिति के कारण न तो मायके में ही सुख मिल पाता है और न

ससुराल में ही। कितनी तो अनमेल अथवा बे-मेल विवाह के कारण ससुराल का मुँह तक नहीं देख पातीं। इनको लक्ष्य करके भोजपुरी में एक कहावत कही जाती है—

ना पइलीं नइहरे सुख, ना देखलीं पिया के मुख।

अर्थात्, न तो पीहर में ही सुख मिला और न ससुराल में पति का ही मुख देखा।

आधुनिक समाज में खासकर उच्च वर्ग की विधवाओं की स्थिति वस्तुतः दयनीय होती है। उनकी मानसिक पीडा से किसी की सहानुभूति नहीं होती। बालिका और युवती विधवा की कारुणिक दशा पर बहुत कम परिवार यथोचित ध्यान देते हैं। विधवा की आह से डरनेवाले समझदार व्यक्तियों की बहुत कमी नजर आती है। किन्तु, ऐसा देखा गया है कि विधवा का रोना-कलपना उसके परिवार के लिए भयावह होता है। जिस घर में विधवा सांसत सहती है, उसका कल्याण नहीं होता। कहावत स्पष्ट है—

राँड़ के रोवल आ पुरवा के बहल बिरथा ना जाय।

अर्थात्, विधवा नारी का रोना-कलपना और पुरवैया (हवा) का बहना व्यर्थ नहीं होता।

तात्पर्य यह कि विधवा के रोने-धोने से कोई-न-कोई अनिष्ट गृह-परिवार में अवश्य होता है—उसी प्रकार, जिस प्रकार पूरबी हवा के बहने से वर्षा की, अथवा देह टूटने या अंगों में दर्द पैदा होने की, आशंका होती है।

कहावतों से व्यावहारिक और नैतिक शिक्षा भी मिलती है। सास-पतोहू के पारस्परिक सम्बन्ध को मधुर बनाये रखने के लिए दोनों में संयमशीलता और सहिष्णुता की आवश्यकता है। देहाती और अशिक्षित परिवारों में प्राय दोनों का रगड़ा झगड़ा चलता रहता है। कहीं-कहीं शिक्षित परिवार में भी इनके अन्दर संयम और सहनशीलता का अभाव देखा जाता है। जहाँ सास ननद के साथ बहू का अच्छा संबंध नहीं रहता, वहाँ शान्ति भी नहीं रहती। जो सास सदैव बहू पर अपना रोब गालिब करना और बराबर उसे अपने नियंत्रण में रखना चाहती है, उसके अत्यधिक दबाव से ऊबकर बहू कभी कभी विद्रोह भी कर बैठती है। भोजपुरी की एक कहावत में ठीक कहा गया है—

उकुसवनी बाती, खुखुकवनी पतोह, ओघसे ना।

अर्थात्, बराबर उकसायी जानेवाली (दीप की) बत्ती और तंग की जानेवाली पतोहू—ये अधिक दिन तक नहीं निबहतीं। (बत्ती जल्द जल जाती है और पतोहू भी सास से उलझने रहने की अभ्यस्त हो जाती है।)

यही कारण है कि दिन रात खुखुकानेवाली (छेड़छाड़ करनेवाली) सास ननद के सुख दु ख से पतोहू को कोई ममता नहीं होती। सतायी गयी पतोहू सदैव उनकी अशुभ-कामना करती है। भला उनके न रहने अथवा मर जाने पर वह दिखावटी आँसू क्यों न बहाये?

पर मुअलीं सासु, अलों आइल आँसु।

अर्थात्, सास तो मरी गत वर्ष (पर) ही और पतोहू को रोना (आँसू) आ रहा है इस वर्ष (असों)।

ऐसी दशा में सास-ननद के झमेले से मुक्त होने पर पतोहू कैसे न आनन्द मनावे ? इस प्रसग मे एक कहावत है—

सास ना ननद, घर अपने अनन्द; अब भले मटकायीं ना।

अर्थात्, सास-ननद घर में नहीं हैं, अत खूब आनन्द है। अब भले मटकाओ न!—खूब खाओ-पीओ, मौज करो (स्वच्छन्दता का उपभोग करो)।

भोजपुरी में ऐसी भी अनेक कहावतें हैं, जिनसे समाज में नारी-जाति की अनिवार्य सत्ता और नि स्वार्थ सेवा की भावना पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। हर तरह से भरा पूरा घर भी एक गृहिणी के बिना मसान प्रतीत होता है—

बे-घरनी घर भूत के डेरा।

सस्कृत के एक श्लोक में भी कहा गया है—

न गृह गृहमित्याहु गृहिणी गृहमुच्यते।

अर्थात्, गृहिणी के बिना गृह वास्तव में गृह नहीं वरन् गृहिणी ही गृह है। पुरुष यत्न करके लाख उपार्जन करे, किन्तु उपार्जित वस्तु की भली भाँति देख रेख करनेवाली घर में कोई गृहलक्ष्मी न हो, तो सब गुड़ गोबर है। संसार में केवल घरनी ही पुरुष को अच्छी तरह खिला पिलाकर उसको हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ रख सकती है— चाहे वह माँ हो, बहन हो अथवा अपनी पत्नी। इसीलिए एक कहावत म कहा गया है—

मेहरारू खिआवे मरद, आ मरद खिआवे बरध।

अर्थात्, पुरुष को स्त्री ही और बैल को पुरुष ही अच्छी तरह खिला सकते हैं। ('घाघ' कवि की उक्ति प्रसिद्ध ही है—'बाँके नैन परोसे जोय'।)

नारी के दो प्रधान रूप हैं—एक जाया, दूसरा जननी। 'जाया' के रूप में नारी को पुरुष से अनेक प्रकार की आशाएँ-अभिलाषाएँ होती हैं—विविध भाँति के स्वार्थ भी होते हैं। लेकिन 'जननी' के रूप म परिणत होते ही नारी बिलकुल निस्पृह एव नि स्वार्थ बन जाती है। जाया और जननी के इन्हीं दो रूपों को भोजपुरी की एक कहावत बड़े ही मार्मिक शब्दों में प्रस्तुत करती है—

माई निहारे पोटरी, जोइया निहारे मोटरी।

अर्थात्, (पुरुष के) कहीं दूर देश अथवा कमाई करके बाहर से घर आने पर माँ की दृष्टि सवप्रथम पुत्र के पेट (पोटरी) की ओर जाती है। वह यही देखती है कि पुत्र ने कुछ खाया है कि नहीं—उसका पेट या गाल धँसा (पिचका) हुआ है या उठा (फूला) हुआ। इसके विपरीत पत्नी सवप्रथम उसकी 'मोटरी' (कमाई की गठरी) पर दृष्टि डालती है—वह यह देखती है कि पति कुछ उपाजन करके लाया है या नहीं।

पुत्र भले ही कुपुत्र बन जाय, किन्तु माता कभी कुमाता नहीं बन सकती। अतः कहते हैं—

माई के जिउआ गाई अस, पूता के जिउआ कसाई अस।

अर्थात्, पुत्र का हृदय कसाई की तरह (निर्मम) भले ही हो जाय, लेकिन माता का दिल गाय की तरह ही होता है। (गाय यह जानकर भी कि एक दिन कसाई उसे मार डालेगा, उसे मीठा दूध देना बन्द नहीं करती।)

स्त्रियाँ स्वभाव से ही अत्यन्त कोमल तथा दयालु होती हैं। घर-परिवार के सभी लोगों पर ये समान रूप से निगाह रखती हैं। नौकर चाकरों पर भी जितना खयाल वे रखती हैं, उतना पुरुष नहीं रख पाते। जिस नौकर पर घर की मालकिन का नेह-छोह रहता है, वह बड़े सुख से दिन बिताता है—किसी अभाव का अनुभव नहीं करता। इसीलिए कहते हैं—

मर्द के चाकर मूएला, मेहरारू के चाकर जीएला।

अर्थात्, पुरुषों के साथ रहनेवाले नौकर-चाकरों का गुजर-बसर बड़ी कठिनाई से हो पाता है, लेकिन गृहदेवियों की देख-रेख में रहनेवाली दास-दासियों का निर्वाह बड़े आराम से हो जाता है।

इस प्रकार, हमें भोजपुरी कहावतों में नारी के विविध रूपों के दर्शन होते हैं, जिनका अति संक्षिप्त विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

[२]

भोजपुरी-कहावतों की तरह भोजपुरी-लोकगीतों में भी हमें नारी के विविध रुपों के दर्शन होते हैं। जन्म से मृत्यु तक नारी के सारे जीवन की एक-एक मनोदशा का चित्र लोक-गीतों में मिलता है। समाज में उसका कैसा अविरल स्थान है, उसकी त्याग तपस्या कैसी अनुपम है, यह भी लोकगीतों से प्रकट होता है। उसके राग-द्वेष, प्रेम-मिलन, विरह व्यथा आदि के सूक्ष्म चित्र भी लोकगीतों में अंकित हैं।

यह बात सभी को मालूम है कि कन्या-विवाह में तिलक-दहेज का संकट होने से समाज में नारी का जन्म घोर चिन्ता का कारण माना जाता है। पुत्र-जन्म के अवसर पर तो फूल की थाली बजती है, किन्तु पुत्री-जन्म के अवसर पर यथोचित हर्ष नहीं प्रकट किया जाता। एक लोकगीत में, पुत्री के उत्पन्न होने पर माँ अपने भाग्य को कोसती है—

जाहि दिन बेटी हो तोहार जनम भइले, भइली भदउआ के रात ए।
सासु-ननद घर दिअरो न बारेली; ऊहो प्रभु बोलेले कुबोल ए॥
भइले बिआह परेला सिर सेनुर; नव लाख माँगे दहेज ए।
घर में के भाँडा आँगन देइ पटकबि; सतरू के धिया जनि होइ ए॥
जाहु हम जनितीं धिया कोखि जनमिहें; पिहितीं हम मिरिच झराइ ए।
मरिचि के झारे-झुरे धिया मरि जइती; छुटि जइते गरुहुआ संताप ए॥

"हे बेटी! जिस दिन से तुम्हारा जन्म हुआ, चारों तरफ भादो की रात सा अँधेरा हो गया। मेरी सास-ननद तो सूतिका गृह में दीपक तक नहीं जलातीं। पतिदेव भी कुबोली बोलते हैं। जब बेटी का विवाह हुआ, उसके सिर में सिन्दूर पड़ा, वर नौ लाख दहेज माँगने लगा। ..घर के सभी बरतन बासन मैं आँगन में लाकर पटक दूँगी, भगवान् शत्रु को भी पुत्री न दें! यदि मैं जानती कि मेरी कोख से कन्या उत्पन्न होगी, तो मैं खूब तीखी काली मिर्च पीसकर पी लेती, (फलस्वरूप) कन्या गर्भ में ही मर जाती और मेरा गृह-संताप मिट जाता।"

अपनी अविवाहिता कन्या के विवाह के लिए पिता को घोर चिन्ता है। वह भला चैन की नींद कैसे सो सकेगा? लोकगीत की यह पंक्ति इसी बात का संकेत दे रही है—

जेकरा हो घरे बाबा धियवा कुँआरी; से कइसे सोये निरभेद ए।

अर्थात्, जिसके घर में कन्या क्वाँरी हो, वह भला निश्चिन्त कैसे सोये?

लोकगीतों में कारुणिक प्रसंगों की बड़ी मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है। नीचे का लोकगीत देखिए। एक ही माँ के दो बच्चे—एक पुत्र और एक पुत्री—जन्म लेते हैं, पुत्र माता पिता के साथ रहकर उनका मोद बढ़ाता है (ब्याह होने पर सदा के लिए) पुत्री दूर देश चली जाती है। यही दोनों का भाग्य-लेख है—

एक ही बँसवा के दुई करइली, एक ही बँसुरिया एक बाँस रे।
एक ही मयेरिआ के हुई लरिकवा, एक बहिन एक भाइ रे॥
भइया लिखल बाबा चउपरिया, बहिनी लिखल दूर देस रे।

ननद और भौजाई का राग-द्वेष भी लोकगीतों में प्रतिबिम्बित है। भाभी चाहती है कि ननद का विवाह ऐसे सुदूर देश (मोरँग=नैपाल की तराई) में किया जाय कि न तो कोई सहसा वहाँ जा सके और न वहाँ से कोई आ ही सके—

भइया कहेले बहिनी कासी में बिअहबें नित उठि करे असनान।
भउजी कहली ननदा मोरँग बिअहबें, न केहू आवे न जाय॥

माता-पिता के घर लाखों की सम्पत्ति क्यों न हो, पुत्री को उतना ही धन नसीब होता है, जितना माँ बाप या भाई भौजाई अपनी इच्छा से उसको देते हैं। प्रेम पूर्वक दी गई वस्तुओं की ही उसे आशा रहती है और उतने ही स्नेह में वह सन्तुष्ट हो जाती है। भोजपुरी के 'स्यामा-चकेवा' नामक प्रसिद्ध लोकगीत में भाई-बहन का वार्तालाप द्रष्टव्य—

तुहरो ओरहनवाँ रे बहिनी पटुकवा लेबों हो पसार;
बाबा के सम्पतिया रे बहिनी आधा देबों बाँटि।
बाबा के सम्पतिया हो भइया तोहरे के बाढ़ो,
हम परदेसी बहिनिया मोटरिया के हो आस।

अर्थात् (बहन से भाई कहता है) हे बहन! मैं तुम्हारे उलाहने दुपट्टा पसारकर ले लूँगा (सादर स्वीकार करूँगा) और पिताजी की सम्पत्ति में से आधा बाँटकर तुम्हें दे

हूँगा। (बहन जवाब देती है) हे भाई ! पिताजी की मर्यादा में तुम्हारी ही बुद्धि से— हमारी उनकी पूर्ण मर्यादा, मैं तो तुम्हारी परदेशी बहन हूँ। मुझे तो तुम भी कुछ नहीं (भावरी) में नाव (लोहार) लाकर होगे, उसी की आशा है।

समाज में ऐसे दृष्टान्त मिलते हैं कि माता-पिता के अभाव में कन्या की शादी भी अच्छे घर में नहीं हो पाती। वहाँ बड़ी भाई-भौजाई अथवा अन्य किसी कुटुम्ब को मातृ-पितृहीन कन्या के लिए विशेष दर्द नहीं होता। एक लोकगीत में कन्या कहती है—

बाबा मोर रहिते त नीक वर खोजिते,
भइया खोजलें वर लइकवा हो राम।
ओहो लइकवा देखि धइलीं धीरजवा,
कुछ दिन में ऊहो गइलें परदेसवा हो राम।

अर्थात्, मेरे पिताजी रहते, तो अच्छा वर खोजकर मेरी शादी करते। मेरे भाई ने तो मेरे लिए अल्पवयस्क वर खोज दिया है। ऐसे कमसिन वर को देखकर भी मैंने धैर्य धारण किया, पर वह भी परदेश चला गया।

नारी के मानस में कितनी बड़ी विवशता होती है। उसके अभिभावक उसके लिए चाहे जैसा भी जीवन-साथी ढूँढ़ दें, वह उसके साथ जीवन व्यतीत करने को तैयार हो जाती है। अपनी सारी आकांक्षाओं का वह दमन कर देती है। पति उसे जैसी भी स्थिति में रखे, वह वैसी ही परिस्थिति में अपने को खपा देती है। उसके सन्तोष तथा त्याग और उसकी सहिष्णुता का मिसाल संसार में शायद ही कहीं मिले।

भोजपुरी लोकगीतों में संयोग शृंगार का बड़ा ही सुन्दर और सरस चित्रण मिलता है। भारतीय लोक-संस्कृति में अनुराग रखनेवाली कुलवधू को अपने वंश और परिवार की मर्यादा तथा अपने शील का बहुत अधिक ध्यान रहता है। वह, विविध गृह-कार्यों से मुक्त होकर ही, सबके सो जाने पर, निश्चिन्ततापूर्वक शयन कक्ष में प्रवेश करती है। आगे लोकगीत में पढ़िए—

पनवा अइसन धनिया पातर सोहगइली अइसन सुघरि हो।
आरे मोर सुन्नरि फुलवा अइसन हलुकइया चानवा अइसन गमके हो॥
एक हाथे लिहलीं सुन्नरि दियरा, दोसरे हाथे गगाजल हो।
आरे मोर सुघरि चढ़ि गइलीं राजा के अटरिया, जहाँ राजा सूतेले हो॥
दियरा धइलीं दियरखवा गगाजल सिरहनवा नु हो।
कुछु घरी लागे पतिआवत कुछु फुसिलावत नु हो॥
आरे मोर सुघरि! जब राजा जोरले सनेहिया तबहीं मुरगा बोलेला हो॥
मुरगा के मरबों दयन सुरि अवरू पयर सुरि हो।
आरे मोर सुघरि! जबे राजा जोरले सनेहिया तबे हो मुरगा बोलेला हो॥
काहे के मरबू दयन सुरि अवरू पयर सुरि हो।

आरे मोर सुन्नरि! हमहूँ त राजा के टहलुआ—
अधेरात बोलीला राजा के जगाईला हो॥

अर्थात्, नायिका पान के पत्ते जैसी-पतली, सिंधोरा या सुपारी जैसी सुन्दर, हल्की और चंदन के समान सौरभ बिखेरनेवाली है। (एक रात्रि को) वह एक हाथ में दीप और दूसरे में गंगाजल लेकर अपने प्रियतम की अटारी पर, जहाँ वे सो रहे थे, चली गयी। दीपक को उसने ताख या दीवट पर और गंगाजल को सिरहाने रख दिया। स्वयं पति की सेज पर जा बैठी। कुछ देर तक तो वह पति से बातें करती तथा तरह तरह से उन्हें फुसलाती रही। ज्यों ही प्रियतम स्नेह जोड़ने को तत्पर हुए, मुर्गे ने बाँग दी। (मुर्गे की बाँग से प्रेम-प्रसंग में बाधा उपस्थित जान प्रियतमा ने खीजकर कहा) इस मुर्गे को मैं पैर और पंख तोड़कर मार डालूँगी, क्योंकि प्रियतम ज्योंही स्नेह-सम्बन्ध जोड़ने पर उद्यत हुए, यह पापी बोलने लगा। (इसपर मुर्गे ने कहा) हे सुन्दरी! मुझे तुम क्यों मारोगी? मैं तो (तुम्हारे) राजा का सेवक हूँ। आधी रात में तुम्हारे राजा को जगाने (सतर्क करने) के निमित्त ही मैं बोलता हूँ।

हमारे देश की ललनाओं को सीता, सावित्री, अनसूया जैसी सती साध्वी नारियों का आदर्श प्राप्त है। लोकगीतों में सीता आदि देवियों के पति-प्रेम, त्याग, सेवा-भाव, विरह आदि के बड़े हृदयग्राही चित्र मिलते हैं और उनमें सीता पत्नी के, राम पति के, कौसल्या माता के, राजा दशरथ पिता के और लक्ष्मण देवर के प्रतीक के रूप में ग्रहण किये गये हैं।

नारी की मति गति उसका पति ही होता है। पति के सिवा नारी की देख-रेख यथोचित रीति से उसके माता-पिता तथा सगे भाई भौजाई भी नहीं कर सकते। लाख कष्टों के बावजूद आदर्श नारी अपनी ससुराल में ही अपना जीवन व्यतीत करना पसंद करती है। नीचे के लोकगीत में नारी हृदय की यह भावना स्पष्ट झलकती है।

अपनी बहन के घर गया हुआ भाई, बहन की दुर्दशा देख, अपने बहनोई से झगड़ता और क्रुद्ध होकर उसे मार डालता है। अपनी बहन के पूछने पर वह सब कुछ स्पष्ट बतला देता है। इसपर उसकी बहन उससे पूछती है—

के मोरा छइहें भइया! रॉंड के मँड़इया,
के मोर बितइहें दिनवा-रतिया हो राम।
हम तोरी छइबो बहिनी रॉंड के मँड़इया,
भउजी बितइहें दिनवा-रतिया हो राम।
दिनभर भइया! भउजी चरखा कतइहें,
साँझि बेरि देइहें मूँद-मॅंड़वा हो राम।

अर्थात्, हे भैया! मुझ विधवा की झोपड़ी अब कौन छावेगा और अब किसके सहारे मेरे दिन कटेंगे? (इसपर भाई कहता है) हे बहन, मैं तुम्हारी झोपड़ी छा दूँगा और तुम्हारी भौजाई तुम्हारे दिन व्यतीत करायगी। (इसपर फिर बहन ने रोकर कहा) हे भाई!

दिन-भर तो भौजाई मुझसे पानी भरवायेगी और शाम को एक बूँद (घूँट) मेरे मुँह को दे देगी।

पति के वियोग में पत्नी के लिए एक-एक पल व्यतीत करना बड़ा कठिन होता है। तब भी आदर्श पत्नी बड़े धैर्य और संयम से अपनी विरहावधि बिताती है। 'जँतसार' नामक एक लोकगीत में इसका वर्णन देखिए—

> बरहें बरिसवाँ लवटले त दुवरे खटियवा डसवलनि हो राम।
> आपन मइया बोलाइ भेद पूछलें, धनिया बरन रँग हो राम॥

अर्थात्, बारह वर्षों के बाद विरहिणी का परदेशी पति अपने घर लौटता है। बाहर द्वार पर ही रखी हुई खाट पर बैठता हुआ अपनी माँ से अपनी पत्नी का रंग ढंग पूछकर भेद लेता है।

इसपर उसकी माँ उसकी पत्नी की दशा का वर्णन करती है—

> तोर धनिया अँगवा के पातर त मुँहवा के पीअर हो राम।
> बेटा बड़े रे घर के धिरिअवा, दूनो कुलवा रखली हो राम॥
> कबहूँ ना हँसि के पइठली, बिहँसि नाहीं निकले हो राम।
> बेटा महले दिया नाहीं बरलीं, निँदरिया नाहीं सूतलीं हो राम॥

अर्थात्, हे पुत्र, तुम्हारी पत्नी (विरह के मारे) शरीर से दुबली हो गयी है। उसके मुँह का रंग पीला हो गया है। वह बड़े घराने की बेटी है। उसने दोनों कुलों (पिता और पति) की लाज रख ली है। वह न तो कभी हँसकर घर में प्रवेश करती है और न कभी मुस्कराती हुई घर से बाहर निकलती है। हे पुत्र! उसने घर में कभी दीप नहीं जलाया (अँधेरे में ही पड़ी रहती है) और न कभी वह (उद्वेग के कारण) नींद-भर सो सकी।

प्रियतम की अनुपस्थिति में नारी की मनोव्यथा तथा संयमशीलता का ऐसा उदात्त चित्रण शायद ही कहीं मिले। नारी का ऐसा भव्य चरित्र-चित्र हमारी भारतीय लोक-संस्कृति की ही देन है।

प्रियतम के विदेश चले जाने पर विरहिणी पतिप्रेम के चिन्तन में लीन होकर, विरहावधि को कैसे काटती है, यह उसकी हार्दिक कामना से व्यक्त होता है। निम्नांकित लोकगीत में उसकी मधुर भावनाएँ बड़ी सुहावनी हैं—

> बहेले बयारि पुरवइया त सिकियो ना डोलेला हो राम।
> आहो राम, मोर परभू गइले बिदेसवा कइसे जियरा बोधउँ हो राम॥
> अँगुरिन मँगिया निकरिबों नयन भरि कजरा हो राम।
> आहो रामा, अस कइ जियरा बुझइबों कि जस हरि घरवे हो राम॥
> होइतों मों जल के मछरिया जलहीं बीच रहितों हो राम।
> आहो मोरा, हरि अइतें असननवाँ चरन चूमि लेतों हों राम॥

होइतीं मों घर के घरनिया जहाँ परभू रमि रहेले हो राम।
पोइतीं मों घीउ के लुचुइया त दूध के जउरिया हो राम॥
सठिया छुटिय भात रिन्हितो मुँगिय दरि दलिया हो राम।
आहो रामा, मोरे परभू अइतें जेवनवाँ नयन भरि देखितों हो राम॥
होइता मों घर के लउँडिया घर ही बीच रहितों हो राम।
आहो रामा, मोरे परभू अइतें सेजरिया त सेजिया बिछइतों हो राम॥

अर्थात्, पूरबी हवा बहती है, तो सींक भी नहीं डोलती। मेरे प्रभु विदेश गये, कैसे दिल को समझाऊँ। अँगुलियों से ही माँग सँवारूँगी और आँखो मे काजल भरूँगी; ऐसा ही करके दिल को तसल्ली दूँगी कि मेरे प्रियतम जैसे घर में ही हैं। यदि मैं मछली होती, तो जल में ही रहती कि प्रियतम स्नान करने आते और मैं उनके चरण चूम लेती। जहाँ इस समय मेरे प्रभु रम रहे हैं, वहाँ की यदि मैं घरनी होती, तो घी की पूरियाँ और दूध की खीर बनाकर उन्हें खिलाती। साठी का चावल (ताजा) कूटकर भात राँधती और मूँग (ताजा) दलकर दाल बनाती। मेरे स्वामी जीमने आते और मैं भर-नजर उन्हें निहारती। मैं घर की लौंडी (टहलुई) होकर घर में ही रहती और जब मेरे प्रियतम सोने के लिए आते, तब मैं सेज सजाती।

नारी का सतीत्व ही उसकी सबसे बडी निधि होती है। सतीत्व की रक्षा में अगर जान की भी बाजी लगानी पड़े, तो वह तनिक भी नहीं हिचकती। एक लोकगीत में ऐसी ही घटना का चित्रण है।

अपनी भौजाई के प्रति देवर की दृष्टि दूषित हो जाती है। वह अपने भाई की हत्या कर डालता है। प्रतिदिन वह अपने भाई के साथ ही घर में आता था। आज वह अकेला ही आया। भौजाई को उसे अकेला देख तथा अन्य लक्षणों से संदेह हुआ। वह देवर से धीरतापूर्वक स्पष्ट पूछती है। लेकिन, देवर झूठ बोलकर बहाना करता है। देवर के बदरंग चेहरे से भौजाई असल बात ताड गयी। भौजाई को उसकी बातों पर विश्वास नहीं हुआ। वह चतुरता के साथ देवर को प्रलोभन देकर पूछती है—

देहु ना बताई मोके देवर रे गोसेइयाँ,
तोहि छाड़ि कतहीं ना जाइबि मोरे राम।
कहवाँ मरलऽ कहवाँ बहवलऽ,
कहवाँ चिल्हिया मेंड़राई मोरे राम।

अर्थात्, हे मेरे देवर गोसाई! मैं तुमको छोड़कर अब कहीं नहीं जाऊँगी—दूसरे की मैं नहीं हो सकती। तुमने मेरे पति को कहाँ मारा और कहाँ बहवा दिया? (बताओ, कहाँ लाश फेंकी है?) किस ओर चील मँडरा रही है?

देवर उसका आश्वासन पाते ही उसे सब-कुछ बतला देता है। वह देवर के साथ अपने पति की लाश के पास जाकर चंदन की लकड़ी से चिता तैयार करती है। फिर, वह

देवर को आग लाने के लिए भेजती है। देवर जबतक आग लाने जाता है, तबतक वह अपने सतीत्व का स्मरण कर अपने अंचल से ही आग उत्पन्न होने की कामना करती है—

जौं रउआ होइँ स्वामी सच के बियहुता,
अँचरा अगिनिया उपजाइँ मोरे राम।

अर्थात्, हे स्वामी, यदि आप मेरे सच्चे विवाहित साथी हैं, तो मेरे आँचल से ही आग उपजाइए।

सतीत्व का तेज उसके अंचल से अग्नि-ज्वाला के रूप में प्रकट होता है और वह जलकर भस्म हो जाती है। देवर आकर यह दृश्य देखता और हाथ मलकर रह जाता है। बिलखकर कहता है—

जौं हम जनतीं भउजी दगवा कमइबू,
काहे के मरतीं सगा भइया मोरे राम।

अर्थात्, हे भाभी! अगर मैं यह जानता कि तुम मुझसे दगा (छल) करोगी, तो अपने सगे भाई को मैं क्यों मारता?

लोकगीतों में सतीत्व-रक्षा के कौशल के ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं।

प्राचीन भारतीय कल्पना में नारी

श्रीमती प्रकाशवती, पुस्तकालय संचालिका, बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पटना

जिस प्रकार क्षितिज को दृष्टि की सीमा माना गया है, उसी प्रकार वेद कालीन आर्यों का जीवन हमारे सांस्कृतिक आकाश का क्षितिज है। ऋग्वेद सभी साहित्य-ग्रन्थों में प्राचीन है। वेदकालीन सामाजिक जीवन की झलक इस ग्रन्थ से ही मिलती है।

वेदों में प्रधानतः जिन तीन विषयों का प्रतिपादन किया गया है, वे कर्म, उपासना और ज्ञान हैं। उनकी साधना तथा प्राप्ति के अधिकार में स्त्री-पुरुष का कोई विभेद नहीं माना गया है। ऋग्वेद में इन तीन प्रमुख तत्त्वों की विशद विवेचना की गयी है। इनकी सिद्धि के लिए मानव-जीवन के तीन—देव, ऋषि और पितृ—ऋणों के शोध का विधान रचा गया। उनके साधन हैं—यज्ञ, अध्ययन और पुत्रोत्पत्ति। देव-ऋण का शोध यज्ञ द्वारा, ऋषि-ऋण का शोध अध्ययन द्वारा और पितृ-ऋण का शोध पुत्रोत्पत्ति द्वारा। वैदिक काल के जीवन में इन सभी संस्कारों में समान रूप से नारी के योगदान और श्रेष्ठ सम्मान का प्रमाण मिलता है। वैदिक आर्य लोक-जीवन के प्रति पूर्ण आस्थावान् थे। वे व्यक्ति के जीवन के साथ नहीं, सामूहिक जन-जीवन के साथ चलते थे। उनके सभी कार्य सामूहिक रूप से ही संपन्न होते थे।

वेदों के अध्ययन से ही ज्ञात होता है कि सृष्टि के संपूर्ण कारण, स्थिति और संहार, तत्त्वों की शक्ति नारी ही है—वह अदिति है। अदिति आदि-जननी कही जाती है। ये सर्वशक्तिमती, विश्वहितैषिणी, सर्वग्राहिणी और स्वाधीन हैं। ये ही आकाश, अंतरिक्ष, माता, पिता, पुत्र और समस्त देवता हैं। ऋग्वेद में अदिति के अतिरिक्त अनेक तत्त्वों की अधिष्ठात्री, अनेक देवियों के रूप में, नारी-शक्ति की वंदना की गयी है। उनमें प्रमुख ये हैं—धन की देवी लक्ष्मी, शक्ति की दुर्गा और विद्या की सरस्वती। इनके अतिरिक्त उषा, इन्द्राणी, इला, भारती, होला, सिनीवाली, श्रद्धा, पृश्नि आदि देवियों का भी उल्लेख है।

उषा

उषा प्रातःकाल की देवी, परम दीप्तिमती सुन्दरी, नित्ययौवन सम्पन्ना, शुभ्रवसना तथा आयु सौभाग्य-धनाधीश्वरी के रूप में पूजनीया हैं। इनकी प्रशस्ति में ऋग्वेद में तीन सौ सूक्त विभिन्न ऋषियों द्वारा वर्णित हैं। विश्व साहित्य में प्रकृति काव्य और प्रीति-प्रणय-काव्य का यही सर्वप्रथम उदाहरण है। कोमल भावों के दिव्य प्रेमोद्गार के ये अद्वितीय छन्द आज भी अनंत सौरभ, रस और मधु से परिपूर्ण हैं।

इन्द्राणी

शची, इन्द्रपत्नी और पुलोमतनया के रूप में इनकी वंदना की गयी है। ये ऐश्वर्य की आदि देवी हैं। पतिप्रेम से गर्विता अधिकारिणी के रूप में इनसे संबद्ध ऋचाएँ विख्यात हैं। ऋग्वेद के दशम मंडल के १५९वें सूक्त की ये देवी (पौलोमी) हैं।

वाक्

अम्भृण ऋषि की पुत्री, अन्न-जलदात्री, हर्षप्रदायिनी और वैदिक देवी-सूक्त की ऋषिका हैं। ये वाग्देवी ही मित्र और वरुण को धारण करनेवाली, धनदात्री, ज्ञानवती, प्राणिव्यापिनी, उपदेशिका और आकाश-जननी हैं। ऋग्वेद के दशम मंडल के १२५वें सूक्त में इनकी ४७ ओजस्विनी ऋचाएँ हैं।

इला

ये घृतहस्ता, अन्नरूपिणी, हविर्लक्षणा तथा मनु के यज्ञ में हविष्य की सेविका बतलायी जाती हैं।

सरस्वती

ये पवितपावनी, धनदात्री, सत्य की ओर प्रेरित करनेवाली, शिक्षा और ज्ञान की प्रदायिनी तथा वाणी की देवी हैं। ऋग्वेद (१।३।१०-१२) में इनके द्वारा अनेक मंत्रों के दर्शन हुए हैं।

भारती

ये निर्मलमति और धारणा-शक्ति की देवी हैं।

देवी यमी

ऋग्वेद (१०।१५६।५) की ऋचाएँ इनसे साक्षात्कृत हैं। ये जनता को यम नियम पालन की शिक्षा देती हैं। इन्होंने धार्मिकों और विद्वानों के आदर्श चरित्र के पालन पर जोर डाला है।

ब्रह्मवादिनी श्रद्धा

ऋग्वेद में इनकी पाँच ऋचाएँ हैं, जिनमें श्रद्धा की महिमा वर्णित है। श्रद्धा से ही मनुष्य-जाति का कल्याण हो सकता है। वेदोक्त मनु-पत्नी श्रद्धा ही 'कामायनी' (ऋ० १०।१५१।१-५) कही जाती हैं।

वेदों में अनेक देवियों की वंदना अनेक रूपों में की गयी है, जो प्राचीन ऋषियों के उदार, उन्नत और सुकोमल भावों के अप्रतिम उदाहरण हैं। नारी की उपासना देवी के रूप में ही नहीं, ब्रह्मज्ञान की जिज्ञासु साधिका के रूप में भी उनकी प्रशस्ति के अनेक उदाहरण हैं। वेदों के अध्ययन से ही यह ज्ञात होता है कि ब्रह्मज्ञान प्राप्ति में स्त्री पुरुष का कोई वर्ग-विभेद नहीं था। जिसमें साधन-चतुष्टय एवं जिज्ञासा हो, वही इसका अधिकारी हो सकता था। पूर्व-वैदिक काल में ऐसी अनेक स्त्रियों का उल्लेख है, जिनमें ब्रह्मवादिनी रोमशा, उशिज, घोषा, सूर्या, विश्वावारा आदि मंत्र द्रष्टिका देवियाँ प्रमुख हैं। यह भी प्रमाणित हो चुका है कि उस समय स्त्रियों को भी यज्ञोपवीत-धारण, वेद पाठ और ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार था। उन्हीं देवियों में से कुछ का संक्षिप्त उल्लेख नीचे किया जाता है।

रोमशा

ये बृहस्पति की पुत्री और भावभव्य ऋषि की पत्नी थीं। इनके सारे शरीर में सघन बाल होने के कारण पति ने इन्हें त्याग दिया था। इन्होंने अपनी घोर तपश्चर्या के बल पर ही श्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया और ऋग्वेद के प्रथम मंडल के १२६वें सूक्त की सात ऋचाओं की मंत्र द्रष्टिका ऋषिका के रूप में अनन्त यश अर्जित किया। कहते हैं कि वेद-शास्त्रों की अनेक शाखाएँ ही इनके शरीर के रोमों से निकली थीं। जिन जिन बातों से नारी बुद्धि का विकास होता है, इन्होंने उन्हीं उपदेशों का प्रचार किया है।

ममता

ये दीर्घतमा ऋषि की माता थीं। प्रकांड विदुषी और ब्रह्मज्ञानी होने का प्रमाण इनकी ऋचाएँ ही हैं। ऋग्वेद के प्रथम मंडल के दसवें सूक्त में इन्होंने अग्नि देवता की वंदना में ऊर्जस्वी मंत्रों का गान किया है।

उशिज

ये ममता के पुत्र दीर्घतमा ऋषि की पत्नी थीं। प्रसिद्ध महर्षि कक्षिवान् इन्हीं के सुपुत्र थे। ऋग्वेद के प्रथम मंडल के ११६ से १२१ तक के मंत्र इन्हीं के हैं। प्रसिद्ध ब्रह्मवादिनी 'घोषा' इन्हीं की पौत्री थीं। इनका सारा कुटुंब ब्रह्म-परायण था।

घोषा

ये कक्षिवान् महर्षि की पुत्री और उशिज की पौत्री थीं। ऋग्वेद के दशम मंडल के ३९-४० सूक्त इन्हीं पर प्रकट हुए। इन्होंने दीर्घकाल तक विद्याध्ययन और धर्मोपदेश का प्रचार करके गार्हस्थ्य-जीवन में प्रवेश किया था। इनके दीर्घ कौमार्य का कारण इनका कुष्ठ रोग था। अश्विनीकुमारों की वंदना कर इन्होंने रोग से मुक्ति पायी थी। पुनः मनोवांछित वर भी प्राप्त किया था। इनके मंत्र समस्त नारी-जाति के पुनीत कौमार्य के तथा जीवन के प्रति गहरी जिज्ञासा, अभिलाषा और आस्था के प्रतीक हैं। साध्वी घोषा ने अश्विनीकुमारों से जीव जगत् के निमित्त दया-दाक्षिण्य, धन-धान्य; विद्या-बुद्धि, आयुष्य-आरोग्य और प्रगाढ़ पुण्य-संपन्न नारी के रक्षक गुणों से युक्त पति की प्रार्थना की है।

सूर्या

ये सूर्य की पुत्री हैं। ऋग्वेद में देवी और ऋषिका दोनों ही रूपों में इनकी प्रतिष्ठा की गयी है। इनके पवित्र मंत्र आज भी विवाह में 'सप्तपदी' के अवसर पर मंत्रित किये जाते हैं। नारी जाति के अधिकार, कर्त्तव्य, शील, मर्यादा, पवित्रता और दायित्व का वर्णन करनेवाले ये मंत्र आज भी भारतीय दाम्पत्य-जीवन की आधार शिला हैं। अत्यन्त कोमल और चैतन्य भावों का गुम्फन इनके मंत्रों में हुआ है। ये ऋग्वेद के दशम मंडल के ८५वें सूक्त की ऋषिका हैं।[१]

विश्ववारा

महर्षि अत्रि के वंश में उत्पन्न इन विदुषी महिला ने, ऋग्वेद के पंचम मंडल के २८वें सूक्त में, अग्नि की उपासना में, बड़े ओजस्वी और चैतन्य-मंत्र गाये हैं।

अपाला

विश्ववारा की भाँति अपाला भी अत्रि मुनि के वंश में हुई थीं। कुष्ठव्याधि से पीड़ित होने के कारण पति ने इनका परित्याग किया था। इन्होंने दीर्घकाल तक पितृकुल

---

१. सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वा यायास्त्व वि परेतन॥

अर्थात्, यह परमकल्याणमयी वधू यहाँ बैठी है। गुरुजनो और देवताओ, आओ, इसे कृपादृष्टि से देखो तथा इसे सौभाग्य-सूचक आशीर्वाद देकर अपने स्थानों को जाओ।

—ऋ० १०।८५।३३

आज भी पति पाणिग्रहण काल में कहता है—

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वा दुर्गार्हपत्याय देवाः॥

—ऋ० १०।८५।३६।

अर्थात्, कल्याणी, मैं तुम्हारे और अपने सौभाग्य के लिए तुम्हारा हाथ पकड़ता हूँ। तुम मेरे साथ वृद्धावस्था तक बनी रहो। भग, अर्यमा, सविता, पुरन्धी आदि देवताओं ने गृहस्थ-धर्म के रक्षार्थ मुझे तुमको प्रदान किया है।

में निवास कर उपासना और स्वाध्याय से इन्द्र को प्रसन्न किया था। फलस्वरूप, नीरोग काया ही नहीं, अपने पिता के रोम हीन मस्तक पर घने केश और ऊपर खेतों की उर्वरा-शक्ति का वरदान भी प्राप्त किया था। ऋग्वेद के अष्टम मंडल के ६१वें सूक्त में १ से ७ तक की ऋचाएँ इन्हीं के द्वारा प्रकट हुई हैं। ये अत्रि की पुत्री भी मानी जाती हैं।

शश्वती

ब्रह्मवादिनी रोमशा के समान ही ये भी वेद की केवल एक ही ऋचा की ऋषिका हैं। ये अंगिरा की पुत्री और आसंग राजा की पत्नी थीं।

ब्रह्मवादिनी गोधा

नारी जाति की उन्नति ही इनका मूलमंत्र था। स्त्री-जाति के सम्बन्ध में अत्यन्त उन्नत विचार रखनेवाली इन ऋषिका ने नारी के अधिकारों के प्रति बड़ी मार्मिक उक्तियाँ कही हैं। इनके मंत्र ऋग्वेद (१०।१३४।७) में द्रष्टव्य हैं।

ब्रह्मवादिनी जुहू ऋषिका

ये बृहस्पति की पत्नी थीं। ऋग्वेद के १०।१०६ सूक्त में इनकी ऋचाएँ हैं। इनका सिद्धान्त था कि तपस्या और सच्चरित्रता तथा अनुताप और आत्मिक पवित्रता से निकृष्ट पदार्थ भी उत्तम स्थान को प्राप्त होता है।

उपर्युक्त देवियों और ब्रह्मवादिनियों के अतिरिक्त वेदों में नारी के शक्ति रूप का प्रमाण भी मिलता है। ऋग्वेद से स्त्रियों द्वारा रथ हाँकने, कुशलतापूर्वक सैन्य-संचालन करने और दूती के कठिन कर्म का संपादन करने की भी पुष्टि होती है। पति के संग युद्धक्षेत्र में जाकर शत्रुओं को पराजित करने में भी स्त्रियाँ किसी से पीछे नहीं रही हैं। स्त्रियों ने जिस सहज भाव से गृह-जीवन का निर्वाह किया, उसी योग्यता से गृह के बाहर के दायित्वों को भी निबाहा है। ऋग्वेद (१०।१०२।२-११) में मुद्गल-पत्नी इन्द्रसेना के रथ हाँकने की कथा है, जिसने कुशलता से रथ हाँककर, इन्द्र के शत्रुओं का विनाशकर, अपहृत गौओं को छुड़ाया था।

इन्द्र के शत्रु और गो दस्यु पणियों के प्रति इन्द्र की दूती का कार्य संपादित करनेवाली वीर नारी 'सरमा' और पणियों का छल-कौशल-पूर्ण संवाद नारी की बुद्धिशीलता, साहसिकता और वाक्पटुता का प्रतीक है। स्त्रियों ने इसे प्रमाणित कर दिखाया है कि जिन कार्यों की दुर्गमता में पुरुष बुद्धि कुंठित हो जाती है, नारी कितनी सहजता से उन्हें कर दिखाती है। ऋग्वेद के १०।१०८वें सूक्त में सरमा और पणियों का उक्त ओजस्वी संवाद बड़ा रोचक और विस्तृत है।

युद्धविद्या विशारदा 'विश्पला' का नाम भी अविस्मरणीय है। पति के संग रणक्षेत्र में युद्ध करती हुई विश्पला की जाँघ की हड्डी टूट गयी थी, जिसे अश्विनीकुमारों ने स्वयं ठीक किया था।

'नमुचि' के पास विराट् स्त्री-सेना होने का प्रमाण मिलता है। वृत्रासुर की म
'दनु' भी उसके साथ युद्ध-भूमि में गयी थी और इन्द्र के हाथों उसकी मृत्यु हुई थी।

इस प्रकार, तत्कालीन आर्येतर समाज की नारी की झलक भी वेदों से ही मिलती

वैदिक ऋषियों ने नारी के जितने रूपों की महिमा गायी है, 'माता' का रूप उ
उच्चतम है। मातृत्व ही नारीत्व का चरम विकास है, यह विश्व-मान्य मत है। माता के रू
नारी की वदना शक्ति और लोक-कल्याण की भावना का ज्वलन्त उदाहरण है। लोकध
पालन के लिए ऋषियों ने नारी के जिन तीन रूपों की प्रतिष्ठा की, उनसे भी इसी भावन
पुष्टि होती है—उपासना-रूप में माता की, कर्म रूप में पत्नी की और ज्ञान-रूप में पुत्री क
उदारचेता महर्षियों ने शब्द-व्युत्पत्ति द्वारा नारी की समस्त चेष्टाओं और भावनाओं
तात्त्विक विवेचना की है। ऋग्वेद में 'मातृ' शब्द अंतरिक्ष, नदी, जल तथा पृथ्वी के
में आया है। 'महिला' शब्द भी इसी महिमा का प्रतीक है—(मह = पूजा, पूजनीय जो

ऋग्वेद में 'नारी' शब्द नहीं है, पर यज्ञ के अर्थ में 'नार्यः' शब्द प्रयुक्त हुआ
तैत्तिरीय आरण्यक (६।१।३) और शतपथ-ब्राह्मण (३।५।४।४) में भी यही शब्द प्र
हुआ है। ऋग्वेद में 'नृ' का अर्थ नेतृत्व और वीरता का द्योतक समझा गया है। मनुस्
में तो माता को ही सर्वोपरि कहा गया है। माता का कर्म केवल ममता परक अधमोह
प्रदर्शन-भर ही नहीं, संतान के लोक-जीवन और आध्यात्मिक चैतन्य को भी ज
करना था। अध्यात्मवादिनी माता 'मदालसा' की लोरी कितनी उच्च भावना का
रूप है। जिसने पहले से ही अपने शिशुओं को चैतन्य-स्वरूप की शिक्षा दी।[१]

वैदिक जीवन के समस्त आनन्द, कर्म और उल्लास की आधार-शिला पत्नी
सहचारिणी और सहधर्मिणी पत्नी, लौकिक जीवन की तृप्ति और अध्यात्म-पथ में परमा
चिन्तन के लिए, सर्वत्र सहगामिनी रही है। पत्नी का अर्द्धांगिणी रूप, सर्वत्र मा
रहा है। वैदिक ऋषियों ने मुक्त कंठ से उद्घोषित किया है कि पत्नी के बिना स्वर्ग-प्र
भी नहीं होती (शत० ब्रा० ५।२।१।१०), पत्नी के बिना पितृ-ऋण का शोध नहीं होता।

नारी के कोमल, रमणीय और प्रिय रूपों को अभिव्यजित करनेवाले शब्दों में '
(जो लज्जा से सिकुड़ती हो), 'योषित्' आदि समानार्थ-वाचक हैं। नारी को 'वामा'
कहते हैं। दुर्गा और काली का नाम भी 'वामा' है। 'अबला' शब्द नारी के सहज सौकु
और उसकी मानसिक उड़ानों का गुणवाचक है। 'सुन्दरी' शब्द ऋग्वेद के 'सूनरी' का
विकसित रूपान्तर है। ऋग्वेद (ऋ० ७।८१।१) में यह शब्द 'उषा' के लिए प्रयुक्त हुआ

१. शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि संसारमायापरिवर्जितोऽसि।
संसारस्वप्नं त्यज मोहनिद्रां मदालसा वाक्यमुवाच पुत्रम्॥

अर्थात्, हे पुत्र, तुम शुद्ध (पापरहित), बुद्ध (ज्ञानमस्न), निरञ्जन (विषय-विकार हीन)
संसार की माया से निर्लिप्त हो; (इसलिए) संसार के स्वप्न (मिथ्या स्वरूप) और मोह की नींद
परित्याग करो।

प्रमदा, ललना, भामिनी और जाया भी रमणीय अर्थों के वाचक हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा है—तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुनः (जिसमें स्वयं पति ही पुनः जन्म धारण करता है, वही जाया है)। ऋग्वेद (ऋ० ३।५३।६) ने भी इसी की परिपुष्टि की है—कल्याणी जाया सुरणं गृहे ते (तुम्हारे घर में कल्याणी सुषमामयी पत्नी है)। जाया ही घर है। वही पुरुष का विराम स्थल है (ऋ० ३।५३।४)। पत्नी का सुरूपिणी और हँसमुख होना आवश्यक है (ऋ० ३।५८।८)। वह कर्त्तव्यनिष्ठ और पतिव्रता हो (ऋ० १।७३।३)। चिरयौवना नारी ही महत्त्वशालिनी होती है (ऐतरेयब्राह्मण, १०।८६।२३)। अधिक संतति से जीवन कष्टमय होता है (२।३।२० ऐत० ब्रा०)। आर्यपत्नियाँ सुरुचि सम्पन्ना और सुवस्त्रा होती थीं (ऋ०।१०।७१४)। नारी को अपने सौन्दर्य और स्वास्थ्य के प्रति सतत जागरूक रहना चाहिए। (यजुर्वेद, शुक्ल० ११।५६)। नारी के नेत्र शान्ति से भरे हों, वह सर्वहितैषिणी एवं वर्चस्विनी हो (य० शु० १०।८५।४४)। नारी के कर्त्तव्य केवल पति के प्रति ही नहीं, घर के अनेक स्वजन और बूढ़े सास ससुर के प्रति, पशुओं और पालित जनों के प्रति तथा समाज के प्रति भी हैं (अथर्ववेद, १४।२।२७ और १४।२।८)। गृहिणी को गृह-परिचर्या का पूर्ण ज्ञान हो, वह अपने हाथों वस्त्र भी बुने (ऋ० १०।१३०।१)। सूत कातना, कपड़े बुनना और फैलाना स्त्रियों के जिम्मे था (अथर्व, १४।१।४५)।

प्राचीन ऋषियों ने यह उद्घोषणा की है कि रति, प्रीति, धर्माचरण आदि नारी के ही अधीन हैं। पुरुष (स्त्री का) भरण-पोषण करने के कारण ही 'भर्त्ता' और पालन करने से ही 'पति' कहलाता है। इसके विपरीत आचरण करने से वह न भर्त्ता है, न पति। आर्ष ग्रन्थों में एक स्वर में यह कथन सर्वत्र मिलता है कि पुरुष की विशेषता विचार शक्ति है, जिसके द्वारा वह समस्त कर्मों का सम्पादन करता है और नारी की विशेषता उसकी प्रज्ञा है, जिससे वह सभी विषयों का सामंजस्य करती है और पुरुष की विचार-शुद्धि को नियन्त्रित भी करती है।

वैवस्वत मनु की पत्नी ने पुत्रेष्टि यज्ञ के अवसर पर आहुति डालनेवाले होता से पुत्री होने की कामना प्रकट कर 'इला' की प्राप्ति की थी। वैदिक ऋषियों को पुत्री इतनी प्रिय होती थी कि शोभा और सुन्दरता की देवी उषा की उपमा भी उन्होंने दुहिता से की है। (ऋ०१।१४।६२)। वैदिक काल की कन्याएँ शिक्षिता, सभ्या, विदुषी, ब्रह्मचारिणी तथा अन्यान्य कला कौशल में निपुण होती थीं। उन्हें यह सामाजिक अधिकार था कि वे स्वेच्छा से पति-वरण करें। पिता के धन से उनका प्राप्य अंश उन्हें मिलता था। नारी के छः प्रकार के धन (स्त्री-धन) की व्याख्या मनु ने भी की है। नारी-धनहर्त्ता और नारी के उत्पीड़कों के लिए बड़े कठोर दंड की व्यवस्था थी। वाजसनेय संहिता (१२।३।१७) में तो केवल ब्रह्मचारिणी और विदुषी कन्याओं को ही विवाह की अधिकारिणी कहा गया है।

वैदिक काल से मानव समाज ज्यों ज्यों नवीन विकासशील युग की ओर बढ़ता गया, जीवन में आनंद, उल्लास और विनोद का महत्त्व कुंठित होता गया। वह समुदायवादी से

व्यक्तिवादी बनता गया, लोक से परलोक की ओर चिन्ताशील हुआ और नारी क्रमशः उसके जीवन से दूर होती गयी। अन्न, प्रजा और ब्रह्मवर्चस् की उपलब्धि में ही तृप्त रहनेवाले मनुष्य में स्वाधिकार की स्वार्थपरता आयी। वह चिन्तन से चिन्ता की ओर प्रवृत्त हुआ, नैसर्गिक जीवन की परमानन्दमयी चेतना से यान्त्रिक जीवन की ओर बढ़ता गया। राजनीतिक और सामाजिक कारणविशेष से ही समय और स्थिति की सीमा में बँधी चिरसंगिनी नारी को पुरुष ने भोग्या और दासी बनाया। उसकी स्वतन्त्र मर्यादा पति, पुत्र और पिता की प्रतिष्ठा पर ही केन्द्रित हो गयी। स्त्रियों ने स्वयं अपना स्वरूप भूलकर अपनी अवनति का द्वार स्वयं खोला।

रामायण काल में समाज पर यद्यपि पुरुषों का ही प्रभुत्व था, तथापि नारी के सम्मान के प्रति सजगता थी। यद्यपि उस काल में बहु-विवाह, वृद्ध विवाह और नारी तथा शूद्र का भेद प्रचलित हो चुका था, तथापि सामाजिक बनावट सुदृढ़, उदार, त्यागमय और पवित्र थी। नारी रक्षणीया थी। विधवा की तपश्चर्या मान्य थी। पातिव्रत्य की कठोर मर्यादा का उल्लंघन करना कठिन था। पति का स्थान देवता का और पतिसेवा मुक्ति का साधन थी। उच्चवर्ग की स्त्रियों में शिक्षा, संगीत, चित्रकला और अन्यान्य कलाओं का प्रचार था। आर्या सीता और कौसल्या द्वारा वेदपाठ का प्रमाण मिलता है। उस समय के आर्य ही नहीं, अनार्य राजा रावण के महलों में भी मन्दोदरी, त्रिजटा, सरमा, सुलोचना आदि कई ज्ञानवती महिलाओं की चर्चा आती है।

दूसरा उल्लेखनीय युग महाभारत का रहा है। युग युग की धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक विषमताओं से ग्रस्त समाज अपनी रूढ़ियों को जलाकर नया रूप धारण कर रहा था। महाभारत का रक्तरंजित युद्ध इन समस्त विषमताओं का नाश कर देता है।

स्त्रियों की घोर अवनति का युग बौद्ध तन्त्रवादियों का अभिचार काल रहा है। प्रसन्नता का विषय है कि युगों के विभिन्न चढ़ाव उतारों से संघर्ष करता हुआ नारी का जीवन-प्रवाह आज पुनः उन्नति और प्रगति के कूलों के बीच से प्रवाहित होने लगा है।

नवीन युग की नव चेतना-प्रबुद्ध स्त्रियों का स्वागत और अनुकरण हमें वांछनीय है। किन्तु, खेद है कि इस नवोदित भारतीय नारी जागरण पर भी विनाश के काले बादल घिरते जा रहे हैं। हम महिलाओं का सबसे बड़ा कर्त्तव्य है अपना लक्ष्य ध्यान में रखकर, अपनी भारतीय संस्कृति का सम्मान अक्षुण्ण रखने के संकल्प में, पश्चिम के उन अन्धानुकरणों से सावधान हो रहना, जो एक विदेशी विद्वान् की इस मर्मवाणी की ज्योति मन्द करने पर तुले हैं—"भारतीय सांस्कृतिक चेतना का मेरुदंड भारत की त्यागमयी उज्ज्वल चरित्रवाली नारियाँ ही हैं।"

जीवन में पति-पत्नी का सम्बन्ध : तब और अब

श्रीगोवर्द्धन प्रसाद 'सदय' एम्० ए०; सम्पादक 'बिहार-समाचार'
तथा 'पंचायती राज', बिहार-सरकार, पटना

मानव-जीवन में पति और पत्नी का सम्बन्ध परम पवित्र, मधुर और सुखद है। संसार-रूपी रथ के दोनों चक्र हैं—पति और पत्नी। पुरुष और प्रकृति के प्रत्यक्ष प्रतिबिम्ब हैं—पति और पत्नी। समाज के युगल चरण हैं—पति और पत्नी, जिनके आधार पर समाज सदा आगे बढ़ता रहता है। परिवार के उद्यान में वृक्ष लगा है—पति-पत्नी, जो फूलते-फलते, शीतल छाया देते और परिवार को सुशोभित करते हैं। भारतीय साहित्य में सर्वत्र ही पति-पत्नी की अभिन्नता का समर्थन मिलता है। 'रघुवंश' में शिव-पार्वती के लिए महाकवि कालिदास ने '*वागर्थाविव सम्पृक्तौ*' लिखकर उसी अभिन्नता का संकेत किया है।

अध्यात्म-रामायण में देवर्षि नारद ने मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र से कहा है कि आप और सीता सर्वथा अभिन्न हैं—"आप विष्णु, वे लक्ष्मी; आप शिव, वे शिवा (पार्वती); आप ब्रह्मा, वे वाणी (सरस्वती); आप सूर्य, वे प्रभा; आप चन्द्रमा, वे रोहिणी; आप इन्द्र वे शची; आप अग्नि, वे स्वाहा; आप कुबेर, वे सम्पत्ति; आप रुद्र, वे रुद्राणी; यहाँ तक कि संसार में जो कुछ भी स्त्रीवाचक है, वह सब कुछ जानकी हैं और जो कुछ पुरुषवाचक है, वह सब आप ही हैं, आप दोनों से भिन्न त्रिलोक में कुछ भी नहीं है।"[1]

ऋषि की वाणी में जो गूढ़ तत्त्व है, वह गम्भीरतापूर्वक सोचने-समझने की वस्तु है। उससे यही तथ्य प्रकट होता है कि पति-पत्नी शरीरतः भिन्न दीखने पर भी हृदय और प्राणों से एक ही हैं। उसका सारांश मन-ही-मन समझने योग्य है। किसी आदर्श दम्पती को ही उसका वास्तविक तात्पर्य हृदयङ्गम हो सकता है। उसमें जो एक अनिर्वचनीय रसानुभूति है, वह किसी सहृदय पति या पत्नी के ही मन को अपने में तल्लीन कर सकती है। उस ऋषि वाणी की सरसता अनुभवगम्य है।

---

१. त्वं विष्णुर्जानकी लक्ष्मी शिवस्त्वं जानकी शिवा ।
ब्रह्मा त्वं जानकी वाणी सूर्यस्त्वं जानकी प्रभा ॥ १३ ॥
भवान् शशाङ्कः सीता तु रोहिणी शुभलक्षणा ।
शक्रस्त्वमेव पौलोमी सीता स्वाहानलो भवान् ॥ १४ ॥
कुबेरस्त्वं राम सीता सर्वसम्पत्प्रकीर्तिता ।
रुद्राणी जानकी प्रोक्ता रुद्रस्त्वं लोकनाशकृत् ॥ १७ ॥
लोके स्त्रीवाचकं यावत् तत्सर्वं त्वं जानकी शुभा ।
पुन्नामवाचकं यावत्तत्सर्वं त्वं हि राघव ॥ १८ ॥
तस्माल्लोकत्रये देव युवाभ्यां नास्ति किञ्चन ॥ १९ ॥—अयोध्याकाण्ड, प्रथम सर्ग ।

हमारे पूर्वजो के लिए पति पत्नी का सम्बन्ध केवल कायिक—या इसे और व्यापक रूप देने के लिए 'भौतिक कह लें—लिप्सा की तृप्ति पर ही अवलम्बित न था। इससे कहीं ऊँचा लक्ष्य उनके सामने था। वे वैवाहिक सूत्र में बँधने के बाद ही आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर होते थे। उनकी दृष्टि में पत्नी ही पति की पूर्णता का द्योतक थी। जबतक वे मगल परिणय-सूत्र में आबद्ध होकर अपनी सन्तान को जन्म नहीं दे लेते, तबतक अपने आपको अपूर्ण समझते थे। (शतपथब्राह्मण, ३।६।१०)। मनुस्मृति (१६।४५) ने भी यह माना है कि पत्नी ही पति के जीवन की पूर्णता है और दोनो की प्रसन्नता एक दूसरे की प्रसन्नता पर ही निर्भर है।

उस समय पति-पत्नी सम्मिलित रूप से परिवार को सुखी और सम्पन्न रखने की चेष्टा करते थे। दोनो परस्पर अनुकूल होते थे। फलत , हमारे पूर्वजों का घर स्वर्ग बना रहता था, क्योंकि पति पत्नी की पारस्परिक प्रतिकूलता से घर नरक हो जाता है—

आनुकूल्य हि दम्पत्योस्त्रिवर्गोदयहेतवे ।
अनुकूल कलत्र चेत्त्रिदिवेन हि कि तत ॥
प्रतिकूल कलत्र चेन्नरकेण हि किं तत ।
गृहाश्रम सुखार्थाय पत्नीमूल हि तत्सुखम् ॥
(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, २२३।३६।७)

पति की प्रसन्नता के लिए पत्नी ही सब कुछ समझी जाती थी। घर सन्तानों से भरा हो, नाती-पोते तक आँगन में किलोल कर रहे हों, किन्तु उस गृहस्थ का घर सूना-सूना है, जिसकी पत्नी न हो—

पुत्रपौत्रवधूभृत्यैराकीर्णमपि सर्वत ।
भार्याहीनगृहस्थस्य शून्यमेव गृह भवेत् ॥ (महाभारत, १२।१४४)

पत्नी ही पति के लिए गृहस्थी में एकमात्र आश्रय स्थली समझी जाती थी। कैसी भी भयानक से-भयानक स्थिति क्यों न हो, दु खों का पहाड़ ही क्यों न टूट पड़ा हो, यदि पास में पत्नी रही, तो सारे सकट रुई की तरह उड़ गये। पत्नी सम्पूर्ण वेदनाओं की ओषधि के रूप में मानी जाती थी—

न च भार्यासम किञ्चिद्विद्यते भिषजा मतम् ।
औषध सर्वदु खेषु सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ (महाभारत, ३।५८।२६)

आज चाहे हमारी धारणा बदल गयी हो, किन्तु उस युग में पत्नी ही ऐसी मित्र होती थी, जो आपत्काल में सदा साथ देती थी। यदि पति बीहड जगल में रहता, तो वह जगल भी, पत्नी के साथ रहने पर, मगलमय हो जाता था। एक साथ रहने से ही राम और सीता में से किसी को वनवास नहीं अखरता था। पाण्डवों के साथ द्रौपदी भी वनवास और अज्ञातवास में सदा प्रसन्न रहती थी। कहा है, पत्नी के बिना भरा पूरा घर भी जगल से बढ जाता है—गृह तु गृहिणीहीन कान्तारादतिरिच्यते। (म० भा० १२।१४४।६)।

पुरुष के लिए एकमात्र पत्नी ही उसकी विश्वसनीय सखा, सचिव तथा सहचरी थी —गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ (रघुवंश, ८।६७)। पत्नी के बिना पति स्वर्ग भी नहीं जा सकता था। शतपथब्राह्मण (२।१।१०) में इस आशय की एक कथा आयी है कि पत्नी के अभाव में पति के लिए स्वर्ग का द्वार बन्द हो गया था; जब पत्नी ने आकर स्वयं मंत्रोच्चार किया, तब वहाँ पति को स्वर्ग जाने की अनुमति मिल सकी।

जैसे पत्नी के हृदय में पति के लिए अनन्य प्रेम होता था, वैसे ही पति के हृदय में भी पत्नी के लिए बड़े ऊँचे भाव होते थे। पति अपनी पत्नी को सबसे बढ़कर प्रिय मित्र मानता था। पति के लिए पत्नी ही ईश्वरदत्त अन्तरंग मित्र है—पुत्र आत्मा मनुष्यस्य भार्या दैवकृतः सखा (महाभारत, १।३७४।७३)। बुद्ध-मतावलम्बियों ने भी ऐसे ही भाव व्यक्त किये हैं—पुत्ता वत्थु मनुस्सानं भरिया च परमा सखा (संयुत्तनिकाय, १।६।४)। उस अतीत काल में पत्नी को असन्तुष्ट अथवा अप्रसन्न रखकर कोई पुरुष किसी प्रकार के सुख की कल्पना ही नहीं कर सकता था।

हमारे देश में अनादि काल से नारी के अभाव में पुरुष अपूर्ण माना गया है। पत्नी और पति एक होकर ही सम्पूर्ण हो सकते हैं। यही कारण है कि सम्मान के साथ पत्नी की रक्षा करना—उसके सन्तोष और सुख-सुविधा का सदा ध्यान रखना—पति ने अपना परम कर्त्तव्य माना। जो ऐसा न कर पाया, उसे पति कहलाने का कोई अधिकार न रहा। पति के लिए पत्नी के साथ ईमानदारी से जीवन बिताना परम धर्म माना गया। यदि वह ऐसा नहीं करता, तो पाप का भागी होता है (मनुस्मृति, ९।१०१)।

उसी प्रकार पति के प्रति पत्नी के कर्त्तव्य भी बड़े पवित्र थे। सब प्रकार से पति को प्रसन्न रखना ही उसके सौभाग्य का द्योतक था। वह जानती थी कि पिता, माता, भाई, पुत्र या कोई उसके लिए वह नहीं कर सकता, जो पति कर सकता है। अन्य व्यक्तियों से प्राप्त सुख सीमित है, किन्तु पति द्वारा प्राप्त सुख की कोई सीमा नहीं।[1] उसका सच्चा सुख पति के सुख में ही केन्द्रित है। वन-गमन के समय सीता ने कौसल्या से कहा है कि जैसे बिना तार की वीणा नहीं बज सकती और बिना पहिये का रथ नहीं चल सकता, वैसे ही सौ बेटों की माता होने पर भी नारी बिना पति के सुखी नहीं हो सकती।[2] पति का अनन्य प्रेम पाकर ही पत्नी ऐसे भाव व्यक्त करती थी। पति भी पत्नी के सच्चे प्रेम से तृप्त रह ही उसे अपना आधा अंग और जीवन-संगिनी मानता था। पति-पत्नी के प्रेम की आदर्श परम्परा अत्यन्त उज्ज्वल है।

---

१ मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः।
अमितस्य तु दातारं भर्तारं का न पूजयेत्॥—वाल्मीकीय रामायण, अयोध्याकांड, ३९।३०

२. नातन्त्री वाद्यते वीणा नाचक्रो विद्यते रथः।
नापतिः सुखमेधेत या स्यादपि शतात्मजा॥—वाल्मी० रामा०, अयो० ३९।२९।

जीवन की प्रत्येक परिस्थिति में पति का साथ देना पत्नी का और पत्नी का साथ देना पति का धर्म माना जाता था। विवाह के समय पति और पत्नी अग्निदेव तथा अन्य देवताओं को साक्षी करके जो संकल्प करते थे, उसका पालन करने पर बराबर ध्यान रखते थे। दोनों एक-दूसरे की रुचि और इच्छा का ख्याल रखते थे। दोनों आपस की सलाह से मिल जुलकर गृहस्थी चलाते थे। पति यदि अपव्ययी होता, तो पत्नी ऐसी मृदुता से अंकुश रखती कि पति को अपनी राह छोड़नी पड़ती। जब परिवार में कोई कठिन परिस्थिति उपस्थित होती, तब वह पति को सत्परामर्श देती थी। यदि पति कभी उसकी बात पर ध्यान न देता, तो वह मधुर हास परिहास के साथ रस-सिक्त वाणी में उसे समझा-बुझाकर सत्पथ पर लाती थी। ऐसी सुशीला पत्नी के लिए पति का सारा जीवन निछावर था। पत्नी-भक्त पतियों का यश भी भारतीय साहित्य में उजागर है। सती पत्नी के सम्बन्ध में कहा गया है कि 'देवताओं और ऋषि-मुनियों की तेजस्विता तथा समस्त तीर्थों की पवित्रता यदि एक स्थान पर देखनी हो, तो किसी सती नारी के दर्शन करो, सतियों की पद धूलि से पृथ्वी पवित्र हो जाती है।'[१]

आधुनिक युग के मस्तिष्क में अपने ही देश के अतीत युग और प्राचीन साहित्य की बातें टिक नहीं पातीं पैठ तक नहीं पातीं। वर्त्तमान समाज अपने पूर्वजों के सिद्धान्त और आदर्श में आस्था अथवा श्रद्धा रखने को उत्सुक नहीं। सचमुच, आज की स्थिति अत्यन्त दुःखद तथा भयानक है। जान पड़ता है, जिन पूर्वजों ने अपने जीवन को ऐसा मर्यादित और आदर्शमय बना रखा था, हम उनकी सन्तान ही नहीं हैं। आज का जीवन अधिकांशतः अमर्यादित हो गया है। हम बड़ी तेजी से नीचे की ओर जा रहे हैं। हमारा नैतिक स्तर नीचे लुढ़क गया है। हम *कायिक लिप्सा—शारीरिक वासना—की तृप्ति* को ही सब कुछ समझने लगे हैं। हम जिन पूर्वजों की सन्तान हैं, उनके साथ तो ऐसी बात थी नहीं। उनके जीवन की प्रेरणाप्रद घटनाएँ—उनके आचरण के आकर्षक चित्र आज भी हमारे प्राचीन ग्रन्थों में सुरक्षित हैं। आखिर क्यों आज के जीवन में पति पत्नी का सम्बन्ध हमारी परम्परा के अनुकूल नहीं दीख पड़ता?

हाँ, आज भी समाज में आदर्श पति और पत्नी विद्यमान हैं। पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी में भी दाम्पत्य-प्रेम के दर्शनीय दृश्य दुर्लभ नहीं हैं। फिर भी, विषाक्त वातावरण का अनुभव हो रहा है। किसी एक पक्ष की गलती नहीं मानी जा सकती। दोनों पक्ष अपनी भूल पर ठंडे दिल से विचार करें, तो समस्या का हल निकल सकता है।

---

१ पृथिव्यां यानि तीर्थानि सतीपादेषु तान्यपि।
तेजश्च सर्वदेवानां मुनीनां च सतीषु वै॥
सतीनां पादरजसा सद्यःपूता वसुन्धरा॥—ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, ३५।१२६, १२७।

'मानस' की सीता

डॉक्टर भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'; संचालक, बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम् ।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् ॥

गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में महारानी सीता के जिस पावन चरित्र का वर्णन किया है, वह रामायण के समस्त स्त्री-चरित्रों में सर्वोत्तम और सर्वथा आदर्श रूप में अंकित हुआ है। उनका सा असाधारण पातिव्रत्य, त्याग, शील, सौंदर्य, शान्ति, क्षमा, सहनशीलता, धर्मपरायणता, नम्रता, सेवा, संयम, सद्व्यवहार, साहस और शौर्य विश्व के इतिहास में अन्यत्र दुर्लभ है। पातिव्रत्य में तो वे अप्रतिम ही हैं। सीता के सौन्दर्य का वर्णन करते समय गोस्वामीजी ने जो उत्प्रेक्षा बाँधी है, वह विश्व-साहित्य में बेजोड़ है—

जौं छबि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छप सोई ॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू ॥
एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुन्दरता सुखमूल।
तदपि सँकोच समेत कवि कहहिं सीय समतूल ॥

किसी प्राकृत नारी के रूप से सीता के रूप की क्या उपमा? रूप और गुण की खान जगदम्बिका जानकी की शोभा का बखान कैसे किया जाय? सरस्वती से यदि उपमा दी जाय, तो वे 'मुखर' हैं, भवानी अर्धनारीश्वर का आधा ही अंग हैं, रति अपने पति कामदेव के विरह में दुःखी है, और लक्ष्मी से? जिनका भाई विष और वारुणी है (समुद्र-मथन में तीनों साथ निकले थे), उन लक्ष्मी से सीता की क्या उपमा? इसीलिए उपरवाली उत्प्रेक्षा सर्वथा दिव्य, अलौकिक है।

सुन्दर वस्त्राभूषणों से सजी सीता जिस समय स्वयंवर की रंगभूमि में पधारती हैं, उस समय की एक चौपाई ध्यान देने योग्य है—

सोह नवल तनु सुन्दर सारी। जगत जननि अतुलित छवि भारी।

'सुन्दर सारी' पहने 'नवल तनु' सुशोभित हो रहा है, परन्तु इस रूप का पान एक 'नायिका' के रूप में नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह अतुलित छविवाली सीता 'जगत जननि' हैं। गोस्वामीजी ने किस उत्कृष्ट व्यञ्जना से शृङ्गार की पवित्रता की रक्षा की है।

जनकपुर की फुलवारी का प्रसंग भी गोस्वामीजी के हाथों कितना पवित्र, कितना हृदयहारी और कितना दिव्य उतरा है। यही दृश्य यदि बिहारी, देव, मतिराम, बोधा या ग्वाल के हाथों में पड़ा होता, तो पता नहीं, वे कहाँ-से-कहाँ ले उड़े होते। अस्तु, अतिशय

शृङ्गार के स्थलों में भी गोस्वामजी ने शील और मर्यादा का निर्वाह अकुण्ठ भाव से किया है। पार्वती से वर माँगते समय भी सीता मुँह खोलकर अपना भाव निवेदित न कर मन-ही-मन कहती हैं—

मोर मनोरथ जानहु नीके। बसहु सदा उरपुर सबहीं के॥
कीन्हेउँ प्रगट न कारन तेहीं। अस कहि चरन गहे बैदेही॥

धनुष-भंग और स्वयंवर का पूरा-का-पूरा दृश्य सीता के अलौकिक पावन चरित्र के आकलन के लिए एक भूमिका तैयार कर देता है। ब्याह के बाद जनकपुर से अयोध्या के लिए बिदा होते समय का दृश्य भी हृदय हिला देनेवाला है—

सुक सारिका जानकी ज्याए। कनक पिंजरन्हि राखि पढ़ाए॥
ब्याकुल कहहिं कहाँ बैदेही। सुनि धीरजु परिहरइ न केही॥
भए बिकल खग मृग एहि भाँती। मनुज दसा कैसें कहि जाती॥
बन्धु समेत जनकु तब आए। प्रेम उमगि लोचन जल छाए॥
सीय बिलोकि धीरता भागी। रहे कहावत परम बिरागी॥
लीन्हि रायँ उर लाइ जानकी। मिटी महामरजाद ग्यान की॥

जहाँ ज्ञानियों के आचार्य जनक के ज्ञान की मर्यादा मिट जाती है और पिंजरे के पखेरू तथा पालतू पशु तक 'सीता, सीता' पुकारकर व्याकुल हो उठते हैं, वहाँ प्रेम की कोई सीमा है? बेटी की विदाई का ऐसा मङ्गलमय—परन्तु कारुणिक—दृश्य भारतीय संस्कृति और भारतीय साहित्य में ही संभव है।

राम-वनगमन के समय राम और सीता का संवाद भी भारतीय आदर्श का प्रतीक है। वह पूरा-का-पूरा प्रसंग मनन करने की वस्तु है। राम ने लाख समझाया, परन्तु सीता न मानीं—न मानीं। यह आग्रह—चाहे दुराग्रह भी कह लीजिए—कितना पवित्र, कितना सात्त्विक, कितना प्रेमिल है। नैहर-ससुराल, गहने-कपड़े, राज्य-परिवार, महल-बाग, दास-दासी, भोग-राग आदि से कुछ मतलब नहीं—किसी भी उपाय से वन में पति के साथ रहकर पति की सेवा करना—इसी को सीता अपना परम धर्म समझती हैं—इसी में उन्हें परम आनन्द की अनुभूति होती है—

प्राननाथ करुनायतन, सुन्दर सुखद सुजान।
तुम्ह बिन रघुकुल कुमुद बिधु, सुरपुर नरक समान॥
मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवारु सुहृद समुदाई॥
सासु ससुर गुर सजन सहाई। सुत सुन्दर सुसील सुखदाई॥
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहुँ ते ताते॥
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति बिहीन सबु सोक समाजू॥
भोग रोग सम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारें। सरद बिमल बिधु बदनु निहारें॥

खगमृग परिजन नगरु बनु, बलकल बिमल दुकूल।
नाथ साथ सुरसदन सम, परनसाल सुखमूल॥

सीता के प्रेम की विजय हुई। श्रीराम ने उन्हें साथ ले चलना स्वीकार किया। जिन्होंने कभी जमीन पर पैर नहीं रखा था, वे आज पति सेवा के लिए कुश और कंटकों से भरे वन-पथ पर नंगे पैर जा रही हैं। सीता का मन राम में है, सीता का जीवन राम के अधीन है, अतएव सीता के लिए राम के साथ वन ही अयोध्या है और श्रीराम के बिना अयोध्या ही वन है।

'कवितावली' में गोस्वामीजी ने सीता की एक बड़ी बाँकी झाँकी दी है। नगर से निकलते ही सीता जैसे बाहर आती हैं, उनका शरीर पसीना-पसीना हो जाता है; राम से पूछती हैं—'अभी वन कितनी दूर है, कितनी दूर अभी चलना है?' सीता के ऐसे सरल कोमल प्रश्न पर राम की आँखें भर आती हैं। सीता को वन जाते समय इसी बात की प्रसन्नता है कि राम की एकान्त सेवा का अधिक-से-अधिक सुयोग मिलेगा—जब चलते-चलते राम थक जायँगे, तब वे अपने आँचल से हवा करेंगी, शीतल जल लाकर देंगी, पैर दबायेंगी। अयोध्या में दास-दासियों से घिरे राम की ऐसी एकान्त सेवा का अवसर कहाँ मिलता?

पति की एकान्त सेवा के लिए सीता, राम के साथ, वन गयीं। परन्तु, उनको इस बात का भी कम परिताप न था कि सासुओं की सेवा से उन्हें अलग होना पड़ रहा है—सीता सास के पैर छूकर सच्चे मन से कहती है—

... ... । सुनिय माय मैं परम अभागी॥
सेवा समय दैअँ बनु दीन्हा। मोर मनोरथु सफल न कीन्हा॥
तजब छोभु जनि छाड़िअ छोहू। करमु कठिन कछु दोसु न मोहू॥

गोस्वामीजी नारी-हृदय के कितने बड़े पारखी थे, इसका पता तब लगता है, जब राम सोने के मृग के पीछे भागते-भागते दूर जा पड़ते हैं और वहाँ मारीच छल से 'हा लक्ष्मण! हा सीता!' कहकर चिल्लाता है। उस समय सीता ने लक्ष्मण को जो कटु वचन कहा, वह कितना मार्मिक, परन्तु साथ ही कितना स्वाभाविक है।

अनसूया के द्वारा किया हुआ पातिव्रत्य-धर्म का उपदेश सीता बड़े आदर से सुनती हैं। अन्त में अनसूया कहती हैं—

सुनु सीता तव नाम, सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं।
तोहि प्रानप्रिय राम, कहिउँ कथा संसार-हित॥

भरत राम को मनाने के लिए चित्रकूट आये हैं। राजा जनक भी राम से मिलने के लिए चित्रकूट पहुँचते हैं। सीता की माता राम की माताओं से—सीता की सासुओं से—मिलती हैं और सीता को लेकर अपने डेरे पर आती हैं। सीता को परम तपस्विनी के वेश में देखकर और नाना प्रकार के कष्ट तथा असुविधाओं को झेलते हुए देखकर सबको

विषाद होता है; पर महाराज जनक को अपनी पुत्री के इस आचरण पर परम सन्तोष होता है और वे कहते हैं—

पुत्रि पवित्र किए कुल दोऊ। सुजस धवल जगु कह सब कोऊ॥

बात करते करते रात अधिक हो जाती है। सीता मन में सोचती हैं कि सासुओं की सेवा छोड़कर इस अवस्था में रात को यहाँ रहना अनुचित है; किन्तु स्वभाव से ही लज्जाशीला सीता सकोचवश मन की बात माँ बाप से कह नहीं सकतीं—

कहति न सीय सकुच मन माहीं। इहाँ बसब रजनीं भल नाहीं॥

माँ अपनी लाड़ली बेटी सीता के मन का भाव ताड़ लेती हैं और सीता के शील-स्वभाव की मन-ही मन सराहना करते हुए उन्हें कौसल्या के डेरे मे भेज देती हैं।

घोर विपत्ति में पड़कर भी सीता कभी धर्म का त्याग नहीं करतीं। लङ्का की अशोक-वाटिका में सीता का धर्मनाश करने के लिए दुष्ट रावण की ओर से कम चेष्टाएँ नहीं हुईं। राक्षसियों ने भय और प्रलोभन दिखलाकर सीता को बहुत तंग किया; परतु सीता तो सीता ही थीं; धर्मत्याग का प्रश्न ही वहाँ नहीं उठता। प्राण जाय, तो जाय, पर धर्म पर आँच नहीं आ सकती—यही भारतीय आर्य ललना का आदर्श रहा है। सीता ने तो छल से भी, अपने बाहरी बरताव में भी, विपत्ति से बचने के हेतु, कभी अपनी श्रद्धा और आस्था पर खरोंच नहीं लगने दिया। अपने धर्म पर अटल रहती हुई सीता दुष्ट रावण का सदा तीव्र और नीतियुक्त शब्दों म तिरस्कार ही करती रहीं। वे रात दिन भगवान् श्रीराम के चरणों के ध्यान में लगी रहती थीं। सीता ने राम को हनुमान् के द्वारा जो सदेश कहलाया, उससे पता लग सकता है कि उनकी कैसी पवित्र स्थिति थी—

नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निजपद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट॥

इतना ही नहीं, जब हनुमान् अशोक-वाटिका में सीता के पास जाते हैं, तब सीता अपने बुद्धि-कौशल से यह पता लगा लेती हैं कि यह कोई मायावी राक्षस नहीं है, जो ऐसा रूप धारण कर आया है, प्रत्युत ये वास्तव में श्रीरामचन्द्र के दूत हैं, शक्ति-सम्पन्न हैं, मेरी खोज में ही यहाँ आये हैं। तब, खुलकर बातें करती हैं। जब पूरा विश्वास हो जाता है, तब पहले स्वामी और देवर का कुशल मङ्गल पूछती हैं, फिर आँसू बहाती, करुणापूर्ण शब्दों मे, कहती हैं—"हनुमान्! रघुनाथजी का चित्त तो बड़ा ही कोमल है। कृपा करना तो उनका स्वभाव ही है, फिर मुझसे ही वे इतनी निष्ठुरता क्यों कर रहे हैं? वे तो स्वभाव से ही सेवक को सुख देनेवाले हैं, फिर मुझे उन्होंने क्यों बिसार दिया है? क्या रघुनाथजी कभी मुझे याद भी करते हैं? हे भाई! कभी उस श्यामसुन्दर के कोमल मुख कमल को देखकर मेरी ये आँखें शीतल होंगी? अहो! नाथ ने मुझको बिलकुल भुला ही दिया!"

इतना कहकर सीता रोने लगीं, उनका गला रुँध गया, वाणी रुक गयी।

बचनु न आव नयन भरे बारी। अहह नाथ हौं निपट बिसारी॥

उस समय हनुमान ने प्रेम का जो संदेश सुनाया है, वह भी विश्व-साहित्य में बेजोड़ है। वे राम के शब्दों को दुहराते हुए कहते हैं—

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥
सो मनु रहत सदा तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥

यह सुनकर सीता गद्गद हो जाती हैं। हनुमान् ने उनसे प्रस्ताव किया कि 'हे देवि! तुम मेरी पीठ पर बैठ जाओ, मैं आकाशमार्ग से तुमको श्रीरामचन्द्र के समीप शीघ्र ही पहुँचा दूँगा।' परन्तु, धन्य है सीता का पातिव्रत्य! वे कहती हैं—'सच है भाई, जो कुछ तुम कह रहे हो, सब सच है; परन्तु मैं स्वेच्छया अपने स्वामी श्रीरामचन्द्र को छोड़कर किसी भी अन्य पुरुष के अंग का स्पर्श करना नहीं चाहती। दुष्ट रावण जिस समय मुझे हरकर ला रहा था, उस समय तो मैं पराधीन थी—परवश विवश थी। अब तो स्वयं श्रीराम यहाँ आवें और राक्षसों-सहित रावण का वध करके मुझे अपने साथ ले जाएँ, तभी उनकी ज्वलन्त कीर्त्ति की शोभा है।'

आश्चर्य-मिश्रित श्रद्धा और भक्ति होती है यह देखकर कि पातिव्रत्य की रक्षा के लिए, इतने घोर विपत्ति-काल में, अपने स्वामी के पास जाने के लिए भी, सीता हनुमान्-सरीखे विश्वसनीय राम-भक्त के अंग का स्पर्श करना नहीं चाहतीं।

सीता की 'अग्निपरीक्षा' की चर्चा गोस्वामीजी ने बहुत भागते हुए-से की है। गोस्वामीजी का हृदय इतना कोमल, इतना भक्तिपरायण था कि वे इस दृश्य को देखना सह नहीं सकते थे।

रावण का वध हो गया। प्रभु श्रीराम की आज्ञा से विभीषण सीता को स्नान करवा कर और वस्त्राभूषण पहनाकर श्रीराम के पास लाते हैं। बहुत दिनों के बाद प्रिय पति श्रीराम के पूर्णिमा के चन्द्रमा-सदृश मुख को देखकर सीता का सारा दुःख विलीन हो गया, उनका मुख निर्मल चन्द्रमा की भाँति चमक उठा। परन्तु, अभी 'अग्निपरीक्षा' बाकी थी।

तेहि कारन करुनानिधि कहे कछुक दुर्बाद।

और फिर—

प्रभु के बचन सीस धरि सीता। बोली मन क्रम बचन पुनीता॥
लछिमन होहु धरम के नेगी। पावक प्रगट करहु तुम बेगी॥

लक्ष्मण ने अग्नि की चिता सजायी और,

पावक प्रबल देखि बैदेही। हृदय हरष नहिं भय कछु तेही॥
जौं मन बच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं॥
तौ कृसानु सबकै गति जाना। मो कहँ होउ श्रीखंड समाना॥

सती-शिरोमणि सीता ने अपने परम प्रिय पति राम का स्मरण करते हुए प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश किया और सचमुच सती की तेजस्विता से अग्निदेव चन्दन-समान शीतल

हो गये। इतना ही नहीं, उन्होंने प्रत्यक्ष रूप में प्रकट हो सीता के हाथ पकड़कर श्रीराम को सौंप दिया—

सो राम वाम-विभाग राजति रुचिर अति सोभा भली।
नव नील नीरज निकट मानहुँ कनकपंकज की कली॥

अग्निदेव ने स्वयं सीता के सतीत्व का साक्ष्य दिया। राम जानते थे कि सीता अनन्यहृदया—सदा मेरे इच्छानुसार चलनेवाली—हैं; जैसे समुद्र अपनी मर्यादा का कभी त्याग नहीं करता, वैसे ही सीता भी अपने तेज से मर्यादा में रहनेवाली हैं; दुष्टात्मा रावण प्रदीप्त अग्नि की ज्वाला के समान इस सीता का स्पर्श नहीं कर सकता था।

परन्तु, फिर राम सोचते हैं कि मैं यदि योंही सीता का ग्रहण कर लेता, तो लोग कहते कि दाशरथि राम मूर्ख और कामी है; कुछ लोग सीता के शील पर भी सन्देह करते, जिससे उनका गौरव घटता; आज इस अग्निपरीक्षा से सीता का और मेरा—दोनों का—मुख उज्ज्वल हो गया।

लोकापवाद के भय से गर्भवती सीता के परित्याग का प्रसंग 'मानस' में आया ही नहीं। वह तो 'उत्तररामचरित' में व्यक्त हुआ है।

सीता ने अपने जीवन में कठोर परीक्षाएँ देकर स्त्री-मात्र के लिए यह मर्यादा स्थापित कर दी कि जो स्त्री आपत्ति-काल में (सीता की भाँति धर्म का पालन करेगी, उसकी कीर्त्ति संसार में प्रकाशित होकर अमर रहेगी। यद्यपि सीता साक्षात् परमात्मा की शक्ति थीं, तथापि उन्होंने मनुष्य-रूप धारण कर लोक-शिक्षा के लिए जो चरित्र प्रदर्शित किया, उसका अनुकरण सभी स्त्रियाँ कर सकती हैं—इस प्रकार, वे अपना, अपने समाज तथा राष्ट्र का जीवन धन्य कर सकती हैं।

सीता का चरित्र-चित्रण अनेक भारतीय कवियों ने किया है; पर गोस्वामीजी के 'मानस' में उसकी कुछ और ही छटा है, उसका रंग ही निराला है। यहाँ कुछ ही मार्मिक स्थलों का दिग्दर्शन-मात्र कराया गया है। 'मानस' के सीता-सम्बन्धी प्रकरणों का एक पृथक् सुसम्पादित संस्करण, खासकर महिलाओं के लिए, प्रकाशित होना चाहिए, जिसे हमारी बहू-बेटियाँ नियमित रूप से पढ़ा करें, तो महिला समाज का असीम उपकार हो सकता है। सीता का अमल-धवल चरित्र भारतीय नारी के लिए सदा ही आदर्श रूप में प्रेरणा और शक्ति प्रदान करता रहेगा।

अदुष्टपतितां भार्यां यौवने यः परित्यजेत्।
सप्तजन्म भवेत्स्त्रीत्वं वैधव्यं च पुनः पुनः॥
—पराशरस्मृति, ४।१५

[जो पुरुष यौवन में अ-दुष्टा तथा अ-पतिता पत्नी का परित्याग करता है, वह सात जन्म तक स्त्री बनता है और प्रत्येक जन्म में उसे वैधव्य-यातना झेलनी पड़ती है।]

बिहार की स्त्रियों के बहुमुखी विकास की समस्याएँ

प्रोफेसर चम्पा वर्मा, एम० ए०; अध्यक्षा, हिन्दी-विभाग,
जयप्रकाश-महिला कॉलेज, छपरा

नारी कभी विकास-पथ पर प्रगतिशीला थी। समाज में उसका पूर्ण समुन्नत रूप दर्शनीय था। आज वह स्थिति नहीं रही।

भारतीय संस्कृति का प्राचीन इतिहास—चाहे वह वैदिक युग का हो अथवा उपनिषद्-काल या पुराण काल का—कहीं भी हमारे सामने नारी की दयनीय दशा का चित्र अंकित नहीं करता। आज हम भले ही यह सोच लें कि नारी समाज का यह विकास, जिसके लिए हमारे भारतीय नेता प्रयत्नशील हैं, सर्वथा एक नयी चीज है, किन्तु दर असल बात तो ऐसी नहीं है। 'विकास' के इस प्रश्न को नयी चीज समझकर ही आज हम इसे 'समस्या' बना रहे हैं। अन्यथा 'नारी का विकास' एवं 'समस्या'—इन दोनों में कोई सम्बन्ध ही नहीं है। भारतीय संस्कृति के प्राचीन इतिहास में भी अपना रूप समुन्नत एवं पूर्ण जाग्रत् रखनेवाली शाश्वत नारी के लिए आज विकास की समस्या कैसी?

किन्तु, समस्या का समाधान भी, समस्या से ही हो सकता है। विकास के क्षेत्र में अवरोध पैदा करनेवाली परिस्थितियाँ ही वस्तुतः वे समस्याएँ हैं, जिन्हें हम आमूल नष्ट कर देना चाहते हैं। शिक्षा का मूल उद्देश्य नहीं समझ सकने के कारण ही आज हमारा जन-समाज 'विकास' का आन्तरिक महत्त्व और उसका अर्थ नहीं समझ पा रहा है। बहुधा 'विकास' का अर्थ वह नारी को पूर्ण स्वतन्त्र करना समझता है—उसे छूट देना समझता है। साथ-साथ यह भी समझता है कि पुरुष की कठोर शासन व्यवस्था से मुक्त होकर नारी परिवार से विमुख हो जायगी—पथभ्रष्ट हो जायगी और प्रतिष्ठा का विषम प्रश्न आ उपस्थित होगा। जन समाज की ऐसी चिन्तन शक्ति आज सचमुच अपनी मौलिकता से बहुत दूर है। आज उसमें वह प्राचीनता भी नहीं रही, जो आर्य मनीषियों के चिन्तन में निहित थी।

आज भारत के हर प्रान्त में, विशेष रूप से बिहार में, नारी के विकास क्षेत्र में सबसे प्रमुख समस्या 'शिक्षा' की आ उपस्थित होती है—शिक्षा केवल नारी समाज की ही नहीं, वरन् पूर्ण जन-समाज की। अन्य जितनी भी समस्याएँ नारी के बहुमुखी विकास के क्षेत्र में उपस्थित होती हैं, वे शिक्षा के अभाव के कारण ही हैं। जबतक हम शिक्षा के मूल उद्देश्य को नहीं समझेंगे, तबतक स्त्रियों के बहुमुखी विकास के प्रश्न पर चिन्तन करना ही व्यर्थ है।

भारत के अतीत का इतिहास जिस शिक्षा-पद्धति को हमारे सामने उपस्थित करता है, वह शील की शिक्षा है। धर्म-दर्शन का आदर्श उपस्थित करनेवाली वह शिक्षा हमारे नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिए है। ऐसी शिक्षा का सम्बन्ध हमारे संस्कारों से है, जिसके अन्तर्गत हमारा नैसर्गिक विकास कभी रुक ही नहीं सकता। अतीत में ऐसी शिक्षा केवल पुरुषों के लिए ही नहीं थी, वरन् स्त्री-जाति भी इससे सदा लाभान्वित होती रही। स्त्री एवं पुरुष का कार्य-क्षेत्र तो उन दिनों भी बँटा था। पुरुष कठोर परिश्रम से धन अर्जित कर लाता एवं स्त्रियाँ गृह-क्षेत्र में इस अर्जित सम्पत्ति की उचित व्यवस्था करतीं। वस्तुतः, शासन-व्यवस्था नारी के हाथ में ही थी। वह कुशल शासिका थी, जिसकी आदर्श व्यवस्थाओं को देखकर घर में प्रवेश करते ही पुरुष का मन चिन्ता-मुक्त हो उठता था। अपनी जीवन-संगिनी के मुख पर खेलती हुई मुस्कान की एक ही रेखा देखकर वह दिन-भर के कठोर परिश्रम को अनायास ही भूल जाता था।

उस अतीत युग में नारी एवं पुरुष दोनों ही शिक्षित थे। परिवार भी सुखी और सम्पन्न था। गृह-क्षेत्र की कुशल शासिका, अवसर उपस्थित होते ही, अपने जीवन-संगी को हर प्रकार से सहयोग पहुँचाती—घर से लेकर युद्ध के मैदान तक उनका साथ देती। अतः, गृह-उद्यान में खिलनेवाली कोमल कलिका रण-क्षेत्र में रणचंडी का भी रूप धारण करती थी।

पुरुष एवं स्त्री का यह समन्वय केवल सुशिक्षा की नींव पर ही अवलम्बित था। आज का जन-समाज अतीत के उस समन्वय के पीछे छिपे हुए अटूट अनुराग-सूत्र का अनुमान नहीं करता है, वरन् उसे 'पुरुष की कठोर शासन-व्यवस्था' जैसे शब्दों से अभिभूत करता है। यही कारण है कि आजतक हमारा यह भ्रम बना ही रहा कि नारी सदियों से पराधीनता की शृंखलाओं में जकड़ी हुई एक पुतली मात्र है, जो गृह-व्यवस्थाओं को सँभालती हुई पुरुष की वासनाओं की तृप्ति करनेवाली है। नारी के उस गौरवपूर्ण एवं महिमामय रूप को हम भूल जाते हैं, जो अतीत में कुशल गृहिणी, कुशल जननी एवं आदर्श पत्नी के रूप में रहती चली आयी है। घर की चहारदीवारियों के भीतर की वह असूर्यम्पश्या नहीं थी, वह सदा स्वतंत्र थी, किसी के द्वारा शासित भी नहीं थी, वरन् स्वयं शासिका थी। अपने क्षेत्र में अपने को कुशल प्रमाणित करना यदि पराधीन होना—शासित होना अथवा वासनाओं की तृप्ति का साधन मात्र समझा जाय, किंबहुना वह यदि सजाने के निमित्त कचकड़े की गुड़िया मात्र समझी जाय, तो इसमें दोष हमारी शिक्षा-पद्धति का है—हमारी समझ का है—'पतन की ओर उन्मुख होनेवाली हमारी नूतन संस्कृति' का है।

आज बिहार की पिछड़ी हुई शिक्षा-प्रणाली की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट होना नितान्त आवश्यक है। अन्य प्रान्तों की अपेक्षा बिहार, शिक्षा के क्षेत्र में आज किंचित् उन्नति करके भी, अभी बहुत पीछे है। पहले ही संकेत किया जा चुका है कि शिक्षा का

सम्बन्ध हमारे संस्कारों से है। शिक्षा ही वह माध्यम है, जो हमारे भीतर सोये हुए संस्कारों को जगा कर हमें पूर्ण मानव या मानवी बनाता है। बिहार-राज्य के अन्तर्गत आज भी नारी शिक्षा के लिए न तो समुचित व्यवस्था ही है और न समुचित वातावरण ही। इसके लिए हमारी सरकार एवं हमारा जन-समाज दोनों ही उत्तरदायी हैं। स्त्रियों का एक छोटा-सा समुदाय जो शिक्षित नजर आता है, वह बिहार-राज्य की नारियों का एक न्यूनतम अंश है। नगरों में ही जब स्त्रियों की आधी से अधिक संख्या अशिक्षिता ही रह जाती है, तब फिर गाँवों का क्या पूछना! गाँवों में स्त्रियों की जो दयनीय दशा है, उसका सजीव चित्र हमारी आँखों के सामने है। यह कोई काल्पनिक चित्र नहीं, वरन् आत्मानुभूत है। अशिक्षा का भयंकर प्रकोप यदि हमारी सरकार को—हमारी सुशिक्षिता बहनों को देखना है, तो वे नगर की सीमा से दूर गाँवों में जाकर उसका नग्न नृत्य देखें। 'गाँवों का नव-निर्माण हो'—यह नारा तो बुलन्द हो रहा है, किन्तु केवल लड़कों के लिए यत्र तत्र एक-दो स्कूल खोल दिये गये हैं, लड़कियों की शिक्षा के लिए तो आज भी अधिकांश गाँवों में विद्यालयों की कमी है। ये ही बालिकाएँ, जो किसी दिन पत्नी होकर राष्ट्र के भावी कर्णधारों को जन्म देंगी, आज अशिक्षा और अज्ञान से पूर्ण विषैले वातावरण में घुटकर अन्धकारमय जीवन बिता रही हैं।

बाल विवाह-जैसी कुप्रथा आज भी अनेक गाँवों में प्रचलित होकर नारी के विकास-मार्ग में बाधक हो रही है। तिलक-दहेज की प्रथा के क्रूर थपेड़ों से पीड़ित होकर अधिकांश माता-पिता कम उम्र की बालिकाओं का बेमेल विवाह कर देते हैं। निर्मम काल के प्रभाव से ऐसी भोली भाली बालिकाएँ जब सुहाग की चूड़ियों से वञ्चित हो जाती हैं, तब उनकी दशा हमारे समाज में और भी दयनीय हो जाती है। कुछ सुशिक्षित परिवारों को देखकर हम समझते हैं कि अब हमारे समाज से बाल विवाह एवं बेमेल विवाह की प्रथा टल गयी—यत्र तत्र विधवा-विवाह भी अब हो रहे हैं। लेकिन, वास्तविक स्थिति का अन्दाज लगाने के लिए हमें बिहार राज्य के ग्रामों की ओर देखना है, जहाँ आज भी तेरह-चौदह साल की बालिकाओं का विवाह तीस चालीस वर्ष के प्रौढ़ व्यक्तियों से हो रहा है। ऐसी भाग्यहीना बालिकाओं को न तो समुचित शिक्षा ही मिल पाती है और न उनका वैवाहिक जीवन ही सुखी होता है। इन कुप्रथाओं की उपस्थिति में 'नारी के विकास' का स्वप्न देखना कठिन ही नहीं, असंभव है।

सरकार के द्वारा तिलक दहेज रोकने के कानून तो अवश्य बनाये जाते हैं, किन्तु उन कानूनों का कहाँतक पालन हो रहा है, इसका लेखा जोखा हमारी सरकार के पास नहीं रहता। तिलक-प्रथा रोकने का कानून तो पास कर दिया गया, किन्तु आज भी प्रगति के पथ पर सरपट चाल से बढ़ती हुई यह क्रूर प्रथा क्या हमारी सरकार की आँखों से छिपी है? फिर क्यों नहीं इन घोर अत्याचारों को देखकर हमारी सरकार तरस खाती? आज इन कुप्रथाओं को दूर करने के लिए और भी अधिक कठोर नियमों की अपेक्षा है।

बालिकाओं को ऊँची शिक्षा देने में अधिकांश माता-पिता यह भी सोचते हैं कि लड़की को पढ़ा-लिखाकर भी जब विवाह के समय इतनी बड़ी रकम देनी ही है, तो फिर पढ़ाने-लिखाने से लाभ ही क्या है।

यह निश्चित बात है कि बिना उपयुक्त शिक्षा के हमारे नारी-समाज का बहुमुखी विकास हो ही नहीं सकता। जबतक ये सारी कुप्रथाएँ दूर नहीं होंगी, तबतक शिक्षा का मार्ग नारियों के लिए समान भाव से प्रशस्त नहीं होगा। सच पूछा जाय, तो नारी-शिक्षा के लिए न तो हमारी सरकार ही पूर्ण रूप से प्रयत्नशील है और न हमारा समाज ही।

पढ़ी-लिखी कुछ महिलाओं ने यदा-कदा अपनी शिक्षा के विकृत रूप का भी प्रदर्शन किया है, जिससे हमारा समाज भयभीत होकर नारी शिक्षा में अवरोध पैदा कर देने में ही भला समझता है। किन्तु, जैसा मैंने बार-बार संकेत किया है कि सच्ची शिक्षा हमारे सोये हुए संस्कारों को जगानेवाली होती है और वह सदा हमें सुपथ से ही लगाती है; आज हमारे बीच ऐसी ही शिक्षा की कमी है, जिसके कारण कभी तो पुरुष भ्रमवश नारी को सदियों से पराधीनता की बेड़ी में जकड़ी हुई पाता है—उसपर विभिन्न प्रकार के अत्याचार करता है और अपने को कुशल पति तथा सुदृढ शासक समझकर फूला नहीं समाता है। उधर कभी शिक्षिता नारी भी द्रोह एवं प्रतिहिंसा की ज्वाला में जलकर—समस्त पारिवारिक जीवन की सुविधाओं को छिन्न-भिन्न करती हुई—विद्रोहिणी का रूप धारण कर बैठती है। वह भी भ्रमवश सोचती है कि दासता का युग तो बहुत पीछे छूट गया, आज पढ़-लिखकर वह अपने पैरों पर खड़ी एक स्वावलम्बिनी मानवी है, जो अब पुरुष की मुखापेक्षी नहीं।

नारी एव पुरुष का यह सफल समन्वय कहाँ हुआ? सृष्टि में योगदान करनेवाले यदि ये दोनों स्तम्भ आपस में ही टकराकर टूट जायँगे, तो फिर देश की स्थिति क्या होगी? सर्वप्रथम तो सृष्टि का क्रम ही रुक जायगा—समाज में नूतन सृष्टि के द्वारा वर्णसंकरों की कमी नहीं रहेगी और 'विकास' की समस्या सदैव अन्धकार में ही चक्कर काटती रह जायगी।

ऐसे दुर्विचारों को दूर करने के लिए एक एक पुरुष एव एक-एक स्त्री को शिक्षित होना है। शिक्षा का यह महायज्ञ जबतक गाँवों से नहीं प्रारम्भ होता, तबतक समस्या ज्यों-की-त्यों बनी ही रहेगी। इसके लिए हमारी सरकार तो प्रयत्नशील बने ही, साथ-ही-साथ हमारी पढ़ी-लिखी बहनों का भी यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे गाँवों में जाकर इस पिछड़ी स्थिति का अध्ययन करें। बहुधा हमारी शिक्षा-प्राप्त बहनें उस अशिक्षित नारी-वर्ग से घृणा करती हैं—ग्रामीण नारियों से मिलने जुलने में अपनी मान-हानि समझती हैं। किन्तु, इससे हमारे नारी-समाज की ही सबसे बड़ी हानि होती है। शिक्षा के क्षेत्र में यह विषमता ही आज पार्थक्य (अलगाव) की रेखा खींच रही है, अन्यथा हमारी शिक्षिता बहनें ऐसा कभी न सोचतीं कि अपढ नारियों से मिलने में अपनी हेठी है। अतः, आज आगे बढ़कर उन अशिक्षिता नारियों को गले लगाना है—उनकी अशिक्षा दूर करने के लिए प्रयत्नशील बनना है—शिक्षिता एवं अशिक्षिता नारी के बीच जो संकोच का एक बन्धन है, उसे खण्ड-

स्पष्ट कर देता है। बिना ऐसा किये विकास के पथ पर कदम रखना सचमुच बड़ा कठिन है। हाँ, गाँवों में सरकार की ओर से विद्यालयों की समुचित व्यवस्था भी होनी चाहिए।

आज हमारे यहाँ नारी एवं पुरुष के बीच जो पार्थक्य की इतनी लम्बी-चौड़ी खाई खुद गयी है, उसके पीछे एक और बहुत बड़ा कारण है, जो नारी के विकास-पथ का बाधक बन रहा है। वह है बाल्यावस्था से ही नारी के मस्तिष्क में दुराव की भावनाओं को उत्पन्न करना—नर नारी दोनों में अन्तर की रेखा आरम्भ से ही खींच देना। बाल्यावस्था में बालक-बालिकाओं की शिक्षा की व्यवस्था एक साथ कर देने से ऐसी प्रवृत्तियों का जन्म ही नहीं होगा। साथ ही साथ, प्रारम्भिक शिक्षा का भार यदि नारी को ही सौंप दिया जाय, तो वह पुरुष-शिक्षक की अपेक्षा अपने को अधिक सफल सिद्ध करेगी। बाल्यकाल से ही बच्चों में, चाहे लड़का हो या लड़की, यह प्रवृत्ति भरनी चाहिए कि वे दोनों ही राष्ट्र एवं समाज के कर्णधार हैं—एक पहिये से जैसे गाड़ी नहीं चल सकती, वैसे ही किसी एक वर्ग (बालक या बालिका) की उन्नति से हमारा राष्ट्र उन्नतिशील नहीं हो सकता। चाहे नगर हो या गाँव, इस आधार पर यदि हम शिक्षा की व्यवस्था प्रारम्भ करेंगे, तो नारी एवं पुरुष के बीच कभी विद्रोह की चिनगारी नहीं फूटेगी, वरन् पुन समन्वय की आधार-शिला पर निर्मित हमारे नूतन परिवार अतीत के परिवारों की तरह मुस्करायेंगे। पुरुष की तरह ही जब नारी का भी बहुमुखी विकास होगा, तभी एक जनतन्त्र राज्य उन्नति के शिखर पर चढ सकता है, अन्यथा उसका स्वप्न ही देखना हमारी भूल है।

भारत सरकार आज स्त्रियों के बहुमुखी विकास के लिए सर्वथा प्रयत्नशील है। उनकी प्रगति के लिए आज उन्हें वे सभी सुविधाएँ दी जा रही हैं, जो पुरुषों को प्राप्य हैं। भारत के कई प्रान्तों में आज नारियाँ भी ऊँचे-ऊँचे पदों को सुशोभित कर रही हैं। उन प्रान्तों की प्रगति की दौड़ में हमें बिहार राज्य को भी अग्रसर करना है। मुगल-कालीन भारत में जिस पर्दा-प्रथा का सूत्रपात हुआ था, वह अन्य प्रान्तों से तो धीरे-धीरे विदा ले रही है, किन्तु बिहार में अब भी उसका भीषण प्रकोप बना हुआ है। पर्दा-प्रथा के इतिहास का, अतीत भारत की संस्कृति से कोई सम्बन्ध नहीं है, जो हम उससे चिपके पड़े रहें। वह तो समय की गति के साथ आयी हुई एक कुरीति है, जिसका अन्त करके आगे बढना ही है वास्तविक पर्दा या लज्जा का आवरण तो नारी का शील है, जो सदा उसे विनम्र बनाये रखने में समर्थ हो सकता है।

प्राचीन भारत एवं आज के भारत में आर्थिक दृष्टिकोण से अन्तर अवश्य आ गया है। यही कारण है कि अतीत भारत की सुशिक्षिता नारी जहाँ घर के भीतर ही व्यवस्था रखती थी, वहाँ आज की सुशिक्षिता नारी, पुरुषों की तरह, गृह क्षेत्र के बाहर भी निकलकर योग्यतानुसार परिश्रम करके अर्थ अर्जित करती है। यह प्रथा दोष पूर्ण नहीं कही जा सकती। अवसर पड़ने पर जब वीर क्षत्राणियों ने पुरुषों की तरह अस्त्र शस्त्र धारण किया,

तब इस आर्थिक विषमता के युग में—जब रोजी रोटी का संघर्ष चल रहा है—घर से बाहर निकलकर नारी के धन अर्जित करने में कोई त्रुटि कहाँ है? आवश्यकता है केवल अतीत के उस 'समन्वय' को बनाये रखने की।

शिक्षा प्राप्त करने पर भी आज बिहार की अनेक स्त्रियाँ परिस्थिति-वश गृह क्षेत्र से बाहर नहीं निकल सकतीं। प्रात काल से सध्या-पर्यन्त वे गृह कार्यो के भार से दबी ही रह जाती हैं। पढ़ी-लिखी होने पर भी उनकी योग्यता का विकास घर तक ही सीमित रह जाता है। कुशल गृहिणी एव कुशल माता का कर्त्तव्य निर्वाह करके वे चुप बैठ जाती हैं—देश या समाज के कार्यों में योग देने म वे सर्वथा असमर्थ रह जाती हैं। इसका सबसे बडा कारण यह है कि आज भी हम पुरानी रूढियों से चिपके हुए हैं।

इस वैज्ञानिक युग मे जहाँ हमारे विशाल राष्ट्र के सभी प्रान्त आगे बढने में एक-दूसरे से बाजी लगा रहे हैं, वहाँ बिहार आज भी चुपचाप सोया हुआ है। यहाँ तो ऐसी समस्या है कि पत्नी यदि बीमार पड जाय अथवा दाई नौकर काम से छुट्टी ले बैठें, तो घर में भोजन की कठिन समस्या उपस्थित हो जायगी। बम्बई, दिल्ली आदि बडे नगरों मे गृह-व्यवस्था इतनी सुन्दर है कि तमाम दिन उसम स्त्रियों को सिर नहीं खपाना पडता। उनके छोटे बच्चों के लिए विद्यालयों की भी समुचित व्यवस्था है, जहाँ अत्यन्त छोटे बच्चे को भी रखकर माताएँ चिन्तामुक्त हो अपने काम पर चली जाती हैं। ये सारी सुविधाएँ आज बिहार राज्य के नगरों में प्राप्य नहीं हैं। अत, हमारे यहाँ की नारियों की योग्यता आज घर आँगन के दायरे में ही सड़ जाती है। सरकार की ओर से अनेक सुविधाओं के प्राप्त रहने पर भी आज हम नारियाँ उनका उपभोग करने मे असमर्थ हैं।

नारी एव पुरुष के बीच भी पारस्परिक सहानुभूति की भावना नितान्त अपेक्षित है। अध विश्वासों से चिपका हुआ पुरुष नारी को घर परिवार के बाहर कदम नहीं रखने देता। ऐसी ही परिस्थिति में यदि नारी शिक्षिता है—यदि उसे अपने अधिकारों का ज्ञान है, तो विद्रोह की आग अवश्य फूट पडती है। नारी अपना विकास चाहे, और पुरुष उसके मार्ग में अवरोध पैदा करे, तो समस्या निस्सन्देह जटिल होगी। अत, आज के पुरुष को यह समझना है कि नारी का विकास उसका अपना ही विकास है—उसके समाज एवं राष्ट्र का विकास है। हमारे समाज का एक-एक पुरुष जब एक एक नारी के विकास के लिए प्रयत्नशील होगा, तभी हम नारी समाज को हर दृष्टिकोण से विकास की ओर उन्मुख कर सकते हैं और तभी नारियों का बहुमुखी विकास भी सम्भव होगा।

'विकास' हम कभी पतन की ओर नहीं प्रेरित करता—किंतु वह विकास जब समुचित विकास हो तब। अपने मिले हुए अधिकारों का नारी सदुपयोग करे, यह उसके विकास का पहला कदम होगा। विकास के इस कठिन मार्ग पर बढने-बढाने के लिए नारी एवं पुरुष को पारस्परिक अनुराग तथा सहानुभूति का बन्धन दृढ से दृढतर बनाना होगा। शिक्षा के मूल उद्देश्य को समझते हुए नारी जब विकास पथ पर अपना पहला कदम उत्साह

में साथ बढ़ा देगी, तब वह आगे बढ़ती ही जायगी—उसका बहुमुखी विकास होगा ही, और वही एक दिन गुप्तजी की 'यशोधरा' तथा प्रसादजी की 'ध्रुवस्वामिनी' का रूप धारण करेगी। आज यही घर के कठोर प्राचीरों के भीतर नारी को बन्द करके उसके साथ जो अन्याय हो रहा है, वही उसे 'यशोधरा' बनने से—मनु की 'श्रद्धा' बनने से रोक रहा है। नारी तो वस्तुतः हृदय की श्रद्धा है—यह कोमल अनुभूति है, जिसके लिए महाकवि 'प्रसाद' ने भी कहा है—

तुमुल कोलाहल-कलह में
तुम हृदय की बात रे मन !

"पुरुष की भौतिकवादी बुद्धि जब चंचल हो उठती है, तब उसके जीवन में एक भयङ्कर संघर्ष उपस्थित हो जाता है—वह चैन की साँस नहीं ले सकता। हारी हुई बुद्धि एक दिन शान्ति-पूर्ण निद्रा के लिए बेचैन हो उठती है—उस समय केवल नारी ही उसके जीवन में मृदुता, प्रेम एवं करुणा का सृजन करती है—पुरुष को सच्चे आनन्द की सीमा तक पहुँचाती है।"—'कामायनी' में प्रसादजी का यह अन्यतम सन्देश है।

सुशिक्षा प्राप्त नारी का जीवन आत्मसंयम, आदर्श-पालन एवं त्याग का जीवन है—जिसकी प्रतिमूर्ति राष्ट्रकवि गुप्तजी की 'यशोधरा' के रूप में हमारे सामने खड़ी है—जिसके लिए गौतम बुद्ध को भी कहना ही पड़ा—

दीन न हो गोपे।
दीन नहीं नारी कभी।

किन्तु, नारी के उस आदर्श का सूत्रपात आज हम उसी स्थिति में कर सकते हैं, जब उसके समुचित विकास की सुव्यवस्था हो—उसके मार्ग में अवरोध पैदा करनेवाली मनोवृत्ति और समस्याओं का मूलोच्छेद हो। जबतक समाज की विचार-धारा एवं शिक्षा पद्धति में परिवर्त्तन नहीं होता, तबतक नारी के बहुमुखी विकास की समस्या सदा विषम समस्या ही बनी रहेगी एवं सीता, सावित्री, उर्मिला तथा यशोधरा-जैसी जाग्रत् नारियों की कल्पना भी निरर्थक ही सिद्ध होगी।

●●

दह्यमाना मनोदुःखैर्व्याधिभिश्चातुरा नराः।
ह्लादन्ते स्वेषु दारेषु घर्मार्त्ताः सलिलेष्विव॥
सुसंरब्धोऽपि रामाणां न कुर्यादप्रियं नरः।
रतिं प्रीतिं च धर्मं च तास्वायत्तमवेक्ष्य हि॥

—महाभारत, १।७४

[अर्थात्, मानसिक दुःखों से दग्ध तथा शारीरिक व्याधियों से आतुर पुरुष अपनी पत्नियों (की सेवा) से उसी प्रकार प्रसन्न होते हैं, जिस प्रकार घाम से पीड़ित व्यक्ति शीतल जल से प्रसन्नता प्राप्त करते हैं। (इसलिए,) अत्यन्त क्रुद्ध होने पर भी पति को पत्नी का अप्रिय कभी नहीं करना चाहिए क्योंकि, रति, प्रीति और धर्म पत्नियों के ही हाथ में है। बिना पत्नी के पुरुषों के लिए ये तीनों सुदुष्प्राप्य हैं।]

चर्खा चलानेवाली बिहारी महिलाओं के सेवा-कार्य

श्रीध्वजाप्रसाद साहु, अध्यक्ष, बिहार-खादी-ग्रामोद्योग बोर्ड, पटना

चर्खे का इतिहास ग्रामीण स्त्रियों के जीवन के साथ जुड़ा हुआ है। मिलों के आगमन के पहले मनुष्य की आवश्यकता के कपड़े चर्खे और करघे पर ही बनाये जाते थे। चर्खा प्राय: स्त्रियाँ ही चलाती थीं। इस जमाने में भी जब पूज्य बापू ने चर्खे के पुनरुद्धार की बातें सोचीं, तब स्त्रियों ने ही आगे आकर इस काम को पुन उठाया। सन् १९२० ई० में भारत की स्वतन्त्रता की लड़ाई की बागडोर पूज्य महात्मा गांधीजी के हाथों में आयी। लड़ाई के अस्त्र-शस्त्र जो आजतक चले आते थ, उन्हें पूज्य बापू ने निकम्मा साबित किया और ससार को सत्याग्रह का अमोघ अस्त्र दिया। सत्य और अहिंसा जिसका विरद था और चर्खा उसका मूर्त्त स्वरूप। यह नया अस्त्र हजारों स्त्रियों को अहिंसात्मक युद्ध के मैदान में खींच लाया और लाखों स्त्रियों ने अपने घरों में चर्खा चलाकर सारे भारत में अहिंसात्मक युद्ध का वातावरण निर्माण किया। आजाद भारत मे वे स्त्रियाँ लाखों की सख्या में ग्राम निर्माण की बुनियाद डालने में समर्थ हो सकें, इसे सभव बनाने का काम खादी सस्थाओं का है। केवल बिहार खादी ग्रामोद्योग सघ में करीब दो लाख सूत कातनेवाली स्त्रियाँ काम करती हैं। इनके अलावा दूसरी दूसरी खादी सस्थाओं मे चर्खा चलाकर जीविकोपार्जन करनेवाली हजारों स्त्रियाँ हैं। उनकी शक्ति का समुचित ढग से सयोजन किया जाय, तो बिहार का जन जीवन समृद्ध बनेगा।

खादी के काम करते हुए हजारों सूत कातनेवाली बहनों से मेरा सम्पर्क हुआ। यद्यपि उनमे से अधिकांश पढ़ी लिखी नही होती हैं, फिर भी वे संस्कार रहित हैं—ऐसा नहीं कहा जा सकता। ऐसे तो ग्रामीण स्त्रियों के बारे में एक आम धारणा सी बन गयी है कि वे लड़ाई झगड़ा पसद करती हैं और छोटी छोटी बातों के लिए भी आपस में उलझ पड़ती हैं। वे भी मनुष्य हैं, प्रयास करने से उनके बहुत से दुर्गुण मिटाये जा सकते हैं—ऐसा विश्वास बहुत से लोगों का नहीं है। लेकिन मेरा अनुभव यह बताता है कि उनमे सहृदयता है और यदि धीरज के साथ प्रेम पूर्वक उनके साथ व्यवहार किया जाय, तो वे मानवता की ऊचाई पर चढ़ सकती हैं और अच्छा से अच्छा काम कर सकती हैं। यह समझना कि वे लकीर की फकीर होती हैं और वे किसी प्रगतिशील विचार का ग्रहण नहीं कर सकतीं—इसमें भी अज्ञानता है। कत्तिन बहनों के सम्पर्क म आने के बाद मैंने स्वय देखा कि जिस काम को करने म प्रगतिशील कहलानेवाले मनुष्य सलाह देने की भी हिम्मत नही कर सकते, उसके बारे में धड़ल्ले से सलाह देने के लिए एक विधवा बूढ़ी ब्राह्मणी आगे बढ़ी।

एक गाँव की बात है । वहाँ एक युवती ब्राह्मणी विधवा हो गयी थी । वह विवाह करना चाहती थी । पर समाज की निन्दा के डर से वह मुँह नहीं खोल सकती थी । खादी के एक प्रमुख कार्यकर्त्ता से, जिसने उसका विश्वास प्राप्त किया था, उस बहन ने अपने हृदय की बात कही । इसकी चर्चा दूसरी सूत कातनेवाली बहनों से की, जो अच्छे व्यवहार के कारण बहुत नजदीक आ चुकी थीं—उन्होंने राय माँगी । एक बूढ़ी विधवा महिला ने, जिसका जिक्र ऊपर किया जा चुका है, राय दी कि वैधव्य का जीवन बहुत कठिन होता है, इसलिए यदि विवाह करने की इच्छा उस विधवा युवती की है, तो विवाह करा देना पुण्य का ही काम होगा । साल-भर प्रतीक्षा करने के बाद जब उसने फिर अपनी विवाह करने की इच्छा प्रकट की, तब उसके विवाह करा दिया गया और उस बूढ़ी विधवा का आशीर्वाद भी उसे प्राप्त हुआ ।

दूसरा उदाहरण एक और ब्राह्मणी विधवा बहन का ही है । उसने चर्खा कातकर कुछ रुपये जमा किये । वह समझ नहीं पाती थी कि उस रुपये को किस प्रकार खर्च किया जाय । एक दिन उसने खादी-भंडार में आकर कहा कि जो रुपये उसके पास जमा हैं, उससे किसी पंडित के द्वारा वह भागवत की कथा सुनना चाहती है । उससे कहा गया कि भागवत की कथा तो 'भंडार' के कार्यकर्त्ता मुफ्त सुना देंगे । पैसे किस प्रकार खर्च किये जायँ—इसकी चिन्ता में वह पड़ गयी । उससे कहा गया कि उस पैसे से कुआँ खुदवा दे । कुएँ के लायक उसके पास पैसे नहीं थे । जब उससे कहा गया कि कुआँ खुदवाने में जितने रुपये घटेंगे, उनकी पूर्त्ति खादी-भंडार से कर दी जायगी, तब उसने झट उत्तर दिया कि साझे का धर्म वह नहीं करना चाहती । उसने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया । फिर, जब उससे कहा गया कि रुपये कर्ज में मिलेंगे और सूत कातकर उस कर्ज को अदा कर देना होगा, तब उसने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया और हरिजनों के टोले में कुआँ खुदवा दिया ।

उपर्युक्त दो उदाहरणों से ही अपढ़ स्त्रियों की प्रगतिशीलता का पता चलता है । लेकिन, ऐसे भी उदाहरण हैं, जिसमें अनपढ़ होते हुए भी सार्वजनिक कामों में उन बहनों ने अनेक बार अवसर प्राप्त होने पर अपनी बहादुरी और कार्यकुशलता का परिचय दिया है । सन् १९४२ ई० के 'करो या मरो'-आन्दोलन में बहनों ने जिस वीरता का परिचय दिया, वह खादी के इतिहास में अमिट रहेगा । कश्मीर में जब पाकिस्तान का हमला हुआ और कई जगहों पर लूट-मार और खून-खराबा हुआ, तब इन्हीं अपढ़ बहनों में से एक बहन वहाँ अकेली गयी । जम्मू-राज्य के अन्दर 'रजौरी' में उसने जिस निर्भीकता से सेवा की, वह बराबर स्मरणीय रहेगी । इस प्रकार, सेवा के क्षेत्र में कत्तिन बहनों का जो स्थान रहा है, वह नगण्य नहीं कहा जा सकता ।

●●

दक्षिणभारतीय रामायणों की सीता

श्रीअनूपलाल मण्डल; प्रकाशनाधिकारी, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना

सांस्कृतिक एकता के लिए सुदूर अतीतकाल से रामायण और महाभारत का भारत में विशिष्ट स्थान रहा है। रामायण द्वारा वर्णित मर्यादापुरुषोत्तम राम के और महाभारत में अंकित योगिराज कृष्ण के उदात्त चरित्र भारतीय जन-जीवन को सदा से आलोकित और प्रभावित करते रहे हैं। संस्कृत-काव्यों की बात क्या, भारत की विभिन्न भाषाओं में भी राम और कृष्ण की पावन कथाएँ, विभिन्न रूपों में, वर्णित हुई हैं। उत्तर भारत में जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस द्वारा रामकथा को घर घर फैलाने का यश प्राप्त किया, उसी प्रकार दक्षिण भारत के धर्मप्राण महाकवियों ने भी अपनी-अपनी भाषा में, काव्य की छटा के साथ, राम के विमल चरित्र का गुणगान किया है। दक्षिण भारत की चार भाषाओं—तमिल, तेलुगु, मलयलम और कन्नड—में रामायण पायी जाती है। किन्तु यहाँ, इस निबंध में, दो रामायणों[1]—तमिल की कंब रामायण और तेलुगु की रंगनाथ-रामायण—में चित्रित सीता के चरित्र की थोड़ी-सी झाँकी दिखाना ही इस पूर्व पीठिका का उद्देश्य है।

उक्त दोनों दक्षिणी रामायणों का आधार मुख्यतः आदिकवि वाल्मीकि की रामायण ही है। तमिल-रामायण के प्रणेता महाकवि कंबर ने ग्रंथ के प्रारंभ में कहा है—'सप्तताल को एक साथ भेदनेवाले (श्रीराम) की महान् गाथा को मधुर काव्य के रूप में कहनेवाले (वाल्मीकि) की वाणी जिस देश में सुस्थिर हो चुकी है, वहीं मैं भी अपने (अर्थगांभीर्य-हीन) दुर्बल शब्दों में दूसरा काव्य रचना चाहता हूँ। इसका प्रयोजन यही है कि अलौकिक प्रतिभा से सम्पन्न (वाल्मीकि) के दिव्य काव्य का महत्त्व और भी अधिक प्रकट हो।' और, वही महाकवि अपनी विनम्रता प्रदर्शित करते हुए आगे कहता है—'जिन (सहृदय व्यक्तियों) के कान विविध प्रकार की रसमयी कविता सुनने के आदी हो चुके हैं, उन्हें मेरी कविता *उसी प्रकार (कर्कश) लगेगी, जिस प्रकार 'याल्' (वीणा) से मधुर स्वर सुनते हुए मुग्ध हो* खड़े रहनेवाले 'असुणम्' (हिरन) के कानों में पटह (चमड़े की ढोल) की ध्वनि लगे।' उसी प्रकार, किंतु कुछ भिन्न तरीके से, तेलुगु की रंगनाथ-रामायण के विद्वान् कवि राजा गोनबुद्ध ने भी कहा है—'श्रीरामचन्द्र का चरित्र इस ढंग से लिखूँगा कि राजा, पण्डित, रसिक, सुकविश्रेष्ठ गोष्ठियों में (उसे सुनकर) हर्षित होकर उसकी प्रशंसा करेंगे और जिसमें शब्द, *अर्थ, भाव, गति, यति, अर्थ-गौरव, रस, कल्पना, प्रास आदि होंगे और आदिकवि की*

---

१. इन दोनों रामायणों का सुबोध हिन्दी अनुवाद बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् (पटना) से प्रकाशित है।—ले०

कृपा से सभी सज्जन मेरी प्रशंसा करेंगे।' यहाँ 'वाल्मीकि की कृपा' का अर्थ स्पष्ट ही वाल्मीकीय रामायण को आधार मानकर चलना है। फिर भी, इन दोनों रामायणों के रचयिताओं ने काव्य-रचना के ढाँचे में, कथावस्तु के विधान में, वर्णन शैली तथा चरित्र-चित्रण में भी नवीनता का भरपूर समावेश किया है। स्थूल रूप से वाल्मीकि-रामायण की कथा तो इन दोनों रामायणों में, अपने-अपने विन्यास से, आ ही गयी है; पर उस समय की प्रचलित कथाओं और किंवदन्तियों तथा रीति-रिवाजों को स्वच्छन्द भाव से प्रसंगानुसार जोड़ने में भी कोई कोर-कसर नहीं रखी गयी है। इसलिए, मूल कथा-प्रसंगों में, दोनों में, स्थान-स्थान पर भिन्नता भी दीख पड़ती है।

रामचरितमानस में सीता जगज्जननी के रूप में चित्रित हैं, इसलिए मानवी सीता ओट में पड़ जाती हैं। किन्तु, उन दोनों रामायणों में सीता हमारे सामने पूर्णतः मानवी के रूप में आती हैं। कंब-रामायण में सीता को हम अपने कन्या प्रासाद में खड़ी देखते हैं, जब विश्वामित्र के साथ राम और लक्ष्मण मिथिला-राजधानी में प्रवेश करते हैं। 'जब महाभाग राम की दृष्टि सीता पर पड़ी और सीता की दृष्टि राम पर, तब उन दोनों की आँखें एक-दूसरे को पीने लगीं; उनकी प्रज्ञा भी अपना आश्रय छोड़कर एक-दूसरे में जाकर मिली......; रूप-माधुर्य को पीनेवाले नयन-पाश से दोनों के मन बँध गये और उस बंधन के द्वारा खिंचकर दृढ़ धनुर्धर (राम) तथा नुकीली दृष्टिवाली तरुणी (सीता) एक-दूसरे के हृदय में पहुँच गये। दो शरीरवाले दोनों एकप्राण हो गये। क्षीर-सागर में शेष के पर्यङ्क पर साथ रहनेवाले वे दोनों एक-दूसरे से वियुक्त हो गये थे, अब पुनः संयुक्त हो रहे हैं, तो फिर उनके प्रेम का वर्णन करना क्या आवश्यक है?' और तब हम पाते हैं कि 'स्वर्णकंकण-धारिणी सीता प्रतिमा-जैसी स्थिर खड़ी रह गयीं और उधर सीता की स्मृति, मन की दृढ़ता तथा शरीर-सौन्दर्य को साथ लेकर कुमार भी मुनिवर का अनुसरण करते हुए आगे दृष्टि-पथ से ओझल हो गये। अपने नयन-मार्ग से सुगन्धित पुष्पधारी (रामचन्द्र) के अदृश्य होते ही (सीता के) मन नामक मत्तगज का धृति नामक अंकुश भी हट गया। (स्त्री-सुलभ लज्जा, संकोच आदि गुण भी छोड़ चले!)·· उनके केश-पाश ढीले होकर बिखर गये और वस्त्र भी अंगों से नीचे खिसक पड़े।'···इसके बाद स्त्रियाँ उन्हें सेज पर लिटाकर उनके उपचार में लग गयीं।···'सखियाँ पंखे झल रही थीं, पर पंखे की हवा से उनका विरह-ताप शांत न हुआ, बढ़ता ही गया, जिससे उनके आभरण तथा पुष्पहार, जो कुम्हलाये से दीख पड़ते थे, झुलस गये। उस समय सीता का दृश्य ऐसा था, मानों कोई सोने की प्रतिमा तपायी जाकर पिघल रही हो।'

सीता प्रलाप करती हुई कहती हैं—'जो सुन्दर पुरुष मेरे हृदय में प्रवेश करके मेरे मन की दृढ़ता और महिलोचित लज्जा को गलाकर मेरे प्राणों के साथ ही पी गया है, वह अवश्य ही नेत्र-मार्ग से हृदय में प्रवेश करने में निपुण है। उसके इन्द्रनील-तुल्य केश, चन्द्र-सदृश मुख, लम्बी भुजाएँ और सुन्दर नीलरत्न पर्वत-जैसे कंधे मेरे प्राणों को पीनेवाले

नहीं है, किन्तु इन सबसे बढ़कर उसकी वह मुस्कान है, जो मेरे प्राणों को पी रही है। देखनेवालों के प्राण हरनेवाला उसका विशाल वक्ष, कमल जैसे उसके चरण और मत्त हाथी-जैसी उसकी चाल भी मेरे मन में अमिट रूप से अंकित हो गयी है। वह युवक अवश्य कोई राजकुमार है, जो मेरे कौमार्य रूपी बड़े प्राकार ढहाकर चला गया है, जिसमें मेरे लज्जा, संकोच आदि गुण सुरक्षित थे। क्या मैं अपने विरह-व्याकुल प्राण त्यागने के पूर्व फिर एक बार उस राजकुमार के दर्शन कर सकूँगी?' यह सीता का प्रलाप-मात्र नहीं। उनके अंतर्मन में श्रीराम की छवि ऐसी खुब गयी थी, मानों उसके साथ उनका तादात्म्य हो गया हो। इसके बाद जब सीता ने अपनी सखियों से श्रीरामचन्द्र द्वारा धनुर्भङ्ग की बात सुनी, तब 'उनका संदेह दूर हुआ—वह वही राजकुमार है, जिसे उन्होंने पहले दिन देखा था आनन्दातिरेक में उनका तन मन ऐसा उल्लसित और उत्फुल्ल हुआ कि मेखला (करधनी) टूट गयी।' तदनन्तर, हम सीता को विवाह मण्डप में देखते हैं। 'वीर (राम) ने पवित्र मंत्रों का उच्चारण करके प्रज्वलित अग्नि में घृत की आहुतियाँ दीं और सुन्दरी (जानकी) का पाणि पल्लव ग्रहण किया। राम के संग जब सीता प्रज्वलित अग्नि की परिक्रमा करने लगीं, तब सहज मुग्धता से युक्त वह देवी ऐसी लगीं, जैसे परिवर्त्तनशील जन्म चक्र में कहीं देह आत्मा का अनुसरण करने जा रही हो।' (आत्मा शरीर की खोज में जाती है, किन्तु शरीर आत्मा का अनुगमन नहीं करता) यहाँ पर इस 'अभूतोपमा' में कवि की विलक्षण उद्भावना दीख पड़ती है।

किन्तु, तेलुगु की रंगनाथ-रामायण में सीता का दर्शन न तो कन्या प्रासाद में कराया गया है, न फुलवारी में और न अन्यत्र कहीं। धनुष को सभास्थल में मँगाने के लिए जब जनक ने आज्ञा दी, तब दासियाँ, जानकी और उर्मिला तथा जनक की रानी (सुनयना) के निकट जाकर बोलीं—"हमारी राजसभा में विश्वामित्र मुनि के साथ दो आजानुबाहु, देवों और गन्धर्वों से भी अधिक तेजस्वी, उत्तम नररत्नों को आया हुआ देखकर महाराज जनक ने मुनि से प्रश्न किया—'ये कौन हैं?' तब मुनि ने अत्यंत हर्ष से कहा—'हे राजन्, ये दशरथ के पुत्र हैं। शिव धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने के लिए आये हैं। आप धनुष मँगवाइए।' तब राजा ने मंत्रियों को बुलाकर धनुष लाने के लिए भेजा है। हम यह दृश्य गवाक्ष से देख सकती हैं। आप भी शीघ्र चलकर देखिए।" और, "जब दासियाँ राम के कुल, रूप, शील, शौर्य आदि गुणों का वर्णन कर रही थीं, तब सीता को ऐसा भान हो रहा था, मानों उनके कानों में अमृत की वर्षा हो रही हो। उन्हें रोमांच हो आया।... उन्हें प्रीति और भय का अनुभव होने लगा। वे सिर झुकाये खड़ी रहीं। लज्जा से अभिभूत सीता को चुपचाप खड़ी देखकर सखियाँ उनकी सेवा शुश्रूषा करने लगीं। गुलाब-जल में कुंकुम घोलकर एक ने उनके कपोलों पर सुन्दर ढंग से 'मकरिका पत्र' की रचना की। दूसरी ने चन्दन का लेप किया।......इस प्रकार सभी सखियाँ सीता को एक स्वर्णपीठ पर बिठाकर उनका अलंकरण कर रही थीं। शृङ्गार समाप्त होते ही महारानी (सुनयना) उस कल्याणी राजकुमारी को साथ लेकर कनक प्रासाद के गवाक्ष (खिड़की)

के निकट आयीं। उस समय स्त्रियों के मन में सूर्यवंशी राघव को शीघ्र देखने का कुतूहल भरा था। उन्होंने गवाक्ष (झरोखे) से अनन्त रूपवान, विष्णु के समान तेजस्वी, लोकाभिराम प्रत्यंचा के चिह्न से अंकित कर-कमलवाले धनुर्धर राम को देखा।... स्त्रियाँ मन ही मन सोचने लगीं—'रूप और रंग में ये अद्वितीय हैं। ये विष्णु के अंशज हैं, रघुपुत्र के रूप में जन्मे हैं। जानकी राम के लिए योग्य हैं और उर्मिला सौमित्र के लिए।' इस प्रकार सोचती हुई वे अनन्त शान्ति के साथ राम की ओर देखती रहीं।"... ..इसके बाद, "विवाह-मण्डप में जनक ने अभीष्ट फल की सिद्धि के हेतु सीता का ग्रहण करने के लिए मंगल पूर्वक राम से कहा—'हे राम, मेरी पुत्री सहधर्मचारिणी सीता का अग्नि के सामने ग्रहण करो।' तब उन्होंने राम के हाथों में सीता को सौंपा। उस समय लगातार पुष्पवृष्टि हुई, देव-दुन्दुभियाँ बजने लगीं। फिर, वह शुभ मुहूर्त आया, जब सीता का मनोहर मुख सामने देखकर राम की आँखें पूर्णिमा की चन्द्रिका में विकसित कुमुद-पुष्पों के समान प्रफुल्ल हो गयीं। सीता की दृष्टि पति के चरण-कमलों पर वैसे ही स्थिर हुई, जैसे कमल पर भ्रमर बैठे हों।......राम की दृष्टि इस प्रकार दीखने लगी, मानो वह परमसुन्दरी सीता के लावण्य-सागर में तैर रही हो। वधू की दृष्टि वर के शरीर के सौन्दर्य-प्रवाह में विकसित कमल के सदृश शोभायमान हो रही थी। पत्नी और पति की आँखें थोड़ी देर के लिए आपस में वैसे ही मिलीं, जैसे रति और कामदेव शोभा-युक्त गति से परस्पर मिले हों। उसके पश्चात् राम ने सीता के लाल कमल के समान हाथ को अपने हाथ में लिया और पुलकित शरीर से दोनों एक ही आसन पर आसीन होकर बड़ी प्रीति से हवन-कार्य सम्पन्न करने लगे।"

अब आता है रघुनाथ-रामायण का अयोध्याकाण्ड। यहाँ सीता के दर्शन हमें उस समय होते हैं, जिस समय रामचन्द्र ने वन जाने का संकल्प कर लिया है। वे माता से विदा लेकर अपने अन्तःपुर में आते हैं; वन गमन की वार्त्ता सुनाते हुए कहते हैं—'जबतक मैं महाराज की आज्ञा के अनुसार वनवास की अवधि पूरी करके न लौटूँ, तबतक तुम दुःख त्याग कर गुरुजनों की भक्तिपूर्वक सेवा करती रहो।' पर सीता को यह पसंद क्यों हो? वन के क्लेशों की चर्चा सुनकर भी सीता साथ देने को दृढ़संकल्प रहीं। वे अत्यंत दीन स्वर में बोलीं—'हे नाथ, यदि मैंने जान बूझकर या अनजान में कोई अपराध किया हो तो आप मुझे क्षमा कर दीजिए। कर्कश शिलाओं से भरे प्रदेशों में भी आपकी सेवा करते हुए मुझे कोई थकावट न होगी। आप जो कन्द मूल कृपापूर्वक देंगे, वे मेरे लिए अमृत-तुल्य होंगे। हे प्राणेश, आपने अग्नि के समक्ष मेरे पिता से मुझे सहधर्मिणी के रूप में ग्रहण किया था। आप लोकवन्द्य हैं, सत्यनिष्ठ हैं।..... आप ऐसे आदर्श का पालन कीजिए, जो संसार में पति-पत्नियों के लिए अनुकरणीय हो। यदि आप मुझे छोड़कर वन चले जायेंगे, तो मेरे प्राण भी उड़ जायेंगे।' अंत में, सीता को साथ ले चलने के लिए राम तैयार होते हैं। कौशल्या भी आशीर्वाद करती हुई बड़े स्नेह से कहती हैं—

'तुम्हें तापसवृत्ति ग्रहण कर अपने पति के साथ वनों में निवास करना पड़ रहा है, इसके लिए चिन्ता मत करो। बाद को राघव अवश्य पृथ्वी का पालन करेंगे। चाहे पति निर्धन ही क्यों न हो जाय, स्त्री को उसे त्यागना न चाहिए। यही सती स्त्री का धर्म है। पति की आज्ञा का पालन करनेवाली स्त्री का दोनों लोकों में शुभ होगा।'...सीता ने कौसल्या का नमन कर बड़े विनम्र स्वर में कहा—'हे माता, मैं अवश्य पति के अनुकूल होकर भक्ति के साथ उनकी सेवा करूँगी और धर्म के मार्ग पर चलूँगी। पति की प्रसन्नता जिस रमणी को प्राप्त नहीं है, वह चक्र-हीन रथ के समान और तार-हीन वीणा के समान है। वह पुत्रोंवाली पुण्यवती होने पर भी अत्यन्त दुःखी रहेगी। अतः, यदि पति को प्रिय हो, तो मैं अपने प्राणों को भी बड़े हर्ष से निछावर कर दूँगी।'

तमिल रामायण के महाकवि ने वन गमन-प्रसंग का बड़ा मार्मिक चित्रण किया है। 'तुम दुःखी मत होओ, मैं जा रहा हूँ'—राम का यह कठोर वचन जब सीता को अत्यन्त पीड़ित करने लगा, तब विद्युत् के समान काँपती हुई सीता बोलीं—'माता-पिता की आज्ञा का पालन करने का निश्चय अत्यन्त उचित ही है, किन्तु आप मेरे प्रति कृपा-हीन और प्रेम-हीन होकर मुझे छोड़कर जाने की बात कह रहे हैं, (आपके विरह से उत्पन्न होनेवाले) इस ताप के सामने प्रलयकालीन सूर्य का ताप भी कुछ नहीं होगा। वह विशाल अरण्य क्या आपके विरह से भी अधिक तापजनक होगा ?' . राम सहसा कुछ उत्तर नहीं दे सके। 'सीता अश्रु-विसर्जन करती रहीं, फिर वे महल में जाकर अपने योग्य वल्कल वसन धारण करके विचार-मग्न प्रभु के निकट वापस आकर उनके हाथ को पकड़कर खड़ी हो रहीं।' ..'सीता का वेश देखकर माताएँ, बहनें सखियाँ—सभी जैसे अग्नि की ज्वाला में गिर पड़ीं।' राम कहने लगे— ...'वन गमन से होनेवाले कष्टों को तुम नहीं जानती हो।' सीता ने व्यंग्य के स्वर में कहा—'आपको मेरे कारण ही संकट उत्पन्न होता है, कदाचित् मुझे छोड़कर जाने में आपको सुख ही सुख है। अन्त में, राम ने साथ चलने की मौन अनुमति सीता को दे दी। सुमंत रथ पर बिठाकर राम, लक्ष्मण और सीता को वन में ले चले। जब उधर से लौटने लगे, तब सीता ने संदेश के रूप में उनसे कहा—'चक्रवर्ती की तथा सासों को मेरा नमस्कार कहना। फिर, मेरी प्यारी बहनों से कहना कि सोने के रंगवाली मेरी सारिका को और तोते को सावधानी से पालें।'

कंब-रामायण के महाकवि ने राम के साथ सीता के गंगा-स्नान का सुंदर दृश्य अपनी रामायण में प्रस्तुत किया है— "हिलनेवाले जल से भरी गंगा नदी की तरंगों के मध्य वे (राम) ऐसे लगते थे, जैसे रजत समान श्वेतवर्णवाले (विष्णु) क्षीर-सागर में लता जैसी कटिवाली कमलवासिनी (लक्ष्मी) के संग शयन से उठकर खड़े हुए हों। अलक्तक (महावर) रस से अलंकृत मृदु चरणोंवाली चित्र समान सुन्दरी सीता ने स्नान के लिए जल में प्रवेश किया, तो उनकी कटि की सुन्दरता से परास्त होकर 'वंजि' नामक लता लज्जा से जल में अपना मुँह छिपाने लगी। उनकी मंदगति से हारकर राजहंस दूर हट गये। उनके

परन्तु जैसे रागनेवाले बगुले जल में अदृश्य हो गये। मछलियाँ वहाँ से हट गयीं। महादेव के जटाजूट में रहकर भी जो गंगा नदी 'आव', पुन्नाग' आदि विविध पुष्पों की गंध से युक्त नहीं हुई थी, वह सुन्दर केशोंवाली सीता-देवी के केशपाश में स्थित कस्तूरी गंध तथा नये खिले पुष्पों की गंध से भर गयी। लहरों पर फेन के उठ उठकर हिलने से, श्वेत केशोंवाली स्त्री के समान लगनेवाली गंगा, सीता को अकेली देखकर, स्वयं धाई के समान अपने करों (लहरों) को बढ़ाकर उन्हें स्नान कराने लगी। सीता के दीर्घ केशपाश रूपी भ्रमर समुदाय खुलकर जल में वैसे ही लहरा रहे थे, जैसे गंगा के मध्य श्याम रंगवाली यमुना की धारा हो और उसमें अनेक भँवर दिखलायी दे रहे हों।"

तमिल रामायण के महाकवि ने गुह द्वारा नौका पर उन तीनों को बिठाकर गंगा पार ले जाने का दृश्य प्रस्तुत किया है—'दीर्घ तरंगों से पूर्ण गंगा में वह दीर्घ नौका वायु की गति से शीघ्र चलने लगी। दुग्ध-सदृश मीठी वाणीवाली सीता और सूर्य समान रामचन्द्र 'शैल' नामक मछलियों से पूर्ण गंगा के अति पवित्र जल को उछाल-उछालकर खेल रहे थे। दीर्घ डाँड़ों से खेई जानेवाली वह नौका अनेक टाँगोंवाले एक बड़े केंकड़े के समान शीघ्रता से चली जा रही थी। चंदन वृक्षों से युक्त बालुका राशि रूपी विशाल स्तनोंवाली गंगा नदी ने, उज्ज्वल रत्न समुदाय से अलंकृत और सुगंधित कमल-पुष्पों की अरुण आभा से शोभायमान, स्वच्छ तरंग रूपी अपने हाथों से उस नौका को दूसरे तट पर पहुँचा दिया।' किन्तु, तेलुगु की रंगनाथ रामायण में गंगा-तट का वर्णन भिन्न रूप में है। जब वे तीनों गंगा के किनारे पहुँचे तब "राघव ने बड़ी भक्ति के साथ मन ही-मन अयोध्या नगर को प्रणाम किया। फिर, गुह की लायी हुई नाव में बैठकर गंगा पार करने लगे। बीच धारा में पहुँचने पर सीता, भक्ति के साथ हाथ जोड़ प्रणाम कर प्रार्थना करने लगी—'हे माता गंगे! मेरे पति घोर कानन में चौदह वर्ष निवास करने जा रहे हैं। मैं यदि राम लक्ष्मण के साथ सकुशल लौट आऊँगी, तो आपकी सेवा में विविध भाँति के चढ़ावे समर्पित करूँगी और ब्राह्मणों को दान दूँगी।"

अब तेलुगु की रंगनाथ-रामायण के अरण्य काण्ड में वर्णित सीता की विकलता का दृश्य सामने आता है। मायामृग का पीछा करते हुए राम बहुत दूर निकल गये। मायामृग-रूप असुर कपट रूप से 'हा लक्ष्मण !' कहकर जोर से चिल्ला उठा। उस आर्त्तनाद को सुनकर सीता मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं। उसके बाद सचेत होकर वे लक्ष्मण से बोलीं—'सौमित्र, क्या तुम उनकी आवाज नहीं सुन रहे हो या सुनना नहीं चाहते हो?' लक्ष्मण ने बहुत तरह से समझाया, पर लक्ष्मण का उत्तर सुनकर सीता की रोषाग्नि प्रज्वलित हो उठी—'हे लक्ष्मण, जब तुम्हारे भाई तुम्हारा विश्वास करके यहाँ से गये हैं, तुम ऐसा पापमय व्यवहार क्यों करते हो? हाँ, मैं जानती हूँ, असुरों की माया से राम का वध जानकर, अनुचित बुद्धि से, निःशंक होकर, अपने भाई को दिये हुए वचन की अवहेलना करके, तुम मुझे प्राप्त करने का विचार कर रहे हो, या कदाचित् यह सोचते हो कि मैं इसे कैकेयी सुत (भरत)

को मौत दूँगा। मैं तुरंत गोदावरी में डूब मरूँगी।' सीता के ऐसे कठोर वचन सुनकर लक्ष्मण ने आँखों में आँसू भरे हुए कहा—'माता, मैं अभी जा रहा हूँ। आप दुःखी मत होइए।' फिर, पर्णशाला के चारों ओर सात रेखाएँ खींचकर कहा— माता, इन रेखाओं को पार करके बाहर मत जाइएगा। यदि कोई इन रेखाओं को पार करेगा, तो उसका सिर उसी क्षण चूर चूर हो जायगा।' उन्होंने अग्निदेव से सीता की रक्षा की प्रार्थना की। जानकी को बड़ी भक्ति से प्रणाम कर चल पड़े।

'इसी अवसर की प्रतीक्षा में छिपा रावण कपट सन्यासी का रूप धारण कर पर्णशाला में आ पहुँचा—हाथ में कमण्डल, ललाट में तिलक, उँगलियों में कुश की पवित्री, बायें हाथ में रुद्राक्ष की माला, गेरुआ वस्त्र पहने। सीता ने उसे एक संयमी मुनि समझा। रेखाओं को पार कर बड़ी भक्ति से उस अभ्यागत का सत्कार किया। कपट-सन्यासी ने परिचय पूछा। भगवती सीता ने अपना परिचय देकर उनका भी पूछा। रावण ने अपना परिचय और उद्देश्य कह सुनाया। सीता भयभीत तो हुईं, किन्तु वे धीरमना थीं, एक तिनका हाथ में लेकर उसकी बातों का उत्तर देने लगीं, मानों वे रावण को तृणवत् मानती हों—'तुम्हारी इच्छा वैसे ही दुर्लभ है, जैसे देवताओं को प्राप्त होने योग्य पूर्णाहुति किसी कुत्ते के लिए दुर्लभ है।.... चुपचाप तुम लंका लौट जाओ। यदि तुम कोई दुराचरण करने का विचार करोगे, तो मेरे पति राघव तुम्हें कुल-सहित नष्ट-भ्रष्ट कर देंगे। तुममें और उनमें उतना ही अंतर है, जितना सियार और सिंह में, मशक और दिग्गज में, नाले और समुद्र में, कौआ और गरुड़ में अंतर होता है।' .. 'सीता की भर्त्सना से रावण अत्यंत क्रोधान्ध हो उठा। उसकी भयंकर आकृति देखकर सीता मूर्च्छित हो गयीं। तेज आँधी के प्रहार से पेड़ से अलग हो नीचे पड़ी हुई वन-लता के समान पृथ्वी पर पड़ी सीता को निर्दय दशकंठ ने अपने रथ पर ला रखा। सीता की आँखों से अश्रुधारा बह रही थी, बाहु लताएँ भय से काँप रही थीं, वेणी खुल गयी थी, टूटे रत्नहार के रत्न जहाँ तहाँ बिखर रहे थे। शोक से उनका सारा शरीर काँप रहा था। वह राक्षस आकाश-मार्ग से यों जा रहा था, मानों दैव प्रेरित हो मृत्यु देवी को साथ लिये जा रहा हो।'.. रास्ते में सीता की चेतना लौट आयी। उन्होंने अपने अंचल को ठीक कर लिया। अपने प्राणेश्वर को पुकारती हुई, क्रोध तथा विषाद से संतप्त होकर, विलाप करने लगीं—'हे राघवेन्द्र आप शीघ्र आकर इस राक्षस का नाश कीजिए, मेरी लज्जा बचाइए, मेरी रक्षा कीजिए।.. अरे राक्षस, यह कलंक तू अपने ऊपर क्यों लेता है?.. क्रोध में राघव तेरा संहार कर डालेंगे। हाय, लक्ष्मण के मना करने पर भी मैंने उनकी बात क्यों नहीं मानी? हे भाई लक्ष्मण तुम मुझे माता के समान माननेवाले गुणवान् हो सौजन्य की मूर्त्ति हो, तुम्हें अपशब्द कहने का फल मैं अब भोग रही हूँ। हे वृक्षो, हे मेरे सहोदरो, हे गोदावरी, मैं आपके आश्रय में रहती थी, अब आपको मेरी रक्षा करना उचित है। कम से कम जाकर मेरे पति से यह वृत्तांत सुनाइए।... हे भू-माता, हे तपस्वियो, हे रोचरो, हे वनस्पतियो, आप सब मेरी रक्षा कीजिए।'

कारण जैसे लगनेवाले कमल जल में अदृश्य हो गये। मछलियाँ वहाँ से हट गयीं। महादेव के जटाजूट में रहकर भी जो गंगा नदी 'आक', 'पुन्नाग' आदि विविध पुष्पों की गंध से युक्त नहीं हुई थी, वह सुन्दर केशोंवाली सीता-देवी के केशपाश में स्थित कस्तूरी गंध तथा नये खिले पुष्पों की गंध से भर गयी। लहरों पर फेन के उठ-उठकर हिलने से, श्वेत केशोंवाली स्त्री के समान लगनेवाली गंगा, सीता को अकेली देखकर, स्वयं धाई के समान अपने करों (लहरों) को बढ़ाकर उन्हें स्नान कराने लगी। सीता के दीर्घ केशपाश रूपी मेघ-समुदाय खुलकर जल में वैसे ही लहरा रहे थे, जैसे गंगा के मध्य श्याम रंगवाली यमुना की धारा हो और उसमें अनेक भँवर दिखलायी दे रहे हों।"

तमिल रामायण के महाकवि ने गुह द्वारा नौका पर उन तीनों को बिठाकर गंगा-पार ले जाने का दृश्य प्रस्तुत किया है—'दीर्घ तरंगों से पूर्ण गंगा में वह दीर्घ नौका बाल हंस की गति से शीघ्र चलने लगी। दुग्ध-सदृश मीठी बोलीवाली सीता और सूर्य समान रामचन्द्र 'शैल' नामक मछलियों से पूर्ण गंगा के अति पवित्र जल को उछाल-उछालकर खेल रहे थे। दीर्घ डाँड़ों से खेई जानेवाली वह नौका अनेक टाँगोंवाले एक बड़े केंकड़े के समान शीघ्रता से चली जा रही थी। चंदन वृक्षों से युक्त बालुका राशि रूपी विशाल स्तनों-वाली गंगा नदी ने, उज्ज्वल रत्न समुदाय से अलंकृत और सुगंधित कमल-पुष्पों की अरुण आभा से शोभायमान, स्वच्छ तरंग रूपी अपने हाथों से उस नौका को दूसरे तट पर पहुँचा दिया।' किन्तु तेलुगु की रंगनाथ रामायण में गंगा-तट का वर्णन भिन्न रूप में है। जब वे तीनों गंगा के किनारे पहुँचे तब "राघव ने बड़ी भक्ति के साथ मन ही-मन अयोध्या-नगर को प्रणाम किया। फिर, गुह की लायी हुई नाव में बैठकर गंगा पार करने लगे। बीच धारा में पहुँचने पर सीता, भक्ति के साथ हाथ जोड़ प्रणाम कर प्रार्थना करने लगी—'हे माता गंगे। मेरे पति घोर कानन में चौदह वर्ष निवास करने जा रहे हैं। मैं यदि राम लक्ष्मण के साथ सकुशल लौट आऊँगी, तो आपकी सेवा में विविध भाँति के चढ़ावे समर्पित करूँगी और ब्राह्मणों को दान दूँगी।"

अब तेलुगु की रंगनाथ-रामायण के अरण्य काण्ड में वर्णित सीता की विकलता का दृश्य सामने आता है। मायामृग का पीछा करते हुए राम बहुत दूर निकल गये। मायामृग-रूप असुर कपट रूप से 'हा लक्ष्मण !' कहकर जोर से चिल्ला उठा। उस आर्त्तनाद को सुनकर सीता मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं। उसके बाद सचेत होकर वे लक्ष्मण से बोलीं—'सौमित्र, क्या तुम उनकी आवाज नहीं सुन रहे हो या सुनना नहीं चाहते हो ?' लक्ष्मण ने बहुत तरह से समझाया, पर लक्ष्मण का उत्तर सुनकर सीता की कोपाग्नि प्रज्वलित हो उठी—'हे लक्ष्मण, जब तुम्हारे भाई तुम्हारा विश्वास करके यहाँ से गये हैं, तुम ऐसा पापमय व्यवहार क्यों करते हो ? हाँ, मैं जानती हूँ, असुरों की माया से राम का वध जानकर, अनुचित बुद्धि से, नि शंक होकर, अपने भाई को दिये हुए वचन की अवहेलना करके, तुम मुझे प्राप्त करने का विचार कर रहे हो, या कदाचित् यह सोचते हो कि मैं इसे कैकेयी सुत (भरत)

को मौत दूँगा। मैं तुरंत गोदावरी में डूब मरूँगी।' सीता के ऐसे कठोर वचन सुनकर लक्ष्मण ने आँखों में आँसू भरे हुए कहा—'माता, मैं अभी जा रहा हूँ। आप दुःखी मत होइए।' फिर, पर्णशाला के चारों ओर सात रेखाएं खींचकर कहा—'माता, इन रेखाओं को पार करके बाहर मत जाइएगा। यदि कोई इन रेखाओं को पार करेगा, तो उसका सिर उसी क्षण चूर-चूर हो जायगा।' उन्होंने अग्निदेव से सीता की रक्षा की प्रार्थना की। जानकी को बड़ी भक्ति से प्रणाम कर चल पड़े।

'इसी अवसर की प्रतीक्षा में छिपा रावण कपट संन्यासी का रूप धारण कर पर्णशाला में आ पहुँचा—हाथ में कमण्डल, ललाट में तिलक, उँगलियों में कुश की पवित्री, बायें हाथ में रुद्राक्ष की माला, गेरुआ वस्त्र पहने। सीता ने उसे एक संयमी मुनि समझा। रेखाओं को पार कर बड़ी भक्ति से उस अभ्यागत का सत्कार किया। कपट-संन्यासी ने परिचय पूछा। भगवती सीता ने अपना परिचय देकर उसका भी पूछा। रावण ने अपना परिचय और उद्देश्य कह सुनाया। सीता भयभीत तो हुईं, किन्तु वे धीरमना थीं; एक तिनका हाथ में लेकर उसकी बातों का उत्तर देने लगीं, मानों वे रावण को तृणवत् मानती हों—'तुम्हारी इच्छा वैसे ही दुर्लभ है, जैसे देवताओं को प्राप्त होने योग्य पूर्णाहुति किसी कुत्ते के लिए दुर्लभ है।···· चुपचाप तुम लंका लौट जाओ। यदि तुम कोई दुराचरण करने का विचार करोगे, तो मेरे पति राघव तुम्हें कुल-सहित नष्ट-भ्रष्ट कर देंगे। तुममें और उनमें उतना ही अंतर है, जितना सियार और सिंह में, मशक और दिग्गज में, नाले और समुद्र में, कौआ और गरुड में अंतर होता है।'·· ···'सीता की भर्त्सना से रावण अत्यंत क्रोधान्ध हो उठा। उसकी भयंकर आकृति देखकर सीता मूर्च्छित हो गयीं। तेज आँधी के प्रहार से पेड़ से अलग हो नीचे पड़ी हुई वन-लता के समान पृथ्वी पर पड़ी सीता को निर्दय दशकंठ ने अपने रथ पर ला रखा। सीता की आँखों से अश्रुधारा बह रही थी, बाहु लताएँ भय से काँप रही थीं, वेणी खुल गयी थी, टूटे रत्नहार के रत्न जहाँ तहाँ बिखर रहे थे। शोक से उनका सारा शरीर काँप रहा था। वह राक्षस आकाश-मार्ग से यों जा रहा था, मानो दैव-प्रेरित हो मृत्यु देवी को साथ लिये जा रहा हो।'·· रास्ते में सीता की चेतना लौट आयी। उन्होंने अपने अंचल को ठीक कर लिया। अपने प्राणेश्वर को पुकारती हुई, क्रोध तथा विषाद से संतप्त होकर, विलाप करने लगीं—'हे राघवेन्द्र, आप शीघ्र आकर इस राक्षस का नाश कीजिए, मेरी लज्जा बचाइए, मेरी रक्षा कीजिए।·· अरे राक्षस, यह कलंक तू अपने ऊपर क्यों लेता है?·· क्रोध में राघव तेरा संहार कर डालेंगे। हाय, लक्ष्मण के मना करने पर भी मैंने उसकी बात क्यों नहीं मानी? हे भाई लक्ष्मण तुम मुझे माता के समान मानने-वाले गुणवान् हो, सौजन्य की मूर्त्ति हो, तुम्हें अपशब्द कहने का फल मैं अब भोग रही हूँ। हे वृक्षो, हे मेरे सहोदरो, हे गोदावरी, मैं आपके आश्रय में रहती थी, अब आपको मेरी रक्षा करना उचित है। कम से कम जाकर मेरे पति से यह वृत्तांत सुनाइए।... हे भू-माता, हे तपस्वियो, हे खेचरो, हे वनस्पतियो, आप सब मेरी रक्षा कीजिए।'

रावण द्वारा हरी गयी सीता के करुण विलाप उन दोनों रामायणों में बड़े मर्मस्पर्शी अंश हैं। तमिल-रामायण में कुछ अधिक है, तेलुगु में उनसे कम। तमिल-रामायण के कवि ने अशोक-वाटिका में राक्षसियों से घिरी हुई सीता से रावण के प्रेम-निवेदन का उत्तर बड़े उदात्त स्वर में दिलवाया है-'हे तृण, तुम्हारे कहे हुए कठोर वचन, गृहस्थी में जीवन बितानेवाली स्त्रियों के योग्य नहीं हैं। संसार में मन को शिला-तुल्य बनानेवाले पातिव्रत के समान क्या और कोई गुण तुमने देखा है? मैं जो कहती हूँ, उसे ठीक से समझ लो। हे बुद्धिहीन, मेरु-पर्वत को छेदना हो, आकाश को चीरकर उसके पार जाना हो, चतुर्दश लोकों का विध्वंस करना हो, तो भी यह सब करने के लिए आर्य (राम) के बाण समर्थ हैं—यह जानकर भी तुम अनुचित वचन कह रहे हो। क्या तुम अपना दसों सिर गिरवाना चाहते हो? तुम (राम से) भयभीत थे, इसीलिए उस समय एक मायामृग को भेजकर, राम को अनुपस्थित करके, अपनी माया से छिपकर आये। अब जीवित रहने की इच्छा करते हो, तो मुझे मुक्त कर दो।.. तुम्हारे प्राप्त किये हुए वरदान, तुम्हारा जीवन, तुम्हारी शक्ति, तुम्हारी अन्य विद्याएँ तथा ब्रह्मा आदि देवों की (वरद) वाणी—ये सब ज्यों ही राम धनुष पर शर संधान करेंगे, त्यों ही टूटकर विनष्ट हो जायेंगे। यह सत्य है। दीप के सम्मुख क्या अन्धकार टिक सकता है? हे मूर्ख, जब मेरे प्रभु यहाँ आयेंगे, तब क्या समुद्र और लंका के विध्वस्त होने से ही उनका क्रोध शांत होगा? वह क्रोध निष्ठुर राक्षसों को मिटाकर ही शांत होगा? तुम्हारे उस वंचक कृत्य के परिणाम स्वरूप उन उदार (राम) के क्रोध से समस्त लोक ही विध्वस्त हो जायगा—यही मेरा भय है, धर्मदेव ही इसके साक्षी हैं।'

तेलुगु की रामायण में भी सीता रावण को फटकार रही हैं— हे पापी, मेरे पति को धोखा देकर तुम मुझे लंका में ले आये हो। इसे बहुत बड़ा पराक्रम मानकर तुम क्यों गर्व कर रहे हो? इसे महान् कर्म समझकर क्यों प्रलाप कर रहे हो? परायी स्त्री को चाहनेवालों का ऐश्वर्य नष्ट हो जाता है, उनकी आयु भी क्षीण हो जाती है। यदि तुम जीवित रहना चाहते हो, तो औचित्य और धर्म का विचार करके मुझे राम के पास पहुँचा दो। इसके विपरीत यदि दुर्बुद्धि के वश में पड़कर तुम मुझे अपनाना चाहोगे, तो धनुर्धरों में श्रेष्ठ राम के हाथों मारे जाओगे, यह निश्चित है। दण्डधर (यमराज) के उद्दण्ड दण्ड के प्रताप को मात करनेवाले तथा सूर्य किरणों के तेज को भी परास्त करने वाले राम के असाध्य रण-भीषण बाण जिस दिन तुम्हारी लंका में व्याप्त होंगे, जिस दिन वे बाण तुम्हारे वक्षःस्थल में गड़ेंगे, उसी दिन तुम अपनी तथा राम की शक्ति का अनुभव कर सकोगे। ... जैसे कुहरा सूर्य का सामना करने पर नष्ट हो जाता है, जैसे मेढ़ा पहाड़ से टक्कर लेने से नष्ट हो जाता है, वैसे ही तुम भी यदि अपनी और उनकी शक्ति की तुलना किये बिना ही उनके (राम के) साथ भिड़ जाओगे, तो तुम भस्म हो जाओगे। भला तुम क्या देखकर इठला रहे हो? सूर्य के तिलक (राम) इस प्रकार तुम्हें थोड़े ही रहने देंगे?'

रावण निरुत्साह होकर चला गया। उसने जो दो महीने की अवधि दी थी, उसके बाद उन्हें (सीता को) मार डालने को कह गया था, उसके बार-बार स्मरणमात्र से ही वे विलाप करने लगीं—'हाय! मैं अपने बारे में ही क्यों सोचूँ? मेरे प्रभु रामचन्द्र न जाने घोर वन में सौमित्र के साथ किस तरह दुःख से पीडित होते होंगे, कैसी दुखाधा भोग रहे होंगे? पता नहीं, उनकी क्या दशा होगी? न जाने, वे शूर यहाँ कब आयेंगे, कब इस राक्षस का गर्व चूर करेंगे और कब मुझे अपने साथ ले जायेंगे।'

किन्तु, तमिल रामायण में विषाद से खिन्न सीता की मर्मव्यथा का वर्णन इस प्रकार है—हे बनराज् भार्गव, क्या वज्रध्वनि सदृश राम के भयंकर धनुष की प्रत्यंचा ध्वनि यहाँ सुनायी पड़ेगी? हे मूढ़ चन्द्र, हे उज्ज्वल चन्द्रिके, हे व्यतीत न होनेवाली रात्रि, तुम सब मूढ़ होकर मुझको ही सता रहे हो? मेरी चिन्ता न करनेवाले उस धनुर्धर राम को क्या तुम किंचित् भी नहीं सताते? अपनी अंग-कान्ति से समुद्र की समता करनेवाले राम ने वन के लिए प्रस्थान करते समय मुझसे कहा था कि मेरे साथ वन में चलने का विचार तुम छोड़ दो, मैं कुछ ही दिनों में लौट आऊँगा, इसी अयोध्या नगरी में तुम रहो। हे नाथ! क्या उसी आज्ञा के न मानने के कारण अब मुझ अबला के अनाथ प्राणों को तुम कष्ट भोगने दोगे? राम को देखने की आशा से ही सब कष्टों को सहती हुई मैं अपने प्राणों को रोककर जीवित हूँ। तो भी अनेक दिन राक्षसों के बीच रहने के कारण पवित्र गुणवाले राम क्या मेरा स्पर्श करेंगे? कदाचित् मुझे नहीं अपनायेंगे। यह जानकर कि मैं पर पुरुष की पत्नी बन गयी हूँ, मुझे ग्रहण करेंगे? राक्षसों के दुर्वचनों को सुनते हुए भी स्थिर रहनेवाले प्राणों को रखकर मैं चिरकाल से जीवित हूँ। अतः, मुझसे भी अधिक कठोर राक्षसी और कौन हो सकती है? .. ..अपने सम्मान पर आघात लगने पर उत्तम तपस्या सम्पन्न नारियाँ कवरी मृग के समान अपने प्राण छोड़ देती हैं। वैसी नारियों के सम्मुख में किस प्रकार मूढ़ बनकर यह अपवाद धारण करती हुई जीवित रहूँगी कि यह सीता श्यामसुन्दर राम से बिछुड़कर भी मायावी राक्षसों के घर में जीवित रही। जब रामचन्द्र अपने धनुष से राक्षसों को निर्मूल करके मुझे मुक्त करेंगे, तब यदि वे कह दें कि तुम मेरे गृह में आने योग्य नहीं हो, तो मैं अपने इस दृढ़ पातिव्रत्य का किस प्रकार से प्रमाणित कर सकूँगी!'

इस तरह की चिन्ता और पीड़ा से उद्विग्न होकर सीता उठ खड़ी हुईं। उस समय पहरा देनेवाली राक्षसियाँ सोई हुई थीं। वे पुष्प भार से झुकी माधवी लता के निकट जा पहुँचीं। हनुमान् ने उपयुक्त अवसर जान पेड़ से नीचे उतरकर उन्हें प्रणाम किया। अपने आने का उद्देश्य भी कह सुनाया। पर वे आश्वस्त न हो सकीं। सोचा, यह भी राक्षसों की माया तो नहीं है। तभी हनुमान् ने अभिज्ञान (चिह्नस्वरूप) के लिए उन्हें रामचन्द्र की अँगूठी दे दी। उसके बाद राम और सौमित्र की विकलता का वर्णन विशद रूप से करते हुए निवेदन किया—'हे माता, अब विलंब क्यों, चलिए। आपको अपनी पीठ पर लेकर, बड़े यत्न के साथ समुद्र लाँघकर प्रातःकाल होते-होते प्रभु के पास पहुँच जाऊँगा।' ....

किन्तु, सीता ने कहा—'यह काम तुम्हारे लिए कठिन नहीं है, तुम्हारे पराक्रम के अनुकूल ही है। फिर भी, मैं इसे अनुचित मानती हूँ। एक और भी कारण है। इससे आर्य (राम) का विजयी धनुष कलंकित होगा। जिस प्रकार कुत्ता यज्ञ के अन्न को आँख बचाकर ले भागता है, क्या तुम भी उसी प्रकार का छलभरा कार्य करना चाहते हो? हे सत्यशील, कथन-योग्य कारण एक और है, वह भी सुनो। पंचेन्द्रियों पर नियंत्रण पाने पर भी तुमको यह संसार पुरुष ही कहता है। उन उत्तम वीर (राम) के अतिरिक्त अन्य किसी पुरुष का स्पर्श करना मेरी देह के लिए क्या उचित हो सकता है।'...रंगनाथ रामायण में भी यह प्रसंग ऐसा ही है। भाव के प्रकाशन में किंचित् अंतर दीख पड़ता है। सीता हनुमान् को चित्रकूट की जयन्त-सम्बन्धी घटना सुनाती हैं—'सूर्यवंश-तिलक राम ने कौए पर ब्रह्मास्त्र चला दिया। उन्होंने मेरे लिए यह सब किया।'

इसके बाद सीता ने हनुमान् की बड़ी प्रशंसा की। फिर, राम तथा सौमित्र को संदेश देते हुए कहा—'तुम उन राम से कहना—उनके लिए भले ही मैं योग्य पत्नी न होऊँ, मेरे लिए उनके हृदय में भले ही दया न हो, तो भी उन्हें अपनी वीरता की लाज तो रखनी ही होगी। जयशील लक्ष्मण से भी कहना—महिमामय (राम) की आज्ञा से वे मेरी रक्षा करते रहते थे। अब इस दारुण बंधन से मुक्त करना भी उन्हीं का कर्त्तव्य है।......उन राम के कानों में यह बात पहुँचा देना कि जब उन्होंने मिथिला में मेरा पाणिग्रहण किया था, तब उन्होंने यह वचन दिया था कि इस जन्म में (तुम्हारे अतिरिक्त) किसी अन्य स्त्री का मन से भी स्पर्श न करूँगा। उन (राम) से यह भी निवेदन करना कि यहीं रहकर यदि मैं अपने प्यारे प्राणों को त्याग दूँ, तो भी उनको प्रणाम कर यही प्रार्थना करूँगी कि वे मुझे ऐसा वर प्रदान करें, जिससे मैं दुबारा जन्म लेकर पुनः उन्हीं की सुन्दर देह का आलिंगन कर सकूँ।'

उपर्युक्त संदेश तमिल-रामायण के अनुसार है। तेलुगु की रंगनाथ-रामायण में सीता ने यह संदेश दिया है—'हे पवन-कुमार, प्राणनाथ को मेरा स्मरण कराना—उस दिन का वह प्रेम और उस दिन का वह (जयन्त पर) अस्त्र प्रयोग वे क्यों भूल गये हैं? दस सहस्र प्रकार के कष्टों को भोगते हुए दस महीने बीत गये। तुम मेरे प्राणनाथ से ऐसी नम्रता के साथ मेरी ओर से निवेदन करना कि मेरे प्रति उनके मन में दया उत्पन्न हो। अपनी स्त्री को दूसरे के हाथ में खोकर चुप बैठे रहना पौरुष नहीं कहलाता। इससे उनकी कीर्त्ति को कलंक लगेगा, इसीका मुझे बड़ा दुःख है। मेरे मन और प्राण उन्हीं पर केन्द्रित हैं।'

अंत में, रावण-वध के पश्चात् लंका-विजय का समाचार सुनाने के लिए, सीता के सम्मुख हनुमान् जा पहुँचे। तमिल-रामायण में सीता के हर्षोल्लास का बड़ा ही सुन्दर चित्रण है। जब सुसज्जिता सीता विभीषण द्वारा राम के निकट पहुँचायी जाती हैं, तब राम उन्हें स्वीकार करने से अपनी असमर्थता व्यक्त करते हैं। सीता के मन में उमड़नेवाली आनन्द की उमंगें भरी हुई थीं। उनकी सुन्दर भौंहें वक्र हुईं। स्वेद से अंग भर गये। स्खलित

वाणी से बोलते समय वे सोचती कुछ और कहती कुछ थीं। क्या अत्यधिक आनन्द का गुण भी मद्य के समान होता है? क्या कहना है, कैसे कहना है, इस विषय में कुछ न सोचने के कारण वे मौन रहीं। यह सोचकर वे निश्चिन्त हुई थीं कि किसी भी जन्म में जो मेरा साथी है और जो जन्म बंधन से मुक्त होने पर भी मेरा साथी रहनेवाला है, उस प्रभु को मैंने पुनः प्राप्त कर लिया। अतः, अब मैं मर जाऊँ, तो भी कोई अहित न होगा।'...और तब 'करुणाशील प्रभु ने पातिव्रत्य की देवी, स्त्रीत्व के गुणों की निधि, सौन्दर्य की भी सुन्दरता, धर्ममूर्त्ति सीता को देखा। फिर, उन देवी को अपने युगल चरणों को नमस्कार करते हुए देखकर कहा—'तुम नीति-भ्रष्ट राक्षसों की लंका में निवास करती रहीं, चारित्र्य के मिट जाने पर भी तुम मरी नहीं। अब तुम संकोच छोड़कर यहाँ क्यों आयी हो? क्या यह सोचती हो कि यह राम मुझे प्यार करेगा? उत्तम कुल में उत्पन्न नारियाँ पंचेन्द्रियों का दमन करती हैं। सच्चरित्रता को दृढ़ता के साथ अपनाकर तपस्या में निरत रहती हैं, यदि कुछ अपयश उत्पन्न हो जाय, तो अपने प्राण त्याग कर उस अपयश को मिटा देती हैं। अब तुम किसी भी स्थान में जाकर बसो, मेरे साथ नहीं रह सकती हो।'—ऐसी बातें सुनकर सभी रो पड़े। 'धरती पर दृष्टि गड़ाये खड़ी सीता वेदना से कातर हो उठीं, जैसे घाव में छुरी डालकर कुरेदा गया हो। कुछ काल तक भ्रांत सी खड़ी रहने के पश्चात् सीता ने अश्रु बहाते हुए कहा—मैं अबतक जो प्राण रोके रही, क्या उसका यही परिणाम है? हे उदारगुण, हनुमान् ने लंका में मुझसे कहा था कि तुम यहाँ आनेवाले हो, उसी से सांत्वना पाकर मैं जीवित रही। क्या हनुमान् ने मेरी दशा के बारे में तुमसे कुछ नहीं कहा? हे पुरुषोत्तम, मैंने इतने दिनों तक बड़ी कठिनाई से जो तप किया, सच्चरित्रता को सुरक्षित रखा, पातिव्रत्य धर्म को बचाया—वह सब क्या इसी कारण कि तुम अपने हृदय में उनका कुछ मूल्य न मानो। क्या मेरे सारे प्रयत्न उन्मत्त के कार्यों-जैसे व्यर्थ हो गये? ब्रह्मा, विष्णु, शिव हस्तामलक के समान सब विषयों को स्पष्ट जान सकते हैं; किन्तु स्त्रियों के हृदय को वे यथार्थ रूप में नहीं जान सकते—यदि ऐसा है, तो अब मैं अपने शुद्ध पातिव्रत्य के रूप को किसे कहकर समझा सकती हूँ। ऐसी दशा में मृत्यु के समान उत्तम वस्तु मेरे लिए और कुछ नहीं है। तुमने जो आज्ञा दी है, वह ठीक है, मेरा भाग्य भी उसके अनुकूल ही है।'

इसी प्रसंग का चित्रण तेलुगु की रंगनाथ रामायण में इस प्रकार है—"अशोक-वन में बैठी सीता को देखकर हनुमान् ने प्रणाम किया। कहा—'हे कल्याणी! जो आप चाहती थीं, वही हुआ। आपके पति राम ने लोक भयंकर रावण का संहार किया। वे अब अपने अनुज सौमित्र के साथ सकुशल हैं।' उत्तर में वे हर्ष के साथ बोलीं—'हे अनघ, तुम्हारे प्रताप की सहायता से ही राम ने यह कार्य सम्पन्न किया है। .. तुम्हारे धैर्य, शील एवं पराक्रम की सराहना मैं कैसे करूँ? तुम्हारे वीरतापूर्ण कार्यों से मैं बहुत संतुष्ट हूँ। तुम्हें बल, शौर्य, पराक्रम, अपार तेज, क्षमा, ज्ञान, उदारता, निश्चल स्वामिभक्ति, विनय आदि

विभूत गुण प्राप्त हों। ...हनुमान् ने जब आज्ञा माँगी, तब सीता ने कहा—'अवश्य उन्हीं को मैं अपनी आत्मा मानकर अपने प्राण सौंपे हुई हूँ। अब मैं उन्हें देखे बिना एक क्षण भी नहीं जी सकती। यह बात मेरे प्रभु को बतलाना।'

उनके बाद उन्हें (सीता को) लिवा लाने को विभीषण भेजा गया। विभीषण ने सरमा आदि अपने अंतःपुर की स्त्रियों से सारी बातें समझा दीं। उन स्त्रियों ने सीता को मंगल-स्नान *कराया, दिव्य वस्त्रों से सजाया, दिव्य मालाओं और दिव्य आभूषणों से अलंकृत किया।* पश्चात् स्वर्ण पालकी में बिठाकर ले चलीं। जब वे राम के सम्मुख आयीं, तब उनका शरीर स्वेद-बिन्दुओं से ऐसा आप्लावित हो रहा था, मानो उनके हृदय में उमड़ता हुआ आनन्द छलककर सारे शरीर में व्याप्त हो गया हो। उन्होंने राका-शशि रामचन्द्र के दर्शनामृत का पान करके चिर-विरहाग्नि को शांत किया। परम अनुराग से भरे हुए अपने मन की *उत्कट इच्छा से प्रेरित हो राघव की ओर देखने लगीं। राघव को देखते ही उनके नेत्र-*कमलों में अश्रु-प्रवाह उमड़ आया। वे प्रीति एवं लज्जा से अभिभूत होकर सिर झुकाये खड़ी रहीं। राम का मन क्रोधावेश से भर गया। उन्होंने सीता की ओर देखकर कहा—'हे नारी, पुण्यशीला स्त्रियों के लिए लज्जा ही प्राण है। हे लज्जावती, प्रतिष्ठा की रक्षा का विचार करके मैंने तुम्हें मुक्त किया है। इसके सिवा मेरे हृदय में तुम्हारे प्रति कोई *आसक्ति शेष नहीं है। सूर्यवंशी धैर्य के धनी, लोक रक्षण-तत्पर तथा लोक प्रशंसा के योग्य* होते हैं। उनके वंश में *जन्म लेकर यदि मैं तुम्हारा ग्रहण करूँ, तो लोग कहेंगे कि मैंने* अपनी मर्यादा को त्याग दिया। इस भय से कि लोग यह न कह बैठें कि राम अपनी पत्नी को खो बैठा और उसे छुड़ाकर नहीं ला सका, मैंने तुम्हें छुड़ाया है। इसके सिवा तुम्हें यहाँ लाने का मेरा कोई उद्देश्य नहीं है। मैं तुम्हें स्वीकार नहीं कर सकता। तुम जहाँ चाहो, जा सकती हो।' सीता तिलमिला उठीं। क्षोभ, दुःख एवं क्रोध से अभिभूत हो वे *रामचन्द्र की ओर देखकर कहने लगीं—'हे देव, क्या आप मेरा हृदय नहीं जानते? क्या आप सर्वज्ञ और मनीषी नहीं हैं? आप ऐसे कठोर वचनों से मुझे क्यों दुःखी बना रहे हैं?* मैं कहाँ, आप कहाँ और आपके ये वचन कैसे? चंचल चित्तवाली स्त्रियों का-सा व्यवहार क्या मेरे लिए कभी सह्य हो सकता है? पुरुष अविश्वसनीय स्त्रियों के प्रति जैसे वचन कहते हैं, वैसे वचन आप मेरे प्रति कह रहे हैं। क्या यह आपके लिए उचित है? यदि आपको मुझपर विश्वास नहीं था, तो जिस दिन मेरा पता जानने के लिए हनुमान् को भेजा था, उसी दिन कहला भेजते, तो उसी दिन मैं अपनी सभी आशाओं को तजकर *प्राण त्याग देती।' इसके बाद वे लक्ष्मण की ओर देखकर बोलीं—'हे अनघ, तुम्हारे अग्रज मुझपर संदेह करके मेरे प्रति कठोर वचन कह रहे हैं। क्या मेरे प्रति ऐसा व्यवहार उचित है?...* मेरा आचरण देखते हुए क्या तुम मुझमें किसी पाप का अनुमान कर सकते हो? यदि तुमलोगों का यही निश्चय है, तो यहीं चिता सजाओ। ...अग्नि के द्वारा मैं अपनी पवित्रता का प्रमाण दूँगी'..।

अग्नि-परीक्षा का अवसर आया। लक्ष्मण को ही अपने अग्रज के संकेत से अग्नि की वेदी तैयार करनी पड़ी। सीता ने उसकी परिक्रमा करके अग्निदेव को प्रणाम किया। फिर बोलीं—'हे अग्निदेव, मन वचन-कर्म—त्रिकरणों में किसी से भी यदि मैं कलंकवती होऊँ, तो तुम मुझे जला दो।' फिर, उन्होंने अपने प्रभु को नमस्कार किया। वे झट अग्नि में प्रवेश कर गयीं। पर, राम के कोप के कारण सीता के शरीर में जो स्वेद उत्पन्न हुआ था, वह भी नहीं सूखा, उनके केशों में सजे पुष्प—उनमें स्थित मधु एवं भ्रमर भी जल में भिगोकर निकाले गये पदार्थ जैसे शीतल दिखायी पड़े। अब उनके विषय में क्या कहा जाय!'

यह अग्नि-परीक्षा कंब रामायण के अनुसार है। अग्निदेव के स्वयं आविर्भूत होने के अतिरिक्त रंगनाथ-रामायण में यह प्रसंग एक जैसा ही है, मात्र शब्दों का अंतर है। कंब-रामायण में एक विशेष बात यही है कि प्रज्वलित अग्नि से स्वयं सशरीर अग्निदेव निकले। राम उनकी ओर विस्मित दृष्टि से देखने लगे। तुरन्त अग्निदेव ने स्वयं अपना परिचय देते हुए कहा—'जिनका स्पर्श करने की शक्ति मुझमें भी नहीं, उन (सीता) की पवित्रता के विषय में और कहना ही क्या?'

रामचन्द्र अभिभूत हो उठे। देवताओं द्वारा पुष्पवृष्टि होने लगी। सीता के प्रति 'धन्य धन्य' की गंभीर ध्वनि सर्वत्र व्याप्त हो गयी।

बिहार में महिलाओं की शिक्षा-व्यवस्था का उत्तरोत्तर विकास

श्रीअजितनारायण सिंह 'तोमर', एम्० ए०, साहित्यरत्न, ३।१३, गरदनीबाग, पटना

शिक्षा के क्षेत्र में आधुनिक बिहार-राज्य बहुत दिनों से पीछे रहा है, फिर स्त्री-शिक्षा की तो चर्चा ही क्या! अँगरेजी राज्य-काल में, सर्वप्रथम सन् १८४६ ई० में एक बालिका-विद्यालय, पटना में, कायम किया गया था।

सन् १९३१ ई० की जनगणना के अनुसार बिहार की आबादी सवा तीन करोड़ के लगभग थी। उसमें पढ़े-लिखे लोगों की संख्या साढ़े तेरह लाख थी, जिसमें पढ़ी-लिखी स्त्रियों की संख्या केवल एक लाख पाँच हजार पाँच सौ ही थी। अँगरेजी पढ़े-लिखे पुरुषों की संख्या तब एक लाख पौने चौंतीस हजार के करीब थी। अँगरेजी पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ तो लगभग साढ़े ग्यारह हजार ही थीं। औसत के हिसाब से उस समय एक हजार में आठ

ही स्त्रियाँ पढ़ी-लिखी थीं। देश-भर में केवल बिहार और उड़ीसा ही स्त्री शिक्षा में सबसे पीछे थे। उस समय पाँच वर्ष से अधिक उम्रवाली—पढ़-लिख सकने लायक उम्रवाली—स्त्रियों की संख्या लगभग एक लाख सैंतीस हजार थी। तब स्त्रियों के लिए कॉलेज का तो अभाव था ही, उच्च विद्यालयों की संख्या भी नौ ही थी। पटना में दो, भागलपुर में दो तथा मुजफ्फरपुर, गया, संतालपरगना, हजारीबाग और राँची में एक एक उच्च विद्यालय थे। मिडिल-इंगलिश-स्कूलों की संख्या पचासीस और मिडिल वर्नाक्युलर स्कूलों की संख्या नौ थी। मुजफ्फरपुर, दरभंगा और भागलपुर जिलों में मिडिल-स्कूल थे ही नहीं। राँची जिले में छः, हजारीबाग और संतालपरगना में चार-चार, शाहाबाद और चम्पारन तथा मानभूम जिलों में तीन तीन एवं पटना, गया, मुँगेर, पूर्णिया, पलामू और सिंहभूम जिलों में दो-दो स्कूल थे। इनमें करीब-करीब आधे विद्यालय ईसाई मिशनरियों द्वारा चलाये जा रहे थे। ईसाई मिशनरियों द्वारा ही स्त्री-शिक्षा का विशेष प्रचार बढ़ा। उस समय राज्य-भर में लड़कियों के लिए प्राथमिक विद्यालयों की संख्या लगभग दो हजार थी। उन दिनों सह-शिक्षा का प्रचार अधिक था। लड़कों के स्कूलों में लड़कियाँ भी पढ़ने लगी थीं। सन् १९३५-३६ ई० में करीब चालीस लड़कियाँ कॉलेजों में पढ़ रही थीं, उच्च विद्यालयों में एक सौ चालीस लड़कियाँ शिक्षा पा रही थीं, मिडिल स्कूलों में पन्द्रह सौ अस्सी लड़कियाँ थीं तथा प्राथमिक विद्यालयों में लड़कियों की संख्या लगभग सतहत्तर हजार थी।

जब देश के शासन की बागडोर काँग्रेस सरकार के हाथों में आयी, तब शिक्षा की दिशा में बड़े वेग से प्रगति होने लगी। आधुनिक बिहार के इतिहास में पहले पहल, शिक्षा-क्रम को तीव्रता से आगे बढ़ाने के लिए, आरम्भ से अन्त तक उसे सुव्यवस्थित करने का प्रयत्न किया गया। सन् १९४६—५२ ई० की अवधि में महिला-शिक्षा की प्रगति संतोष-जनक रही। सरकार की ओर से उक्त अवधि में २६ मिडिल स्कूल और १४ हाइ-स्कूल चलाये गये। अध्यापिकाएँ तैयार करने के लिए तीन ट्रेनिंग-स्कूल तथा एक ट्रेनिंग कॉलेज की स्थापना सरकार द्वारा ही की गयी। प्रत्येक कमिश्नरी के केन्द्र-नगर में महिला-कॉलेज की स्थापना की गयी। उक्त अवधि में ही प्रथम विकास योजना चालू हुई, जिसके अनेक उद्देश्यों में एक यह भी था कि बालिकाओं तथा महिलाओं की शिक्षा को प्रोत्साहन दिया जाय और नारी-समाज की विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति की दृष्टि से महिला शिक्षा-व्यवस्था का समुचित विकास किया जाय। सरकार ने प्रत्येक जिला-केन्द्र में एक हाइ स्कूल और प्रत्येक सबडिवीजन के केन्द्र स्थान में एक मिडिल-स्कूल की भी स्थापना की। पटना में दो तथा मुजफ्फरपुर, भागलपुर और राँची में एक एक महिला-डिग्री कॉलेजों की स्थापना सरकार द्वारा की गयी। सन् १९४५ ई० में बिहार-भर में सिर्फ एक महिला-कॉलेज था। उसके बाद पटना में मगध महिला कॉलेज की स्थापना सरकार ने की। ईसाई-मिशन की ओर से स्थापित पटना-महिला-कॉलेज तो पहले से ही चल रहा था। सम्प्रति यथानिर्दिष्ट महिला-महाविद्यालय राज्य भर में चालू हैं—

संस्था का नाम	स्थापना-काल	स्वीकृत कक्षाएँ
१. वीमेन्स-कॉलेज (पटना)	१९४० ई०	बी० ए०
२. मगध-महिला-कॉलेज (पटना)	१९४६ ई०	बी० ए०, बी० एस्-सी०
३. महिला-ट्रेनिंग-कॉलेज (पटना)	१९५० ई०	डिप्-इन-एड्०
४. बी० एन्० आर० ट्रेनिंग कॉलेज (गुलजारबाग, पटना सिटी)	१९५० ई०	एस्० टी० सी० तथा वेसिक ट्रेनिंग आदि
५. गौतम बुद्ध महिला-कॉलेज (गया)	१९५६ ई०	बी० ए०
६. महादेवानन्द गिरि महिला-महाविद्यालय (आरा, शाहाबाद)	१९५६ ई०	बी० ए०
७. महन्त दर्शनदास-महिला-कॉलेज (मुजफ्फरपुर)	१९४९ ई०	बी० ए० तथा बी० एस्-सी०
८. महिला-महाविद्यालय (लालबाग, दरभंगा)	१९६० ई०	बी० ए०
९. जयप्रकाश महिला-महाविद्यालय (छपरा, सारन)	१९५७ ई०	बी० ए०
१०. डॉ० श्रीकृष्णसिंह-वीमेन्स-कॉलेज (मोतिहारी, चम्पारन)	१९५९ ई०	बी० ए०
११. सुन्दरवती-महिला-महाविद्यालय (भागलपुर)	१९४९ ई०	बी० ए० तथा बी० एस्-सी०
१२. कुमारी-बालिका-मेमोरियल कॉलेज (जमुई, मुंगेर)	१९५२ ई०	बी० ए० तथा बी० एस्-सी०
१३. श्रीकृष्ण-महिला कॉलेज (बेगूसराय, मुंगेर)	१९५९ ई०	बी० ए०
१४. वाल्मीकि-राजनीति महिला-महाविद्यालय (मुंगेर)	१९५९ ई०	बी० ए०
१५. राँची-वीमेन्स कॉलेज (राँची)	१९४३ ई०	बी० ए० तथा बी० एस्-सी०
१६. श्रीलक्ष्मीनारायण महिला-महाविद्यालय (धनबाद)	१९६० ई०	बी० ए०
१७. जमशेदपुर-वीमेन्स-कॉलेज (जमशेदपुर, सिंहभूम)	१९६० ई०	बी० ए०

सन् १९४५-४६ ई० में कुल मिलाकर राज्य-भर में एक लाख साठ हजार सात सौ तीन छात्राएँ शिक्षा पा रही थीं। सन् १९५०-५१ ई० में उनकी संख्या बढ़कर दो लाख छत्तीस हजार आठ सौ तिहत्तर हो गयी। सन् १९४५-४६ ई० में कुल पन्द्रह लाख साठ हजार तीन सौ

दो रुपये स्त्री-शिक्षा-सम्बन्धी संस्थाओं पर खर्च हुए थे। सन् १९४९-५० ई० में यह रकम बढ़कर उनतीस लाख तेईस हजार सौ सौ पैंसठ हो गयी। स्त्री शिक्षा-संबंधी अन्य मदों में, सन् १९४५-४६ ई० में, पाँच लाख तीस हजार तीन सौ बासठ रुपये खर्च हुए थे। सन् १९४९-५० ई० में यह रकम बढ़कर दूनी हो गयी। सरकार द्वारा अधिकतर हाइ और मिडिल-स्कूलों का पूरा भार वहन कर लेने के कारण ही खर्च में वृद्धि हुई। सन् १९४६-४७ ई० में लड़कियों के लिए कुल मिडिल-स्कूलों की संख्या ६५ थी तथा ३५४ लड़कियाँ मैट्रिक-पास थीं।

प्रथम पंचवर्षीय योजना-काल में भी सरकारी बालिका हाइ-स्कूल में विज्ञान की शिक्षा शुरू की गयी और सभी सरकारी बालिका-हाइ-स्कूलों में शिल्प की शिक्षा चालू की गयी। सन् १९५०-५१ ई० में जहाँ बालिका-शिक्षण-संस्थाओं में छात्राओं की संख्या एक लाख बाईस हजार सात सौ अट्ठावन थी, वहाँ सन् १९५५-५६ ई० में यह संख्या एक लाख पैंसठ हजार पाँच सौ तीन हो गयी। सन् १९५०-५१ ई० में जहाँ सरकारी कोष से चौदह लाख पैंसठ हजार एक सौ पन्द्रह रुपये व्यय हुए वहाँ सन् १९५५-५६ ई० में वह राशि बढ़कर इक्कीस लाख इक्यासी हजार पाँच सौ तीन हो गयी। सन् १९५०-५१ ई० में जहाँ महिलाओं के लिए कॉलेजों, हाइ-स्कूलों, श्रेष्ठ बुनियादी स्कूलों, मिडिल स्कूलों, अवर बुनियादी स्कूलों, प्राथमिक स्कूलों, रोजगारी और शिशु-स्कूलों की संख्या ७३ थी और ऐसी ही गैर सरकारी संस्थाओं की संख्या दो हजार तीन सौ उनहत्तर थी, वहाँ सन् १९५५-५६ ई० में इन संस्थाओं की संख्या क्रमशः पचासी और तीन हजार दो सौ चौवन हो गयी। सन् १९५५-५६ ई० में लड़के तथा लड़कियों की सभी प्रकार की स्वीकृत संस्थाओं में पढ़नेवाली लड़कियों की संख्या तीन लाख अड़सठ हजार चार सौ चौंसठ थी। महिला छात्राओं की प्रतिशत संख्या १·७६ थी। लड़कियों तथा महिलाओं की अस्वीकृत संस्थाओं की संख्या उस समय ६८ थी। उन अस्वीकृत संस्थाओं में लड़कियों तथा महिलाओं की संख्या चार हजार एक सौ छप्पन थी।

सन् १९२२ ई० में बिहार और उड़ीसा के अन्दर कॉलेज की छात्राएँ केवल बारह थीं। सन् १९३१-३२ ई० में उनकी संख्या चौदह हुई। सन् १९३४-३५ ई० में उनकी संख्या बत्तीस हो गयी। सन् १९३९-४० ई० में वही संख्या एक सौ सत्ताईस तक पहुँची। एक वर्ष बाद ही वह संख्या एक सौ बानवे तक पहुँच गयी। सन् १९५१-५२ ई० में केवल बिहार के कॉलेजों में ही छात्राओं की संख्या लगभग एक हजार हो गयी। सन् १९६०-६१ ई० में महिला-छात्राओं की प्रतिशत संख्या सन् १९५५-५६ ई० की अपेक्षा दुगुनी से भी अधिक हो गयी। सम्प्रति स्कूलों में ११ वर्ष के बालकों में से तीन चौथाई लड़के और एक चौथाई लड़कियाँ हैं। ११ से १४ वर्ष के बालकों में जहाँ आठ लड़के पढ़ते हैं, वहाँ एक लड़की तथा १४ से १७ वर्ष की उम्र के जहाँ १४ लड़के पढ़ते हैं, वहाँ एक लड़की भी पढ़ती है।

राष्ट्रीय पद्धति पर स्त्रियों की शिक्षा के लिए श्रीव्रजनन्दन राय और उनकी पत्नी विद्यादेवी के प्रयास से लखीसराय (मुँगेर) में सन् १९४७ ई० में एक बालिका विद्यापीठ

की स्थापना हुई। इसे महिलाओं के लिए स्वतन्त्र विश्वविद्यालय का रूप देने का उद्देश्य था। अभी यहाँ प्रवेशिका तक पढ़ाई का प्रबन्ध है। विद्यापीठ को साठ बीघे का एक भूमि-खण्ड मिल गया है। उसका अपना मकान भी है। इसके पूर्व ही सन् १६३६-३७ ई० में श्रीरामनन्दन मिश्र ने मभौलिया (दरभंगा) में एक महिला विद्यापीठ की स्थापना की थी, पर वह कुछ साल चलकर काल-कवलित हो गया।

बिहार-सरकार की सहायता से संचालित दो औद्योगिक महिला-विद्यालय वर्त्तमान हैं—वीमेन्स इण्डस्ट्रियल स्कूल (राँची) तथा वीमेन्स इण्डस्ट्रियल स्कूल (मुंगेर)। बिहार में सरकारी सहायता प्राप्त अन्य औद्योगिक महिला विद्यालय निम्नांकित हैं—

१. महिला-शिल्पकला भवन (मुजफ्फरपुर)
२. अघोर कामिनी शिल्पालय (पटना)
३. ऊरसलाइन कॉनवेन्ट गर्ल्स वीविंग ऐण्ड टेलरिंग स्कूल, खूँटी (राँची)
४. ऊरसलाइन कॉनवेन्ट गर्ल्स टेक्निकल स्कूल, रगाडीह (राँची)
५. महिला शिल्प विद्यालय (छपरा)
६. ऊरसलाइन कॉनवेन्ट रूरल वेलफेयर इंस्टिट्यूट फॉर गर्ल्स, नावाटोली (राँची)
७. महिला चर्खा मन्दिर (राँची)
८. महिला-विद्याकला-भवन (कदमकुआँ, पटना)
९. बापू-स्मारक-महिला-चर्खा संघ, (नेशनल हॉल, कदमकुआँ, पटना)
१०. महिला चर्खा क्लास (कदमकुआँ, पटना)

सन् १९५१ ई० की जनगणना के अनुसार, केवल पढ़ सकनेवाली एवं शिक्षिता स्त्रियों की वय क्रमानुसार कुल संख्या निम्नलिखित रूप में थी—

उम्र	केवल पढ़ सकनेवाली स्त्रियों की संख्या	कुल शिक्षिता स्त्रियों की संख्या
५—१४	१२,०५१	१४,७८५
१५—२४	७,८२१	१६,६१७
२५—३४	७,०४५	१५,२१६
३५—४४	५,४६४	८,७५८
४५—५४	३,६७४	५,२६९
५५—६४	३,६०१	३,२६०
६५—७४	१,५८१	१,५९२
७५ से ऊपर	१४०	७८
	४१,३७७	७८,९०५

सन् १९५९-६० ई० के वास्तविक प्रामाणिक आँकड़ों के अनुसार, नर्सरी-विद्यालयों से लेकर द्वादश वर्ग तक, लड़कियों की संख्या इस प्रकार थी—

नर्सरी-विद्यालय	४६१	षष्ठ श्रेणी	२२,०३६
शिशु-विद्यालय	५	सप्तम श्रेणी	१६,४६४
प्रथम श्रेणी	३,६०,६०८	अष्टम श्रेणी	६,६५२
द्वितीय श्रेणी	१,४२,६१६	नवम श्रेणी	६,८०१
तृतीय श्रेणी	८६,६६२	दशम श्रेणी	५,२८२
चतुर्थ श्रेणी	५०,२१६	एकादश श्रेणी	४,०८१
पंचम श्रेणी	३८,८६६	द्वादश श्रेणी	२६४
		कुल	७,४६,७१३

विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा पानेवाली स्त्रियों की संख्या निम्नांकित है—

इण्टरमीडिएट कक्षा—कला २६२, विज्ञान ४०६

डिग्री-कक्षा—कला ११६५, विज्ञान ७५

पोस्ट ग्रेजुएट-कक्षा—कला २३४, विज्ञान ३०

शोध-वर्ग—कला १८, विज्ञान २

उक्त अवधि में विभिन्न संस्थाओं में शिक्षा पानेवाली लड़कियों की संख्या इस प्रकार थी—उच्च पोस्ट बेसिक में ३४,६१७, मिडिल तथा सीनियर बेसिक में १,१७,४१३, प्राइमरी तथा जूनियर बेसिक में ५,६७,०३५, पेशेवर-शिक्षा के विद्यालयों में ३,०२७ तथा विशेष प्रकार की शिक्षा देनेवाले विद्यालयों में १०,४१२।

उक्त अवधि म ही विभिन्न संस्थाओं में महिला-शिक्षिकाओं की संख्या निम्नांकित थी—

विश्वविद्यालयों में	६	मिडिल एवं सीनियर बेसिक विद्यालयों में	१,८१०
सामान्य शिक्षा के महाविद्यालयों में	१६६	प्राथमिक एवं जूनियर बेसिक विद्यालयों में	४,५६४
पेशेवर शिक्षा के महाविद्यालयों में	१६	नर्सरी-विद्यालयों में	२७
विशेष शिक्षा के विद्यालयों में	२	पेशेवर शिक्षा के विद्यालयों में	१५०
उच्चतर पोस्ट-बेसिक एवं माध्यमिक विद्यालयों में	६६१	विशेष प्रकार की शिक्षा के विद्यालयों में	४६
		कुल	७,८११

इस प्रकार कुल ७,८११ शिक्षिकाएँ विभिन्न स्तर की संस्थाओं में शिक्षा देने मे संलग्न थी। उसी अवधि में लड़कियों के लिए उच्च विद्यालयों की संख्या ७४, मिडिल एवं सीनियर बेसिक-स्कूलों की संख्या २१८, प्राथमिक एवं जूनियर बेसिक विद्यालयों की संख्या

४०९१ थी। विद्यालय स्तर की पेशेवर शिक्षा सस्थाओं और विशेष प्रकार की शिक्षा सस्थाओं में, निम्नांकित सख्या में, लडकियाँ शिक्षा प्राप्त कर रही थीं—

टीचर्स ट्रेनिंग	२,११३	टेक्निकल, औद्योगिक, हस्त-शिल्प आदि	८७१
इजीनियरिंग एव टेकनोलॉजी	१९		
कृषि	११	प्राच्यशिक्षा	१,९३३
वाणिज्य	५३	अन्य विषयक	२८,४४६
		कुल	३३,४४६

महाविद्यालय-स्तर की पेशेवर शिक्षा-संस्थाओं एव विशेष प्रकार की शिक्षण-सस्थाओं में महिलाओं की सख्या निम्नांकित थी—

टीचर्स ट्रेनिंग महाविद्यालय	१३२	कानून	६
मेडिसिन एवं पशु चिकित्सा	२३६	सगीत, नृत्य एव ललित कला	२८
कृषि	१	प्राच्यशिक्षा	३७
वाणिज्य	५	अन्य विषयक	११
		कुल	४५६

विभिन्न प्रकार की सस्थाओं में महिलाओं के लिए छात्रवृत्तियाँ, वृत्तियाँ, नि शुल्क पढाई एव अन्य आर्थिक सुविधाएँ, निम्नांकित रूप में, सुलभ थीं—

छात्रवृत्तियाँ, वृत्तियाँ		नि शुल्क शिक्षा		अन्य आर्थिक सुविधाएँ	
महिलाओं की सख्या	खर्च	महिलाओं की सख्या	खर्च	महिलाओं की संख्या	खर्च
(विश्वविद्यालय एव महाविद्यालय स्तर)					
११०३	३,३६,२९८	८०७	८३,११२	१४५	८,५४२
(विद्यालय स्तर)					
९,५५६	८,९१,१७१	११,४९३	४, ४१,६२३	२,२९५	५६,४३७
१०,६५९	१२,२७,४६९	१२,३००	५,२४,७३५	२,४४०	६४,९७९

इसके अतिरिक्त बिहार भर में, २०) ह० प्रति छात्रा के हिसाब से, १०० छात्राओं के लिए वृत्तियाँ सुलभ हैं।

सरकारी सेवा में, निम्नांकित रूप में महिलाएँ सम्बद्ध थीं—

	प्रथम श्रेणी	द्वितीय श्रेणी	कुल
निर्देशन	१	×	१
निरीक्षण	१	१८	१९
महाविद्यालय स्तर	२	२५	२७
विद्यालय-स्तर	१	२३	२४
कुल	५	६६	७१

महिला-शिक्षा के समुचित विकास के लिए, सन् १९६० ई० में सरकार ने राज्य-स्त्री-शिक्षा परिषद् की स्थापना की थी।

स्त्री-शिक्षा के विकास के लिए, तृतीय पंचवर्षीय योजना में, सरकार की ओर से, विशेष ध्यान दिया गया है। सभी जिलों के मुख्यालयों एवं कुछ मुख्य मुख्य सबडिवीजनों के मुख्यालयों में भी लड़कियों के लिए महाविद्यालय खोलकर उनकी सहायता करने का सरकार का विचार है। इसके लिए योजना-काल में दो लाख रुपये की व्यवस्था की गयी है। सन् १९६०-६१ ई० में प्रशिक्षित महिला शिक्षिकाएँ ५१.९ प्रतिशत थीं। तृतीय पंचवर्षीय योजना में इसे ६५% कर देने का विचार है।

धनबाद और गरदनीबाग (पटना) के बालिका विद्यालयों को, जनवरी १९६२ ई० से, बहूद्देश्यीय (मल्टीपरपस) विद्यालयों के रूप में परिवर्त्तित कर दिया गया है। बालिका विद्यालयों के लिए ३५,००० रुपये की दर से पचीस बसें तृतीय योजनान्तगत खरीदी जायेंगी। द्वितीय पंचवर्षीय योजना काल में पचीस बालिका विद्यालयों की स्थापना हुई थी। तृतीय योजना काल में इनका व्यय भार स्वयं सरकार वहन करेगी। तृतीय योजना-काल में, बालिकाओं के लिए, पचीस उच्चस्तरीय माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना का प्रस्ताव है। यद्यपि ये गैर-सरकारी विद्यालय होंगे, तथापि सरकार द्वारा इनकी पूरी सहायता की जायगी। इन विद्यालयों के भवन निर्माण के लिए प्रति विद्यालय को पचास हजार रुपये दिये जायगे। उपस्कर एवं अन्य प्रसाधनों की खरीदने के लिए प्रति विद्यालय को १२,५०० रु० प्रति वर्ष देने की योजना है। *सातवीं श्रेणी तक बालिकाओं को निःशुल्क शिक्षा देने की* व्यवस्था की गयी है। जिन विद्यालयों में सह शिक्षा की व्यवस्था है, उनमें लड़कियों के लिए अलग शौचालय, पेशाबखाना तथा विश्राम गृह बनवाने की व्यवस्था की गयी है, जिसके लिए ढाइ लाख रुपए की स्वीकृति हुइ है।

तृतीय योजना काल में ३० बालिका-विद्यालयों में छात्रावास बनवाने का प्रस्ताव है, जिसके लिए साढे सात लाख रुपये की व्यवस्था की गयी है। महिला-शिक्षिकाओं के लिए १०० आवास गृह, गैर-सरकारी विद्यालयों में, बनवाने की व्यवस्था की गयी है। इस काम के लिए पाँच लाख रुपये की व्यवस्था हुई है। गैर सरकारी बालिका मिडिल-स्कूलों के भवनों

की वृद्धि के लिए तीन लाख रुपयों की व्यवस्था की गयी है। बालिकाओं की शिक्षा के प्रोत्साहन के लिए उपस्थिति-पुरस्कार, दक्षता पुरस्कार एव अन्य प्रकार के पुरस्कारों की भी व्यवस्था की गयी है। इसके लिए सरकार ने पन्द्रह लाख रुपये खर्च करने की व्यवस्था की है। द्वितीय योजना-काल मे शिक्षिकाओं के लिए १००० नि शुल्क आवास गृहों की व्यवस्था हुई थी। अब और भी २००० नि शुल्क आवास गृहों की व्यवस्था की जा रही है।

पाँचवीं श्रेणी तक शिक्षा प्राप्त वयस्क स्त्रियों के लिए एक वर्ष के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गयी है। इस प्रशिक्षण के बाद वे दो वर्षों तक प्रशिक्षण-विद्यालयों में प्रशिक्षण प्राप्त कर सकेगी। इस प्रकार, उन महिलाओं की शिक्षा का उपयोग प्राथमिक एव माध्यमिक स्कूलों में किया जायगा। इसके लिए तीन लाख रुपयों की व्यवस्था की गयी है।

तृतीय योजना काल में लक्ष्य के अनुसार, सोलह लाख अतिरिक्त बच्चों मे से दस लाख केवल लडकियों को ही स्कूलों म लाना है। इस योजना के अन्त मे लडकों और लडकियों का अनुपात पाँच और तीन कर देन का प्रस्ताव है। इस तरह, ११ से १४ और १४ से १७ वर्ष तक की लडकियों म से क्रमश ११ ४ प्रतिशत तथा ४ ३ प्रतिशत लडकियाँ स्कूलों में पढने लगेंगी। स्त्रियों की शिक्षा के प्रोत्साहन के लिए तीन लाख रुपये की छात्र-वृत्ति की स्वीकृति सरकार ने सन् १९६२-६३ ई० में दी है। इस प्रकार, पता चलता है कि महिला शिक्षा के लिए बिहार सरकार पूर्ण रूप से सचेष्ट है

बिहार की जनता को सरकार के प्रयत्नों की सफलता क लिए हार्दिक सहयोग देना चाहिए। सभी सरकारी योजनाओं की सफलता जन सहयोग पर ही निर्भर है। पुरुषों को अपनी बहू-बेटियों की शिक्षा पर उतना ही ध्यान देना चाहिए, जितना वे अपन घर के लडकों की शिक्षा पर ध्यान देते हैं। पुरान दकियानूसी विचारों के अनुसार स्त्रियों की उच्च शिक्षा से भडकने का जमाना लद गया। अब इस नये प्रगतिशील वैज्ञानिक युग की यही माँग है कि स्त्रियों को उनकी रुचि और इच्छा के अनुसार ऊँची-से-ऊँची शिक्षा के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन दिया जाय। तभी देश और समाज की वाञ्छनीय उन्नति हो सकेगी। केवल लडकों की शिक्षा से न समाज का सुधार होगा—न देश का अभ्युदय। यहाँ मैं हिन्दी के बहुत पुराने उपन्यासकार ख्यात नामा पडित किशोरीलाल गोस्वामी के 'माधवी माधव' नामक मौलिक और प्रसिद्ध उपन्यास के परिशिष्टाश से कुछ महत्त्वपूर्ण पक्तियाँ उद्धृत करके इनकी ओर पुरुषवर्ग का ध्यान आकृष्ट करते हुए यह लेख समाप्त करता हूँ—

"यदि विचारकर—सूक्ष्म विचारकर देखा जाय, तो यह बात स्पष्ट हो जायगी कि 'सुगृहिणी' किंवा 'कुगृहिणी' बनाने के मूल कारण 'पुरुष' ही है, क्योंकि बाल्यावस्था से लडकियों को जैसी शिक्षा दी जायगी, वे जैसे ससर्ग में रहेंगी, अपने माता पिता के आचरणों से जो कुछ सीखेंगी और लडकपन ही से उनका जैसा सस्कार हो जायगा, स्यानी होने पर वे वैसे ही शील, स्वभाव, आचरण और गुण किंवा अवगुण की आदर्श होंगी, इसलिए बेचारी स्त्रियों को कदापि कोई दोष न देना चाहिए, वरन उनके माता पिता या अभिभावकों को ही

स्त्रियों के बिगड़ने का मूल कारण समझकर उन्हीं को इस दोष का दोषी और इस अपराध का अपराधी समझना चाहिए और इस संक्रामक व्याधि के दूर करने का समाज के नेताओं को यथासाध्य प्रयत्न करना चाहिए।...मैं अपने देशवासियों से इस बात के लिए सविनय अनुरोध करता हूँ कि वे सबसे पहले कन्याओं के सुधार करने का प्रयत्न करें; क्योंकि यदि सुकन्या, समय पाकर, सुगृहिणी होगी तो वही एक दिन सुमाता भी होगी; और यदि वह सुमाता होगी तो उसका पुत्र सपुत्र अवश्य ही होगा। बस, यदि ऐसे सुपुत्रों की उत्पत्ति इस देश में होने लगेगी तो इस देश के धर्म, समाज और अन्यान्य विषयों का सुधार स्वयं अवश्यमेव सुधार हो जायगा। अन्यथा चाहे लोग लाख रोवें, चिल्लावें, सभा-सोसाइटी करें या कुछ भी क्यों न करें, रसातलगत इस देश का उद्धार कभी भी नहीं होगा, यह ध्रुव है।"

पति-पत्नी की प्रीति ही समाज की रीढ़

श्रीमती प्रभावती शर्मा, बी० ए०, साहित्यरत्न; भागलपुर

ईश्वर की सृष्टि के मूलाधार पति और पत्नी ही हैं। पति और पत्नी से ही परिवार बनता है। परिवारों का समुदाय ही समाज कहलाता है। विभिन्न सम्प्रदायों, वर्गों और जातियों के समाज से ग्रामों तथा नगरों का निर्माण होता है। ग्रामों और नगरों के समूह से देश अथवा राष्ट्र का रूप खड़ा होता है। इस प्रकार, संसार की आधार-शिला पति और पत्नी ही हैं। इन दोनों की सच्ची प्रीति से ही समाज और देश में सुख शान्ति का अस्तित्व रह सकता है। जिस परिवार में पति और पत्नी के बीच प्रीति-रीति नहीं निबहती, वह परिवार नरक-तुल्य बन जाता है। जहाँ पति-पत्नी में पारस्परिक प्रेम रहता है, वहाँ पृथ्वी पर स्वर्ग उतर आता है।

इस सृष्टि की रचना परमात्मा और प्रकृति के सहयोग से होती है। परमात्मा का प्रतीक है पुरुष और प्रकृति की प्रतीक है नारी। श्रीमद्भगवद्गीता (अ० ६, श्लो० १०) में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा है कि मुझ अधिष्ठाता के सम्पर्क से यह मेरी माया (प्रकृति) चराचर-सहित समस्त जगत् को रचती है—*मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।* फिर, चौदहवें अध्याय के तीसरे-चौथे श्लोकों में भी भगवान् ने इस बात को अधिक स्पष्टता से दुहराया है—

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम् ।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥३॥
सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥४॥ (अ० १४)

अर्थात्, "हे अर्जुन, मेरी महत् ब्रह्म-रूप प्रकृति, अर्थात् त्रिगुणमयी माया सम्पूर्ण भूतों की योनि है, अर्थात् गर्भाधान का स्थान है और मैं उस योनि में चेतन-रूप बीज का स्थापन करता हूँ, उस जड-चेतन के संयोग से सब प्राणियों की उत्पत्ति होती है ॥३॥ नाना प्रकार की सब योनियों में जितनी मूर्त्तियाँ, अर्थात् शरीर उत्पन्न होते हैं, उन सबकी त्रिगुणमयी माया तो गर्भ धारण करनेवाली माता है और बीज का स्थापन करनेवाला पिता मैं हूँ ॥४॥"[1]

इस प्रकार, पति और पत्नी का वैसा ही अभिन्न सम्बन्ध है, जैसा परमात्मा और उनकी योगमाया का। यह योगमाया ही प्रकृति है और प्रकृति स्वरूपिणी पत्नी या नारी ही सृष्टि की जननी (माता) है। गीता में ही भगवान् ने सातवें अध्याय के पाँचवें-छठे श्लोकों में कहा है कि "आठ प्रकार के (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश,[2] मन, बुद्धि, अहंकार) भेदोंवाली, मेरी 'अपरा'—जड—प्रकृति है और जीव रूप मेरी 'परा'—चेतन—प्रकृति है, जिससे यह सम्पूर्ण जगत् धारण किया जाता है।' इसी जड चेतन के संसर्ग से सृष्टि रची जाती है। इसी कारण, नारी जगदम्बा मानी गयी है और जगत्पिता परमात्मा के अंशभूत पुरुष के सम्पर्क से वह जगज्जननी की प्रतिष्ठा पाती है। पति पत्नी के ऐसे महत्त्वपूर्ण और पवित्र सम्बन्ध का रहस्य जो नहीं समझते, वे न सच्चे पति पत्नी हैं और न मनुष्य ही कहलाने के अधिकारी हैं।

संसारी लोगों की धारणा है कि पति-पत्नी की प्रीति दोनों के समान रूप से सुन्दर होने पर ही स्थिर रहती है। यदि दोनों में कोई एक कुरूप होता है, तो पारस्परिक प्रेम में बाधा पडती है। किन्तु, यह आधुनिक युग की धारणा जान पडती है। आज से पचास साठ ही साल पहले कोई पति अपनी भावी पत्नी को, विवाह होने के पहले, नहीं देख पाता था—यहाँतक कि कन्या को भी अपने भावी जीवन-संगी के रूप गुण का कुछ ज्ञान नही रहता था। फिर भी, पचास साठ साल पहले के पति-पत्नी आधुनिक युग के पति पत्नियों से कुछ कम सुखी न थे। आज तो चित्र दर्शन के अतिरिक्त प्रत्यक्ष दर्शन भी एक प्रचलित प्रथा सा बनता जा रहा है, तब भी समाज में नाना प्रकार की विषमता और अशान्ति दीख पडती है। अखबारों में जो इस विषय के समाचार प्रकाशित होते रहते हैं—और ऐसे अनेक समाचार तो अखबारों में पहुँच ही नहीं पाते—उन्हें देखने से पता चलता है कि विवाह के पूर्व परस्पर दृष्टि-दान और चित्र दर्शन की सुविधा होने पर भी आधुनिक पति पत्नी के कितने ही जोडे यथेष्ट सन्तुष्ट नहीं हैं। इसका कारण वर्त्तमान सभ्य युग का प्रभाव कहा जा सकता है। आज के नर नारियों का दृष्टिकोण बदल गया है मनोवृत्ति और प्रवृत्ति भी बदल गयी है। किन्तु, यह निश्चित बात है कि जिस दृष्टि के साथ विषयी मन लगा रहता है, वह दृष्टि इस मधुर सम्बन्ध की पवित्रता नहीं समझ सकती।

---

१ गीता प्रेस (गोरखपुर) द्वारा प्रकाशित 'गीता' की टीका से।—ले०

२ छिति जल पावक गगन समीरा। पंचरचित यह अधम सरीरा॥ (तुलसी)

मैंने अपने गुरुजनों और सम्बन्धियों में पिछली पीढ़ी के कितने ही दम्पतियों को देखा है कि उनमें रूप की समानता नहीं है, तब भी उनका दाम्पत्य-प्रेम आदर्श है। कहीं पत्नी सुन्दरी है, तो पति उसके अनुरूप नहीं और कहीं पति सुन्दर है तो पत्नी उसकी कुरूपा है। जहाँ दोनों में सौन्दर्य है, वहाँ निर्धनता का अभिशाप है। यह तो विधाता का विचित्र विधान है। किन्तु, ऐसी विपरीतता में भी पिछली पीढ़ी की जोड़ियों को शान्ति और सन्तोष के साथ रहते देखकर आश्चर्य के साथ-ही साथ श्रद्धा भी होती है। उन्हें अपने समय में मिलन-दर्शन तक की सुविधा नहीं प्राप्त थी। उनका दाम्पत्य जीवन कई तरह के प्रतिबन्धों से जकड़ा हुआ होता था। उनकी सांसारिक वासनाओं की आसक्ति भी नियंत्रित थी। पर, आज के दम्पतियों को उन्मुक्त वातावरण में स्वच्छन्द विचरण का सुअवसर सुलभ है। आज की पत्नी अपने पति की सच्ची जीवन-संगिनी बनकर पति के बहुत-से कामों में हाथ बँटाती है। आज के पति को अपनी पत्नी से घर के बाहरवाले कितने ही कामों में भी सहायता मिलती है। जहाँ दोनों शिक्षित हैं, वहाँ दोनों कमाकर परिवार चलाते हैं। यदि शिक्षित होने पर भी पत्नी कोई नौकरी नहीं करती, तो पति के लिखने पढ़ने के काम से लेकर गृह-प्रबन्ध के कामों तक को कुशलता से सँभालती है। इतना होने पर भी आज के कितने ही परिवार दाम्पत्य-प्रेम के सुख से वंचित देखे जाते हैं। आर्थिक कठिनाइयों के कारण भी दोनों के प्रेमपाश में ढीलापन देखने में आता है। पिछली पीढ़ी के पति-पत्नी अभावों में भी प्रीति की चमक को मन्द नहीं होने देते थे।

मैं पहले कह चुकी हूँ कि पति पत्नी के रूप-गुण का विचार करने में दृष्टिकोण का भेद है। वर्त्तमान उन्नत समाज में भी दोनों में कहीं-कहीं उन्नीस-बीस का अन्तर देखने में आता है, बल्कि कहीं कहीं तो इससे भी अधिक अन्तर दिखायी पड़ता है। फिर भी, दोनों सुख शान्ति से जीवन बिताते हैं। आज की नारी भी धन-वैभव की भूखी नहीं है, सच्ची प्रीति की ही भूखी है। यदि उसे भरपूर प्रेम न मिले, तो कोठी बँगला और मोटर कार को वह तुच्छ समझती है। उसके रूप से पति का रूप कुछ मन्द भी हो और वह पति उसे प्रेम की देवी समझता हो, तो उतने से ही वह पूर्ण सन्तुष्ट रहेगी। ऐसे अनेक दृष्टान्त आज के समाज में प्रत्यक्ष हैं। नारी जाति ही प्रेम की अधिष्ठात्री है। वास्तव में प्रीति ही नारी के रूप में साकार हुई है।

पार्वती की प्रीति परीक्षा के लिए जब सात ऋषियों को शिवजी ने भेजा था, तब उनलोगों ने विष्णु के दिव्य और शंकर के भयंकर रूप का वर्णन करके पार्वती को बहकाना चाहा, पर नारी-धर्म का आदर्श पालनेवाली पार्वती ने बहुत ही सुन्दर उत्तर दिया था—

> महादेव अवगुन भवन विष्णु सकल गुन धाम।
> जेहि कर मन रम जाहि सन तेहि तेही सन काम॥

शिवजी की बरात आने पर उनकी विकट वेशभूषा और जमात देखकर पार्वती की माता मैना अपनी कन्या को गोद में बिठाकर रोने-कलपने लगी—

आदर्श दम्पति

मैंने अपने कुटुम्बियों और सम्बन्धियों में पिछली पीढ़ी के कितने ही दम्पतियों को देखा है कि उनमें रूप की समानता नहीं है, तब भी उनका दाम्पत्य-प्रेम आदर्श है। कहीं पत्नी सुन्दरी है, तो पति उसके अनुरूप नहीं और कहीं पति सुन्दर है तो पत्नी उसकी कुरूपा है। जहाँ दोनों में सौन्दर्य है, वहाँ निःसंतता का अभिशाप है। यह तो विधाता का विचित्र विधान है। किन्तु, ऐसी विपरीतता में भी पिछली पीढ़ी की जोड़ियों को शान्ति और सन्तोष के साथ रहते देखकर आश्चर्य के साथ-ही साथ श्रद्धा भी होती है। उन्हें अपने समय में मिलन-दर्शन तक की सुविधा नहीं प्राप्त थी। उनका दाम्पत्य जीवन कई तरह के प्रतिबन्धों से जकड़ा हुआ होता था। उनकी सांसारिक वासनाओं की आसक्ति भी नियंत्रित थी। पर, आज के दम्पतियों को उन्मुक्त वातावरण में स्वच्छन्द विचरण का सुअवसर सुलभ है। आज की पत्नी अपने पति की सच्ची जीवन-संगिनी बनकर पति के बहुत-से कामों में हाथ बँटाती है। आज के पति को अपनी पत्नी से घर के बाहरवाले कितने ही कामों में भी सहायता मिलती है। जहाँ दोनों शिक्षित हैं, वहाँ दोनों कमाकर परिवार चलाते हैं। यदि शिक्षित होने पर भी पत्नी कोई नौकरी नहीं करती, तो पति के लिखने पढ़ने के काम से लेकर गृह-प्रबन्ध के कामों तक को कुशलता से सँभालती है। इतना होने पर भी आज के कितने ही परिवार दाम्पत्य-प्रेम के सुख से वंचित देखे जाते हैं। आर्थिक कठिनाइयों के कारण भी दोनों के प्रेमभाव में ढीलापन देखने में आता है। पिछली पीढ़ी के पति-पत्नी अभावों में भी प्रीति की चमक को मन्द नहीं होने देते थे।

मैं पहले कह चुकी हूँ कि पति-पत्नी के रूप-गुण का विचार करने में दृष्टिकोण का भेद है। वर्तमान उन्नत समाज में भी दोनों में कहीं-कहीं उन्नीस-बीस का अन्तर देखने में आता है, बल्कि कहीं कहीं तो इससे भी अधिक अन्तर दिखायी पड़ता है। फिर भी, दोनों सुख-शान्ति से जीवन बिताते हैं। आज की नारी भी धन-वैभव की भूखी नहीं है, सच्ची प्रीति की ही भूखी है। यदि उसे भरपूर प्रेम न मिले, तो कोठी बँगला और मोटर कार को वह तुच्छ समझती है। उसके रूप से पति का रूप कुछ मन्द भी हो और वह पति उसे प्रेम की देवी समझता हो, तो उतने से ही वह पूर्ण सन्तुष्ट रहेगी। ऐसे अनेक दृष्टान्त आज के समाज में प्रस्तुत हैं। नारी जाति ही प्रेम की अधिष्ठात्री है। वास्तव में प्रीति ही नारी के रूप में साकार हुई है।

पार्वती की प्रीति-परीक्षा के लिए जब सात ऋषियों को शिवजी ने भेजा था, तब उनलोगों ने विष्णु के दिव्य और शङ्कर के भयंकर रूप का वर्णन करके पार्वती को बहकाना चाहा, पर नारी-धर्म का आदर्श पालनेवाली पार्वती ने बहुत ही सुन्दर उत्तर दिया था—

महादेव अवगुन भवन विष्णु सकल गुन धाम।
जेहि कर मन रम जाहि सन तेहि तेही सन काम॥

शिवजी की बरात आने पर उनकी विकट वेश भूषा और जमात देखकर पार्वती की माता मैना अपनी कन्या को गोद में बिठाकर रोने-कलपने लगी—

आदर्श दम्पति

कस कीन्ह बर बौराह बिधि जेहि तुम्हहिं सुन्दरता दई।
जो फल चहिय सुरतरहिं सो बरबस बबूरहिं लागई॥

अपनी माता को, विवाह न होने देने के लिए, रोष में आया देख पार्वती ने बहुत समझाया-बुझाया—

अस बिचारि सोचहि मति माता। सो न टरइ जो रचइ बिधाता॥
करम लिखा जौं बाउर नाहू। तौ कत दोस लगाइअ काहू॥
तुम्ह सन मिटहिं कि बिधि के अंका। मातु ब्यर्थ जनि लेहु कलंका॥
जनि लेहु मातु कलंक करुना परिहरहु अवसर नहीं।
दुख सुख जो लिखा लिलार हमरे जाब जहँ पाउब तहीं॥

—रामचरितमानस

यहाँ भाग्यवादिता पर वर्तमान काल के नर-नारियों को आपत्ति हो सकती है। किन्तु, गहराई से सोचने पर उस आपत्ति का निवारण हो जायगा। पति और पत्नी का सम्बन्ध जुटाने में सचमुच भाग्य ही सहायक होता है। वर और कन्या का जन्म पन्द्रह-बीस या पचीस-तीस वर्ष पहले ही हुआ रहता है। कन्या का पिता नहीं जानता कि मेरी पुत्री का पति कहाँ है, अतः वह अन्धकार में चारों ओर टटोलता फिरता है। किन्तु, सम्बन्ध जुड़ने की शुभ घड़ी जब आ जाती है, तब अनायास ही वर कन्या का भाग्य-सूत्र जुट जाता है।

इसीलिए, भारतवर्ष में कन्याओं से देवाराधन कराया जाता था। पार्वती ने नारद के उपदेश से शिवजी को पति के रूप में पाने के लिए कठिन तपस्या की थी। सीता को भी उनकी माता सुनयना सदा सखियों के साथ राज वाटिका में भवानी-पूजा करने के लिए भेजा करती थीं। रुक्मिणी ने भी देवमन्दिर में सहेलियों के साथ जाकर श्रीकृष्णचन्द्र को पति रूप में पाने के लिए ईश्वर प्रार्थना की थी। कन्या की हार्दिक प्रार्थना को सफल होते बहुतेरों ने इस युग में भी देखा है। जो कन्या अपने मन के अनुकूल पति पाने के लिए, विवाह के पहले से ही, नित्य नियमित रूप से ईश्वर-प्रार्थना करती है, वह अवश्य ही सफल मनोरथ होती है। तन-मन लगाकर कुमारी को इसका अभ्यास करना चाहिए। शिव पार्वती की पूजा यदि कन्या से करायी जाय, तो वर की खोज में भी सुविधा और सहायता मिलती है। यह अनेक बड़ी बूढ़ी देवियों का निजी अनुभव है। देवाराधन कभी विफल नहीं होता। ईश्वर-प्रार्थना की अमोघ शक्ति का सुफल भोगनेवाली अनेक बहनों को मैं स्वयं भी जानती हूँ। मेरे पिता और पति के परिवार में आज भी प्रथा है कि कुआँरी लड़की से शिव पार्वती की पूजा करायी जाती है। अबतक ऐसी सभी लड़कियों को अच्छा ही घर-वर मिला है।

हम भारतीय नारियों के सामने पति पत्नियों के बड़े ऊँचे आदर्श विद्यमान हैं। वैदिक युग से आधुनिक युग तक आदर्श पति पत्नियों की अत्यन्त उज्ज्वल परम्परा हमारी आँखों के आगे प्रकाशमान है। महाकवि तुलसीदास ने राम सीता के विषय में कितना सुन्दर लिखा है—

गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।

× × ×

जनकसुता जगजननि जानकी। अतिशय प्रिय करुनानिधान की॥

यहाँ पति-पत्नी की अभिन्नता और 'अतिशय प्रिय' पर ध्यान देने की आवश्यकता है। यदि पति-पत्नी इसी प्रकार अभिन्न न हुए और उन्हें परस्पर 'अतिशय प्रिय' होने का सौभाग्य भी प्राप्त न हो सका, तो उनका जीवन कदापि सुखमय नहीं हो सकता।

रावण की पत्नी मन्दोदरी की गिनती परम सुन्दरी पंचकन्याओं में होती है। उसका पति स्वेच्छाचारी था। फिर भी, वह अवसर पाकर बड़ी नम्रता के साथ पति को अच्छी सलाह दिया करती थी। अन्त तक वह पति को सीधी राह पर लाने के लिए समझाती ही रही। हमारे शास्त्रों ने पत्नी को पति का मंत्री और मित्र भी कहा है।

पति और पत्नी की प्रीति दोनों के पारस्परिक विश्वास और सद्भाव पर निर्भर है। वह विश्वास और सद्भाव ऐसा अविचल होना चाहिए कि उसमें किसी प्रकार से भी दुराव या भेदभाव न पैठ सके। उस प्रीति के बढ़ाने और सरसाने में स्वच्छता तथा सुगन्ध का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। सबसे बढ़कर श्वास-सौरभ उस प्रीति को विशेष प्रगाढ़ बनाता है। पति और पत्नी दोनों को ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि रहन सहन, खान-पान, बोल-चाल और लेन-देन में कहीं भी मलिनता का आभास किसी को न मिले। दुर्गन्ध-जनित घृणा से प्रीति सिकुड़ती है और पुष्पहार अथवा तेल-फुलेल की सुगन्ध से प्रीति का विस्तार होता है। प्रीति की वृद्धि के लिए तन मन की स्वच्छता के साथ ही वातावरण की स्वच्छता भी अनिवार्य है। शरीर और शय्या, वस्त्र और भूषण, व्यवहार अथवा उपयोग की प्रत्येक वस्तु का स्वच्छ रहना प्रीति वर्द्धक है। मुख-सुरभि उस प्रीति के आनन्द की वृद्धि करती है। सुगन्धों का सेवन दोनों हृदयों को जोड़ता है। जो ताम्बूल का सेवन नहीं करते, उनके लिए लवङ्ग, कर्पूर, इलायची, सौंफ, जावित्री आदि का सेवन लाभदायक है। अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार स्वच्छता के प्रयोग और सुगन्ध के सेवन का अभ्यास करने से पारिवारिक जीवन सुखद होता है।

पति और पत्नी की समझदारी से भी आपस की प्रीति दिन-दिन स्निग्ध होती जाती है। पति को समझना चाहिए कि पुरुषत्व की कसौटी है नारी, और पत्नी को समझना चाहिए कि ईश्वर-दत्त महिलोचित गुणों की रमणीयता का कुशलतापूर्ण प्रदर्शन ही पुरुष के लिए वशीकरण मन्त्र है। पति यदि पत्नी को दासी समझ अपना प्रभुत्व प्रकट करता रहेगा, तो वह बलपूर्वक शासन भले ही कर ले, प्रेम के शासन का सुख उसे नसीब न होगा। भारतीय संस्कृति के अनुसार तो दोनों को एक दूसरे के हृदय के भावों को समझकर आपस की बातचीत से ही दोषों का निवारण कर लेना उचित है। प्रेम के नाते तो दोनों ही एक दूसरे के सेवक हैं। पत्नी को यदि पति से सेवा कराने की चाह हो, तो वह साध केवल प्रीति के माध्यम से ही पूरी हो सकती है। जो पति 'जोरू का टट्टू' है, वह प्रीतिमयी सेवा

नहीं कर सकता—वह स्वार्थ-लोलुप है। सच्चा प्रेम पुजारी पति कभी स्वार्थवश पत्नी की सेवा नहीं करता, वह प्रीति की लता को सींचता है। प्रीति रीति से की गयी सेवा का स्वरूप दोनों को ठीक ठीक समझ लेना चाहिए। यह किसी को समझाना नहीं पड़ता, स्वाभाविक अनुभव से आप ही-आप समझ में आ जाता है। पत्नी के वार्त्तालाप और व्यवहार से उसका हृदय पति के सामने स्वत खुल जाता है। इसी तरह पति की बातचीत से पत्नी भी, बिना किसी यन्त्र की सहायता के ही, पति के हृदय का रहस्य समझ लेती है। दोनों के दिल में ईश्वरीय तारबर्की लगी होती है। किसी का छल कपट किसी से छिपा नहीं रह सकता। इसलिए, प्रीति रीति को जीवन भर निबाहने के लिए यह आवश्यक है कि दोनों ही अपनी-अपनी भूल चूक एक दूसरे से साफ साफ कहते रहें। मनुष्य से गलती हो ही जाती है। यदि पति अपनी त्रुटि पत्नी से कह दिया करे और पत्नी भी खुले दिल से पति से कह दे, तो गलतफहमी नहीं रहेगी। दोनों में से किसी के मन में किसी प्रकार की भ्रान्ति या खोट न रहनी चाहिए। हाँ, यह भूल चूक का आपसी समझौता केवल सहृदयता भरी समझदारी पर ही टिका रह सकता है।

पती और पत्नी की प्रीति की स्थिरता के लिए दोनों का पूर्ण स्वस्थ रहना भी आवश्यक है। दोनों में से कोई एक भी रोगी होगा, तो मानव-स्वभाव की दुर्बलता का शिकार होने की आशका दूसरे के साथ लगी रहेगी। जैसे पत्नी चाहती है कि मेरा पति सदा स्वस्थ रहे, वैसे ही पति को भी पत्नी के स्वास्थ्य की चिन्ता रखनी चाहिए। भोजन-शयन मे यथोचित सयम रखने पर दोनों का समान रूप से ध्यान रहे, तो स्वास्थ्य की समस्या उलझनदार न बन पावेगी। भगवद्गीता (६।११) मे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने उपयुक्त आहार-विहार और नियमित सोने जागने को ही सुखद योग साधना बतलाया है। पति पत्नी को इस योग-साधना के अभ्यास में तत्पर रहकर अपनी अगली पीढ़ी को सँवारना-सुधारना चाहिए। यदि पति पत्नी सदा स्वस्थ रहने मे दत्तचित्त रहेंगे, तो उनकी सन्तान नीरोग और मेधावी होगी। पति पत्नी यदि ठीक समय पर सोने जागने का नियम नहीं पालेंगे, तो उनको देखादेखी बच्चे भी आलसी और दीर्घसूत्री हो जायेंगे। इस तरह, पति-पत्नी पर सारे परिवार के नेतृत्व का उत्तरदायित्व है। इतनी बड़ी जवाबदेही अच्छी तन्दुरुस्ती से ही निभ सकती है।

गुरुजनों, अतिथियों, आश्रितों और पालतू घरेलू पशु पक्षियों की देखभाल करते रहना भी पति-पत्नी का ही कर्त्तव्य है। पति का ईश्वर तो मन्दिर मे रहता है, परन्तु पत्नी का ईश्वर उसके कर्त्तव्य-पालन में ही बसता है। जिनकी देखरेख का भार उसी के ऊपर है, उनकी सेवा करके ही वह इश्वर की पूजा का फल पा जाती है। उसको परिवार के बच्चों के जीवन का निर्माण करना है—उन्हें भारतीय सस्कृति का उपासक नागरिक बनाना है, आतिथ्य-सत्कार करके अपने कुल परिवार की प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखना है, गुरुजनों की सेवा शुश्रूषा करके पुण्य कमाना है, आश्रितों को सन्तुष्ट करके गृहस्वामिनी की मर्यादा का

पालन करना है। इस तरह, पत्नी के कर्तव्य पति देव के कर्तव्यों से कहीं अधिक हैं। इन कर्तव्यों का यथोचित पालन करके ही पत्नी अपने पति के प्रेम की पात्री बन सकती है।

पति को पथभ्रष्ट होते देख पत्नी को बड़ी सावधानता और चतुरता के साथ उसे अपनी मुट्ठी में करने के लिए सचेष्ट होना चाहिए। जो काम नरमी और मिठास से हो जाय, उसके लिए कलह-कोलाहल करना खतरनाक है। किन्तु, पत्नी के पथभ्रष्ट होने का तो मूल कारण पति ही होता है, इसलिए बहकी हुई पत्नी को रास्ते पर लाने में पति को बड़ी कठिनाई झेलनी पड़ती है; जब वह किसी-न-किसी क्षोभ में ही दूसरा कुपथ पर पाँव देता है। कभी कभी संयोग बिगड़ने से अनिष्टकर प्रसंग उपस्थित हो जाता है। पारस्परिक सहयोग से दोनों को प्रेममय जीवन-यापन की कला में निपुण होने का निरन्तर प्रयास करते रहना चाहिए। हृदय-मिलन की इच्छा दोनों ओर उत्कट होगी, तो कभी कोई बट्टा न पड़ेगा।

आजकल प्रायः पति और पत्नी सर्वदा सर्वत्र साथ रहने लगे हैं। किन्तु, जो परदेशी पति की पत्नी है, उसको आत्मरक्षा के लिए हरदम सजग रहना चाहिए। यह सभी जानते हैं कि विरहिणी पत्नी जितनी पीड़ा अनुभव करती है, परदेशी पति उतना कष्ट नहीं अनुभव करता। तब भी पति केवल प्रेम-पत्र लिखकर अपने दिल को तसल्ली दे लेता है। परन्तु, पत्नी किसी तरह चैन नहीं पाती। इससे यह सिद्ध है कि पत्नी की प्रीति पति से कहीं अधिक तीव्र होती है। प्रीति में पत्नी को पति कभी जीत नहीं सकता। सच्चा पति इस हार को ही अपनी जीत समझता है। ऐसे प्रीति परायण पति-पत्नी ही समाज और देश को आनन्द-मंगल का धाम बना सकते हैं।

आजकल प्रायः देखने में आता है कि युवक-युवती आकस्मिक प्रेमावेश के चक्कर में पड़कर पति पत्नी बन जाते हैं। ऐसे प्रेमासक्त दम्पतियों में से कितनों का ही जीवन सुखमय भी होता है और कितनों को आगे चलकर होश होने पर जोश के लिए पछताना भी पड़ता है। किन्तु, सबसे बड़ी कठिनाई उनके सामने तब आती है, जब उन्हें अपनी सन्तानों का विवाह करने की आवश्यकता होती है। अभी तक हमारा समाज ऐसा उन्नत और उदार नहीं हुआ है कि पुराने संस्कारों का तिरस्कार करके कोई नया काम करने का साहस करे। यदि समाज में ऐसा साहस रहता, तो आज कितनी ही सामाजिक और राजनीतिक समस्याएँ भी हल हो जातीं। तब भी, शिक्षा का प्रचार जितना ही बढ़ेगा, उतना ही अधिक प्रेम-विवाहों की संख्या बढ़ेगी और सह-शिक्षा-प्रणाली भी इसमें सहायक होगी। अतः, समाज को अब विशेष उदार होना चाहिए, जिससे नयी रोशनी के पति-पत्नी अपने मूलभूत समाज के ही अंग बने रहें। इस वैज्ञानिक युग में केवल प्रीति की दृष्टि से ही जाग्रत् नर नारी का गँठबन्धन हो सकेगा और जहाँ प्रीति का सीमेंट नहीं रहेगा, वहाँ दो जीवन तथा दो हृदय एक साथ नहीं जुट सकेंगे।

●●

उन्नीसवीं सदी में बिहार की स्त्रियों की सामाजिक स्थिति

श्रीमती कमला देवी, एम्० ए० (हिन्दी), हुङ्कार प्रेस, पटना

[पाश्चात्य प्रभाव—राजा राममोहन राय—स्वामी दयानन्द सरस्वती—श्रीमती एनीबेसेण्ट]

भारत की सभ्यता संस्कृति अन्य देशों की अपेक्षा अत्यन्त प्राचीन एवं श्रेष्ठ है। पुरुषों की कौन कहे, हमारे प्राचीन भारत की महिलाएँ भी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अग्रणी थीं। उनकी विद्वत्ता ऐसी थी कि बड़े-बड़े पंडितों को भी शास्त्रार्थ में उनसे पराजित होना पड़ता था। घर-आँगन की लक्ष्मियों ने गाढ़े समय में तलवार भी उठायी थी। रणक्षेत्र में वे पुरुषों से कभी पीछे न रहीं। भारतीय साहित्य भारतीय महिला रत्नों की गुण गाथाओं से परिपूर्ण है। लेकिन समय गतिशील है। परिवर्त्तन का चक्र अनवरत चलता ही रहता है।

समय के चक्र परिवर्त्तन से भारत को विदेशी शासकों के हाथों में आना पड़ा। इन विदेशी शासकों में विशेष रूप से मुसलमान बादशाहों की विलासिता ने भारतीय ललनाओं को पर्दे के पीछे रहने को मजबूर किया। अन्त में, जब ये मुसलमान शासक अपनी विलासिता के पंक में डूबकर आत्मशक्ति खो बैठे, तब भारतवर्ष फिर दूसरे विदेशी विधर्मी आक्रमणकारियों द्वारा पदाक्रांत हुआ। राष्ट्रीय चेतना शून्य भारतीय गुलाम बनकर रह गये थे, जो नाना प्रकार के अत्याचारों को चुपचाप सहते रहकर भी नहीं जागते थे—युगों की जड़ता हटती नहीं थी। अँगरेजी कम्पनी ने कमजोर मुगल-सल्तनत की जड़ पूरी तरह खोद डाली। जो विदेशी व्यापारियों के रूप में आये, उनमें अँगरेज प्रमुख थे। मुसलमानों का प्रताप सूर्य ढल चुका था, अँगरेजों के पैर धीरे-धीरे जमने लगे थे।

उन्नीसवीं सदी भारत के इतिहास में एक प्रश्नवाचक चिह्न की तरह है, जहाँ प्राचीन और नवीन कंधे परस्पर घिसते हैं। भारतीय समाज की पुरानी व्यवस्था, अपनी आन्तरिक दुर्बलताओं के कारण, जीर्ण हो रही थी। शताब्दियों से भारतीय समाज अनगिनत सामाजिक एवं धार्मिक रोगों में जकड़ा हुआ था। इन रोगों ने उसे अत्यन्त दुर्बल एवं जीर्ण शीर्ण बना दिया था। इसी कारण, वह प्रत्येक विदेशी आक्रमण का बराबर शिकार होता रहा। हमारे समाज की इतनी अवनति हो गयी थी—उसकी आत्मशक्ति इतनी चुक गयी थी कि जन-साधारण की ओर से शासक वर्ग के प्रति किसी प्रकार के विरोध का स्वर ही नहीं उठता था। जो भी आये, विजय दर्प के साथ आये और भारतीय उनके दास बने रहे। इस दासता के कारण शिक्षा प्रणाली दूषित हो गयी। महिलाओं का महत्त्व समझने की शक्ति भारतीय समाज में नहीं रह गयी।

प्राचीन काल की जो महिलाएँ पुरुष के प्रत्येक कार्य में हाथ बँटाती थीं, मुस्लिम काल में बिना पर्दे के उनका बाहर निकलना मुश्किल था। उनका कार्यक्षेत्र सीमित हो गया था।

घर की चहारदीवारी के अन्दर ही उनकी अपनी दुनिया थी। जो पुरुष की सच्ची सहधर्मिणी, सहकर्मिणी, संगिनी और समाज के लिए सभी अर्थों में वन्दनीया थी, घर के अन्दर में बन्दिनी बनकर रह गयी। समस्त भारत के अन्दर उन्नीसवीं सदी तक महिलाओं की यही अवस्था थी। संसार के अन्य देशों में भी महिलाओं का मुख्य कार्यक्षेत्र घर के अन्दर सिमट आया था। नारी का यथोचित आदर सम्मान नहीं रह गया था। उसका कोई अधिकार नहीं था। ऐसा कहा जा सकता है कि उन्नीसवीं सदी में पुरुषों ने नारी को देवी, माता, अर्द्धांगिनी, सहचरी आदि कहकर बहलाया और डटकर अत्याचार किया।

कन्या के जन्म लेते ही परिवार दुःखी हो जाता था। ऐसा मनोविज्ञान कुछ अंशों में आज भी है। जहाँ पुत्र के जन्म पर शहनाइयाँ बजतीं—अन्न-वस्त्र एवं नाना प्रकार की वस्तुएँ खुले दिल से लुटायी जातीं, वहाँ कन्या के जन्म पर सिर्फ अपना ही परिवार नहीं, वरन् पास-पड़ोस भी उदास हो जाता था। पिता की सम्पत्ति में पुत्री का कोई हक नहीं था। पुत्र का लालन पालन बहुत प्यार-दुलार से होता था—इस ख्याल से कि बुढ़ापे में लड़का माता पिता की देखभाल करेगा, लेकिन लड़की के लालन पालन और उसकी शिक्षा दीक्षा में किफायतसारी बरती जाती थी, क्योंकि उसे तो दूसरे के घर जाना रहता। यद्यपि इसके अपवाद भी कितने ही माता-पिता होते रहे हैं, जो कन्या का आदर पुत्र से अधिक ही करते रहे हैं। देहात में एक पुरानी कहावत अब भी प्रचलित है कि लड़की के जन्म से पृथ्वी माता तथा पिता नीचे धँस जाती हैं और पुत्र के जन्म पर तथा पिता ऊपर उठ आती हैं। तात्पर्य स्पष्ट है और इसमें भारतीय समाज का मनोविज्ञान आइने की तरह झलक उठता है।

कुछ बड़े बूढ़ों से यह सुनकर मुझे कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ कि एक जाति-विशेष में लड़की, पैदा होते ही, मार डाली जाती थी। इतिहास भी इस निष्ठुर प्रथा का साक्षी है, जिसके अनुसार अँगरेजी-राज्य में एक बड़े लाट को कानून बनाकर शिशु हत्या और सती-दाह की कुप्रथा रोकनी पड़ी थी। उस जमाने में यह कन्या-वध का क्रूर कर्म सम्भव था। घर के सभी लोग इसे जानते थे—माँ के सिवा। अगर पैदा होते ही लड़की को नहीं मार पाते थे, तो बाद में हलारिन के द्वारा उसे मरवा डालते थे। इस तरह की हलारिनों का उनके समाज में आदर मान भी था। घर के लोगों की सलाह से ही ऐसा कुकर्म होता था। एकमात्र माँ बिचारी—उसमें भी नई माँ—इससे अनजान रहती थी। और, जब माँ अपनी मासूम बच्ची के, इस तरह निर्ममता से, मारे जाने पर रोती थी, तब उसे समझाया जाता था कि 'तुम्हें मालूम नहीं, हमारे समाज में यही रिवाज है; क्योंकि लड़की के जीवित रहने से ब्याह के समय उसके माता पिता को लड़केवालों के सामने अपना सिर झुकाना पड़ता है।' कैसा हृदयहीनतापूर्ण तर्क है।

लड़की का ब्याह माता पिता अपनी इच्छा के अनुसार कर देते थे। लड़की छोटी हो या बड़ी, समझदार हो या ना-समझदार, हर हालत में, उसे उसी व्यक्ति के साथ जाना पड़ता था। जिसके हाथों में माता पिता उसे सौंप देते थे। 'अष्टवर्षा भवेद्गौरी' के अनुसार कन्या

का विवाह आठ नौ साल की उम्र में ही लोग कर देते थे। 'गौरी-दान' सबसे उत्तम ब्याह माना जाता था। शादी के बाद कन्या का स्थान पति के घर में था। देहात में अब भी कहा जाता है कि लड़की की शोभा पति के साथ या मिट्टी के नीचे ही है। यह मनोविज्ञान भारतीयों में सदियों से सक्रिय था। पति अगर अच्छा मिलता, तो पत्नी की जिन्दगी सुख-चैन से परिवार की सेवा में कट जाती थी, नहीं तो फिर पति के बिना उसका कहीं कोई स्थान न था। पति के धन में भी पति के जीवन तक उसका ही अधिकार रहता था। दुर्भाग्य से अगर किसी स्त्री के पति की मृत्यु हो जाती थी, तो पत्नी की बड़ी दुर्दशा होती थी। वह संबलहीन और असहाय हो जाती थी। उसे ससुराल या नैहर के लोगों की दया पर निर्भर रहना पड़ता था। उन लोगों की खुशी थी, उसे पाँच गज वस्त्र और पाँच मुट्ठी अन्न दें या न दें। परिवारवालों के लिए तो वह बे-दाम की गुलाम होती थी। पति की मृत्यु के बाद, छोटी जातिवालों में, पुनर्विवाह की प्रथा थी, लेकिन ऊँची जातिवालों में नहीं। छोटी जाति में तो जीवित पति को छोड़ देने पर भी ब्याह होता था। लेकिन, ऊँची जाति में तो नन्हीं बालिकाओं का भी विधवा विवाह नहीं होता था—आज भी बहुत कम ही होता है। इससे समाज में बड़ा ही भ्रष्टाचार फैलता था। कम उम्र की विधवाओं के लिए तो घर में दासी बनकर रहना भी मुश्किल हो जाता था। इनमें बहुसंख्य विधवाएँ सामाजिक कुरीतियों का शिकार बनकर या पथभ्रष्ट होकर वेश्यावृत्ति तक अपना लेती थीं। सामाजिक जीवन के इस विरोधाभास को तो देखिए। हमारी कट्टर हिन्दू-जाति में पुनर्विवाह वर्जित था, लेकिन वेश्या के बिना न किसी बरात की शोभा होती थी न किसी पुत्र-जन्मोत्सव की सार्थकता ही सिद्ध होती थी। किसी भी शुभकार्य में, जलूस में, 'बाईजी' का मुजरा जरूरी था। यहाँतक कि भगवान् के मंदिर की भी शोभावृद्धि 'बाईजी' के संगीत नृत्य से ही होती थी। उसके लिए उन्हें दोष लगता तो कैसे? समाज के कर्णधार तो पुरुष ही थे। जितने भी सामाजिक नियम थे—उन्हीं के बनाये हुए। पत्नी के जीवित रहते हुए भी पुरुष एक दो-तीन ही क्यों—जितनी उसकी इच्छा हो!—ब्याह कर सकता था। सुनने में आता है कि उस प्राचीन युग में मिथिला के कुलीन पण्डित बहुविवाह के अभ्यासी थे। एक एक पंडितजी दस बीस विवाह करते थे। सभी पत्नियाँ एक ही पति की आश्रिता होती थीं। लेकिन स्त्रियों के लिए ऐसा कोई सामाजिक नियम नहीं था। पति कैसा भी हो, पत्नी के लिए भगवान् था। वह कितना भी कुरूप और छूत की बीमारी से निकम्मा क्यों न हो, त्याज्य नहीं था। उसकी सेवा से ही पत्नी की मुक्ति थी। लेकिन दुर्भाग्य से कोई सुन्दर स्वस्थ स्त्री भी यदि किसी बीमारी से बदसूरत या कमजोर हो जाती, तो पति उसका परित्याग कर देता था। कहने का तात्पर्य यह कि हमारे समाज में स्त्री का कोई मूल्य नहीं रह गया था। बिहार ही क्या, समस्त भारत की महिलाओं की यही स्थिति थी।

हमारे समाज में विधवाएँ घृणा की दृष्टि से देखी जाती थीं। उनपर न जाने कितने लांछन लगाये जाते थे। किसी भी शुभकार्य में सम्मिलित होने का उन्हें अधिकार न था।

विधवा की आगमन छाया से शादी के समय कन्याओं को बचाया जाता था—भले ही वह विधवा उस कन्या की माँ ही क्यों न हो। विधवाओं को औरों की तरह खाने-पहनने और रहने का भी अधिकार न था। घर की बड़ी-बूढ़ी सुहागिनें भी लाल-पीला पहनकर तरह-तरह के जेवरों से अपने को सजाती थीं, पर दुर्भाग्य की मारी विधवा बालिका को रंगीन वस्त्र पहनना वर्जित था। अनमेल विवाह के कारण भी ऐसा होता था। पचास साठ साल के बूढ़े का आठ दस साल की बालिका से ब्याह होता था। छोटी जाति में तो दूध-पीती बच्ची का ब्याह होता था, लेकिन लड़का भी छोटा ही रहता था— देहात में सुना जाता है कि कहीं-कहीं माता के गर्भ में ही बच्चे-बच्ची की शादी तय हो जाती थी। अनमेल ब्याह ऊँची जाति के गरीब परिवारों में भी चलता था।

स्त्री को हमेशा किसी-न-किसी के अधिकार में रहना ही पड़ता था—ब्याह के पहले माता-पिता के अधिकार में, ब्याह के बाद पति के अधिकार में, बुढ़ापे में पुत्र के अधिकार में। उनका अपना कोई अस्तित्व ही न हो जैसे।

पर्दे का घोर साम्राज्य ऊँचे घरानों में बहुत अधिक था। पर्दे ने महिलाओं को बिलकुल पंगु बना दिया था। बड़े घरों की बहुएँ सूर्य का दर्शन भी नहीं कर पाती थीं। पिता के घर के बाद पति के घर ही आ पाती थीं। उस समय कहीं आने जाने की उतनी सुविधा भी नहीं थी। कितनी ही स्त्रियाँ पिता के घर से पति के घर आने पर दुबारा नैहर भी नहीं जा पाती थीं। इस बात की पुष्टि मेरे निजी अनुभवों से भी हुई है।

मेरी एक अभिन्न सहेली का ननिहाल बरौनी है। बचपन में एक बार मैं भी उसके साथ उसके ननिहाल गयी थी। बात सन् १९४२ ई० की है। सहेली के नानाजी बहुत ऊँचे घराने के समृद्ध व्यक्ति थे। वे चार भाई थे। फिर उन चारों के लड़के लड़कियाँ—घर खूब भरा-पूरा था। मेरी सहेली की ६२ साल की बूढ़ी परनानी उस समय जीवित थीं। इस उम्र में भी वे चल फिर लेती थीं। उन्हीं से उस समय की बहुत-सी बातें सुनने को मिलीं; जो अभी तक याद हैं। वे एक बड़े धनी और सम्मानित जमींदार परिवार की कन्या थीं। धरहरा-भरतपुरा (पटना) उनका नैहर था। अपनी शादी में जब परनानीजी ससुराल आयी थीं, तब दस 'लोकदिनियाँ' (परिचारिकाएँ) सपरिवार उनकी सेवा शुश्रूषा के लिए उनके साथ आयी थीं। तिलक-दहेज की प्रथा उस समय भी खूब थी। वे फिर लौटकर दुबारा अपने नैहर नहीं जा सकी थीं। पर, वे बड़े ही धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थीं। उस समय लड़कियों को पढ़ाने का कोई खास रिवाज नहीं था। फिर भी, हिन्दी और संस्कृत की अच्छी जानकारी उन्हें थी। आठ-दस साल की उम्र तक उन्होंने घर में ही पढ़ा था। लड़कियों के लिए उस समय स्कूल-कॉलेज भी नहीं थे। पर्दे के कारण पढ़ना-लिखना उतना संभव नहीं था। बड़े घरानों की लड़कियाँ थोड़ा-बहुत पढ़-लिख लेती थीं। ऐसे घरों की महिलाएँ डोली, खरखरिया, पालकी आदि में कहीं आती-जाती थीं— जिनके आगे-पीछे बन्दूकधारी सिपाही और लठैत होते थे। ऊँची जाति के साधारण मध्यम परिवार में पर्दा उतना ज्यादा

नहीं था। मेरी सहेली की अपनी नानीजी ने कहा था—"बेटा, अब जमाना बहुत बदल गया है। हमलोगों को यहाँ ससुराल में चौबीस घंटे सास-ननद के कड़े पहरे में रहना पड़ता था। घर में भी बारहों महीने चादर ओढ़े रहना पड़ता था। नित्य-क्रिया कर्म के लिए ही इस बड़े आँगन को सुबह शाम एकाध घंटे में पार करना पड़ता—घूँघट और चादर के साथ।"

मुझे नानीजी से यह सब सुनकर बड़ा ही आश्चर्य और दुःख हुआ था—उस छोटी उम्र में भी। भला सोचिए तो सही, अगर किसी बहू को शौच के लिए जल्दी रहती होगी, तो उसकी क्या हालत होती होगी। कितनी पराधीनता, कितनी असमर्थता !! धन्य था वह पर्दे का युग ! बिचारी बहुएँ, जो किसी माँ बाप की दुलारी बेटी रही होंगी, डर और लाज के मारे पूरा खाना भी नहीं खाती होंगी !

उन्हीं नानीजी से सुनी उनकी आप बीती में से एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। वे लोग तिलौरी, दनौरी, पापड़ आदि खस्ता चीजों को पानी में डुबाकर इसलिए खाती थीं कि खाने के समय कुड़कुड़ आवाज न हो। भला बहुरियाजी के खाने में कुड़कुड़ आवाज सुनकर सास ननदें और दाई नौकरानियाँ क्या सोचतीं। हँसने-बोलने, खाने पहनने और चलने-फिरने पर भी घोर प्रतिबन्ध था। न जाने, हमारे बिहार की महिलाओं ने समाज का कितना ऋण चुकाया होगा तिल-तिल घुलकर। धन्य थी उनकी सहन शक्ति। पर्दे के कारण न जाने कितनी ही महिलाएँ किसी घर में बहू बनकर आने पर मृत्यु के बाद ही देहरी से बाहर निकली होंगी। फिर भी पर्दा, निरक्षरता आदि कुरीतियों के बावजूद वे महिलाएँ सेवामयी, ममतामयी, पवित्रता और सरलता की प्रतिमूर्त्ति होती थीं। सहनशीलता तो उनकी अगाध थी। न जाने, कितनी कामनाओं और वेदनाओं को हृदय में दबाये वे चुपचाप अपने परिवार की सेवा में लगी रहतीं।

अँगरेजी राज्य के शासन प्रभाव से लोगों में जागरण आया। अँगरेजों की देखा-देखी भारतीय भी 'साहब' बनने लगे। इनके घरों से पर्दे को दूर भागना पड़ा। शिक्षा का प्रचार होने लगा। शासन सुव्यवस्थित होने से लोगों के जीवन में स्थिरता आयी। सुशासन से राज्य में सुरक्षा का प्रबन्ध हुआ। अँगरेजों के सम्पर्क में आने पर भारत में फैली बुराइयाँ और कुरीतियाँ कम होने लगीं। सती-प्रथा ने उन्नीसवीं सदी तक आते आते पैशाचिक निर्ममता का रूप ले लिया था। कानून बनाकर यह प्रथा रोक दी गयी। बाल-विवाह पर भी प्रतिबन्ध लगा। भारत में यत्र-तत्र ईसाई मिशनरियों के सेवा केन्द्र होने से लोग अशिक्षा के अन्धकार से शिक्षा के प्रकाश में आने लगे। भारतीय ललनाएँ भी धीरे-धीरे घर की कैद से छुटकारा पाने लगीं। बड़े बड़े परिवार की कन्याएँ पढ़ने लिखने लगीं। पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव पर्दा प्रथा तोड़ने में काफी सहायक रहा। प्राचीन रीति-रिवाजों की कठोर कड़ियाँ ढीली पड़ने लगीं। शिक्षा के प्रभाव से लोगों की जड़ता दूर होने लगी। वेश भूषा, खान-पान, बोली-विचार, रीति-रस्म, सब पर पश्चिम का प्रभाव पड़ा।

अँगरेज भारत में गणतन्त्र लाने या यहाँ के सोये लोगों में जागृति फैलाने नहीं आये थे, बल्कि वे स्वार्थ साधने के लिए ही आये थे। उनका भारत-आगमन समस्त काली जातियों तथा पिछड़े राष्ट्रों पर कब्जा करने के सिलसिले में ही हुआ था। परन्तु, यह बात भी भुलायी नहीं जा सकती कि उन्होंने काली जातियों को अपना दास तो बनाया; पर उन्हीं जातियों के जनसाधारण को शास्त्रों और सामन्त सरदारों की निरंकुशता, दासता और बेगारी से मुक्त भी किया। उनके झंडे के नीचे साधारण व्यक्ति ने भी यह अनुभव किया कि वह पहले की अपेक्षा स्वतन्त्र है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की भावना लोगों में फैली। नारी जागरण भी अँगरेजी राज्य का ही प्रभाव था। राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए मानो पृष्ठभूमि तैयार होने लगी थी। भारतीय प्राचीन सभ्यता-संस्कृति को भूल गये थे, उसे फिर से याद करके अपनी दशा सुधारने का प्रयत्न करने लायक होने लगे।

नवजागरण के इसी समय हमारे देश में महान् देशभक्तों एवं समाज सुधारकों का आविर्भाव होने लगा। इन्हीं में से राजा राममोहन राय भी एक थे। नारी-जागरण के लिए भी इन्होंने अनेक प्रयत्न किये। भारत में अति प्राचीन काल से प्रचलित सती प्रथा के उन्मूलन का प्रयास सर्वप्रथम अकबर ने अपने शासन काल में किया था। लेकिन, तब भी यह प्रथा चलती ही आ रही थी। पहले तो पतिव्रता नारियाँ पति के बिना अपने जीवन को व्यर्थ समझकर स्वयं पति की लाश के साथ चिता पर जल जाती थीं। लेकिन, आगे चलकर इसका रूप अतिशय लोमहर्षक हो गया। जो महिलाएँ अपने मृत पति के साथ सती नहीं भी होना चाहती थीं, उन्हें भी लोग जबरदस्ती जला देते थे। राजा राममोहन राय पर इस अमानुषिक कार्य की भयानक प्रतिक्रिया हुई। इन्होंने सती-प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ किया। फलस्वरूप, सन् १८२६ ई० में लार्ड विलियम बेंटिंक ने सती प्रथा को सारे देश में गैर कानूनी घोषित करके इसके विरुद्ध कड़ा कानून बना दिया।

समाज में फैली कुरीतियों को दूर करने के लिए उक्त राजा राममोहन राय ने, सन् १८२८ ई० में २० अगस्त को कलकत्ता में एक संस्था की स्थापना की, जिसका नाम 'ब्रह्म-समाज' रखा। धीरे धीरे उसने समग्र देश में अपना प्रभाव डाला। आगे चलकर वह नारियों में फैली कुरीतियाँ, उनकी अविद्या, दासता, सबको बहुत-कुछ दूर करने में सहायक सिद्ध हुआ। हमारे बिहार की महिलाओं ने भी उससे थोड़ा-बहुत लाभ उठाया। उस समय बिहार भी बंगाल में सम्मिलित था।

उन्नीसवीं सदी के हिन्दू नव जागरण की मूल प्रेरणा सामाजिक थी—यद्यपि बंगाल में उसने धार्मिक रूप लिया था। किन्तु, महाराष्ट्र में वह आरम्भ से ही सामाजिक रही। सन् १८४६ ई० में बम्बई में (परमहंस-समाज) नामक एक संस्था बनी थी, जिसका उद्देश्य जाति-प्रथा का भंजन था। समाज सुधारकों में प्रमुख श्रीकेशवचन्द्र सेन सन् १८६४ ई० में कलकत्ता से बम्बई गये। वहाँ उन्होंने ब्रह्म-समाज की एक शाखा 'प्रार्थना-समाज' के नाम से खोली, जिसके चार मुख्य उद्देश्य थे। १ जाति प्रथा का विरोध, २. विधवा-विवाह

का समर्थन, ३. स्त्री-शिक्षा का प्रचार और ४. बाल-विवाह का निषेध। हिन्दू-समाज के इन चार बड़े दोषों का समर्थन कट्टर लोग भी नहीं कर पाते थे। अतः, सुधारवादियों ने सबसे पहले इन्हीं पर ध्यान दिया। इससे हिन्दू-समाज की बहुत भलाई हुई। ब्रह्म-समाज की समर्थिका महिलाएँ पर्दे से बाहर आयीं। उन्होंने पढ़ना-लिखना प्रारंभ किया। बंगाल के महिला समाज ने प्रगति के पथ पर सर्वप्रथम कदम बढ़ाया। फिर, अन्यान्य प्रान्तों की महिलाओं ने भी उनका अनुसरण किया। बिहार की महिलाओं को भी उनसे प्रकाश मिला।

समाज सुधारकों में रानाडे, गोखले, कर्वे, तिलक और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर भी कम उल्लेखनीय नहीं हैं। विद्यासागर ने अपनी विधवा पुत्री का ब्याह करके कट्टर हिन्दू-समाज के सामने समाज-सुधार का बहुत बड़ा उदाहरण उपस्थित कर अदम्य साहस का परिचय दिया था। कर्वे ने तो पूना में महिला-विश्वविद्यालय ही खोल दिया। उस समय की जनता जात-पाँत और छुआछूत के मामलों में तो भयानक रूप से कट्टर थी ही, थोड़ी-सी भी छूट देने को तैयार नहीं थी; स्त्री-शिक्षा के मामले में भी उदासीन और संकीर्ण थी। रामाबाई रानाडे[1] नामक एक विदुषी ब्राह्मणी ने बम्बई में बालिकाओं की एक संस्था 'शारदा-सदन की स्थापना की थी। संस्कृत विद्या पर उनका असाधारण अधिकार था। हिन्दू-समाज में नारियों का जो अत्यन्त निम्न स्थान था, उससे वे अत्यन्त क्षुब्ध थीं। देश-भर में नारी-जागरण का संदेश लेकर वे घूमती थीं। उन्होंने बंगाल पहुँचकर एक अब्राह्मण से ब्याह कर लिया, जिससे महाराष्ट्र की जनता अत्यन्त क्रुद्ध हो उठी। फिर, वे इंगलैंड और अमेरिका चली गयीं। वहाँ से ईसाई बनकर वापस लौटीं। इसपर लोगों ने 'शारदा-सदन' में बालिकाओं को भेजना ही बन्द कर दिया। उस युग में ऐसा कट्टर था हमारा समाज !

आर्य-समाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्द सरस्वती का स्थान समाज सुधारकों में सर्वोच्च रहा। जैसे राजनीति के क्षेत्र में हमारी राष्ट्रीयता का सामरिक तेज पहले पहल लोकमान्य तिलक में दिखायी पड़ा, वैसे ही संस्कृति के क्षेत्र में भारत का आत्माभिमान ऋषि दयानन्द में निखरा। ब्रह्म-समाज और प्रार्थना समाज के नेता तो समाज-सुधार कर रहे थे, लेकिन यह सोचकर कि वे शायद विदेशियों की नकल कर रहे हैं, दुःखी थे। इस भावना से उनकी आत्मा कहीं न कहीं दबी थी। किन्तु, इस हीनता की भावना को स्वामीजी ने अपनी ओजोमयी वाणी से दूर हटा दिया। भारतवासियों को उन्होंने खूब फटकारा। वैदिक धर्म पर खूब जोर दिया, इसका खूब प्रचार भी किया। हिन्दुत्व की निन्दा करनेवाले विधर्मियों को भी अपनी कड़ी फटकार से चेताया। अब हिन्दू जनता को यह जानकर कुछ सन्तोष हुआ कि पौराणिकता के मामले में हिन्दू धर्म से अन्य धर्म अच्छे नहीं हैं। हिन्दुओं का ध्यान अपने धर्म के मूल रूप की ओर आकृष्ट हुआ; वे अपनी

१. इनके सम्मान में भारत-सरकार ने गत १५ अगस्त, १९६२ ई०, को १५ न० पै० का डाक-टिकट जारी किया है।—ले०

प्राचीन परंपरा के लिए गौरव का अनुभव करने लगे। ऋषिवर ने हिन्दू-धर्म की बुराइयों की कड़ी आलोचना कर देश में जागृति की पताका फहरायी। जिन बुराइयों के कारण हिन्दू-धर्म का ह्रास हो रहा था तथा जिनसे विधर्मी काफी लाभ उठाकर हिन्दुओं का धर्म-परिवर्तन कर रहे थे, उन बुराइयों को उन्होंने बहुतांश में दूर किया, जिससे हिन्दुओं के सामाजिक संगठन में दृढ़ता आयी।

आर्य-समाज ने नारियों की शोचनीय दशा के सुधार के लिए बहुत कुछ किया। उनकी मर्यादा में वृद्धि की। उनकी शिक्षा के लिए कन्या गुरुकुलों को स्थापित करके चलाया। विधवा विवाह का भी खुलकर समर्थन और प्रचार किया। कन्या-शिक्षा और ब्रह्मचर्य का इतना अधिक प्रचार किया कि हिन्दी-प्रधान प्रांतों में साहित्य क्षेत्र के भीतर एक प्रकार की पवित्रतावादी भावना भर गयी, जिससे हिन्दी के कवि कामिनी-नारी की कल्पना-मात्र से घबराने लगे। पुरुष शिक्षित और स्वस्थ हों, स्त्रियाँ शिक्षिता और सबला हों, सभी संस्कृत पढ़ें और हवन करें, कोई हिन्दू न मूर्त्ति पूजा का नाम ले, न पुरोहितों और पंडों के फेर में पड़े—ये उपदेश कोई पचास साल तक उन सभी जगहों में गूँजते रहे, जहाँ आर्य-समाज का थोड़ा-बहुत भी प्रचार हुआ था। आर्य समाज ने ही महिलाओं को यज्ञ, हवन, वेदपाठ, सबकी अधिकारिणी बनाया। बिहार के महिला-समाज पर भी इन सुधारों का बड़ा असर हुआ। धीरे धीरे हालत सुधरने लगी।

श्रीमती एनीबेसेण्ट का भारत-आगमन इसी जागरण युग में हुआ था। विदेशी महिला होते हुए भी ये भारतीय संस्कृति की पुजारिन थीं। इन्होंने भारत की भलाई के लिए अपने देश (इंगलैण्ड) का त्याग किया। जिन्दगी भर इसी देश की सेवा में लगी रहीं। इन्होंने हिन्दू जाति को फिर से अपना धर्म और अपनी सभ्यता संस्कृति अपनाने की प्रेरणा दी। इनका कहना था कि जिसके पास गीता और उपनिषद् हो, दार्शनिक विचारों और उदात्त भावों का इतना अपार साहित्य हो, उसे किसी के सामने लज्जित होने की क्या जरूरत है? इन्होंने थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना मद्रास में की। बनारस में थियोसोफिकल स्कूल खोला, जिसमें लड़के लड़कियों को साथ-साथ पढ़ाने की व्यवस्था है। थियोसोफी का प्रचार बिहार में भी हुआ। यहाँ के कुछ नर नारी भी उसके अनुयायी हुए। यहाँ के महिला-समाज ने उससे प्रगति की प्रेरणा ग्रहण की। बिहार में बीसवीं सदी के आरम्भिक दो दशकों तक महिलाओं ने जो कुछ प्रगति की, वह सब उपर्युक्त समाज-सुधारकों के प्रयत्नों के फलस्वरूप ही। किन्तु, उन्नीसवीं सदी के अन्त तक भी बिहार की महिलाओं ने कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं की थी।

मुसलमानों के शासन के बल पर उनकी सभ्यता ने भारतीय जीवन को बहुत दूर तक प्रभावित किया था। उसका ही प्रभाव था कि उन्नीसवीं सदी के अन्त तक नारियों पर जड़ता छायी रही। भारतीय नारियाँ अपना सच्चा रूप भी भूल गयी थीं। मूल कारण राजनीतिक तत्वों में ढूँढा जा सकता है।

किन्तु, सन् १८५७ ई० एक ऐसा वर्ष है, जहाँ अनागत युग की पदचाप सुनायी पड़ती है। यह महाकाल का एक ऐसा पदचिह्न है, जहाँ से नवयुग का आरंभ माना जा सकता है। उसी समय भारतीय जन-मानस में नव चेतना की लहर उठी, जो चिर जाग्रत् रवि-किरणों की तरह भारतीय मानवता के हृदयाकाश में फैल गयी। उसके बाद ही संयोग देखिए कि बंकिमचन्द्र ने 'वन्दे मातरम्' की रचना की और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'हा, हा, भारत-दुर्दशा न देखी जायी'—जैसी पंक्ति लिखी, जो मध्यकालीन संकीर्ण राष्ट्रीयता थी, वह विशाल राष्ट्रीयता के समुद्र में डूब गयी। सामाजिक क्षेत्र में नवीन जागरण का संदेश सुनायी पड़ने लगा। बंगाल की प्रसिद्ध कवयित्री 'तोरु दत्त' ने लिखा—'नव किरणें तुम्हारे दरवाजे आयी हैं, अब भी तुम सोये हो, तुम्हारा द्वार बंद है!' यह जागरण का संदेश भारतीय वातावरण में जैसे घुल मिल गया। यद्यपि भारत की स्वयं-स्फूर्त चेतना यह जागरण का स्वर सुनने लगी थी, तथापि यह कहना ऐतिहासिक भ्रम उत्पन्न करना होगा कि भारतीय समाज पूरा जाग्रत् और प्रगतिशील हो गया था। भारतीय नारियों की स्थिति मध्यकालीन की-सी ही थी। उसमें अधिक परिवर्त्तन नहीं आया। फिर, बिहार की नारियों का तो कहना ही क्या! वे बहुत कुछ पिछड़ी हुई ही थीं।

सन् १८८५ ई० में बम्बई के एक कोने में काँगरेस का जन्म हुआ था। निस्सन्देह, भारतीय महिलाओं की जागृति में काँगरेस का बहुत बड़ा हाथ रहा, किन्तु उन्नीसवीं सदी की समाप्ति तक काँगरेस ने भी पर्याप्त शक्ति संचित नहीं की थी। वह मंदाकिनी की उस पतली धारा की तरह थी, जो आगे चलकर विशाल और प्रचंड रूप धारण कर लेती है।

मैं ऊपर कह चुकी हूँ कि उन्नीसवीं सदी के अन्त तक भी बिहार की नारियाँ घोर अन्धकारमयी अवस्था में, बहुत कुछ मध्यकालीन स्थिति में ही, पड़ी हुई थीं। यहाँतक कि पाश्चात्य प्रभाव राजा राममोहन राय, ऋषि दयानन्द, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, श्रीमती एनी-बेसेण्ट आदि के घोर प्रयास एवं परिश्रम के बावजूद बिहार की नारियाँ प्राचीन लीकों पर चलनेवाली और जड़ता-ग्रस्त ही रहीं। शिक्षा का उनमें पूर्णतया अभाव था। यह बीसवीं सदी के प्रथम या द्वितीय दशक की ही बात है कि उनका जाग्रत् स्वर सुनायी पड़ता है, इसके पहले नहीं। आज भी ऐसा लगता है कि कुछ क्षेत्रों में मध्ययुग की ही जड़तामयी छाया फैली हुई है। पर नवयुग का सुप्रभात हो चुका है, अतः प्रगतिशील महिला की चरण-ध्वनि अब बिहार में भी सुनायी पड़ रही है। जागरण और गतिशीलता जीवन के तत्त्व हैं। बिहारी महिलाओं को यह सत्य आत्मसात् करना है और बिहार के नारी-समाज में नयी शक्ति लानी है।

००

मैथिली-लोकगीतों में नारी

श्रीदिगम्बर झा ; बोदरा, अलपदत्त-महेशपुर (सन्तालपरगना)

प्राचीन काल में कई शताब्दियों तक मिथिला-जनपद भारत में संस्कृत भाषा और संस्कृत-साहित्य के अध्ययन-अध्यापन का मुख्य प्रतिनिधि-केन्द्र रहा। संस्कृत के अनेक मर्मी कवियों, लेखकों, दार्शनिकों और मीमांसकों की कृतियों से मिथिला की अपरिमित गौरव-वृद्धि हुई, तब भी उसकी कीर्त्ति को अद्यावधि अक्षुण्ण रखने में वहाँ के लोक-साहित्य का कम महत्त्वपूर्ण अवदान नहीं। वस्तुतः, मिथिला के लोकगीतों में ही वहाँ की संस्कृति सुरक्षित है। वास्तव में, अति प्राचीन काल से चली आ रही लोकगीतों की अक्षुण्ण काव्य-परम्परा, जो केवल ललना-कण्ठों में ही सुरक्षित है, लोकगीत-प्रेमियों के लिए एक अनुशीलन की वस्तु है।

मिथिला की सीमा के सम्बन्ध में एक मैथिली-पद्य भी प्रचलित है—

> *गङ्गा बहथि जनिक दक्षिण दिशि पूर्व कौशिकी धारा।*
> पश्चिम बहथि गण्डकी, उत्तर हिमवन बल विस्तारा॥
> कमला त्रियुगा अमृता धेमुरा बागवती कृतसारा।
> मध्य बहथि लक्ष्मणा प्रभृति से मिथिला विद्यागारा॥[1]

न्यूनाधिक मात्रा में मैथिली चम्पारन, दरभंगा, मुँगेर, भागलपुर, पूर्णिया के पश्चिमी और मुजफ्फरपुर के पूर्वी भागों में बोली जाती है। प्रायः सर्वत्र ही, रमणी-कण्ठों में सुरक्षित लोकगीतों का अलिखित महाकाव्य, आनन्द-उत्सव या पर्व त्योहारों के अवसर पर, नाना प्रकार के छन्दों में, मुखरित हो उठता है।

अनुकूलता प्रतिकूलता के किनारों के मध्य से प्रवहमाण जीवनधारा कभी शोक-सन्ताप से, कभी अभाव के दारुण कष्ट से, कभी यौवन की उन्मादी उमंग से, कभी मिलन-विरह की आँख-मिचौनी से उद्वेलित और तरंगित होती रहती है। कभी कभी इनमें से कुछ क्षण, जीवन के कोमलतम मर्म का स्पर्श-मात्र कर तिरोहित हो जाते हैं—और कुछ साहित्य के अक्षय भाण्डार की अमूल्य निधि बन जाते हैं। साहित्य की इसी अमूल्य निधि का एक अनमोल रत्न है लोकगीत। मैथिली-लोकगीतों में ग्रामीणों के हर्ष-विषाद, आनन्द-अवसाद, मिलन विरह आदि बड़ी मार्मिकता से चित्रित मिलते हैं। इन लोकगीतों को विदेशी सभ्यताओं के आघात-प्रतिघात से बचाते हुए—जीवित रखने और पल्लवित-पुष्पित

---

१. तुलनीय:

> गङ्गाहिमवतोर्मध्ये नदी पञ्चदशान्तरे। तीरभुक्तिरिति ख्यातो देशः परमपावनः॥
> कौशिकीं तु समारभ्य गण्डकीमधिगम्य वै। योजनानि चतुर्विंशद्व्यायामः परिकीर्तितः॥

करने का सारा श्रेय लग्न (विवाह), उत्सव और पर्व-त्योहारों को है, जिनमें रक्षा बन्धन, तीज, दीपावली, छठ (सूर्यव्रत) और मधुश्रावणी उल्लेखनीय हैं। यों पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, शिशुजन्म, उपनयन, विवाह आदि षोडश संस्कारों के अवसर पर तो गीतों के उत्सव का पूछना ही क्या। प्रातः, दोपहरी, सन्ध्या, मध्यनिशा आदि भिन्न-भिन्न समय के लिए पृथक्-पृथक् गीत आविष्कृत हैं। 'नचारी' मिथिला की एक अपूर्व वस्तु है। सहस्राब्दियों से शिव-भक्तिपूर्ण ये गान यहाँ गाये जाते हैं। 'श्यामा-चकेवा' का उल्लेख 'पद्मपुराण' में भी है। 'समदाऊनि' नामक गीत कन्या की विदाई के समय के अतिरिक्त भी और कई अवसरों पर गाया जाता है। यह एक बहुत ही करुणोद्भावक राग में गाया जाता है। इसकी पदावलियाँ करुणा की साक्षात् प्रतिमूर्त्ति होती हैं।

साधारणतः, मैथिली लोकगीतों का निम्नलिखित रूप में वर्गीकरण किया जा सकता है—१. सोहर, २. उपनयन के गीत, ३ सम्मरि (स्वयंवर), ४. लग्न-गीत, ५. नचारी, ६. समदाऊनि, ७. भूमर, ८. तिरहुति, ९. बटगमनी, १०. फाग, ११ चैतावर, १२. मलार, १३. मधुश्रावणी, १४. छठ, १५. श्यामा-चकेवा, १६ जट-जटिन, १७. बारहमासा और १८. विभिन्न देवी देवताओं के गीत। गाँव की रस-सिक्त भूमि की आत्मा से निकलनेवाली करुण स्वर-लहरियाँ अनजाने ही लोकगीतों के अनुपम छन्दों की रचना करती हैं। वे ऐसे हृदय-वेधक होते हैं कि किसी के भी चित्त मे करुणा की अविरल धारा बहा देते हैं। यहाँ हम कुछ ऐसे ही लोकगीतों की बानगी उपस्थित कर रहे हैं, जिनमें नारी की मनोगत भावनाओं का—एकान्त निष्ठा और ममता का—आकांक्षाओं और उमङ्गों का चित्रण हुआ है, जो अनन्त काल से प्रवाहित नैसर्गिक निर्झर की भाँति, लोक-मानस को तृप्ति और आनन्दानुभूति प्रदान कर रहा है।

विरहिणी की बरसात

सावन का मनभावन महीना आते ही नये हरित परिधान से सजकर अँगड़ाइयाँ लेती हुई धरती शस्यश्यामलाञ्चला हो उठती है। उसकी हर साँस जैसे अनजान सपनों से लिपट जाती है। मैथिली लोकगीतों म सावन का स्वरूप, करुण शृङ्गार की शोभा से अनुप्राणित हो, अनुपम हो उठता है। जड़ चेतन रस से शराबोर हो उठते हैं। किन्तु, उस फूस की झोपड़ी मे इस अन्धकार म भी, वह किसका चाँद सा मुखड़ा रह रहकर चमक उठता है? कोमल मुख पर पड़ी वर्षा की बूँदों को अपनी नन्ही नन्ही पतली उँगलियों से पोंछ रही वह कौन सुकुमारी है? उसके मुख की चिकनाई पर तरुणाई की लाली इस बरसाती अधरातया में भी साफ दिखायी पड़ती है। वह सुनिए, उस पर्णकुटी के कोमल अन्तरतम प्रदेश से यह कैसा करुण सङ्गीत निकल रहा है—

जखन गगन घन बरसल सजनि गे, सुनि हहरत जिव मोर।
प्राननाथ दुर देस गेल सजनि गे, चित भेल चन्द्र-चकोर।

उमड़ि एकाकिनि भामिनि सजनि गे, दामिनि दमर चहुँ ओर।
दामिनि चमक दुलौकक सजनि गे, श्रम ने थपत निय मोर।
झींगुर झनकार चहुँदिसि सजनि गे, कोयल कुहुकत मोर।
से सुनि जिय घबरायल सजनि गे, यौवन कयलक थोर।

—'आकाश पर बादलों की घुड़दौड़ है, वे गरजते हैं, तो एकाकिनी विरहिणी का हृदय शतधा खण्डित हो जाता है। वह अपने दूरदेशी प्रियतम को पुकारती है, जिसके लिए वह चकोरी बन गयी है। बिजली की चमक से उसका मृदुल चित्त चौंक उठता है, वह डर उठती है। झींगुर की झनकार और कोयल मोर की पुकार पर विकल हो अपने यौवन को—जिसने उसे विवश निरीह बना दिया है—उपालम्भ देती हुई रात्रि की एकान्त निःस्तब्धता में चुपचाप अपने आँसू पोंछती जा रही है।'

और, इस तरह, विरह की सरिता का हृदयस्पर्शी प्रवाह युग-युग से एकरस बहता आ रहा है। जरा गौर कीजिए कि 'मलार' की ये पारदर्शी पंक्तियाँ किस प्रकार एक प्राण को दूसरे प्राण से जोड़ने का प्रयास आज भी करती हैं—

चहुँदिशि घेरे घनकरिया, हे आली।
झहरि-झहरि बूँद खँसए पलँग पर। भिजत कुसुम रँग सड़िया, हे आली॥
सुन्न भवन सों लागे कठिन सन। पिय बिनु शून्य अटरिया, हे आली॥
पथ भेल पिच्छिर, पिया भेल चंचल। चाहिय कुसुम चुँनरिया, हे आली॥
सुकविदास प्रभु तोहरो दरस के। हरि के चरन चित लइया, हे आली॥

—'शून्य हृदय और आकाश में चारों ओर से स्मृतियों की काली घटाएँ घिर आयी हैं। बूँदे झहर झहर बरस रही हैं—चू रहे घर में पलँग पर गिर रही हैं, जिससे कुसुम्भी रंग की साड़ी भींगती जा रही है। ऐसी अवस्था में प्रियतम के बिना बड़ी वेदना हो रही है। मार्ग पिच्छिल हो गये हैं। प्रवासी प्रिय के बिना सारा संसार सूना लग रहा है।'

परदेशी प्रियतम के प्रति एकान्त निष्ठा का परिचय देनेवाली श्रद्धा और प्रेम की ये अम्लान कलियाँ किस देवी दुर्गा से कम हैं?

सन्तान-कामना

प्रेम और सन्तान की कामना नारी-हृदय की चिरन्तन पिपासा है। नारी का प्रेम जब सन्तान-कामना की सात्त्विक इच्छा से ममता के झूले पर हिलकोरे लेने लगता है, तब 'सोहर' की पंक्तियाँ वात्सल्य रस से परिपूर्ण हो ध्वनित हो उठती हैं। मिथिला के जन-जीवन को सरस और आनन्दमय बनाने में निम्नांकित 'सोहर' अद्वितीय है। इसमें एक सुहागिनि की उत्कट सन्तान-अभिलाषा के साथ उसकी दयनीय दशा का वर्णन है—

आरे आरे प्रेम चिरइया झरोखवा चढ़ि बोलले रे।
ललना, पिया मोरा गेल विदेसे गरजश्रोल रे।

सासु मोरा निसदिन मारए ननद गरिआवए रे।
ललना, गोतिनी कथूल तरमेन बँझिनिया गरउ्आोल रे।
एके हाथ लेली घइलिया दोसरे हाथ गेरल रे।
ललना, चिरइल पनिया के गेलौं उपरे काग बोलल रे।
किए मोरा कगवा रे बाबा अइहेन किए मोरा भइया अइहेन रे।
कगवा कओने सगुनमा लए अएले त बोलिया बर सोहावन रे।
नए तोरा रानी हे बाबा अइहेन किए मोरा भइया अइहेन रे।
ललना, होरिला सगुनमा लए अइली त बोलिया बर सोहावन रे।
जँओं मोरा कगवा रे बबा अइहेन जँओं मोरा भइया अइहेन रे।
कगवा तोहरो काटब दुनू लोल त बोलिया बर सोहावन रे।
जँओं मोरा कगवा रे पिया अइहेन होरिला जनम लेत रे।
कगवा सोनमे मढ़एबो दुनू लोल त बोलिया बर सोहावन रे।
पनिया जे भरलों मे गगाइह अओरो गंगादह रे।
ललना, चारू दिशा नजरि खिराओल नयन लोरा दर दर रे।
बिप्र सरूपे पिया अयलन आगुए भए ठाढ़ि भेल रे।
ललना, कओने कओने दुख तिरिया कओने दुख रोदन रे।
सासु मोरा बिप्र हे मारए ननद गरिआवए रे।
बिप्र, गोतिनी कथूल तरमेन बँझिनिया गरआओल रे।
चुपे रहु चुपे रहु तिरिया जनिअ करु रोदन रे।
तिरिया आजुए आओल घरबइया बँझिनिया पाप छूटत रे।

—"बहुत दिनों के बाद प्रेम का पछी मरोखे पर से बोल उठा। लेकिन, तू क्यों बोला, मेरे प्रियतम तो प्रवासी हैं। सास मुझे निशिदिन मारती है और ननद गालियाँ देती है। इतना ही नहीं, मेरी गोतनी मुझे बाँझ कहकर ताने देती है। रोती बिसूरती एक सुहागिन ने एक हाथ में घड़ा और दूसरे हाथ मे गेरुल (पुआल की बनी माथे पर रखने की एक गोल गद्दी) उठाया और पानी भरने के बहाने वह काग के सामने, जो झरोखे पर अभी बोल गया है, जा खड़ी हो पूछती है—'रे काग, आज तू कैसे बोल रहा है? क्या मेरे पिता या भाई आनेवाले हैं या कोई दूसरा ही सगुन लेकर तू आया है, क्योंकि तेरी बोली आज मुझे बड़ी मीठी लग रही है।' सुनकर काग बोला—'हे सुहागिन नारी, न तो तुम्हारे पिता आनेवाले हैं और न भाई। मैं तो तुम्हारे पुत्र जन्म का सगुन लेकर आया हूँ और इसी से आज मेरी बोली तुम्हें मीठी लगती है।' सुहागिन बोली—'रे काग, यदि आज मेरे पिता या भाई आये, तो मै तुम्हारी चोंच काट लूँगी और यदि सचमुच आज मेरे प्रियतम आये और मुझे पुत्र प्राप्ति हुई, तो तुम्हारी चोंच में सोने से मढ़वा दूँगी।'—और, इसी तरह, प्रेम पछी से वार्तालाप कर वह सुहागिन जब पानी भर चुकी, तब उसने

चारों ओर शून्य दृष्टि घुमायी और उसकी उदास आँखें अश्रुपूरित हो उठीं—प्रियतम के बिछोह और सास ननद-गोतिनी के व्यवहार से। तभी सहसा उसके पति विप्र-रूप में सामने आये और वह सामने खड़ी रही। आगन्तुक विप्र ने पूछा—'हे सुहागिन, तुम्हें कौन सा दु:ख पड़ा कि इस प्रकार तुम एकान्त में बेसुध रो रही हो?' सुहागिन बोली— हे विप्र, सास मुझे मारती और मेरी ननद मुझे गालियाँ देती है और मेरी गोतनी मुझे बाँझ कहकर ताने देती है।' विप्र रूपी उसका पति बोला—'हे स्त्री चुप हो जाओ, चुप हो जाओ, तुम और अधिक न रोओ। आज ही तुम्हारे पति आयेंगे और तुम्हारा बाँझपन का पाप दूर हो जायगा।"

कर्कशा सास, झगड़ालू ननद और ताने मारनेवाली गोतनी के राज्य में नयी वहुओं पर जो अत्याचार होता है, उसका कितना जीवन्त वर्णन है इस पद में ?

परिणय

लगन-गीत अपनी अनोखी स्वर भाव-महिमा से विवाहोत्सव के अतुलनीय आनन्द की जो चरम वृद्धि करते हैं, वह सर्वथा निरुपम है। वन्दनवार, तोरण, झालर आदि उपकरणों से सज्जित विवाह मण्डप के किसी कोने से जब समवेत रमणी कण्ठ-निर्गत पंक्तियाँ वायुमण्डल को सरस बना देती हैं, तब आनन्द अपनी परिधि में कितना-गुना बढ़ जाता है, यह अनुभूति गम्य है—

> कोहबर लिखल कोसिला रानी अओरो सुमित्रा रानी हे,
> आम के घौंद लिखल केकइया रानी बड़ रे जतन सये हे।
> ताहि कोहबर सुतलन्हि कौन दुल्हा सगे कन्या सुहवे हे,
> मुहमाँ उघारि जब प्रभु देखलन्हि सिय सिय अभरन हे।
> माँग के टीका प्रभु तोह छहु देवरा सजा चुड़ि हे,
> चन्द्रहार सासु दुलरइतिन, बाजूबन्द देवरानी हे।
> पूत मोरा नयना के इँजोरवा ननद नव रंग चोलि हे,
> भैंइसुर माथ के टिकुलिया, ए हो रे सब अभरन हो।

"कौसल्या और सुमित्रा रानी ने कोहबर और रानी कैकयी ने बड़े यत्न से उसमें माङ्गलिक लिखे। उस कोहबर में अमुक दुलहा अमुक सुहागिन कन्या के साथ सोये। प्रेम से दुलहे ने सुहागिन कन्या के मुँह पर से घूँघट उठाया और पूछा कि 'कौन-कौन से आभरण तुम्हारे पास हैं?' विवाहिता कन्या ने (सलज्ज नेत्रों) से कहा—'हे स्वामी, आप मेरी माँग के सिन्दूर हैं और मेरे देवर मेरी शरीर की चूड़ियाँ। सास मेरे गले का चन्द्रहार हैं और देवरानी बाजूबन्द। मेरा पुत्र (जिसकी, हृदय के किसी कोने में, अभिलाषा है) मेरे नयनों का प्रकाश है और ननद मेरी नवरंग-चोली है। भैंसुर मेरे माथे की बिन्दिया हैं। हे स्वामी, ये ही मेरे आभरण हैं।"

कितनी उदात्त है यह आलङ्कारिक भावना ! पार्थिव आभूषणों की जगह चैतन्य अलङ्कारों की स्थापना । त्यागमयी नारी के हृद्गत भावों का कितना अनूठा और स्वाभाविक चित्र उपस्थित करता है यह विवाह गीत !

शिवभक्ति

मैथिली लोकगीतों की परम्परा में एक अभिनव कड़ी जोड़ती है—शिवभक्ति। भगवान् शंकर की महिमा और उनके गुण कीर्त्तन में गाये जानेवाले गीतों की संज्ञा है—'नचारी', जो मिथिला की एक विशिष्ट गीत शैली है और साथ ही जो अन्य लोक-भाषाओं के गीतों में नहीं पायी जाती। नचारी की आत्मा मूलतः भक्ति रस से ओत प्रोत होती है—एक दिव्य हास्य-व्यञ्जकता के साथ जिसका अर्थ श्रोता भक्तों के हृदय को श्रद्धा भक्ति से तन्मय कर देता है। किन्तु, इन नचारी-गीतों में भी नारी हृदय की कोमल भावनाओं का चित्र स्पष्ट रूप से प्रतिफलित हुआ है—

माई अजगुत भेल। गौरी के उचित वर विधि नहिं देल ॥
तेल फुलेल शिव के कोबर रखि देल, लगाबे के बेर शिव भसम लेपि लेल ॥ माई हे० ॥
पेडा जलेबी शिव के कोबर रखि देल, भोजनक बेर शिव भाँग पिबि लेल ॥ माई हे० ॥
तोसक गलइचा शिव के कोबर रखि देल, सूते के बेर शिव मृगछाला राखि लेल ॥ माई हे० ॥
हाथी घोडा शिव के बान्हल रहि गेल, चढ़े के बेर शिव बसहा चढ़ि लेल ॥ माई हे० ॥

भगवान् शङ्कर का विवाह जब गौरी से आखिर हो ही गया, तब सखियाँ आपस में कहने लगी—'यह बड़ी आश्चर्यजनक घटना हो गयी। हाय! हाय! विधाता ने गौरी को योग्य वर नहीं दिया। भला कैसे ये औढर हैं। देखो न, तेल फुलेल जो कोहबर में लगाने को दिया गया, उसे न लगा उन्होंने सारे शरीर में भस्म लेप लिया। भोजन के लिए परोसे गये पेडा जलेबी को छोड़कर शिव ने *भाँग पी ली। सोने के लिए तोशक-गलीचे की शय्या* छोड़ वे मृगचर्म पर सो गये। (और तो और, विदा होते वक्त) हाथी-घोडा सब बँधे ही रह गये और वे अपने बसहा (बैल) पर चढ़कर चल दिये।'

निस्सन्देह, इन नचारी-पदों की आत्मा शिव भक्ति की सुधा से लबालब है, लेकिन तब भी नचारियों का सङ्केत, वर वधू की अनमेल बेमेल जोड़ी की तरफ इशारा करते हुए, श्री सम्पन्नता के अभाव के प्रति नारी हृदय की अतृप्ति और क्षोभ का इजहार पेश करता है।

विवाहिता कन्या की विदाई

आदिकवि वाल्मीकि और भवभूति जैसे कवियों ने करुण रस के महत्त्व को काव्य का प्राण माना और उसीके परिणाम स्वरूप उन दिव्यात्माओं की करुणा की गङ्गोत्री से 'रामायण' और 'उत्तररामचरित'-जैसे अतुलनीय काव्य ग्रन्थों का आविर्भाव हुआ। मैथिली-लोकगीतों में 'समदाउनि' ने करुण रस के प्राधान्य की उस परम्परा को आज भी जीवित

रखा है। केवल करुण रस के जितने गीत मिथिला के लोक-साहित्य में संचित हैं, शायद ही किसी अन्य लोक-साहित्य में इतने मिल सकें। समदाउनि-गीतों का मूल उद्गम करुणोत्तर परिस्थितियाँ हैं। वेदना-करुणा है समदाउनि की आत्मा। विशेषतः कन्या की बिदाई की वेला में ये गीत सखी-सहेलियों द्वारा गाये जाते हैं—

नयन नीर अविरल किय ढारल कह कह सुन्दरि नारि।
कंचन तन मागर मन हेरिय के धनि पड़लक गारि।
केहन परसक आनक शोभा सुरभित अलस समीर।
चारि दिशा अछि मदनक वेदन तिग-तिग सुहुपक तीर।
की दुख पड़लह कह कह नागरि आब तेजह अनुताप।
कनइत देखि सेज पर सूतलि मोर मन थर-थर काँप।
आजु सुनिय पति मातु-पिता-गुरु हेरल सपनहिं साँझ।
छोटि मोर बहिन भाय मन पारल कहुमइ काटल साँझ।
माइक नेह जागल मन पारल जे देलक प्रतिपालि।
तिनका कनइत तेजि कतै छी वेदन जगनक घालि।
पिता भाय जन सखिगन सब छल सब सौं कयलहुँ बात।
से सब चरचा करइत होयत हिय भेल पिपरक पात।
भरि दिन छोटि बहिन कोरहिं कै केहन विहुँसि खेलाय।
अबइत काल निठुर मोर भाऊजि करसौं लेलन्हि छोड़ाय।
अबइत काल यशा की कहलन्हि लेलन्हि पैर छोड़ाय।
थर-थर हमर हृदय छल कँपइत रथ पर लेल चढ़ाय।
तकरहुक ध्यान अपन घर आँगन परिजन सकल समाज।
आजुक सपन सकल मन पारल तैं उदास चित आज।
शैशव अओर किशोर वयस जँह संगे संगे जीवन बिताय।
तहि ठाँ सौं कथिलै सुनु हे पति आनल सबके कनाय।
चुप रहु चुप रहु कामिनि सुनु सुनु काल्हिहि आनव कहारि।
रथ चढ़ि जाएब नइहरि सुन्दरि कथिलै रदन पसारि।
मातु पिता औ भाय बहिन सब देखब सुन्दर नारि।
'कुमर' भनहिं पुन घर घुरि आयब रहि नइहर दिन चारि।

अपने परिजन, पुरजन, सखी-सहेलियों, माता-पिता और भाई-बहिन, सब को छोड़ ससुराल आयी हुई एक नयी विवाहिता कन्या का हृदय—अपने जन्मस्थान की याद में, जिसे उसने आज ही रात सपने में देखा है—विकल-विह्वल हो उठा है। वह रो रही है। संयोगवश उसका पति आता है। उसे रोते हुए देखकर चिन्तित हो पूछता है—"हे सुन्दरि, क्यों इस तरह तुम अपनी आँखों से अविरल आँसू बरसाती जा रही हो? तुम्हारी कंचन

की तरह देह काली क्यों पड़ गयी है? क्या किसी ने तुम्हें गाली दी है? अहा, कितनी सुन्दर है इस चाँदनी रात की शोभा, गन्धयुक्त अलसायी हवा और चारों ओर तरह-तरह के सुन्दर पुष्प विकसित हो रहे हैं। हे नागरि, तुम्हें कौन-सा दुःख पड़ा ऐसे सुहावने समय में? मैं समझ नहीं रहा हूँ, कौन-सा अनुताप तुम्हें दग्ध किये जा रहा है! तुम्हें बिस्तर पर सोकर रोते देखकर मेरा मन थर थर काँपता जा रहा है।' तब नववधू ने कहा—'हे स्वामी, आज मैंने अपने माता-पिता को सपने में देखा है और साथ ही अपनी छोटी बहिन और भाई को भी। मुझे आज अपनी माँ याद आयी है, जिसने मुझे जन्म देकर पाल-पोस इतना बड़ा किया। ऐसी जननी को रोती हुई छोड़कर आज मैं कहाँ हूँ? हाय, इस संसार का रिवाज कैसा है! हाय! पिता, भाई, सखियाँ सभी से मैंने किनाराकशी कर ली; यह सब चर्चा करते ही मेरा हृदय पीपल के पत्ते के समान काँपने लगता है। वहाँ (मायके में) मैं अपनी छोटी बहिन को गोदी में ले कितनी प्रसन्नता से दिन-भर खेलाती थी, पर मेरी निठुर भौजी ने चलते समय मेरे हाथों से कितनी निर्दयता से उसे ले लिया था। विदा के समय पिताजी ने भी कुछ कहा, जिसे मैं नहीं समझ सकी; लेकिन उन्होंने मेरे हाथ से पकड़े गये अपने पैर छुड़ा लिये! उस समय मेरा हृदय, हे नाथ, थर-थर काँप रहा था; पर तब भी आपने मुझे सवारी पर चढ़ा ही लिया। उस समय का—अपने घर-आँगन का, अपने परिजन और सखी-सहेलियों का—सारा दृश्य मैंने आज सपने में निहारा है, जिससे मेरा चित्त उदास हो गया है; और कोई दूसरी बात नहीं। अपना बचपन और किशोरावस्था जहाँ मैंने बितायी, वहाँ से सब लोगों को रुलाकर आप मुझे यहाँ क्यों ले आये?' नववधू की ये करुण-कातर स्मृतियाँ सुनकर पति बोला—'हे प्यारी, चुप करो, चुप करो; कल ही कहार आयेंगे और तुम नैहर जाओगी; वृथा क्यों रो रही हो? वहाँ जाकर माता-पिता भाई-बहिन सबको तुम देख सकोगी। हे सुन्दरि! (कवि कुमर कहते हैं) दो-चार दिन नैहर में बिताकर पुन: तुम घर आ जाओगी।"

निर्मल नारी हृदय की भावनाएँ इन पंक्तियों में मुखरित हुई हैं। नारी का स्नेह और ममत्व, उसकी पूर्व-स्मृतियों से गुम्फित होकर, अपूर्व काव्य की सृष्टि करके, उसके मृदुल अन्तस्तल को दर्पण की भाँति झलकाता है। 'समदाऊनि' की यही विशिष्टता उसे अविस्मरणीय बना देती है। मैथिली लोकगीतों में नारी की कारुणिक ममता, उसकी एकान्त निष्ठा, उसकी चातक-भक्ति, उसके अविचल प्रेम और उसके दु:ख-दैन्य का चित्रण बड़ी सूक्ष्मता और बहुतायत से हुआ है। जो थोड़ी-सी बानगी मैंने सहृदय पाठकों की सेवा में यहाँ उपस्थित की है, उसमें प्रतिफलित नारी-हृदय की कोमल-करुण भावनाओं का चित्र समग्र लोकगीतों की आत्मा की एक झाँकी दिखा देता है। लोकगीतों की रसमयता का आस्वाद भी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

●●

महाकवि कालिदास की 'जानकी'

श्रीश्रुतिदेव शास्त्री, लोकभाषा-अनुसन्धान-विभाग, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना

महाकवि कालिदास ने अपने काव्यों में कुछ ऐसे स्त्री-पात्रों को चित्रित किया है, जिनमें कवि की तूली के रंग का निखार बड़ा सुन्दर हुआ है। अनायास सहृदय-मन उस ओर आकृष्ट हो जाता है। उन पात्रों में शकुन्तला, मालविका, उर्वशी, पार्वती, इन्दुमती तथा जानकी मुख्य हैं। इनमें जानकी को महाकवि ने विरह के पुटपाक में डालकर और वर्णाश्रम धर्म के कर्त्तव्य की नेहाई पर आहत कर ऐसा निखार दिया है कि उसकी चमक का रंग ही कभी धूमिल होनेवाला नहीं है। कालिदास का सीता-चित्रण जितना ही संक्षिप्त है, उतना ही ठोस और पक्के रंग का है। लंका से लौटते समय भगवान् राम पुष्पक-विमान के वातायन से सीता को मार्ग के रमणीय स्थल और दृश्य दिखलाते जाते हैं—जहाँ उनके वियोग में दिन बिताये थे, जहाँ उनके विरह में विलाप किया था, जहाँ लता-कुञ्जों और नदी नालों तथा गुफाओं में भटककर उनकी खोज की थी, जहाँ उनके साथ कुटीरों में रात्रि व्यतीत की थी, जहाँ उनके साथ मृगछौनों से खेल किये थे। विमान के वातायन से दृश्यों और स्थलों के विहंगावलोकन का चित्रण बड़ा स्वाभाविक हुआ है। एक स्थल पर कवि की कल्पना है कि वातायन के बाहर जब मेघों के बीच सीता का हाथ निकला हुआ था, तभी मेघ में बिजली चमकी। उस गोरी कलाई पर बिजली की पतली गोल रेखा कौंध गयी। वह क्षणिक दृश्य ऐसा लगा, मानों, मेघ उन्हें सोने का वलय (कंगन) पहना रहा हो।[1]

पञ्चवटी, सुतीक्ष्ण-आश्रम, शरभंग-आश्रम और चित्रकूट की घटनाओं को और वहाँ के दृश्यों को भी कवि ने अपनी काव्य-चातुरी में इस प्रकार खचित किया है कि कहीं भी चर्वित-चर्वण-सा नहीं दीखता है। ये सभी दृश्य कवि ने पुष्पक-विमान पर से ही दिखलाये हैं। कवि ने जयन्त की गन्दी घटना को भी आँख से ओझल नहीं होने दिया है। विराध के द्वारा राम लक्ष्मण के बीच से सीता के अपहरण की कहानी भी कवि ने एक ही श्लोक में कह दी है। एक सामान्य नारी की तरह अयोनिजा मैथिली भी रावण के द्वारा माया से काटे हुए राम-लक्ष्मण के सिर को देखकर, मूर्च्छित हो जाती हैं और त्रिजटा के सही बात बतलाने पर फिर स्वस्थ होती हैं। महाकवि की सीता भी 'जातवेदोविशुद्धा' (अग्नि में शुद्ध) होकर ही राम को ग्राह्य होती हैं। अयोध्या में आने पर सासों ने सीता को आशीर्वाद दिये। अभिषेक के बाद कर्णीरथ पर चढ़कर जा रही सीता को खिड़कियों पर बैठी कुलांगनाएँ प्रणाम करती रहीं। वे स्वयं अनसूया-प्रदत्त प्रभा-मंडल से इस प्रकार

---

१. करेण वातायनलम्बितेन स्पृष्टस्त्वया चण्डि कुतूहलिन्या।
आमुञ्चतीवाभरणं द्वितीयमुद्भिन्नविद्युद्वलयो घनस्ते॥
—रघुवंश, सर्ग १३, श्लोक २१।

चमक रही थीं, मानो अयोध्यावासियों को वे पुनः अग्नि-परीक्षा (अग्नि-ज्वाला) के बीच दिखलायी जा रही हों। अभिषेक के अनन्तर पन्द्रह दिनों तक अयोध्या में रहने के पश्चात् अपने-अपने घर जाते समय बड़े-बड़े राक्षसों और वानरों की पहली विसर्जन-पूजा सीता के हाथों ही सम्पन्न हुई थी।

महाराज रामचन्द्र राजकाज करने के पश्चात् अन्तःपुर में महारानी सीता के साथ ही समय बिताते थे। यथासमय गर्भ के लक्षण प्रकट होने पर उनकी दोहदेच्छा पूछी गयी, तो उन्होंने पुनः भागीरथी के तट पर स्थित तपोवन की ऋषि-कन्याओं के साथ रहना पसन्द किया। जैसे ही वे महल की अटारी पर चढ़कर राजधानी की समृद्धि और नावों से भरी सरयू को देख रहे थे कि 'भद्र' नामक दूत ने आकर सुनाया कि राक्षस-भवन में महारानी सीता के रहने की आलोचना सर्वत्र हो रही है। इतना सुनना था कि प्रजापालक राम का मन दोलायित हो उठा—'क्या मैं इस निन्दा के घूँट को पी जाऊँ या निर्दोष प्रिया को छोड़ दूँ ?'[1] किन्तु यशोधन राम ने इस अपवाद को परिमार्जित करने के लिए सीता का त्याग करना ही अच्छा समझा। यद्यपि वे जानते थे कि महारानी सीता सर्वथा निर्दोष और निष्कलंक हैं, तथापि उनके लिए 'लोकोपवादो बलवान् मतो मे' का सिद्धान्त प्रबल था। उन्होंने अपने भाइयों से अपनी इच्छा व्यक्त की और इस विषय में चुप रहने को कहा। इसी क्रम में उन्होंने अपने अनुगामी लक्ष्मण को आदेश दिया कि 'सीता दोहद के कारण वन जाना चाहती हैं, इसलिए इसी बहाने तुम उन्हें वाल्मीकि मुनि के आश्रम में छोड़ आओ।' लक्ष्मण ने आदेश के अनुकूल उन्हें गंगा-पार ले जाकर वज्र-कठिन आदेश सुना दिया। वे भूमि पर गिरकर मूर्च्छित हो गईं। सज्ञान होने पर भी सीता ने अपने पति के प्रति एक भी अवाच्य शब्द नहीं कहा। लक्ष्मण से सास लोगों को प्रणाम और और अपने गर्भस्थ शिशु की कल्याण कामना के लिए प्रार्थना करने को कहा। अपने पति को लक्ष्मण द्वारा सदेश भेजा—'मेरी अग्नि-परीक्षा के बाद भी, लोकापवाद के कारण, मुझे छोड़ देना क्या सूर्यवंशी के लिए उचित है ? अथवा, आपने अपनी इच्छा से नहीं, मेरे पूर्वजन्मार्जित पाप के कारण ही छोड़ा है ? मैं आपके वियोग में अब जीकर ही क्या करूँगी ? किन्तु, मुझे आपके पुत्र के नाम पर जीना पड़ेगा। मैं भगवान् सूर्य से प्रार्थना करूँगी कि अगले जन्म में आप ही मेरे पतिदेव हों और पुनः कभी वियोग न हो।'—एक बात और। 'राजा का धर्म, मनु के अनुसार, वर्णाश्रम-धर्म का पालन करना है, इसलिए मुझे भी एक सामान्य तपस्विनी की भाँति ही देखते रहने को कहना।'[2]

---

१ किमात्मनिर्वादकथामुपेक्षे जायामदोषामुत सन्त्यजामि।
इत्येकपक्षाश्रयविक्लवत्वादासीत् स दोलाचलचित्तवृत्तिः॥
—रघुवंश, सर्ग १४, श्लोक ३४।

२. नृपस्य वर्णाश्रमपालनं यत् स एव धर्मो मनुना प्रणीतः॥
निर्वासिताऽप्येवमतस्त्वयाऽहं तपस्विसामान्यमवेक्षणीया॥
—वही, सर्ग १४, श्लोक ६७।

यह संदेश लेकर लक्ष्मण अयोध्या लौट गये। इधर वैदेही की दशा से खिन्न होकर मयूरों ने नृत्य करना छोड़ दिया। वृक्षों से पुष्प (आँसू[1]) झड़ने लगे। कुश के कवल हरिणियों के मुँह से गिर पड़े। महर्षि वाल्मीकि उधर आ पड़े। उन्होंने जानकी को ढाढ़स बँधाया। राम पर अपना क्रोध भी व्यक्त किया। सीता को आश्रम में मुनि कन्याओं के साथ रहकर वन्य-जीवन बिताने की शिक्षा दे अपने साथ ले गये। मुनि कन्याओं को उनकी देख-रेख का भार सौंप दिया। इधर सीता का यह हाल था, उधर रामचन्द्र राजकाज में लगे रहने पर सीता को मन से नहीं निकाल सके थे। वे दूसरा विवाह भी नहीं कर सके थे।

जिस दिन शत्रुघ्न मथुरा जाते समय वाल्मीकि के आश्रम में ठहरे थे, उसी दिन कुश और लव जनमे थे। किन्तु, उन्होंने ऋषि के निषेध करने के कारण राम से यह बात नहीं कही। जब भगवान् रामचन्द्र ने सीता की स्वर्ण प्रतिमा के साथ राजसूय-यज्ञ किया, तब वहीं कुश-लव रामायण गाते हुए घूमते देखे गये। पूछने पर कुश-लव ने अपने को महर्षि का शिष्य बतलाया। महर्षि बुलाये गये। उन्होंने राम से कहा, 'सीता सर्वथा निष्कलंक हैं, उन्हें आप स्वीकार कर लें।' राम ने कहा, 'यद्यपि मुझे उसकी निष्कलंकता में जरा भी संदेह नहीं है, तथापि वे यहाँ उपस्थित जनता के समक्ष अपनी पवित्रता प्रमाणित कर दें, तो मैं उन्हें ग्रहण कर लेने को प्रस्तुत हूँ।' तब महारानी को महर्षि लिवा लाये। वे काषाय-वस्त्र धारण किये अपने चरणों की ओर ताकती हुई सभा मंडप में आयीं। बोलीं—'हे विश्वम्भरे, यदि मैं मन, वचन और कर्म से पति के प्रति सच्ची और एकव्रता हूँ, तो मुझे तुम जगह दो।''—'तभी सहस्रनाग की फणाओं पर स्थित भास्वर सिंहासन पर बैठी वसुधरा देवी प्रकट होकर, भूमिसुता जानकी को अपनी गोद में बैठाकर, सबके 'नहीं नहीं' करते रहने पर भी अन्तर्हित हो गईं।'—महर्षि, राजा और उपस्थित सभी लोग देखते रह गये, सीता जहाँ से आयी थीं, वहीं चली गयीं। केवल उनकी कीर्त्ति शेष रह गयी।

महाकवि कालिदास की सीता और वाल्मीकि तथा व्यास की सीता में, समानता होते हुए भी, अन्तर है। आदिकवि की सीता पुरुषोत्तम राम की पतिव्रता सीता हैं और व्यास की सीता भगवान् राम की लक्ष्मी। किन्तु, कालिदास की सीता वर्णाश्रम धर्म पालने-वाले मनुवंशी राजा रामचन्द्र की पत्नी हैं, जिन्हें पति के कुल की मर्यादा और राज्य की समृद्धि के लिए अपने आपको बलिदान करने में रत्ती-मात्र भी क्लेश नहीं हुआ। उन्होंने लांछन, कष्ट और प्रतारणा सहकर भी राम के वंशधर शिशु (कुश लव) के कारण अपने प्राणों को नहीं छोड़ा। जब वे दोनों किशोर प्रबुद्ध हो गये, तब अपने आपको उन्होंने माता पृथिवी की गोद में सदा के लिए समर्पित कर दिया।

●●

---

१ वाङ्मनःकर्मभिः पत्यौ व्यभिचारो यथा न मे।
तथा विश्वम्भरे देवि मामन्तर्धातुमर्हसि॥
—रघुवंश, सर्ग १५, श्लोक ८१।

उन्नीसवीं सदी में बिहारी महिलाओं की स्थिति*

श्रीरंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर, भूतपूर्व राज्यपाल, बिहार

अनुवादक श्रीसच्चिदानन्द प्रसाद, बी० ए०, बिहार सर्वोदय मंडल, पटना

लेखकों ने, जिनमें भारतीय लेखक भी सम्मिलित हैं, भारतीय नारी का चित्रण दयनीय रूप में किया है। बचपन से बुढ़ापे तक उसका जीवन दुःख, उदासी और उपेक्षा से परिपूर्ण दिखाया गया है। उसके जीवन में आँसू ही आँसू हैं, हर्ष और उत्साह का कहीं नाम नहीं। यहाँतक कि उसे सार्वजनिक रूप से लोगों के सामने उपस्थित होने का अधिकार नहीं। एक जमाना था, जब बिहार की स्त्रियों को पर्दे में ही रहना पड़ता था। तब अँगरेजों का राज भारत में था। इस पर्दा प्रथा को अँगरेजी अदालतों से भी मान्यता प्राप्त थी। ऊँचे घराने की कुलीन स्त्रियों की गवाही 'कमीशन' पर ली जाती थी, अथवा स्वयं न्यायाधीश महोदय पालकी के दोहरे पर्दे की ओट से उनका बयान सुनते थे। पर्दा धन एवं प्रतिष्ठा का प्रतीक माना जाता था।

लेकिन, इस पर्दा प्रथा का रूप सर्वत्र एक समान नहीं था। उदाहरणार्थ पटना जिले के अंतर्गत 'दरियापुर' की कुछ स्त्रियाँ भागलपुर जिले की स्त्रियों के समान भीरु नहीं थीं। भागलपुर जिले में भी बाका' सबडिवीजन की स्त्रियाँ बंगाल की स्त्रियों से अधिक भीरू होती थीं, लेकिन पूर्णिया जिले की स्त्रियों से अधिक भीरू नहीं। निम्न जातियों में पर्दे की प्रथा कभी नहीं रही। समाज के ऊँचे वर्गों में पर्दा अभिशाप नहीं, गौरव की वस्तु था। यह मानने का कोई कारण नहीं था कि पर्दे में रहने वाली स्त्रियाँ अपने जीवन से असंतुष्ट थीं। स्वतंत्र जीवन बिताने का अवसर कभी न मिलने के कारण स्वतंत्रता के लिए उनमें कोई तड़प नहीं थी। पर्दा वास्तव में उनके लिए प्रतिष्ठापूर्ण जीवन एवं पति-प्रेम का प्रतीक समझा जाता था। यह नहीं कहा जा सकता कि सभी पर्दानशीन स्त्रियाँ अज्ञान होती थीं। एक विदेशी यात्री बुकानन[1] ने जो यहाँ आया था, अपने यात्रा वर्णन में लिखा है कि शाहाबाद जिले में दस बारह पढ़ी लिखी हिन्दू स्त्रियाँ उसे मिलीं। 'कोरजा' नाम के गाँव में लगभग बीस स्त्रियाँ उसे ऐसी मिलीं जो अपने हस्ताक्षर कर सकती थीं

---

* 'बिहार भ्रू द एजेज' से संकलित।—अनु०

१ फ्रांसिस बुकानन का समय १८वीं शती का अन्त और १९वीं शती का प्रारम्भ माना गया है। वे सन् १८०७ ई० में सांख्यिकी विभाग के निरीक्षक, ईस्ट इंडिया कंपनी की ओर से, नियुक्त हुए थे। इन्होंने यथानिर्दिष्ट रूप में सांख्यिकी विवरण तैयार किया था—सन् १८०७—१८१४ ई० बंगाल प्रेसिडेंसी सन् १८०९ १० ई० पूर्णिया सन् १८१० ११ ई० भागलपुर सन् १८११ १२ ई० बिहार ऐंड पटना सन् १८१२ १३ ई० शाहाबाद।

और हिसाब समझ सकती थीं। उसी जिले के अन्दर 'तिलौथू' नामक गाँव में कुछ ऐसी स्त्रियों को उसने देखा, जिनकी लिखावट सुन्दर होती थी और जो तुलसीदास की काव्य-रचनाओं को समझ सकती थीं। उस समय कुलीन परिवारों की स्त्रियों को किसी-न किसी प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। बुकानन ने लिखा है कि पटना और बिहारशरीफ की निम्नवर्गीय स्त्रियाँ षड्यंत्रों तक में शामिल होती थीं। साग सब्जी बेचनेवाली स्त्रियों के चरित्र पर बुकानन ने उँगली उठायी है, हालाँकि उनका जैसा चित्रण उसने किया है, वह उचित नहीं है। कुछ कुलीन ब्राह्मण यहाँ अनेक स्त्रियों से विवाह करते थे और जीवन में तीन-चार बार ही अपनी प्रत्येक पत्नी से मिल पाते थे। फिर भी, वे स्त्रियाँ अपना सतीत्व अक्षुण्ण रखती थीं। बुकानन ने भी स्वीकार किया है कि सामान्यतः भारत की स्त्रियों का चरित्र उज्ज्वल रहा है।

यहाँ की स्त्रियों में धर्म की भावना प्रबल होती थी। धर्म के लिए व कोई भी कष्ट सहन करने को प्रस्तुत रहती थीं। स्त्री घर की पुरोहित होती थी। घर को पवित्र बनाये रखना, व्रत-अनुष्ठान करना आदि उनका काम होता था। ऐसा होते हुए भी परिवार में पुत्र का जन्म सम्मान सूचक और कल्याणकर माना जाता था, किन्तु पुत्री का जन्म अभिशाप तुल्य समझा जाता था। पुरुषों को धर्म के रहस्यों की छानबीन करने और विभिन्न प्रकार के विधि-विधानों का पालन करने की जिम्मेदारी दी जाती थी, लेकिन स्त्रियों के लिए सरल अनुष्ठान निर्धारित किये जाते थे। भागलपुर जिले के 'मनिहारी' नामक गाँव में पुरुषों के समान स्त्रियाँ यज्ञादि कार्य में सम्मिलित नहीं हो सकती थीं, लेकिन उसके बाद के कार्यक्रम में भाग ले सकती थीं। पुरुष अक्सर अपनी स्त्रियों को जीवन-सहचरी नहीं, अपने अधिकार की वस्तु समझते थे। चाहे पति कितना भी दुश्चरित्र हो, स्त्रियाँ स्वतन्त्रतापूर्वक बोल नहीं सकती थीं। लेकिन, स्त्री के चरित्र में किंचित् संदेह उनके सर्वनाश का कारण हो सकता था। फिर भी, स्त्रियों के प्रति किसी तरह की घृणा, अशिष्टता या अप्रीति का प्रदर्शन कभी नहीं किया जाता था। सार्वजनिक तौर पर स्त्रियों के प्रति उच्चतम आदर का भाव प्रदर्शित किया जाता था और उन्हें किसी प्रकार के अपमान का भय नहीं रहता था। कुछ मामलों में, स्त्रियाँ सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी भी होती थीं। पति की सम्पत्ति पर विधवा का अधिकार प्राचीन शास्त्रों द्वारा मान्य था। पत्नी का काफी प्रभाव पति पर रहता था, और पत्नियों की स्थिति जैसी मानी जाती है, उससे कहीं अच्छी थी। वे अधिक स्वतन्त्र थीं। पारिवारिक व्यवस्था के कारण स्त्रियों के हाथ में पर्याप्त सत्ता होती थी। वह गृहिणी, घर की स्वामिनी समझी जाती थी। पुरुषों और स्त्रियों के बीच काम का समान रूप से बटवारा होने के कारण स्त्रियों का समय व्यर्थ कभी नहीं जाता था। पति के प्रति आदर भाव होने के कारण स्त्रियाँ अपने पति के भोजन कर लेने के बाद ही स्वयं भोजन करती थीं। उनके साथ कठोर व्यवहार शायद ही कभी होता था। यह कहा जा सकता है कि पत्नी के प्रति बरताव बहुत कुछ पति के स्वभाव पर निर्भर करता था।

ऊँची जातियों में विधवाओं की स्थिति अच्छी नहीं होती थी। लेकिन, उनके साथ सदा विवेकपूर्ण व्यवहार किया जाता था। जो विधवाएँ अधिक उम्रवाली होती थीं, वे नवयुवतियों के लिए अभिभावक और सलाहकार का काम करती थीं, पति के मर जाने के बाद स्त्री को बलात् वैधव्य का जीवन बिताना पड़ता था। सामान्यतः वह संयम का जीवन बिताती थीं। जिन्दगी की खुशियों में वह हिस्सा नहीं लेती थी। वह न अच्छे वस्त्राभूषण धारण करती थी और न विवाहादि जैसे शुभ समारोहों में भाग लेती थी। विधवाओं का पुनर्विवाह केवल ब्राह्मणों, राजपूतों, कायस्थों और कुछ बनियों में निषिद्ध था। लेकिन, दूसरी जातियों में पुनर्विवाह आसानी से होता था। बुकानन ने लिखा है, "हिन्दुओं में पचहत्तर प्रतिशत नौजवान विधवाएँ पुनर्विवाह कर सकती थीं। उनमें 'सगाई' जैसे विलक्षण समारोह होते थे। सगाई की हुई पत्नी को विवाहित पत्नी के सभी अधिकार प्राप्त होते थे।"

स्त्रियों का उन्नयन आधुनिक भारत की एक बड़ी सफलता है। यह काम स्त्रियों में आधुनिक शिक्षा के प्रसार के द्वारा संभव हुआ है। भारत में सुसंस्कृत नारी की उज्ज्वल परंपरा बहुत प्राचीन काल से रही है। वस्तुतः, प्राचीन भारत में ऐसी अनेक विदुषी स्त्रियों के उदाहरण मौजूद हैं, जिनका धार्मिक एवं शास्त्रीय साहित्य का ज्ञान बहुत विस्तृत था। यह परंपरा उन्नीसवीं सदी के आरंभ तक कायम रही यद्यपि तबतक अनेक कारणवश स्त्री-शिक्षा का स्तर बहुत नीचे गिर चुका था। प्रतिष्ठित परिवार की स्त्रियों के लिए शास्त्रीय एवं प्रचलित भाषाओं के साहित्य का अध्ययन करना पवित्र ध्येय एवं मनोरंजन का साधन था। संपत्ति की व्यवस्था तथा अन्य ऐसे विचारों से प्रेरित होकर ऊँचे कुलीन वर्ग के कुछ लोगों ने खानगी तौर पर अपनी लड़कियों को शिक्षा दिलाना शुरू किया। उस समय लड़कियों के लिए अलग सार्वजनिक शिक्षण संस्थाएँ नहीं थीं। बुकानन ने शाहाबाद तथा पूर्णिया जिलों की पढ़ी-लिखी महिलाओं की चर्चा अपनी पुस्तक में की है। उसने लिखा है कि उस समय पूर्णिया जिले में ४८३ ऐसी स्त्रियाँ थीं, जो साधारण काव्य समझ सकती थीं। कोशी नदी से पश्चिम की ओर के क्षेत्र में लगभग २० ऐसी स्त्रियाँ थीं, जो 'देवभाषा' (संस्कृत) में पत्र व्यवहार कर सकती थीं।

आधुनिक ढंग की स्त्री-शिक्षा के आरंभ और विकास का श्रेय ईसाई मिशनरियों के कामों, उन्नीसवीं सदी के भारतीय नवजागरण के प्रभावों, प्रबुद्ध भारतीयों के प्रयासों, राष्ट्रीय-आंदोलन की प्रेरणाओं तथा राज्य द्वारा की गयी काररवाइयों को है। सन् १८५४ ई० के एक अभिलेख से प्रकट होता है कि भारतीयों में अपनी लड़कियों को शिक्षा देने की आकांक्षा उत्तरोत्तर बढ़ रही थी। लेकिन, बिहार में लड़कियों को सार्वजनिक रूप से शिक्षित करने के विचारों का उदय होना बाकी था। सन् १८७५-७६ ई० में एक अँगरेज श्रीक्रोफ्ट ने लिखा था कि लोग अपनी लड़कियों को शिक्षा देने की दिशा में अग्रसर हो रहे थे। इसका प्रमाण यह था कि प्रायः सभी जिलों में जो लड़कों की पाठशालाएँ थीं, उनमें लगभग एक दर्जन लड़कियाँ अवश्य पढ़ती थीं।

बीसवीं सदी का आरंभ होते-होते स्त्री-शिक्षा में लोगों की दिलचस्पी बहुत बढ़ चुकी थी और प्रशिक्षित भारतीय महिला-शिक्षकों की आवश्यकता भी महसूस की जा रही थी। पर्दा प्रथा के कारण, बालिका-विद्यालयों की स्थापना करने के अलावा, घर-घर में महिला-शिक्षकों को भेजकर लड़कियों को शिक्षित करने का विचार सर्वमान्य हो चला था। उस समय की एक विद्यालय-निरीक्षिका मिस ब्रोक ने सन् १९०४-५ ई० में अपनी एक रिपोर्ट में लिखा है कि लोगों में स्त्री-शिक्षा के विरुद्ध कोई पूर्वाग्रह नहीं था। वे उच्च जाति की लड़कियों को पर्दे से बाहर जाने देने के प्रबल विरोधी थे।'

सन् १९१४ ई० में सरकार ने स्त्री-शिक्षा पर विचार करने के लिए एक कमिटी नियुक्त की। कमिटी ने सिफारिश की कि बाँकीपुर (पटना) और कटक (उड़ीसा) में लड़कियों के हाइ-स्कूलों में इंटरमीडिएट वर्ग शुरू किये जायँ। सरकार ने यह भी निश्चय किया कि प्रत्येक डिवीजन (जिले के विभाग) में लड़कियों का कम से कम एक हाइ-स्कूल खोला जाय। सन् १९१५-१६ ई० में बिहार और उड़ीसा के अंतर्गत सभी प्रकार के विद्यालयों में भारतीय लड़कियों की संख्या १,१६,२३३ थी। फिर भी, सन् १९११ ई० में इस प्रांत में स्त्री-शिक्षा केवल ०.४ प्रतिशत थी और सन् १९२१ ई० में ०.६ प्रतिशत, सन् १९२०-२१ से १९२३-२४ ई० तक की अवधि में स्कूल-कॉलेजों में लड़कियों की संख्या कम हो गयी थी, लेकिन दूसरे वर्ष उसमें वृद्धि हुई और लड़कियों के स्कूल-कॉलेजों में छात्राओं की संख्या ७०,७७६ तथा लड़कों के स्कूल-कॉलेजों में पढ़ रही छात्राओं की संख्या ४०,४१६ हो गयी। लेकिन, इतना होने पर भी यह महासमुद्र में बूँद के बराबर था। सन् १९२७ ई० में, बिहार-उड़ीसा के अंतर्गत शिक्षा पा रही स्त्रियाँ ०.७ प्रतिशत थीं। सन् १९२९ ई० में स्कूल जाने लायक लड़कियों की संख्या बिहार में लगभग २५ लाख थी, जबकि मान्यता-प्राप्त विद्यालयों में पढ़ रही लड़कियों की संख्या केवल १,१६००० थी। इनमें लगभग १,१०,००० प्राथमिक पाठशालाओं में थीं। उच्च शिक्षा के मामले में यह प्रांत सबसे अधिक पिछड़ा हुआ था, लेकिन जागरण के लक्षण अब दीख रहे थे।

इधर कुछ वर्षों से बिहार में स्त्री शिक्षा—मन्द गति से ही सही, लेकिन अप्रतिहत रूप से—बढ़ती रही है। राष्ट्रीयता तथा अन्य तत्त्वों से प्रेरित एक नया जागरण आया है, जिसके कारण अब स्त्री-शिक्षा में बहुत अधिक प्रगति हुई है।

●●

गतिरेको पतिर्नार्या द्वितीया गतिरात्मजः।
तृतीया ज्ञातयो राजंश्चतुर्थी नैव विद्यते॥
—वाल्मीकिरामायण, अयो० ६१।२४

[(कौसल्या ने दशरथ से कहा) हे राजन्! नारी के लिए एक सहारा उसका पति है, दूसरा उसका पुत्र है तथा तीसरा उसके पिता, भाई आदि बन्धु बान्धव हैं, चौथा कोई सहारा उसके लिए नहीं है।]

मगही-लोकगीतों में नारी के तीन रूप

पंडित श्रीकान्त शास्त्री, एम्० ए०, साहित्याचार्य, नारायणपुर, एकंगरसराय (पटना)

भगवान् मनु ने ब्रह्म के अर्द्धभाग से नर और शेष से नारी की उत्पत्ति की चर्चा की है। परन्तु, नर और नारी की प्रवृत्ति, प्रकृति और मनोवृत्ति में असाधारण भिन्नता लोक और वेद दोनों में प्राप्त है। जहाँ पुरुष में पौरुष, ओज, तेज, उद्यम, साहस और गंभीरता है, वहाँ स्त्रियों में करुणा, क्षमा, प्रीति, शान्ति, स्नेह और अतुल औदार्य के अतिरिक्त कार्य-पटुता भी दीख पड़ती है। पुरुष भारतीय वाङ्मय गगन के दिव्य दिनकर हैं, तो नारियों को उषा की संज्ञा क्यों न दी जाय? पुरुष के व्यक्तित्व की पूर्णता नारी के हार्दिक सहयोग के बाद ही होती है। नारी-जीवन की समतल आधारशिला पर ही भारतीय साहित्य का गगनचुम्बी प्रासाद निर्मित है। सम्भवतः, महाकाव्य की आत्मा ही नारी होती है। नर नारी का चिर-मिलन ही काव्यत्व की चरम सीमा है। भला, ऐसे यशस्वी नारी-जीवन की उपेक्षा परम कारुणिक सघमित्रा की 'मगही' कैसे करती? अगर 'यद् अण्डे तत् पिण्डे, की कहावत युग युग से प्रचलित है, तो 'यद् वेदे तत् लोके' की श्रुति भी सत्य की अचल भित्ति पर आश्रित है। कारण, लोक ही वेद का मूल उत्स जो है।

मगही-लोकगीतों में जहाँ सीता का सत्याचरण है, वहाँ सावित्री की निष्ठा भी है। इसी तरह उर्मिला का विरह, यशोधरा का मान, शकुन्तला की प्रकृति तन्मयता, श्रद्धा की श्रद्धा और कामायनी की कमनीयता साधारणीकृत होकर मगही-लोक साहित्य में यत्र-तत्र-सर्वत्र परिश्रुत होती हैं। कारण, मगध का लोक-जीवन युग युग से सघर्षित और सधर्षित होते हुए भी करुणा, दया और दाक्षिण्य की पृष्ठभूमि पर ही सम्पुष्ट हुआ है। अतः, मगही-लोकगीतों में नारी-जीवन का प्रवाह भी करुणा विगलित होकर जन-जीवन को युग-युग से आप्यायित करता आ रहा है। भाव-प्रवण मगही लोकगीतों में नारी के तीन मुख्य रूपों का निदर्शन प्राप्त है—मातृरूप, भगिनीरूप और पत्नीरूप। इन्हीं तीन रूपों में नारी-जीवन के सतरंगी चित्र, कृत्रिम अलङ्कारों और बहुरूपी विधाओं के बिना भी, उषा की तरह नित्य-नवीन एवं पंचरंग के इन्द्रधनुष की तरह, चिरदर्शनीय रहे हैं।

नारी-जीवन की सार्थकता उसके मातृत्व की पूर्णता में ही निहित है। कारण, नारी-जाति 'पुम्' नामक नरक से त्राण करनेवाले पुत्र को क्षण-भर भूल भी जाय, पर वह पुत्रोत्सव-विवाहोत्सवादि जन्य उत्साह एवं उल्लास के प्रदर्शन से वंचित रहना कतई पसन्द नहीं करती। मातृत्व की सफलता 'सूर' के शब्दों में 'अमर मुनि दुर्लभ सुख' जो है। अतएव मगही महिला की सूक्ति है—'चउँका चनन कइसे पइठय, अपन जलमलवा बिनु।' [अपनी सन्तान के बिना, मातृका पूजन (जिसे लोग मगही में 'पिउढारी' कहते हैं) के समय चौके

पर पति के साथ कैसे बैठूँगी ?] अतः, मातृत्व में असफल नारी बाँझिन (पुत्रहीना) होने के कारण, अपने जीवन से ऊबकर, बाघिन और नागिन के पास स्वयं मृत्यु का वरण करना चाहती है। पर, वहाँ भी उसे टका-सा उत्तर मिलता है—

घरवा से हुकसल बँझिनिया बघिनया के खोह गेल है।
बाघिन हमरा के खइतूँ न सँघार जनम मोर अकारथ है॥
जाहुक है बाँझिन जाहुक तोहरा नहिं खायब है।
हमहु बाँझिन होइ जायब तोहरा कैसे खायब है॥

अर्थात्, घर से निकलकर बाँझ स्त्री बाघिन के खोह (गुफा) में गई। उससे कहा, 'मुझ बाँझिन का जन्म व्यर्थ है, मेरा संहार कर दो।' बाघिन बोली, 'जा-जा, मैं तुझे नहीं खाऊँगी, मैं भी बाँझिन हो जाऊँगी, तुझे कैसे खाऊँ ?'

बाद, वह नागिन के यहाँ जाती है। पर, यहाँ भी वही उत्तर मिलता है। सूर्य के सामने जाकर आराधना करती है। गंगा-सेवन से भी नहीं चूकती। अन्त में, दिलीप की नन्दिनी की तरह गो-माता ही सन्तान-दात्री सिद्ध होती है। पुत्र-जन्मोत्सव होता है। सोहर से उसका घर-आँगन गूँज उठता है।

वाल्मीकि और तुलसी की कौसल्या राम-वन-गमन के बाद, महल में बैठी रोती हैं; पर मगही-लोकगीतों की कौसल्या तो राम को पगली सी खोजती फिरती हैं। वन में जब मानव-जाति के दर्शन नहीं होते, तब वे वन के वृक्ष, पंछी और वनचरों से पूछती हैं— 'क्या राम को इस राह से जाते देखा है ?' अनुकूल उत्तर पाकर जहाँ वे आशीर्वाद देती हैं, वहाँ चकई के उपेक्षित उत्तर पर खीजकर शाप तक देती हैं—

अरे अरे दहवा के चकई तू सूतल कि जागल है।
एहि बाटे देखले तू राम कउन वन पइसल है ?
सूतल हलीअइ पिया के संघे अपने बलेमु संघे है।
का जनि राम कहाँ गेलन कउन वन पइसल है।
अइसन सराप तेरा देवउ रे दहवा के चकई है।
ललना, दिनभर रहमें पिया के संघे रतिये बिछुर जयबे है।

अर्थात्, (कौसल्या पूछती हैं) अरी झील या सरोवर में रहनेवाली चकई, तू सोई थी या जगी हुई ? इस राह से तूने राम को जाते देखा है ? वे किस वन में प्रवेश कर गये ? (चकई उत्तर देती है) मैं अपने प्रियतम के साथ सोई थी। मैं क्या जानूँ कि वे किधर गये। (क्रुद्ध कौसल्या कहती हैं)—मैं तुझे शाप देती हूँ कि तू दिनभर अपने प्रियतम के साथ रहेगी, पर रात में बिछुड़ जायगी।

क्या दबे स्वर में यह पूछा जा सकता है कि वाल्मीकि और तुलसी के राम की 'रे रे वृक्षाः'......., 'हे मधुकरश्रेणी' आदि उक्तियाँ तथा अग्निवेश रामायण में राम द्वारा चकई को दिया गया रात में बिछुड़नेवाला शाप क्या इन्हीं लोकगीतों से प्रभावित नहीं है ?

इसी तरह, सावन के मेघों को देखकर दाम्पत्य-हृदय में जो प्रतिक्रियाएँ हुईं, उन्हें महाकवियों की प्रतिभा ने अमर कर दिया। पर, पुत्र-वियोग से भी मातृहृदय में कुछ भाव आते होंगे, इसका ध्यान किसी महाकवि को न हुआ! लेकिन, पुत्र वियोग से व्यथित कौसल्या के मातृ-हृदय की उपेक्षा मगही लोकगीतों में न हुई। कारण, लोकगीतों की कौसल्या लोक-माता है, राजमाता नहीं। वे तार-टूटे सितार की तरह कोने में मूक होकर आह भरनेवाली न रहकर मुखर हो उठी हैं—

पठये तुम नारि बैरन, बन बालक मेरो।
असाढ़ मास घन गरजत घोर रटत पपीहरा कुँहकत मोर।
बिलखइ कोसिला अवधपुर धाम भींजत होयत लखन मोरा राम।
मेघ भर लाये—पठये तुम......

अर्थात्, (कैकई से कौसल्या कहती हैं) तू मेरी बैरिन है। तब न मेरे बालक पुत्र को वन में भेज दिया! आषाढ़ मास में बादल गरजने लगे, पपीहरा रटने लगा, मोर कुहकने लगा। अयोध्या के महल में कौसल्या बिलखती हैं—न जाने राम और लक्ष्मण कहाँ भींग रहे होंगे!

मातृरूप के समान ही भगिनीरूप भी कम आकर्षक एवं आलोकमय नहीं है। समस्त संस्कृत साहित्य में भ्रातृ भगिनी-स्नेह का न होना कम अस्वाभाविक-सा नहीं प्रतीत होता। लेकिन, तुलसी के मिलइ न जगत सहोदर भ्राता की तरह मगही बहन भी बिना वचन मनतेउँ नहिं ओहू (तुलसी) की शैली पर कह उठती है—

घँघरा डँसायब तहाँ पिया पायब।
मइया के जलमल भइया कहाँ पायब?

अर्थात्, जहाँ सतीत्व बेचूँगी, वहीं पति पा जाऊँगी। पर (एक ही) माता के गर्भ से जनमा हुआ भाई कहाँ पाऊँगी?

तभी तो वह 'भैया-दूज' के अवसर पर दुर्गा की तरह उद्घोषणा करती है—

अइला कूटिलऽ बइला कूटिलऽ कूटिलऽ जम केर हाड़।
कूटिलऽ भइया केर दुसमन आठ पहर दिन-रात॥

(कैसी शक्ति है! सचमुच, यम किसी से परास्त भी हुआ है, तो नारी के तेज से ही)। ढेंकी और ऊखली में जैसे कोई चीज कूटी जाती है, वैसे ही मैं अपने भाई के दुश्मन यम की हड्डी तोड़ दूँगी।

दुःख-दारिद्र्य की मारी बहन अपने सगे भाई के घर बरसात में आयी है। भाई तो धन-कुबेर नहीं है! तब भी बहन को सुखी करने के लिए वह निश्चय करता है—

बेचि देवइ बहिनि ला ढाल-तरुअरिया, बेचि देवइ हरवा-कुदार।

बहन के लिए ढाल-तलवार बेच दूँगा और हल-कुदाल (खेती के औजारों) को भी बेचूँगा।

बहन कहती है—

काटि लेबइ दुरे-भुरे घरे बरसतवा, मत बेचू ढाल-तरवार।
कउँधी से जितबऽ भइया अगम रहनियाँ, कइसे के रेनवा-पथार ?

अर्थात्, मेरे भाई, तुम ढाल-तलवार (या हल कुदाल) मत बेचो, मैं अपने (ससुराल के) घर पर ही किसी तरह बरसात काट लूँगी। ढाल-तलवार के बिना तुम कठिन रण (लड़ाई) कैसे जीतोगे और खेती के औजारों के बिना कृषि-कार्य कैसे करोगे ?

अब एक दुर्गा-बहन की तेजस्विता देखिए। एक लम्बे गीत की कुछ कड़ियाँ नीचे दी जाती हैं। सारांश है—सात भाइयों की एक बहन 'अमोला' को समाचार मिला कि उसके भाई 'कर' न देने के कारण दिल्ली की जेल में बंद हैं। अपने भाइयों की मुक्ति के लिए वह सबसे प्रार्थना करती फिरती; पर सभी ने अपने को असमर्थ बताया। अन्त में, ढाल-तलवार धारण कर एक तेज घोड़ी पर वह स्वयं दिल्ली चली गयी। वह ऐसी सुन्दरी थी कि खिड़की से मोगल-बादशाह ने देखा, तो बिना बादल के ही बिजली चमकती सी जान पड़ी। वह बोली कि 'मेरे सातों भाइयों को छोड़ दो, बदले में सारे आभरण ले लो।' इस तरह भाइयों को छुड़ा लायी।

कसि लेलनइ अमोला रे टिउली बछेडिया
पेन्हि लेलनइ ढार-तरुअरिया रे दइया।

भर रे करोखा चढ़ि देखहइ मोगलवा कि
मेघ बिनु चमकइ बिजुरिया रे दइया।
छोड़ देहि मोगला रे सातो भइया बीरना कि
लेइले छतीसो रँग अभरन रे दइया।

कारा-मुक्ति के बाद रोते हुए भाई कहते हैं—"ऐ बहन, हमलोग कैसे कहें कि तुम अब पराये घर की बहू हो, तुम तो हमलोगों की 'दहिनी बाँह' (सगा भाई) हो गयी।" (अब हम आठ भाई हो गये।)—

कइसे के कहिओ बहिनी पर-घर-जवइया।
तुहूँ भेलहु हमर दहिन बहियाँ रे दइया॥

जिस समय सावन के उनींदे घन से आप्यायित सजल सरस सुस्निग्ध खेतों में, मागधी युवतियों के कल कण्ठ से, यह कथात्मक गीत प्रवाहित होने लगता है, उस समय पथिक अपना पथ भूलकर क्षण-भर के लिए ब्रह्मानन्द सहोदर रस में तल्लीन हुए बिना नहीं रहता।

मगही लोकगीतों का पत्नीत्व महाकवि माघ के 'प्रकृतिरिव योषितः' का ही प्रतिरूप है। वह पत्नी पर-जन्म तक अपने पति का साथ नहीं छोड़ती। यही कारण है कि दुःख दारिद्र्य के लाखों थपेड़ों के बावजूद पति-पत्नी का सम्बन्ध समरस रूप में गंगा के पुनीत प्रवाह की तरह कलकल कर प्रवाहित होता आ रहा है। भगवान् शंकर अपनी प्रिया पार्वती से नैहर जाने के समय अनुरोध करते हैं—

पतिअनि गरिआ गउरा पतिये बिसरिहड, बरिहऽ तूँ उहँमा बड़ाई हे।

अर्थात्, मेरी उपेक्षाओं को भूलकर वहाँ मेरी प्रशंसा करना।

पार्वती का सहज उत्तर भी श्रव्य है—

की तोरा ईसर हे मनि बउरायल की तोरा मतिय हेरायल हे।

दुहूँ पुरुखवा ईसर हमहुँ तिरियवा दुख-सुख कहलो न जाय हे।

अर्थात्, हे प्रभो! आपकी बुद्धि क्या बावली हो गयी है अथवा बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है। हम दोनों पति-पत्नी हैं। क्या कोई (दम्पती) अपने सुख-दुःख को सबसे कहते फिरता है?

वस्तुतः, पति-पत्नी के इसी सुख दुःख की अकथ कहानी के बीच घर-गृहस्थी की लँगड़ी गाड़ी लड़खड़ाती हुई भी एक ढंग से चलती रहती है। और, अगर नये 'सुधार' की तथाकथित बयार से बची, तो चलती ही चली जायगी।

पौराणिक सीता के तेज से अग्नि प्रज्वलित हो गयी थी; पर मगही-लोकगीत की सीता के कथनमात्र से ही सूर्य और अग्नि दोनों शीतल हो गये। प्रसङ्ग यों है। राम-सीता का प्रथम मिलन है। सीता सिरहाने खड़ी हैं। राम को उनके सतीत्व का समुज्ज्वल रूप देखना है;—तब न वे उन्हें अर्द्धाङ्गिणी का व्यावहारिक रूप देंगे? राम उन्हें सूर्य की शपथ लेने को कहते हैं। स्पर्श की बात तो दूर रही, उनके शपथ करने मात्र से ही सूर्य श्रीहत हो गये, अग्निदेव भी शीतल हो गये। गीत यह है—

जबे राजा रामचन्दर कोहबर पइसल सीता सिरहनमे धयले ठाढ़ हो।

सुरुज किरियवा सीता तूँ जनि खइहहु तबे धरु सेजिया पर पाम हे।

सुरुज किरियवा सीता जबे लये खयलन सुरुज छपित होय गेल हे।

अगिन किरियवा सीता जबे लये खयलन अगिन भेइ गेल छार हे।

धरती किरियवा सीता जब लये खअलन धरती माटिए होइ गेल हे।

गंगा किरियवा सीता जब लये खयलन गंगा पिघली जल ढार हे।

अर्थात्, राम जब सीता के कोहबर में गये, वे लज्जावश सिरहाने खड़ी हो गयीं। राम ने उन्हें शय्या पर पाँव रखने के पहले सूर्य, अग्नि, धरती और गंगा की शपथ लेने को कहा। सीता की शपथ से वे सब के-सब क्रमशः अग्निप्राय, शीतल, मिट्टी एवं जलधार के रूप में परिणत हो गये।

अन्त में, एक मगही दीन बाला की सूर्योपासना के गीत सुनिए—

गोड़ तोरा परिओ गुहो सुरुज देओ, जलम मति दीह राम तिरिया।

बहुत मति दीहऽ राम सुरती, बहुत जो दीहऽ राम सुरती—

त पुरुख मत दीहऽ राम मुरुखा, पुरुख जो दीहऽ राम मुरुखा—

त बहुत मत दीहऽ राम बलका, बलका जो देवऽ राम बहुता—

त पकरि धरि झोंके राम बटिया।

अर्थात्, हे सूर्यदेव, मुझे नारी जन्म मत देना। अगर देना भी, तो मुझे सुन्दरी न बनाना। अगर बनाना ही, तो मूर्ख पति न देना। अगर वह भी देना, तो अधिक सन्तान न देना। नहीं तो भूखे प्यासे बालक राह में मुझे पकड़कर रोने लगेंगे, राह रोक लेंगे।

अभीतक हम राष्ट्रकवि गुप्तजी की 'अबला-जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी...' पंक्तियों को ही स्त्री जाति की मार्मिक वेदना का परिचायक मानते आये हैं। पर, उनसे भी तीव्र मगही-लोकगीतों की सीता की निम्नांकित पंक्तियाँ मर्मभेदिनी हैं। लव-कुश के जन्म के बाद वाल्मीकि ने अयोध्या में पुत्र-जन्म की खबर दी। संवाद पाकर लक्ष्मण ने कहलाया कि भावज को चाहिए कि वे अयोध्या लौट आयें, क्योंकि वहाँ जंगली जानवरों से जच्चा बच्चा दोनों की जान का खतरा है। इसी पर सीता ने कहला भेजा—

निरिया के माँस लोहराइन अरू फौंकराइन हे।
बलका के बाघ न पूछे अजोध्या काहे जायब हे।

अर्थात्, स्त्री का मांस लोहराइन और फौंकराइन होता है (जंगली जीवों को गँधाता है) निरपराध बालकों को तो वे सूँघते भी नहीं। अत, मैं अयोध्या क्यों जाऊँ?

सच पूछा जाय, तो उपर्युक्त पंक्तियों में स्त्रियों की युग युग की मूक वेदना ही मुखरित हुई है। अन्त में, हम यही कहेंगे कि मगही-लोकगीतों में नारी जीवन का रूप पूजनीय प्रान्त मंदिर में एकान्त भाव से जलनेवाली उस दीपशिखा की भाँति है, जो युग-युग से सिहर सिहरकर जलती आ रही है और अनन्त काल तक पुलक पुलककर जलती रहेगी। तभी तो महादेवी ने कहा है—'पुलक पुलक मेरे दीपक जल।

●●

हमारी पुरानी और नयी पीढ़ी

श्रीमती गङ्गादेवी 'रमा', साहित्यचन्द्रिका, राँची (काशी प्रवासिनी)

भगवान् विश्वनाथ और महादेवी अन्नपूर्णा की राजधानी काशी भारतवर्ष में एक विचित्र नगरी है। उसकी अनेक अनोखी विशेषताएँ हैं। उसको आप भारत का संक्षिप्त संस्करण भी कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं। वहाँ भारत के सभी राज्यों के निवासियों के अलग अलग महल्ले हैं। नेपाली, बंगाली, मराठी, गुजराती, दक्षिणी, कश्मीरी आदि के महल्ले में जाने पर मालूम होता है कि उसी प्रदेश में आ गये। अत, काशी में रहने से सभी भारतीय प्रान्तों के नर-नारियों की पुरानी और नयी पीढ़ी आँखों के सामने आ जाती है। वहाँ के मूल निवासी बनारसी लोगों का प्रभाव बाहरी लोगों पर भी पड़ता है। बनारसी भाइयों से बनारसी बहनों में भारतीय संस्कृति का अनुराग अधिक है। वहाँ की

नारियाँ व्यावहारिक जीवन में पग-पग पर पवित्रता का ध्यान रखती हैं। आचार-विचार की शुद्धता के कारण कितनी ही स्त्रियाँ सचमुच देवी जान पड़ती हैं। रहन सहन, खान-पान, सबमें वे स्वच्छता पर ही विशेष बल देती हैं। पुरुषों को भी चेतावनी देती रहती हैं। वहाँ के स्त्री पुरुष आनन्द के साथ जीवन बिताने की कला खूब जानते हैं। वे जानते हैं कि भोजन वस्त्र के सुख का उपभोग किस तरह किया जाता है। आप कुछ दिन भी काशी में रह जाइए, आपको सुख से जीने की और जीवन को आनन्दमय बनाने की कला से परिचित होने का अवसर मिल जायगा।

मैंने बिहार के बाहर की नारियों में भी पुरानी और नयी पीढ़ी पर ध्यान दिया है। मेरा अनुभव है कि थोड़े बहुत अन्तर के साथ सर्वत्र एक ही गति है। नयी पीढ़ी में सब जगह नये युग का प्रभाव दीख पड़ता है और पुरानी पीढ़ी वही पुरानी लकीर पीट रही है। मेरी समझ में माता-पिता का संस्कार तो जीवन पर अपना प्रभाव डालता ही है, शिक्षा और सामाजिक संसर्ग तथा सामयिक वातावरण के सम्पर्क का संस्कार भी बहुत गहरा असर डालता है। आज नयी पीढ़ी को देखकर मन में नाना प्रकार के भाव उठते हैं। आशा और निराशा, हर्ष और विषाद, उत्साह और ग्लानि, भय और चिन्ता, विविध भाँति के द्वन्द्व चलते रहते हैं। किन्तु, अन्त में समाधान यही निकलता है कि परिणाम चाहे जो हो, युगधारा का प्रभाव रुक नहीं सकता।

मेरे विचार से पुरानी पीढ़ी वह है, जो आज साठ वर्ष से पचहत्तर वर्ष की अवस्था में है और नयी पीढ़ी वह है, जो आज पचीस से चालीस वर्ष तक की अवस्था भोग रही है। इन दोनों की तुलना या आलोचना करना खतरनाक और अरुचिकर है, क्योंकि मेरा सद्भाव दोनों के प्रति है। मैं पुरानी पीढ़ी में स्वयं भी हूँ, इसलिए यह कहकर पक्षपात नहीं कर सकती कि यह पीढ़ी दूध की धुली हुई है। हाँ, नयी पीढ़ी की कुछ हरकतें मुझे पसन्द नहीं हैं; लेकिन उसकी प्रगतिशीलता देखकर आशा-भरोसा तो अवश्य ही है कि बिहार का नारी-समाज अब भारत के किसी उन्नत प्रान्त के नारी-समाज से भी पिछड़ा नहीं रह सकेगा।

जहाँ हम कुछ बहनें एक साथ मिल बैठती हैं, वहाँ नयी-पुरानी पीढ़ी की चर्चा बहुधा होती ही है। ऐसी बैठकों में कभी-कभी दोनों पीढ़ियों की बहनें रहती हैं, इससे परस्पर तर्क-वितर्क भी होता है। मेरा अनुमान है कि नयी पीढ़ी पर अब किसी तरह पुरानी पीढ़ी का अंकुश नहीं जम सकता, इसलिए पुरानी पीढ़ी को फालतू चिन्ता और परेशानी से बचे रहकर अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा का ही ध्यान रखना चाहिए। प्रगतिशीलता के नाम पर चाहे हमारा समाज लन्दन या पेरिस का समाज ही क्यों न बन जाय, हमें सहनशीलता से ही काम लेना उचित है। नयी शिक्षा ने पुरानी मर्यादाओं को ठोकर मारने का ठीका ले लिया है। पश्चिमी संसार से रोज ही नयी बहार और नयी हवा का झोंका आ रहा है। अन्धाधुन्ध आँधी में कौन किसकी सुनेगा? केवल भगवान् से प्रार्थना करते रहना ही कर्त्तव्य है कि हमारी नयी पीढ़ी का भविष्य उज्ज्वल और मंगलमय हो।

मेरी राय में 'सुधार' या 'उन्नति' या 'प्रगति' या 'क्रान्ति' का यह मतलब नहीं है कि हम अपनी राष्ट्रीय या जातीय विशेषता ही खो दें। परिवर्तनशील तो संसार ही है। एक ही व्यवस्था सदैव नहीं रह सकती। समय की गति के साथ नारी-जाति की चाल-ढाल, खुराक-पोशाक, गति मति, भावना और मनोदशा में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक है। किन्तु, यह उत्तरदायित्व भी नारी-जाति का ही है कि वह अपनी परम्परागत विशेषताओं को बचाये रखने में सदा सजग रहे। निश्चय ही कुत्सित रूढ़ियाँ उसकी विशेषताएँ नहीं हैं। यदि स्वदेशाभिमान भी कोई महत्त्वपूर्ण मानवीय गुण है, तो नारी समाज को उसी की रक्षा का आग्रह रखना चाहिए। जिस नारी में—वह चाहे किसी पीढ़ी की हो—अपने राष्ट्र की गौरव-गरिमा का, अपने जातीय संस्कार की विशेषता का, अपने समाज की मंगलमयी परम्परा का ज्ञान-ध्यान नहीं, वह नारी कदापि मानवी नहीं, उसके लिए छछूँदर भी उपयुक्त शब्द नहीं। हम नारियों को यह बात हमेशा अपने दिल में जमाये रखना चाहिए कि राष्ट्र के कर्णधारों, समाज-सुधारकों, बलिदानी बहादुरों, सन्त-महात्माओं, महाकवियों आदि की केवल जन्म देनेवाली जननी ही हम नहीं हैं, हम ही इन सभी महापुरुषों के जीवन का निर्माण करनेवाली भी हैं। संसार को सिरजने और पालने की जवाबदेही हमारी है, पुरुष तो निमित्त मात्र है। पुरुष क्या खाकर हमारी बराबरी करेगा? वह लाख कमाता फिरे, हम उसकी देखभाल न करें, तो उसे रोटी भी नसीब न हो। लोग अज्ञान-वश कहते हैं कि नारी बहुत माया बटोरती है। मगर नारी तो माया बटोरती है दूसरों के सुख के लिए ही—यद्यपि वे 'दूसरे' उसके 'अपने' ही होते हैं। अगर वह माया न बटोरती, तो पुरुष बिना खूँटे का बैल बना अनाड़ी मारा फिरता।

मेरे कहने का अभिप्राय यह न समझना चाहिए कि हम नारियाँ ही सब कुछ हैं, पुरुष का कोई प्रयोजन ही नहीं है। ऐसी बात यदि कोई नारी क्षण-भर के लिए भी सोचती है, तो वह बहुत बड़ी और भारी भूल करती है। हम पुरुष की माता और आदिगुरु हैं अवश्य, हम उसके जीवन को गढ़नेवाली भी हैं, इतना ही क्यों, हम ही उसकी अन्नदात्री और चित्तप्रसादिका भी हैं; तब भी वह हमारा जीवनाधार है, हमारा संरक्षक है। वह जीते-जी हम पर कोई आँच न आने देगा। हमारी आँख में जो आँख डालेगा, उसकी आँख फोड़ने या निकालने में वह कभी न हिचकेगा। जैसे उसके जीने का सहारा हम हैं, वैसे ही हमारे अस्तित्व का रखवार वह भी है। हम दोनों ही—स्त्री और पुरुष—समाज या संसार-रूपी रथ के दो चक्के हैं। यदि हममें से कोई एक भी अहंकार वश विद्रोही भावना के जोश में कोई काम कर डालेगा, तो पछतावे के सिवा उसे कुछ हाथ न लगेगा। इसलिए, मन को अपने काबू में रखते हुए दोनों को अपनी कर्त्तव्य-चेतना से समाज में शान्ति रखनी चाहिए।

हमारी पुरानी पीढ़ी में तो 'विद्रोह' या 'क्रान्ति' शब्द सर्वथा अप्रचलित और अपरिचित हैं। किन्तु, हमारी नयी पीढ़ी में इन शब्दों के उत्तेजक भाव भयंकर विस्फोट की

तैयारी कर रहे हैं। नयी पीढ़ी के पुरुषों में नारियों के प्रति विद्रोह की कोई भावना नहीं दीख पड़ती; किन्तु सुशिक्षिता या उच्चशिक्षा-प्राप्त बहनों में पुरुषों के लिए ऐसी भावना झलकती है। और, ऐसी भावना उत्पन्न कराने का दोष पुरुषों पर ही है। कन्या के पिता या अभिभावक को पुरुषों की हृदयहीनता के कारण जो परेशानियाँ होती हैं, उनका प्रभाव कन्या पर भी पड़ता है। उसी प्रभाव से पढ़ी-लिखी कन्या के मन में पुरुष-वर्ग के प्रति विद्रोह होता है। विदुषी कन्या जब सुनती है कि परम सुन्दरी न होने अथवा तिलक-दहेज की माँग अधिक होने के कारण उसका विवाह नहीं होने पाता, तब उसकी अन्तरात्मा में विद्रोह की ज्वाला भड़क उठती है। यह सर्वथा स्वाभाविक भी है। इस बात के सिवा, विदुषी कन्या जब यह पढ़ती है कि पुरुष ने बहुत दिनों तक नारी को दासी समझकर उसके जीवन का शोषण किया है, तब भी उस स्वाभिमानिनी के हृदय में प्रतिहिंसा के भाव उबलने लगते हैं। इस विद्रोहमयी भावना का अन्त यदि अब भी पुरुष वर्ग नहीं करेगा, तो नयी पीढ़ी की नारियों का मनोभाव दिन दिन उग्रतर होता जायगा। सम्भव है कि मानव-स्वभाव की सहज दुर्बलता के कारण, आधुनिक शिक्षा के प्रभाव से कोई ऐसा दृश्य भी उपस्थित हो जाय, जो भारतीय परम्परा एवं संस्कृति के विपरीत हो। तब उसकी जवाबदेही भी पुरुषों पर ही होगी। यथा, बाल विधवाओं के साथ अमानुषिक व्यवहार करके पुरुष समाज ने ही विधर्मियों की संख्या बढ़ा दी।

मैं अपनी नयी पीढ़ी की बहनों से भी यह कहना अपना कर्त्तव्य समझती हूँ कि वे भारतीय ललना की मान-मर्यादा को अपनी आँखों से ओझल न होने दें। आजतक भारतीय संस्कृति की रक्षा नारियों ने ही की है, आज भी वे ही कर रही हैं, आगे भी उन्हीं को करना है। जिस दिन भारतीय महिलाएँ अपने देश की उज्ज्वल परम्परा का भार वहन करना छोड़ देंगी—अपनी सांस्कृतिक मर्यादाओं को तिरस्कार पूर्वक ठुकरा देंगी, उसी दिन भारत गारत हो जायगा, असली भारत लुप्त हो जायगा। पुरानी पीढ़ी का समय बीत चुका, अब नयी पीढ़ी पर ही देश की लाज बचाने की जिम्मेदारी है। अगर हमारी बहनें अपने विद्रोही मन की लगाम ढीली कर देंगी, तो उनका अपना ही घर—अपना ही समाज—अपना ही देश बिगड़ेगा, बिगड़ेगा क्या, रसातल जायगा। नारी ही कुलीनता की आधारशिला है, नारी ही जातीय प्रतिष्ठा की संरक्षिका है, नारी ही वंश-गौरव की प्रहरी है, नारी ही समाज की नाक है और नारी ही देश की पगड़ी को सुशोभित करनेवाली कलँगी है। अपनी इस महिमा को हम नारियाँ अगर भ्रमवश या मोहान्ध होकर भूल जायँगी, तो हम अपने अतिशय महान् पूर्वजों की उत्तराधिकारिणी नहीं रहेंगी।

वर्त्तमान नयी पीढ़ी की बहनें कहती हैं कि पुरानी पीढ़ी अविकसित युग में रही है, इसलिए उसके गुण भी अब विकास-युग में ग्रहण करने योग्य नहीं रह गये। ठीक ही है। पुरानी पीढ़ी में लज्जा, शील, संकोच आदि की मात्रा आवश्यकता से अधिक थी या अभीतक है, पर अब नयी पीढ़ी ने 'घूँघट' या 'आँचल' को साहित्य के रस ग्रन्थों में ही

सुरक्षित रख छोड़ा है। पुरानी पीढ़ी के मन में परिवार अथवा समाज के अन्दर गुरुजनों के सामने जो झिझक या हिचक थी, वह अलग भटक दी गयी; क्योंकि उसे फटकार बताये बिना इस वैज्ञानिक युग की सभ्यता में खपना असंभव है। इसी नयी सभ्यता के नाम पर भारतीय धर्म के विरुद्ध आचार-विचार भी दूषित हो गया है। भारतीयता की दृष्टि से यह खटकनेवाली बात है। पुरानी पीढ़ी की कितनी ही बहनों के पति भी ऊँचे ओहदे के बड़े बड़े अफसर थे; पर वे बहनें कभी 'मेम साहब' नहीं कहलाती थी। आज तो छोटे अफसरों की बीवियाँ भी 'मेम साहब' कहलाने में अपनी शान समझती हैं। वे अपने 'साहब' की आमदनी का कुछ भी खयाल न रखकर साड़ियों, गहनों, सिंगार के सामानों और विलास के साधनों को स्वयं खरीद लाती हैं। कितनी ही मेमों से साहब परेशान हैं और कितने ही साहबों से मेम भी। अँगरेजियत दिन दिन बढ़ती ही जाती है। अडे आदि उत्तेजक पदार्थों के भोजन से जीवन अमर्यादित हो रहा है। भारतीयता की उपेक्षा करने में कुछ भी सोचने समझने की जरूरत नहीं महसूस होती। ऊँची शिक्षा पायी हुई बहनें तो स्वदेशीपन की खिल्ली भी उड़ाती हैं। उनकी देह का ऊपरी आधा भाग हाट-बाजार में नंगा-सा नजर आता है। वे पुरुष समाज में भी बेधड़क हँसती-बोलती और मनमाने ढंग से विचरती हैं। यह आज की बन्धन मुक्त नारी अपने राष्ट्र को संसार के उन्नत राष्ट्रों की बराबरी में ले जाना चाहती है। सांसारिक उन्नति की घुड़दौड़ में वह पिछड़ी नहीं रह सकती। बिहार की महिलाएँ भी विश्व के नारी समाज की प्रगति के साथ अपना कदम मिलाने के लिए उत्सुक हैं। नयी रोशनी की निगाह से यह शुभ लक्षण है। पर, नये प्रयास में जो खतरे हुआ करते हैं, उनकी ओर से बेसुध रहना अनुचित है। पुरानी पीढी अपनी ही बहू-बेटियों और उनकी सन्तानों के लिए चिन्तित है। यद्यपि उसकी चिन्ता का अब कोई महत्त्व नहीं रह गया, तथापि मातृ कोटि अथवा सास श्रेणी में रहने के कारण उसकी ममता तो नयी पीढी पर जमी ही हुई है। यदि भारतीयता से उसकी ममता छूट जाती, तो वह निश्चिन्त हो जाती।

बिहार की महिलाओं में पुरानी पीढी तक धार्मिक श्रद्धा परम्परागत रूप में बनी हुई है। उसमें नयी पीढी अपनी रुचि और सुविधा के अनुसार सुधार कर रही है। वह अन्धविश्वासों और पुरानी रूढियों को पद-दलित करके समाज का परिष्कार करने में लगी हुई है। तब भी भारतीय परिपाटी की श्रद्धा का ह्रास ही होता जा रहा है। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी नयी पीढी में ह्रास ही नजर आता है। पुरानी पीढी में युवावस्था कुछ दिन तो टिकाऊ होती ही थी, पर अब वह दो-चार बच्चों का बोझ भी नहीं सँभाल पाती। सांसारिक सुख-भोग के लिए जितनी और जैसी शक्ति पुरानी पीढी में थी, उतनी और वैसी नयी पीढ़ी में नहीं है। आज की सन्तानों में भी क्षीणता बढ़ रही है। कारण यह जान पड़ता है कि पुरानी पीढी में जो आत्मनिग्रह और संयम था, वह नयी पीढ़ी में बहुत शिथिल हो गया है। आजकल परिवार-नियोजन अथवा जन्म-निरोध के लिए सरकार की ओर से असंख्य रुपये पानी की तरह बहाये जा रहे हैं, जिससे नयी पीढ़ी

को बड़ा प्रोत्साहन मिल रहा है; किन्तु भारतीय दृष्टिकोण से यह सर्वथा अप्राकृतिक, अस्वाभाविक, अमानुषिक और अनैतिक कार्य है। यह वैज्ञानिक कहे जाने पर भी अवैज्ञानिक है। नर नारी की वासनाओं को स्वेच्छाचारिणी बनाना समाज कल्याण का मार्ग नहीं है। हमारी पुरानी पीढ़ी को तो जन्म निरोध से कोई दिलचस्पी नहीं है, मगर नयी पीढ़ी की बहुतेरी बहनों ने परिवार-नियोजन का प्रसाद पाने के बाद अपने जो व्यक्तिगत अनुभव सुनाये हैं, वे बड़े चिन्ताजनक हैं। सब भी नयी पीढ़ी का रुख उधर ही है। चलचित्रों की तारिकाएँ भी नयी पीढ़ी के रुख अपनी तरफ मोड़ रही हैं। साराश यह कि प्रलोभनों का जाल नयी पीढ़ी के आगे बिछा हुआ है। बिहार की नयी पीढ़ी सावधान होती, तो कोई अन्देशा नहीं था। किन्तु, बिहार की नयी पीढ़ी भी शुद्धाचार और सदाचार की उपेक्षा से विमुख नहीं है।

अवस्था असमजस की है। अब पुरानी पीढ़ी के पास कोई ऐसा उत्तराधिकार ही नहीं है, जिसे वह नयी पीढ़ी को सौंपने की चेष्टा करे, क्योंकि नयी पीढ़ी उसे ग्रहण करने योग्य नहीं समझती और पुरानी पीढ़ी भी उसे सौंपने का साहस नहीं कर पाती। दोनों की मनोवृत्ति की रेखाएँ समझौते के बिन्दु पर नहीं पहुँचती। पुरानी पीढ़ी यह अनुभव करती है कि नयी पीढ़ी समझौते के लिए उत्सुक नहीं, बल्कि उदासीन ही अधिक है। वह नयी पीढ़ी की श्रद्धा की बाट जोहती नहीं चलती, लेकिन नारी-हृदय को न जाने विधाता ने कैसे मसाले से बनाया है कि वह निराशा के भी पीछे पीछे शुभकामना को लगाये फिरता है। इसीसे हमारी दोनों पीढ़ियों का अन्तर परखा जा सकता है।

●●

ब्रजभाषा में नारी-चित्रण

प्रोफेसर जगदीशनारायण चौबे, एम्० ए०; हिन्दी विभाग, सायंस कॉलेज, पटना

मगही, मैथिली और भोजपुरी की तरह ब्रजभाषा भी एक क्षेत्र-विशेष की बोली है। लेकिन अपेक्षाकृत ब्रजभाषा बड़ी सौभाग्यशालिनी रही। संस्कृत के बाद और हिन्दी के पूर्व, संपूर्ण लोक-जीवन को आत्मसात् कर लेने की क्षमता केवल ब्रजभाषा में ही थी। केवल उत्तरभारत ही नहीं, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, नरसी मेहता आदि गुजराती मराठी संत भी ब्रजभाषा में ही अपने विचार व्यक्त करते थे। बंगाली वैष्णव संतों की 'ब्रजबुलि' भी इसकी लोकप्रियता का ही प्रमाण है। अबाध रूप से ब्रजभाषा में ही सारा देश सदियों तक बोलता लिखता रहा। 'रामचरितमानस' के माध्यम से अवधी ने ब्रजभाषा को पहली बार चुनौती दी, किन्तु ब्रजभाषा का सौभाग्य अखण्ड ही रहा। खड़ी बोली के प्रवर्त्तन के बावजूद, हाल तक ब्रजभाषा ही कविता की भाषा रही। गद्य खड़ी बोली में, पद्य ब्रजभाषा में। हमारी मध्यकालीन सांस्कृतिक उपलब्धियाँ ब्रजभाषा में ही सुरक्षित हैं। निस्सदेह, ब्रजभाषा संपूर्ण

उत्तरभारत की कविता की भाषा थी—कोमल, जीवंत, गीतमय। लगता है, भगवान् श्रीकृष्ण की उमर उसे मिल गयी थी, उनका व्यक्तित्व उसे मिल गया था। उनकी वाणी तो वह है ही—माखन-मिसरी-सी मधुर।

ब्रजभाषा कविता की भाषा थी और नारी स्वयं कविता है। यही कारण है कि ब्रजभाषा में नारी-चित्रण अधिकांश स्थलों पर कविता का चित्रण लगता है। यह दोष न तो नारियों की कवितात्मकता का है और न लेखकों का। दोष उस युग का है, परंपराओं से स्वीकृत विचारों का है। भारत ही नहीं, संपूर्ण प्राचीन मध्यकालीन संसार स्त्रियों के प्रति उदासीन रहा। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' का उद्घोष करनेवाला यह भारत बाद में स्त्रियों को माया का मूल मानने लगा। शंकर की पार्वती का पूजक भारत, राम की सीता का उपासक भारत, कृष्ण की राधा का आराधक भारत स्त्रियों को शंकर-पार्वती-राम-सीता-कृष्ण-राधा की उपासना में बाधा मानने लगा। बुद्ध ने यशोधरा को छोड़ दिया। चैतन्य महाप्रभु ने विष्णुप्रिया को त्याग दिया।

ब्रजभाषा-काल में स्त्रियों के प्रति कवियों के दो दृष्टिकोण बिलकुल स्पष्ट हैं, और ये दृष्टिकोण भी परंपरित हैं। पहला दृष्टिकोण भारतीय साहित्य के उपजीव्य ग्रंथ—रामायण और महाभारत का है तथा दूसरा दृष्टिकोण संस्कृत के लक्षण-ग्रंथों से प्रभावित है। पहला दृष्टिकोण भक्ति-मूलक है और दूसरा स्पष्ट ही शृङ्गार मूलक। रामायण और महाभारत की दृष्टि से देखनेवालों ने नारियों को त्याज्य माना, लक्षण-ग्रंथों की टीका लिखनेवालों ने भोग्य। लेकिन वास्तविकता यही है कि नारी न तो त्याज्य है और न केवल भोग्य। उसका इन दोनों के बीच का स्वरूप ही यथार्थ है, लेकिन परम्परान्ध देश इस पार या उस पार ही देखता है, बीच की जीवन-धारा को नहीं देखता। आलोच्य काल ऐसी ही स्थिति से गुजर रहा था। उसकी अपनी आँखें भी मुँदी मुँदी-सी थीं। लेकिन कृष्ण-काव्य के समर्थतम कवि सूरदास ने अपनी अंधी आँखों से स्थिति देखी, और एक क्रान्तिकारी परिवर्त्तन का सूत्रपात हुआ। नारियों का चित्रण लौकिक ज्यादा, अलौकिक कम होने लगा। नारियों के प्रति इस नये दृष्टिकोण का श्रेय सूरदास को कम, कृष्ण-भक्ति की मूल प्रवृत्तियों को अधिक है। कृष्ण-भक्ति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसने लोक-जीवन को सदैव अपने साथ रखा। कृष्ण-भक्ति का आधार ही लोक-जीवन है, पृथ्वी है, पृथ्वी के प्राणी हैं। कृष्ण गोपियों के साथ रास रचाते हैं, गोप-बालों के साथ गाय चराते हैं, ब्रजवासियों की रक्षा के लिए गोवर्धन उठा लेते हैं। वे पूर्ण मनुष्य हैं; इसलिए भगवान्वाली अलौकिकता कुछ क्षीण हो गयी है और जीवन की स्वाभाविकता वेगवती।

किसी भक्त का अपने आराध्य की आँखों ही सबकुछ देखना जहाँ भक्त की सिद्धि है, वहीं वह उसकी कृतियों का प्रायः एक दोष भी है। नारियों के प्रति तुलसीदास के आक्रोशों के कई कारण हैं, फिर भी स्वयं उपास्य राम के द्वारा सीता का त्याग तुलसी के दृष्टिकोण को और भी पुष्ट कर देता है। तुलसीदास स्त्रियों के प्रति कटु हो गये। किन्तु, सूरदासादि ने

कृष्ण की आँखों से देखा, जिस कृष्ण ने सब को स्वीकारा था, त्यागा कुछ भी नहीं था। मध्यकालीन भक्ति साहित्य के उत्थान पतन का श्रेय भी भक्तों के उपास्यों को है। राम घोर आदर्शवादी—तुलसीदास भी। कृष्ण जीवन की समृद्धि के समर्थक—कृष्ण-काव्य के सभी भक्त भी। यही कारण है कि राम-काव्य की अपेक्षा कृष्ण-काव्य अधिक दीर्घायु रहा; क्योंकि आदर्श की अपेक्षा यथार्थ दीर्घजीवी होता है। राम का व्यक्तित्व महाकाव्यात्मक था, कृष्ण का गीतात्मक। संपूर्ण कृष्णकाव्य गीतमय है। जयदेव, विद्यापति, चण्डीदास, चैतन्य, सूरदास, नंददास, रसखान प्रभृति कवियों की रचनाओं में राधा और कृष्ण अपनी सुलभ स्वाभाविकता के साथ चित्रित दीखते हैं। यह स्वभाविकता ही जीवन को आकृष्ट करती है। यह सच है कि कृष्णभक्ति-काल के भारत का उद्दाम विरह वर्णन ही परवर्त्ती रीतिकाल का आधार बन गया है, फिर भी अन्तर स्वाभाविक और अस्वाभाविक वर्णन का है—अन्तर लेखक के संयम-संतुलन का है—अन्तर विषय की पवित्रता-अपवित्रता का है। यह युग विभिन्न उद्वेलनों का युग था। एक नयी जाति का साम्राज्य, हमारा संकटग्रस्त पुराना समाज, निवृत्ति प्रवृत्ति योग सन्यास का विचित्र संघर्ष, विपज्जाल में फँसा हमारा धर्म, भिन्न-भिन्न भक्ति-धाराओं के भिन्न भिन्न दृष्टिकोण—इन सबका प्रभाव, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से उस युग के साहित्य पर पड़ा है, क्योंकि साहित्य को वर्त्तमान की बेचैनियाँ ही जन्म देती हैं। ऐसी विकट स्थिति में भी लेखकों का ध्यान नारियों की ओर गया, यह उन परंपराओं का ही आशीर्वाद है, जो अतीत को सुरक्षित तो रखती ही हैं, वर्त्तमान को संजीवनी और भविष्य को स्वस्थ दिशा संकेत भी देती हैं। स्त्रियाँ अनादृत रहीं, लेकिन स्त्रीत्व समादृत हुआ। यह परिवर्त्तन निस्सन्देह एक नयी दृष्टि का उद्‌घाटन था। कबीर-जैसा कट्टर स्त्री-विरोधी भी यह मानने लगा—राम मेरा पीव, मैं राम की बहुरिया। निस्संदेह यह स्त्रीत्व की विजय का समारंभ था।

ब्रजभाषा में नारियों का चित्रण पारंपरीण है—प्रेमिका के रूप में, विरहिणी के रूप में वार्किकादि के रूप में। फिर भी, नारियाँ और भी कई रूपों में चित्रित हुई हैं। समग्र ब्रजभाषा साहित्य नारियों के नाना प्रकार के मनोभावों के आकर्षक चित्रों से भरा पड़ा है। नायिका-भेद-वर्णनों में तो नारी-हृदय के मनोवैज्ञानिक अध्ययन की प्रचुर सामग्री है—यद्यपि वह आधुनिक दृष्टि से अरुचिकर कहा जाता है, तथापि उसके कितने ही अंश बड़े हृदयग्राही हैं। लेकिन, नारी के उपर्युक्त तीन रूप मुख्य हैं, अन्य रूप प्रायः गौण। मातृत्व स्त्रियों की सिद्धि है। संसार की सभी माताएँ एक-सी हैं—ममता सागर। सूरदास ने भी मातृ-हृदय का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है—

> जसोदा हरि पालनै झुलावै।
> हलरावै, दुलराइ मल्हावै, जोइ-सोइ कछु गावै॥
> मेरे लाल कौं आउ निंदरिया, काहे न आनि सुवावै।
> तू काहैं नहिं बेगहिं आवै, तोकौं कान्ह बुलावै॥

माँ को बच्चे से प्यारा कुछ नहीं और बच्चे को माँ की ममता से प्यारी कुछ नहीं। ऊपर के शब्द-शब्द को देखने से यह स्पष्ट स्पष्टाभासित हो जाता है कि यह माँ भगवान् कृष्ण की माँ नहीं, एक मनुष्य की माँ है। स्वयं मनुष्य है। सभी माताएँ पलना झुलाती हैं, बच्चे को दुलराती हैं—पुचकारती हैं। 'आइ तोई कुछ गावै' में यशोदा के निष्कलुष व्यक्तित्व को वाणी मिली है। तीसरी और चौथी पंक्तियों में माँ की व्याकुल ममता है, जो अपने बेटे 'कान्ह' के लिए नींद को भी जल्दी से आने के लिए मानों आदेश दे रही है। मातृ-हृदय के प्यार और ममत्व का कितना सरल स्वाभाविक वर्णन।

फिर—मेरे कुँवर कान्ह बिनु सब कुछ वैसेहि धर्यो रहै।
सूरदास स्वामी बिनु गोकुल कौड़ी हू न लहै॥

पुत्र के बिना, सर्वस्व की चाह एक माँ के लिए असह्य है। निस्सन्देह, सूरदास की यशोदा, माँ की विराट् महिमा की व्याख्या है--

जद्यपि मन समुझावत लोग।
सूल होत नवनीत देखि मेरे मोहन के मुख जोग॥
कहियौ पथिक जाइ घर आवहु राम कृष्ण दोउ भैया।
सूर स्याम कत होत दुखारी जिन की मो-सी मैया॥

और, ऐसे मातृ हृदय के उद्गारों से संपूर्ण 'सूरसागर' एक अपूर्व काव्य सृष्टि बन गया है। सरस प्रेम-प्रसंगों से भी वह भरा पड़ा है। सूरदास की राधा—जयदेव, विद्यापति, चण्डीदास प्रभृति की राधा से भिन्न है। जयदेव की राधा बड़ी चंचल है—'सचकितनयन।' विद्यापति की राधा अबोध बालिका की तरह है। चण्डीदास की राधा प्रेममयी है। लेकिन, सूरदास की राधा इन तीनों का समुच्चय भी है, इन तीनों से भिन्न भी है, इन तीनों से बहुत ऊपर भी है, एक अपूर्व सृष्टि—'राधा परम निर्मल नारी।' मधुर प्रेमतत्त्व केवल कृष्ण काव्य का ही आधार नहीं, जीवन का आधार भी है। स्त्री-पुरुष परस्पर प्रेम करते हैं। इस प्रेम का वर्णन ब्रजभाषा के कवियों ने कुशलतापूर्वक किया है—

अपनी भुजा स्याम-भुज ऊपरि स्याम-भुजा अपने उर धरिया।
यों लपटाई रहे उर-उर ज्यों मरक्त-मणि कंचन में जरिया॥—सूरदास

नवल गुपाल नवेली राधा नये प्रेम रस पागे।—सूरदास

प्रेम के हेम हिंडोरन में सरसैं बरसैं रस रंग अगाधा।
राधिका के हिय झूलत साँवरो, साँवरो के हिय झूलति राधा॥—पद्माकर

ऐसे गाढ़े प्रेम के बाद वियोग का खलना स्वाभाविक है। पुरुष को स्त्री का वियोग उतना भले न कचोटे, लेकिन स्त्री को पुरुष का वियोग अधिक सालता है, क्योंकि स्त्री का सौभाग्य पुरुष ही है। ब्रजभाषा में इस विरह का वर्णन भी अत्यन्त मार्मिक हुआ है—

नैन भरि देखौ नंदकुमार।
ता दिन तें सब भूलि गई हौं, बिसरयौ पन परवार॥
बिन देखे हौं बिकल भई हौं, अंग-अंग सब हारि॥—कुंभनदास
निसि दिन बरषत नैन हमारे।
सदा रहति बरषा रितु हम पर, जब तें स्याम सिधारे॥
दृग अंजन न रहत निसि बासर, कर कपोल भए कारे॥—सूरदास
अँखियाँ हरि दरसन की प्यासी।
देख्यौ चाहति कमलनैन कौं निसि दिन रहति उदासी॥—सूरदास
पतियाँ बाँचेहू न, आवै
देखत अंक नैन जल पूरे, गद-गद प्रेम जनावै॥—परमानंददास
पिया बिनि रह्यौइ न जाइ।
निसि दिन जोऊँ बाट पिया की, कब रे मिलोगे आइ।
मीराँ के प्रभु आस तुमारी, लीज्यौ कंठ लगाइ॥—मीराँ बाई
दीन दसा देखी ब्रज-बालनि की ऊधव को
गरिगो गुमान ग्यान गौरव गुठाने से।—रत्नाकर

और—

सुनि-सुनि ऊधव की अकह कहानी कान,
कोऊ थहरानी, कोऊ थानहि थिरानी हैं।
कहै 'रतनाकर' रिसानी बररानी कोऊ,
कोऊ बिलखानी, बिकलानी, बिथकानी हैं॥
कोऊ सेद-सानी कोऊ भरि दृग-पानी रहीं
कोऊ घूमि-घूमि परीं भूमि मुरझानी हैं।
कोऊ स्याम-स्याम कै बहकि बिललानी कोऊ
कोमल करेजो थामि सहमि सुखानी हैं॥—रत्नाकर
छोड़ि घर बार अब भसम रमायो रामा।
हरि हरि अब नहिं ऐहै सुख की रातो रे हरी॥
अपने पियरवाँ अब भए हैं पराये रामा।
हरि हरि सुनत जुड़ाओ सब छाती रे हरी॥—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

उपर्युक्त विरह-वर्णनों में स्त्रियों के कोमल हृदय का सच्चा स्वाभाविक चित्रण है। यह सच है कि भारतीय वाङ्मय का प्रेरणा स्रोत धर्म रहा है। भक्ति काल के विरह-वर्णनों को मर्यादित रखने का श्रेय भी धर्म को ही है। लेकिन, सबसे बड़ी चीज है जीवन की गतिशीलता, और इन तमाम उद्धरणों में जीवन के उस स्फुरण के दर्शन होते हैं। कृष्ण के प्रति राधा का प्रेम, असल्य कृष्णों के प्रति अनगिनत राधाओं के प्रेम का ही द्योतक है।

राधा और गोपियों का वियोग, संपूर्ण, स्त्री-जाति के वियोग का रूपक है; और कला यही चाहती है—एक का दुःख सब को दुःख-सा लगे, एक का सुख संपूर्ण मनुष्य-जाति में ध्वनित हो जाय।

'भ्रमर-गीतों' में नारियों का एक दूसरा रूप है—तार्किक, तेज, तर्रार। उद्धव-जैसे ज्ञानी पण्डित को भी ये निःसंकोच भाव से दो टूक उत्तर देती हैं। फलतः, भुक्तभोगी के अनुभवों के सामने शास्त्र हार जाता है। यदि हम 'भ्रमर-गीतों' के रूढ़ार्थ को छोड़ दें, तो भी उनकी स्वाभाविकता नारी-मनोविज्ञान के सर्वथा अनुकूल है। प्रेमी से बिछुड़ी नारी उपदेश नहीं चाहती, प्रेमी का दर्शन चाहती है—

ऊधो जो हमहिं न जोग सिखैये।
जेहि उपदेश मिलैं हरि हमको सो व्रत नेम बतैये॥—सूरदास

और नहीं तो—

नाम को बताइ और जताइ गाम ऊधौ बस,
स्याम सों हमारी राम-राम कहि दीजियो।—रत्नाकर

क्योंकि—

मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरे पति सोई॥
छाँड़ि दई कुल की कानि, कहा करिहै कोई।
संतन ढिग बैठि-बैठि लोक-लाज खोई॥
अँसुवन जल सींचि-सींचि प्रेम-बेलि बोई।
अब तो बेल फैल गई, आणँद फल होई॥
भगति देखि राजी हुई, जगति देखि रोई।
दासी मीराँ लाल गिरधर, तारो अब मोही॥—मीराँ बाई

मीराँ की ऐसी स्वीकृति का ही दूसरा नाम पातिव्रत धर्म है, और पातिव्रत्य स्त्रियों का सबसे बड़ा अलंकार है।

राधा देर से घर पहुँचती है। उसकी माँ उसे डाँटती है—

काहे को तुम जहँ तहँ डोलति हमको अतिहिं लजावति।
अपने कुल की खबरि करो धौं सकुच नहीं जिय आवति॥

इन पंक्तियों में माँ का कर्त्तव्य वर्णित है। एक गृहस्थ माँ का, जिसे अपनी जवान बेटी के भविष्य की चिन्ता है, जिसे अपने वंश की प्रतिष्ठा का खयाल है। सुन्दरी राधा के जहाँ-तहाँ जाने और देर करके घर आने से उसकी आशंका का बढ़ना स्वाभाविक है।

'नरोत्तमदास' व्रजभाषा के बड़े ही मर्मस्पर्शी कवि हैं। सुदामा-पत्नी का चित्रण निर्धन नारियों का ही चित्रण है। सुदामा की पत्नी बार-बार सुदामा को कृष्ण के यहाँ जाने के लिए प्रेरित करती है, ताकि उनकी स्थिति सुधरे—

दीनदयाल के द्वार न जात सो और के द्वार पै दीन ह्वै बोलै।
श्रीजदुनाथ से जाके हितू सो, तिहूँपन क्यों कन माँगत डोलै॥

इस दीनता वर्णन में अकाट्य तर्क है, स्वभावोक्ति है। और फिर—या घर ते न गयो कबहूँ प्रिय। टूटो तवा अरु फूटी कठौती, मे जीवन का अयत्नज अनुभव बोल गया है। इसमें कोई शक नहीं कि इन पंक्तियों में निर्धन स्त्रियों की दरिद्रता और सहिष्णुता मुखरित हो उठी है।

ब्रजमण्डल की होली प्रसिद्ध है। वहाँ स्त्रियाँ भी होली मे शरीक होती हैं—

होरी की हौंस हमें न घटू हम जानती तो तुम रारकरैया।
फूलो न मोहि अकेलि निहारि कै भूलियो ना तुम गायचरैया॥
'ठाकुर' जो बरजोरी करी तुम हौं हूँ नहीं कछु दीन परैया।
फोरिहौं काहू का आँखि लला रही नोखे गुपाल गुलाल डरैया॥

कितना स्वाभिमान। समानाधिकार पाने की ललक। अकेली है तो क्या अपनी रक्षा के लिए पर्याप्त। इसी तरह, 'मुरली-महिमा' के माध्यम से स्त्री-चरित्र पर प्रकाश पडता है। कृष्ण का, गोपियों से अधिक, अपनी मुरली को प्यार करना—गोपियों के लिए असह्य है। मुरली सौत की तरह उन्हें डँसती है। वे उसे छिपाने का प्रयत्न करती हैं। यह भी स्वाभाविक है। सखी सहेलियों के वर्णनों में भी नारियों का ही चित्रण है। सखी-सहेलियों का परस्पर प्रेम, मेल-जोल, राग-द्वेष—सब म स्त्रीजन-सुलभ मनोविज्ञान। किन्तु, रीतिकालीन ब्रजभाषा में नारियों का चित्रण उस युग के प्रभावों—विलासिता के भावों—से ग्रस्त हो गया है। इसके बावजूद, स्त्रीत्व की वंदना जारी रही—

मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाईं परै, स्याम हरित दुति होय॥—बिहारी

साराश यह कि जहाँ भक्तिकाल में स्त्रियाँ पुरुषों के लिए उत्कण्ठिता रहीं, वहाँ रीतिकाल में पुरुष ही स्त्रियों लिए उत्सुक रहने लगे, और पुरुषों की यह आकुलता, दर-असल, स्त्रियों के वास्तविक अस्तित्व की ही स्वीकृति थी। यह लौकिकता की जीत का अगला कदम था—स्त्रियों की प्रतिष्ठा की ऐहिक विजय।

सत्य तो यह है कि देशों की भिन्नता के कारण पात्रों में भिन्नता आ सकती है, परन्तु जीवन का सत्य परिवर्तित नहीं होता। चाहे कोई देश हो कोई युग हो, कोई लेखक हो, कोई भाषा हो, स्त्री और पुरुष सृष्टि क प्राणतत्त्व हैं। हमारी समग्र उपलब्धियाँ इन्हीं की हैं, इन्हीं के लिए हैं।

●●

बिहार की महिलाओं की स्वास्थ्य-समस्या

डॉक्टर महेश नारायण; पुलिस अस्पताल, गया

जब-कभी बिहार-राज्य के राँची, पलामू, हजारीबाग, संतालपरगना आदि जिलों के इलाकों में जाने का अवसर मिला है, वहाँ की आदिवासी-महिलाओं के सुन्दर स्वास्थ्य को देख मन आनंद से पुलकित हो उठता है। भौंरे-से काले केश, गठा हुआ शरीर, मोती के समान चमकते दाँत, प्रसन्न मुखमंडल। आधुनिक सभ्यता का प्रभाव अभी उनके जीवन पर बहुत कम ही पड़ा है। सदियों से प्रकृति की गोद में पली अभी ये वनवासिनी बहनें अपने सुन्दर स्वास्थ्य को विरासत के रूप में ढोती चली आ रही हैं। माता स्वस्थ हो, तो बच्चे भी पुष्ट होंगे ही। वे बड़ी मेहनती होती हैं। सुबह से शाम तक अपने कामों में व्यस्त रहती हैं। उनके लिपे पुते साफ सुथरे घरों को देख यह नहीं पता चलता कि कूड़ा कहाँ फेंकती हैं। गरमी के दिन में टोकरी लेकर नीमकौड़ियाँ चुनती हैं, जिनका तेल पकाकर जाड़े में शरीर में मालिश करने से फुन्सी होने का भय नहीं रहता। पहाड़ी क्षेत्र में कोसों जंगलों का साम्राज्य फैला है। वे अपने पुष्ट शरीर पर गृहस्थी का सारा सामान लादे कोसों की पद यात्रा किया करती हैं। अत्यंत दयनीय गरीबी भी उनके स्वच्छ जीवन और सुन्दर स्वास्थ्य में बाधक नहीं होती। नियमित जीवन संतुलित आहार, फिर स्वास्थ्य क्यों न सुन्दर होगा?

इसी तरह, बिहार के अन्यान्य जिलों के देहाती इलाकों में भी साधारण श्रेणी और सामान्य स्थिति की नारियों का स्वास्थ्य, धनी और शिक्षित घर की नारियों के स्वास्थ्य से, कहीं अच्छा देखने में आता है। देहात में भी जो पर्दानशीन स्त्रियाँ अपने घर के अन्दर ही घरेलू काम-काज में लगी रहकर परिश्रम किया करती हैं उनका स्वास्थ्य ठीक रहता है, परन्तु जिन सुखी घरानों की देवियाँ आराम तलब होती हैं और किसी प्रकार के श्रमसाध्य कार्य में उनके अंगों का विधिवत् संचालन नहीं हो पाता, वे कई तरह की बीमारियों के चक्कर में पड़ी रहती हैं। यही हाल शहरों की औरतों का भी है। जो घरेलू काम धन्धे में भी हाथ पैर चलाती रहती हैं, वे स्वस्थ हैं। जो सिर्फ पलँग कुरसी तोड़ती हैं, उनका घर डॉक्टरी दवा की शीशियों से भरा रहता है। यदि गृहिणी सचमुच काम करना चाहे, तो किसी गृह परिवार में काम की कोई कमी नहीं है। गृहस्थी चलानेवाली महिला के लिए दिन रात काम ही काम है। झाड़ू लगाना, घर की चीजों को झाड़ पोंछकर यथास्थान सजाना, बरतन माँजना, कपड़े धोकर धूप में फैलाना, बच्चों की देखभाल करना, ढेंकी चक्की चलाना, कुँए से पानी खींचना, बागवानी करना आदि अनेक प्रकार के ऐसे कार्य हैं, जो घर आँगन की सीमा के अन्दर रहकर किये जा सकते हैं और जिनसे स्वास्थ्य के निर्माण में सहायता मिल सकती है।

मजदूर-महिलाओं का स्वास्थ्य इसका साक्षी है। टहलने का अवकाश तो प्राय महिलाओं को बहुत कम ही मिल पाता है, पर अपने घर के आँगन-ओसारे या खुली छत का उपयोग इसके लिए किया जा सकता है, क्योंकि टहलना सर्वोत्तम व्यायाम है। किसी सवारी का आसरा छोड़कर पैदल चलने की आदत लगाने से भी टहलने का लाभ मिल जाता है। यह आसान तरीका भी है।

आधुनिक युग के प्रभाव ने महिलाओं के स्वास्थ्य को कम हानि नहीं पहुँचायी है। न शुद्ध भोज्य पदार्थ सुलभ है, न नियमित और सुव्यवस्थित जीवन है। महँगी तो ईश्वर की तरह सर्वव्यापी है। बच्चों की अधिकता दिन दिन बढ़न्ती पर है। बच्चों का स्वास्थ्य भी माता पिता को आर्थिक चिन्ता में डाले रहता है। दो बच्चों के जन्म के मध्य समय का कम अंतर ब्रह्मचर्य का अभाव सूचित करता है। मिल का चावल, चावल भी भुजिया और उसके भात का भी माँड निकाला हुआ। कल का आटा आटा भी वैज्ञानिक गेहूँ का। मिलावटी तेल, पिसा हुआ मसाला सत्तू भी मिल में ही पिसता है, शुद्ध दूध घी गाँवों तक में दुर्लभ, दालदा-वनस्पति का अखण्ड साम्राज्य। फिर भी स्वास्थ्य? पावरोटी, अंडा, बिस्कुट और चाय के युग में जितना स्वास्थ्य नसीब है, उतना ही काफी है। नतीजा साफ है। लोगों के शरीर में घुन लगता चला जा रहा है। असमय बाल का पकना, अंगों का ढीला होना, आँखों की ज्योति का मंद पड़ जाना, एक दो बच्चों की माँ का भी निस्तेज और मन्दप्रभ दीख पड़ना आदि प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। पहले बूढ़े बूढ़ी मोतियाबिन्द होने पर चश्मा लगाते थे। आज यह अन्य गहनों के समान एक शृंगार का साधन बनता चला जा रहा है। दृढ़ स्वास्थ्य से चेहरे पर जो स्वभाविक कान्ति छिटकगी, वह सुनहले चश्मे और पाउडर से कभी कायम नहीं रह सकती। इसलिए, मानसिक और शारीरिक —दोनों प्रकार के—संयम की अनिवार्य आवश्यकता है। तभी स्वास्थ्य संभव है।

स्त्रियाँ कोमलांगी होती हैं। पुरुषों के समान व्यायाम करना उनके लिए उपयुक्त नहीं, संभव भी नहीं। जाँत (चक्की) चलाना उनके लिए सर्वोत्तम व्यायाम है। भोजन के लिए आटा शुद्ध,—शरीर भी पुष्ट। यह कार्य अक्सर प्रातःकाल सूर्योदय के पूर्व ही किया जाय, तो विशेष लाभ हो। इससे उषःकाल में जाग उठने का अभ्यास तो हो ही जाता है, शुद्ध मलय पवन के सेवन का भी अवसर मिल जाता है। इससे हाथ, पेट और जाँघ—तीनों का व्यायाम हो जाता है। मैंने कलकत्ता निवासी एक करोड़पति मारवाड़ी सज्जन की पत्नी को देखा। उनका शरीर कुछ मोटा हो गया था। नियमित चक्की चलाने के अभ्यास ने उनके शरीर के विजातीय अंश को कम करके उन्हें स्वस्थ और फुरतीली बना दिया। मसाले पीसने में जो श्रम होता है वह भी व्यायाम से कम गुणकारी नहीं। ढेंकी-चक्की और सील-लोढ़े पर मशक्कत करनेवाली नारियों का दृढ़ स्वास्थ्य बिहार के अनेक परिवारों में देखा जा सकता है। बहुत सी बहनें कहेंगी कि स्वास्थ्य रक्षा के ये उपाय समयानुकूल नहीं हैं, पर ऐसे सरल दूसरे उपाय भी नहीं हैं।

बिहार के सभी क्षेत्रों में विवाह, पुत्रजन्मोत्सव और तीज-त्योहार के अवसरों पर उस अवसर के उपयुक्त गीत गाने का रिवाज है, जिसका प्रचलन आधुनिक पढ़ी-लिखी नारियों में घटता चला जा रहा है। इससे गृहस्थी के व्यस्त जीवन से त्राण पाकर मनोरंजन तो होता ही है, गले का भी व्यायाम होता है। इन लोकगीतों में हमारी हजारों वर्ष की सभ्यता-संस्कृति का इतिहास निहित है। आधुनिक विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि मधुर संगीत के प्रभाव से गायें अधिक दूध देती हैं। दादियाँ मधुर लोरियों के सहारे बच्चों को आज भी सुलाती और प्रसन्न रखती हैं। झूमर, सोहर और कोहबर में आज भी वही तीव्रता है कि मस्ती से झुमा दें। व्रत-उपवास और पूजा पाठ द्वारा भगवान् की उपासना की जाती है। इसका स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। व्रत से शरीर शुद्ध हो विश्राम पाता है, विजातीय पदार्थ बाहर निकल जाते हैं, स्फूर्ति और ताजगी का अनुभव होता है। ऋषि मुनियों द्वारा निर्दिष्ट रविवार, एकादशी आदि व्रतों का वैज्ञानिक महत्त्व है। दिन-रात पर्दे में बन्द रहने से भी स्वास्थ्य चौपट होता है।

मुसलमानी काल में जो पर्दे का रिवाज चला, उससे महिलाओं के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर हुआ। बिहार की महिलाओं में जो पर्दा टूटा, उसका बहुत कुछ श्रेय महात्मा गांधी को है, जिन्होंने अपने भतीजा मगनलाल गांधी को पर्दा-प्रथा हटाने के लिए यहाँ भेजा था। गांधीजी के सत्याग्रह आंदोलन ने भी पर्दा तोड़ने में बड़ी सहायता की। अब मुस्लिम परिवारों और देहात के अशिक्षित घरानों में ही पर्दा प्रथा शेष है।

बिहार में भोजपुरी क्षेत्र की स्त्रियाँ मगह-मिथिला क्षेत्र की महिलाओं से तगड़ी और स्वस्थ होती हैं। कुछ तो वहाँ के पानी का असर है, कुछ उनकी क्रियाशील प्रवृत्ति का। यों भी देहात की स्त्रियाँ शहर की स्त्रियों से अधिक स्वस्थ और दीर्घजीवी होती हैं। इसका कारण शुद्ध वायु घर का सादा भोजन और घरेलू काम-धन्धे में लगे रहने का अभ्यास ही है। किसान महिलाओं को खेती के छोटे छोटे कामों में हाथ बटाना पड़ता है। यह उन्हें नीरोग और सबल बनाये रखता है। मैंने पटना जिले के हिलसा इलाके में एक सत्तर अस्सी वर्ष की मुसलमान महिला को देखा, जो सुई में स्वयं डोरा दे कपड़ा सी रही थी। किन्तु, शहर का जीवन पुरुषों की भाँति पढ़ी-लिखी महिलाओं का भी कृत्रिम होता चला जा रहा है। बासी पानी की जगह 'बेड टी' पीना, सूर्योदय के बाद देर से उठना, अधिकतर नौकरों से काम लेना, टहलने के नाम पर थोड़ी चहलकदमी भी न करना, किसी तरह का शारीरिक श्रम न करना, उनके शरीर को अशक्त बनाता चला जा रहा है। साबुन और बाजारू तेल बालों को असमय पका देते हैं। देहाती स्त्रियाँ आज भी बेसन, दही, त्रिफला, चिकनी मिट्टी आदि से बाल साफ करती हैं, शुद्ध तिल-सरसों का तेल व्यवहार में लाती हैं। इससे बुढ़ापे तक बाल नहीं पकते। सच तो यह है कि विलासिता तो स्वास्थ्य को चबानेवाली राक्षसी है। उसका त्याग किये बिना स्वस्थ रहना असंभव है। स्वास्थ्य तभी ठीक रह सकता है, जब हर घड़ी उसकी रक्षा

का ध्यान रहे। प्रायः बिहार में सर्वत्र ही नारियाँ अपने स्वास्थ्य का महत्त्व नहीं समझतीं। तीती खट्टी-चरपरी चीजें खाते समय अपने जीवन का मूल्य भूल जाती हैं। अपनी बीमारी को वे अधिक पचाती-छिपाती हैं। जबतक खाट न पकड़ लें, बीमारी जड़ न पकड़ ले या बढ़ न जाय, तबतक उसका भेद नहीं खोलतीं, न दवा दारू का ही सेवन करती हैं। ज्योंही बीमारी थोड़ी पची, दवा का सेवन कम कर देती हैं। बहुत कीमती दवा भी कितने ही घरों में ताख पर ही रखी रह जाती है। भला-चंगा हुए बिना ही फिर वे काम-धंधे में लग जाती हैं। यह स्वास्थ्य के लिए हानि-कारक है। कितनी ही महिलाओं के मन में यह भाव जमा रहता है कि नहाने और तुलसी में पानी देने के बाद खाना उचित है। ठीक है, सूर्यनारायण को अर्घ्य देकर, पूजा पाठ करके ही खायँ; पर दस-ग्यारह बजे तक भूखी-प्यासी न रहें। इससे शक्ति क्षीण होती है। ज्वर और सिर-दर्द पैदा होने का भय रहता है। पित्त मरता है। पाचन-क्रिया खराब होती है। सवेरे ही मुँह हाथ धो, स्नान न भी कर सकें, कुछ खाकर ताजा पानी पी लेना चाहिए। इससे हृदय-कमल शीतल और शांत रहता है। काम करने में भी स्फूर्ति बनी रहती है। गुड़, मिसरी, बताशा, मेवा, फल, दूध, दही आदि नाम-मात्र के लिए भी ग्रहण कर लेने पर पित्त के कुपित होने का भय नहीं रह जाता। फलाहार या शर्बत पीने के बाद स्नान-ध्यान या पूजा-पाठ में भी कोई बाधा नहीं होती।

स्त्रियाँ बहुधा पुरुषों के भोजन करने के बाद ही भोजन करती हैं। अनेक परिवारों में आज भी यह चलन है। बिहार के देहाती घरों में यह परम्परा निबाही जाती है। लेकिन, मर्द के खाने में अगर देर हो, तो उसका भोजन सफाई से सुरक्षित रख खुद समय पर भोजन कर लेना चाहिए। आजकल का स्वास्थ्य भूख-प्यास का कष्ट झेलने योग्य नहीं। सुरुचि का भोजन स्वयं पकाना हर दृष्टि से अच्छा है। बनाने में दिलचस्पी रखना घर-भर के स्वास्थ्य के लिए हितकर है। रसोई की देखभाल स्वयं करना उचित है। इसके अभाव में भोजन अच्छा न बन सकेगा और रसमयी रसोई पर ही जीवन का अस्तित्व निर्भर है। बिहार की महिलाओं के सम्बन्ध में यह आम शिकायत है कि वे पुरुषों के भोजन पर जितना ध्यान देती हैं, उतना अपने भोजन पर कभी नहीं।

दाँत शरीर का आइना है। दृढ़ और स्वच्छ दाँतों से सौन्दर्य-वृद्धि के साथ साथ सुन्दर स्वास्थ्य की भी पहचान होती है। कहा जाता है कि जिसके दाँत चमकते हैं, उसका भाग्य चमकता है। दाँत साफ रहने से ही आँत साफ रहती है, साँस गमकती है। किसी भी अच्छे मंजन या नीम और बबूल की दँतवन से दाँत धोने के पूर्व नमक-तेल से दाँत माँजकर धोना विशेष लाभदायक है। नमक कीटाणु-नाशक है। सरसों के तेल में विटामिन 'ए' और 'डी' है, जो मसूड़ों को शक्ति प्रदान करता है, मद्य का उपयोग न करना ही अच्छा है। भूँजा (चबेना) दाँतों को मजबूत करता एवं पेट को साफ रखता है। इसी-लिए हमारे यहाँ शनीचर को भूँजा खाने का रिवाज है। बिहार में देहात की स्त्रियाँ प्रायः

मकई, चना आदि का भूँजा और मोटा अन्न खाया करती हैं, जिससे उनके दाँत-आँत का एक प्रकार से व्यायाम हो जाता है। किन्तु, बहुत-सी स्त्रियाँ दाँतों की सफाई पर पूरा ध्यान नहीं देतीं। फल यह होता है कि वे कई तरह के रोगों के चंगुल में फँस जाती हैं। वे नहीं समझतीं कि दाँत और जीभ की सफाई पर ही जिन्दगी टिकी रहती है। पुरुषों को चाहिए कि अपने घर की स्त्रियों के लिए हमेशा अच्छी दँतवन का प्रबन्ध करते रहें। जिस प्रकार पेट की गड़बड़ी पुरुषों को सताये रहती है, स्त्रियाँ उसी प्रकार मासिक की गड़बड़ी से पीड़ित रहती हैं। इसका स्वास्थ्य और सन्तान पर बुरा असर पड़ता है। इस तरह की गड़बड़ी को छिपाना और समय पर उपचार न करना बहुत खतरनाक है। पढ़ी लिखी, आराम तलब और अमीर स्त्रियाँ गर्भावस्था में मिचली या चक्कर से अधिक परेशान और कमजोर हो जाती हैं, जिसका असर पेट में बच्चे पर भी पड़ता है। निम्नवर्ग की कामकाजू स्त्रियाँ इससे बहुत कम पीड़ित रहती हैं। इसका एकमात्र इलाज है गर्भावस्था में तन मन को चिन्ता से एकदम मुक्त रखना, यथाशक्ति हल्का काम करते रहना और सदा प्रसन्न रहना। सन्तान की रक्षा का सारा भार माता पर ही है। माता के आलसी और असावधान होने से सन्तान का ठीक विकास नहीं हो पाता। गर्भावस्था को बीमारी समझ चिन्ता करना भूल है। प्रसूतिका गृह की गंदगी, उसमें स्वच्छ हवा और सूरज की रोशनी का अभाव, अशिक्षित मलिन दाइयाँ, नार काटने की दूषित प्रणाली आदि से धनुष-टंकार (टेटनस) की बीमारी हो जाने की आशंका रहती है। इसमें आधुनिकतम साधनों का प्रयोग ही जच्चा-बच्चा दोनों के लिए सुखकारी है। पग पग पर पूरी तरह सफाई का ध्यान रखने से कोई खतरा नहीं रह जाता।

बिहार की औरतों में कड़वी मिर्च खटाई खाने की ओर खास झुकाव देखा जाता है। गरम मसाला अत्यंत उत्तेजक पदार्थ है और मिर्च मसाला स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। यह हृदयदाहक भी है। इससे धातु तरल और विकृत होता है। इस युग के पीले स्वास्थ्य पर इसका खराब असर हो रहा है। श्वेतप्रदर (ल्यूकोरिया) से अधिकांश स्त्रियाँ पीड़ित और चिन्तित रहती हैं। यह कोई चिन्ताजनक बीमारी नहीं, थोड़ा लौहयुक्त पदार्थ का सेवन करने और डूश लेने से आराम हो जाता है। चिन्ता ही सारी बीमारी है। प्रसन्न रहना ही स्वास्थ्यवर्द्धक है। बिहार की महिलाओं को इन दोनों बातों का ध्यान रखना है। विवाह के पश्चात् बहुत सी स्त्रियों का जीवन गृहस्थी के झंझट-झमेलों से अशान्त हो जाता है। बच्चे का या परिवार के किसी व्यक्ति का बीमार होना स्वाभाविक है। दवा और सेवा तथा देवाराधन करते रहना ही कर्त्तव्य है, व्यर्थ चिन्ता में घुलते रहना ठीक नहीं। चिन्ता भगवान् की कृपा की ही करनी चाहिए। ईश्वर प्रार्थना से चिन्ता और संकट दूर हो जाते हैं। जैसे मामला मुकदमा जमींदारी की शोभा थी, वैसे ही साधारणतः बीमारी आदि गृहस्थी की शोभा है। जिसके बच्चा या परिवार न हो, उसे रोगी की सेवा करने और देवी देवता पूजने से क्या मतलब ? रोगी के पास रामायण आदि धर्मग्रन्थ पढ़ने से या हवन

करने से लाभ होता देखा गया है। यह तो अनुभवी विद्वानों और सन्त-महात्माओं का भी कहना है कि सच्चे मन से की गयी ईश्वर-प्रार्थना कभी विफल होती ही नहीं। बच्चोंवाली माता को तो धर्माचरण और दान-पुण्य करने पर विशेष ध्यान रखना ही चाहिए; क्योंकि पुण्यबल से ही पारिवारिक सुख होता है। अच्छा तो हो, यदि दो बच्चों के बीच कम से-कम तीन वर्ष का अतर रहे। अधिक से-अधिक चार बच्चों के पश्चात् ब्रह्मचर्य का पालन हो, तो सबसे अच्छा। इस अभाव-प्रधान और प्रलोभन-प्रधान युग की यही सबसे बडी तपस्या है। ईश्वरोपासना और आध्यात्मिक साहित्य का पाठ करने से मन के नियन्त्रण मे बडी सहायता मिलती है। छोटा परिवार आर्थिक एव स्वास्थ्य दोनों दृष्टिकोणों से लाभप्रद और सुखद है।

बिहार के देहाती क्षेत्रों के प्रायः अधिकाश घरों मे शौचालय का अभाव रहता है। पुरुष तो बस्ती से दूर मैदान में जाते हैं, पर स्त्रियों के लिए यह सभव नहीं। अतः, बस्ती के आसपास की भूमि गन्दी होती है। इससे गाँव का वायुमण्डल दूषित होता है। स्त्रियों के लिए शौचालय का प्रबन्ध होना अत्यन्त आवश्यक है। शौच की आवश्यकता दिन या रात में किसी समय भी हो सकती है। सभी ऋतुओं में महिलाओं के लिए, खासकर रात या बरसात में, बाहर निकलना खतरे से खाली नहीं। इस अनिवार्य आवश्यकता की ओर समाज और सरकार को शीघ्र ध्यान देना चाहिए, क्योंकि इसका सम्बन्ध महिलाओं की जीवन रक्षा से है। देहात मे इस युग मे भी खटोली, म्याना और पालकी का व्यवहार खासकर प्रतिष्ठित घराने की स्त्रियों के लिए होता है। ऐसी सवारी में विशेषतः नयी दुलहिन की बडी साँसत होती है। पालकी के ओहार के भीतर नाममात्र की भी हवा नहीं जाती। बेचारी पर्दाबन्द लडकी को कोसों स्वच्छ पवन का स्पर्श नहीं होता। यह अस्वास्थ्य-कर प्रणाली जितना ही शीघ्र समाप्त हो, उतना ही उत्तम। तात्पर्य यह कि नारियों को तो अपने स्वास्थ्य पर, ध्यान रखना ही चाहिए, पुरुषों पर भी नारियों की स्वास्थ्य-रक्षा का सबसे बड़ा उत्तरदायित्व है।

बिहार के शहरों और देहातों में महिलाओं के स्वास्थ्य की समस्या भिन्न भिन्न है। गरीब या साधारण श्रेणी की नारियों की दशा दोनों जगह शोचनीय है। उनकी स्वास्थ्य-समस्या केवल परिश्रम करते रहने से ही सुलझी रहती है। पर, वे सफाई पर विशेष ध्यान नहीं रखतीं। वे अपने केशों और अगों तथा वस्त्रों की स्वच्छता पर ध्यान देतीं, तो उनका स्वास्थ्य निर्विकार रहता। गरमी के दिन में भी बहुत कम स्त्रियाँ दैनिक स्नान करती हैं। स्नान बिना पैसे का सर्वश्रेष्ठ 'टॉनिक' है। किन्तु, बिहार के देहाती क्षेत्रों में बहुत कम ही जगह स्त्रियों के लिए स्नान की सुविधा है। जहाँ नदी या तालाब हैं, वहाँ तो थोड़ा आराम है, मगर अधिकाश स्थानों में कुछ ही घरों के अन्दर कुँए या नल हैं, गरीब बेचारियों को दूर-दूर से जल ढोना पड़ता है। इस परिश्रम से शरीर स्वस्थ तो रहता है, पर यथोचित रीति से स्वच्छ नहीं रहता। समाज के पुरुषों को नारियों के स्नानादि के लिए

जलाशय की समुचित व्यवस्था करनी चाहिए। नगर की महिलाओं में भी सामान्य वर्ग की नारियाँ शारीरिक स्वच्छता पर यथेष्ट ध्यान नहीं देतीं। इसी कारण, अस्पतालों और दवाखानों में उनकी भीड़ दीख पड़ती है। सारांश यह कि नारियाँ अपने स्वास्थ्य और जीवन का मूल्य नहीं आँकतीं, पुरुष भी उनकी देखरेख की चिन्ता नहीं करते। इस दिशा में महिलाएँ जब सजग होंगी, तभी पुरुष समाज चेतेगा।

आजकल बिहार के शहरों में, विशेषतः पढ़ी-लिखी महिलाओं में, गृहस्थी की झंझट से सर्वथा मुक्त रहने की प्रवृत्ति जोर पकड़ती जा रही है। बहुत थोड़े अपवादों के साथ बहुधा यही देखने में आता है कि रसोइया खाना बना दे, नौकर या मजूरनी चौका बरतन कर दे, वही झाड़ू-बुहारू कर दे और बच्चों को भी सँभाल रखे। मालकिन का काम है बिछावन पर पड़े रहना, रँगीली रसीली कहानियों की पुस्तकें या पत्रिकाएँ पढ़ना, शृंगार करना, रेडियो सुनना, गप्पें लड़ाना, सिनेमा या सरकस देखना और रिक्शा या मोटर से फैशन-मारकेट में या सखी सहेलियों से मिलने जाना। जीवन की आवश्यकताएँ दिन दिन बढ़ती जा रही हैं। उन्हीं आवश्यकताओं में तरह-तरह की दवाएँ भी हैं। अपने हाथों एक तिनका भी खिसकाना वे अपनी शान के खिलाफ समझती हैं। पिछले साल एक एम्० ए० पास महिला विवाह के पश्चात् ससुराल गयी, तो खाना बनाने और गृहस्थी सँभालने से साफ इनकार कर दिया। आखिर, पतिगृह को छोड़ सदा के लिए पितृगृह वापस चली आयी। आरामकुरसी पर लेटकर उपन्यासादि पढ़ते रहने का फल है कि बराबर बदहजमी की शिकायत रहती है और नारी-जीवन के सुख की चिन्ता अलग सताती है। गृहस्थी तो बिगड़ी ही, जिन्दगी नीरस हो गयी और आमदनी का बहुत बड़ा हिस्सा दवा और डॉक्टर में खर्च होता है। वह ऊँची शिक्षा किस काम की, जो लौकिकता अथवा सांसारिकता नहीं सिखाती? अपने देश के समाज में खपने योग्य अपने को बनाना चाहिए। सिर्फ स्वेटर बुनने से शरीर का व्यायाम नहीं होता।

इसी तरह, बिहार की पढ़ी-लिखी युवतियों में एक दूसरा रोग भी जड़ पकड़ रहा है— अपने बच्चे को दूध न पिलाना। सौन्दर्य घटने के खयाल से। बच्चे के लिए माँ के दूध से बढ़कर दूसरा बलवर्धक अन्य पौष्टिक पदार्थ नहीं। सवा या डेढ़ साल तक वही उसका प्रधान पौष्टिक आहार है। माँ के दूध से पला हुआ बच्चा ही सयाना होने पर सरकारी और मातृभक्त होता है। दूध का नाता रक्त का नाता है। उसमें गहरा ममत्व होता है। उससे माता का वात्सल्य भी सजीव रहता है। अतः, इस प्रश्न पर स्वयं ममतामयी माताओं को ही ठण्डे दिल दिमाग से सोचना चाहिए, सच तो यह है कि बिहार का महिला-समाज अब दिन दिन जागरूक होता जा रहा है। महिलाओं का अपना स्वतन्त्र सामाजिक संगठन है। उनकी प्रान्तीय सभा में उनकी स्वास्थ्य समस्याओं पर तत्परता से विचार विमर्श हो और उसे क्रियात्मक रूप भी दिया जाय। पुरुष वर्ग भी यह अनुभव करे कि माँ बहनों के स्वास्थ्य सुधार से ही समाज का वास्तविक कल्याण होगा। आजकल तो बिहार-सरकार की ओर से भी महिलाओं को जीविकोपयोगी काम सिखाने के लिए अनेक तरह की योजनाएँ

चल रही हैं। सामूहिक विकास योजनाओं के अन्तर्गत महिलोपयोगी प्रशिक्षण प्राप्त कर उन्हें अपनी रुचि के अनुकूल सामाजिक सेवा के कामों में लग जाना चाहिए। अब पर्दे से बाहर निकलकर स्वावलम्बिनी बनने का समय आ गया है। शील ही असली पर्दा है।

विषय-भोग की अधिकता, पौष्टिक भोजन का अभाव, डालडा वनस्पति एवं चाय का निर्द्वन्द्व सेवन, कहीं-कहीं बीड़ी-सिगरेट का भी प्रचलन, सिनेमा के उत्तेजक दृश्य और गाने, बाजारू खाना, देहातों में गंदगी, अंधविश्वास, अशिक्षा, शहरों में बढ़ती हुई विलासिता और निष्क्रियता, अनियोजित शिशु-जन्म, दिन-दिन भौतिक सुख के साधनों में आसक्त होकर पूजा पाठ और अध्यात्म से उदासीन रहने की प्रवृत्ति, मानसिक अशांति, चरित्र पतनकारी साहित्य का अबाध प्रचार, पश्चिम के रीति-रिवाजों का अंध अनुकरण, ईश्वरीय सत्ता में अविश्वास, अपने पूर्वजों की बतायी अच्छी बातों का विस्मरण या त्याग, व्यायाम का अभाव—ये कुछ ऐसे प्रत्यक्ष कारण हैं, जो हमारी माताओं और बहनों को स्वस्थ नहीं रहने देते। इनकी ओर ध्यान देकर इनका समुचित निवारण करना ही हमारा धर्म होना चाहिए।

●●

वज्जिका-लोकगीतों में नारी-हृदय का चित्रण

श्रीअजितनारायण सिंह 'तोमर', एम्० ए०, साहित्यरत्न;
कार्यालय-सचिव, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना

'वज्जिका' भाषा प्राचीन वैशाली-जनपद की लोकभाषा है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के मतानुसार पुरातन काल में वैशाली-जनपद के अन्तर्गत आजकल के चम्पारन और मुजफ्फरपुर के जिले थे। उनके अतिरिक्त दरभंगा-जिले का बहुत बड़ा भाग भी था। छपरा-जिले के मिर्जापुर, परसा और सोनपुर के थाने तथा कुछ और भी भाग सम्मिलित थे। वैशाली-जनपद वर्त्तमान बिहार-प्रान्त के उत्तरी भाग में गंगा, बूढ़ी गण्डक, बाया, कमला, बागमती, मही आदि नदियों से सिंचित होने के कारण एक शस्यश्यामला भूमि है। वर्त्तमान काल में भी मुजफ्फरपुर-जिले, दरभंगा सदर के पश्चमांश, समस्तीपुर के अर्द्धांश मोतिहारी के अर्द्धांश तथा छपरा-जिले के कुछ अंशों में भी वज्जिका-भाषी निवास करते हैं। वज्जिका-भाषाभाषी क्षेत्र का वर्त्तमान क्षेत्रफल लगभग चार हजार चार सौ वर्गमील है। वज्जिका-भाषाभाषियों की संख्या सम्प्रति लगभग साठ लाख है। इस लोकभाषा की प्रकृति मैथिली, मगही, भोजपुरी आदि से भिन्न होते हुए भी इसके लोकगीतों में अन्य भाषाओं से समानता पायी जाती है।

किसी भाषा के लोकगीत मानव हृदय के दर्पण होते हैं। हृदय की सूक्ष्म अनुभूतियाँ भी लोकगीतों में स्पष्ट रूप से पारदर्शी लगती हैं। विशेषतः नारी-हृदय करुणा, दया, दुःख, शोक, आह्लाद आदि सहजानुभूतियों से तत्क्षण अभिभूत हो जाता है। सभी भाषाओं के लोकगीतों में नारी-हृदय की कोमलता सहज ही द्रष्टव्य है। वह सरल और भावनाशील होता ही है। नारी के गान, हास्य और रुदन दोनों में, मुखरित होते हैं। नारी-जीवन की समस्त वेदनाएँ, उसकी सारी खुशियाँ, उसके हृदय के राग-द्वेष के भाव लोकगीतों में अंकित हैं। सच पूछिए तो नारी-जीवन ही गीतिमय है। यह विचित्र बात देखने में आती है कि सभी भाषाओं के लोकगीतों में प्रकारान्तर से एक ही तरह के भाव अभिव्यक्त हुए हैं; भले ही भाषा और लिपि में अन्तर हो। फिर भी, प्रत्येक जनपद की भाषा की अपनी विशेषता होती है। प्रत्येक जनपद की संस्कृति की विशेषताएँ उस क्षेत्र के लोकगीतों में स्वाभाविक रूप से झलकती हैं। वज्जिका-भाषा के कतिपय लोकगीतों का उदाहरण देकर यहाँ यह बताया जायगा कि नारियाँ जातिगत, व्यक्तिगत, वर्गगत, स्थानगत और भाषागत संस्कारों की छाप किस रूप में अपने गीतों में छोड़ती हैं। यहाँ के गीतों के लिए प्रत्येक दुलहिन 'सिया' और 'भवानी' है, प्रत्येक मा 'कौशिल्या' है; प्रत्येक वर 'रघुवर' और तपसी भिखारी 'भोला' है; प्रत्येक बाप 'दशरथ', 'जनक' और 'हिमाचल' है। इसीलिए, बच्चों के जन्म के अवसर के सोहर में, ब्याह-गीतों में, समदौन, अर्थात् बिदाई-गीतों में उन्हीं कल्पनाओं के उदाहरण मिलते हैं।

उतरि साओन चढ़ि भादो चारों दिस कादो रे।
ललना, मेघवा झरिय लगाय कि दामिनि दमके रे॥
ललना, रिमिक-झिमिक बुँद बरस गेलइ दादुर हरखित रे।
ललना, देउकी बेदन-बेयाकुल डगरिन चाहियो रे॥
ललना, इहाँ कहाँ डगरिन पाएब विध से मनाएब रे।
ललना, साथ जमुना निकट गाँव जहाँ बसु डगरिन रे॥
ललना, जब रे जनमल जदुनंदन बंधन छूटल रे।
ललना, खुल गेल बजर केवार पहरु सब सूतल रे॥
ललना, किरीट मुकुट स्रुति कुंडल ओढ़न पितंबर रे।
ललना, देउकी गेल डेराय कि कौन भूप जनमल रे॥
ललना, जनि तोहों देउकी डेराहो कि जनि पछताव रे।
ललना, एहे रे बालक दुखमोचन जगतनिरंजन रे॥
ललना, गलकइ किरिसन जनम सोहर गा के सुनलकइ रे।
ललना, गोकुल भेलइ उछाह कि किरिसन जी जनम लेलन रे॥

अर्थात्, सावन मास समाप्त हुआ। भादो मास आ गया। चारों ओर कादो-कीच है। वर्षा की झड़ी लगी हुई है। रात का समय है। दामिनी दमकती है। बादल

रिमझिम बरस गये हैं, जिससे दादुर हर्षित हैं। उसी अवसर पर देवकी प्रसव-पीडा से व्याकुल हो उठती हैं। उन्हें डगरिन (चमइन) की आवश्यकता है। किन्तु, डगरिन यहाँ कहाँ ? भगवान् से खैरियत मनाओ। जमुना के निकट एक गाँव है, जहाँ डगरिन बसती है। वहाँ जाकर डगरिन को बुलाओ। जब यदुनन्दन श्रीकृष्ण का जन्म हुआ, तब सभी बंधन छूट गये। कंस ने पहरा बिठा रखा था। वे सभी पहरुए सो गये। वज्र-किवाड़ खुल गये। किरीट, मुकुट और कानों में कुण्डल धारण किये पीताम्बर ओढ़े श्रीकृष्ण भगवान् प्रकट हुए। देवकी डर गयी कि किस महापुरुष ने जन्म लिया ? किन्तु, हे देवकी, डरने की कोई बात नहीं है, पछताने की भी कोई आवश्यकता नहीं। यह बालक रूप में संसार के दुःख को दूर करनेवाले अलख निरंजन हैं। यह कृष्ण-जन्म का सोहर गाया गया और गाकर सुनाया गया। सारे गोकुल में आनन्द छा गया; क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण ने (धरती का भार उतारने के लिए) जन्म लिया।

एक दूसरे सोहर में उस स्थिति का भी चित्रण मिलता है, जब संयोगवश ब्याही स्त्री को जल्दी बच्चा नहीं होता। उसे सब बाँझ कहते हैं। सर्वत्र उसकी उपेक्षा की जाती है। उसके हृदय की व्यथा का कहीं अन्त नहीं—

घरहु से निकसे मोर रनिआ कि बाग बीच ठाढ़ी बघिन बीच ठाढ़ी।
बागो से निकसे बघिनिआ, हालचाल पूछे ला, दुख सुख पूछे ला।
कओने बीपत तोरा परलो हे रनिआ कि बाग बीच ठाढ़ी बघिन बीच ठाढ़ी।
सास मोरा कहथिन बँझिनिआ, ननद बिरिजबासिन।
ए कन्हइया लाल जिनकर बारी बिअहुआ, ऊ घर से निकाले।
जाहो हे रनिआ लउट घर जाहो पलट घर जाहो।
बाग होतइ बाँझिन बघिन होतइ बाँझिन।
हुँअऊँ से चललइ मोर रनिआ कि मान बीच ठाढ़ी नगिन लग ठाढ़ी।
मानो से निकसे नगिनिया कि हालचाल पूछे ला..................
कोने बीपत तोरा परलो हे रनिया, कि मान बीच ठाढ़ी नगिन लग ठाढ़ी॥
सास मोरा कहथिन बँझिनिया... ..
ए कन्हइया लाल जिनकर.. ...
जाहो हे रनिआ......
नाग होतइ बाँझ नगिन होतइ बाँझिन।
हुँअऊँ से चललइ मोर रनिआ माय लग ठाढ़ी नइहर लग ठाढ़ी।
घरहु से निकले मोर मइया हालचाल......
कओने बीपत तोरा परलो हे रनिआ माय लग ठाढ़ी नइहर लग ठाढ़ी।
सास मोरा कहथिन......
ए कन्हइया लाल जिनकर...

जाहो हे रनिया......
घर होंगइ बाँझ पुतोह होंगइ बाँझिन ।
हुँकई गे भलइ मोर रनिया कि टाल तल ठाढ़ी ।
टाओ गे निकले टलेसरी कि हालचाल......
ए कौने बीपत मोरा परलो हे रनिया कि टाल तल ठाढ़ी ॥
सास मोरा कहथिन......
ए बन्हइया सास ननदा......
ए जाहो हे रनिया......
रह गेलइ पुतोए सास गरभ सास मोर कहथिन पुतोहुआ ननद भउजइया ।
ए बन्हइया सास ननदा भाई बिअहुआ...

अर्थात्, मेरी रानी घर से निकली। जंगल में जाकर खड़ी हुई। वहाँ बाघिन रहती थी। वह उसका हालचाल और दुःख-सुख पूछने के लिए निकली। पूछा, हे रानी, तुम्हारे ऊपर कौन-सी विपत्ति आयी कि जंगल में बाघिन के निकट आकर खड़ी हो ? रानी बोली, मेरी सास मुझे बाँझिन कहती है, ननद जंगली कहती है, जिस पति से शादी हुई वह भी घर से निकालता है। बाघिन बोली, हे रानी लौटकर घर जाओ, पीछे मुड़कर घर की राह लो, (नहीं तो तुम्हारी छाया पड़ने से) यह जंगल बाँझ हो जायगा, मैं स्वयं बाँझ हो जाऊँगी। (तब वहाँ से) रानी चली। सर्पिणी की माँद के पास खड़ी हुई। बिल से नागिन निकली हालचाल पूछने। पूछा, तुमपर कौन-सी विपत्ति आयी कि मेरी माँद के निकट खड़ी हो ? रानी बोली, मेरी सास बाँझिन और ननद जंगली कहती है, पति भी घर से निकाल रहे हैं। नागिन ने अनुरोध किया, तुम अपने घर लौट जाओ, अन्यथा नाग बाँझ हो जायगा, मैं भी बाँझिन हो जाऊँगी। वहाँ से भी रानी चली, तो अपने मायके पहुँची अपनी माँ के पास। उसकी माँ उसका दुःख-सुख पूछने निकली। पूछा, कौन सी विपत्ति पड़ी कि मायके में माँ के पास उदास खड़ी हो ? उसने बताया, मेरी सास बाँझ और ननद जंगली कहती है तथा जिसके साथ तुमने छोटी उम्र में ही शादी कर दी वे पतिदेव मुझे घर से निकालते हैं। माँ ने भी टका-सा जवाब दिया—लौट जाओ अपने घर, अन्यथा मेरा घर बाँझ हो जायगा, मेरी पतोहू बाँझ हो जायगी। वहाँ से निकलने के बाद फिर रानी देवी-चौरा के पास खड़ी हो गयी। वहाँ से टलेसरी भगवती उसका कुशल-समाचार पूछने निकलीं। पूछा—कौन-सी विपत्ति आ पड़ी कि तुम यहाँ खड़ी हो ? रानी ने अपनी बातें दुहरायीं। टलेसरी देवी ने घर जाने का आदेश किया। (देवी के आशीर्वाद से) उसे गर्भ रहा। बस छह मास बाद से ही सास ने पतोहू और ननद ने भाभी कहना तथा पति ने भी मानदान शुरू किया।

वंध्या होना स्त्री के लिए सबसे बड़ा अभिशाप है। वह सन्तान की उत्पत्ति के लिए पूजा, पाठ, व्रत और सूर्यनारायण की उपासना करती है तथा अपने मन की व्यथा भगवान् से व्यक्त करती है। एक छठ-गीत देखिए—

गोबर लावे गेलिअइ हो दीनानाथ, गइआ के बथान।
गइआ चरवहवा हो दीनानाथ लेलकइ लुलुआय।
दूर जाही धूर जाही बाँझी गे मराछ, तोरे परोछे गइया होतइ बाँझ।

अर्थात्, हे दीनानाथ, मैं गाय के बथान में गोबर लाने गयी (ताकि आपकी पूजा के लिए चौका दे सकूँ), पर गाय के चरवाहे ने मुझे फटकार दिया। उसने कहा—ऐ बाँझ और मराछ (मृतवत्सा) औरत, तुम दूर हट जाओ, तुम लौट जाओ। तुम्हारी छाया पड़ते ही मेरी गाय बाँझ हो जायगी।

एक स्त्री पति द्वारा बाँझिन कहे जाने पर गंगाजी से प्रार्थना करती है कि वे एक लहर देकर उसे वहा ले जायँ। गंगाजी उसके डूब मरने का कारण पूछती है। वह कारण बताती है कि बार-बार उसके पति उसे बाँझ कहते हैं, जिस दु:ख को वह नहीं सह सकती है। गंगाजी उसपर द्रवित होती हैं, वह गोद भरने का आशीर्वाद पाकर लौटती है। निम्नांकित बटगमनी लोकगीत देखिए—

लहर एगो दहु मइया गंगा है, तोरे गोदी जयबो समाय।
ठाढ़ एगो धनिया अरज करइ गंगा से, जेकर दुख हिरदा उफनाय॥
किय दुख आ गे धनि सास-ससुर देलकउ, आ कि धनि पीउ परदेस।
माय-बाप दहिन बाँह केकर दुख झेलऊ धनि, आ कि सुनले दुख के सनेस॥
हमरा न दुख मइया सास रे ससुर के, दरद न कोनो हमरा देह।
नहि पिआ परदेसी हमरे हे मइया, माय बाप, भाई के न सोच।
सास कहे बनिया न भउजी कहे ननदी, सामी जी के बात मन खोंच॥
बँझिआ धराने नाओं बात-बात सामी हमरा, से वेदन सहलो न जाय।
जाही वेदन थपॅले धनि डूब धँस मरे ला, तेकरो हम करबऊ उपाय॥
नवे रे महिनॅमो धनि गोदी तोरो भरतऊ तब करिहे गंगा असनान।
गोदी के बालक ल के मूरत करइहे, सामी तोरो पुजतउ चौरा पान॥

अर्थात्, हे माँ गंगे, एक लहर मेरी ओर बढ़ाओ, ताकि तुम्हारी गोद में समा जाऊँ। एक स्त्री (तट पर) खड़ी होकर गंगाजी से प्रार्थना कर रही है, जिसका हृदय दु:ख से उबल रहा है। (गंगाजी पूछती हैं) हे युवती, क्या तुम्हारे सास ससुर ने तुम्हें तकलीफ दी है या तुम्हारा पति परदेश में है? हे सुन्दरी, बताओ कि माँ, बाप या भाई किसके कारण तुम्हें तकलीफ हुई है या तुमने कोई दु:ख का सदेशा सुना है? स्त्री कहती है—हे माता, मुझे न सास ससुर से दु:ख है और न मेरी देह में कोई व्याधि है, न मेरा पति परदेशी है, न माँ, बाप या भाई का ही शोक है। मेरी सास मुझे पतोहू नहीं कहती, ननद भी भाभी नहीं कहती, स्वामीजी की बात हृदय में खोंच मार रही है (शूल सी चुभती है)। मेरे स्वामी ने मेरा नाम बाँझिन रखा है, बात-बात में बाँझ कहते हैं, जिसकी वेदना मुझसे सही नहीं जाती।

(गंगाजी कहती हैं) हे सोहागिन, जिस वेदना से तुम डूब-धँसकर मरने आयी हो, उसे दूर करने का उपाय मैं करूँगी। तुम्हारी गोद आज से नवें महीने भर जायगी, तब तुम फिर गंगा नहाना। अपनी गोद के बालक को लेकर (गंगा-किनारे) मुण्डन कराना। पुत्रवती होते ही पति तुम्हें पूजेंगे और मुँह में पान खिलावेंगे।

नारी सब कुछ सह सकती है, बाँझपन को भी किसी तरह खेप जाती है, वैधव्य-जैसे दुःख भी सह सकती है; पर वह काठ की भी सौत को बरदाश्त नहीं कर सकती। वज्जिका के निम्नांकित गीत में इसका बड़ा स्वाभाविक चित्रण हुआ है। यह गीत 'जँतसार' के रूप में प्रचलित है। जाँता (चक्की) पीसते समय स्त्रियाँ दर्द-भरे गीत गाती हैं। उन गीतों में नारी-हृदय की सहजानुभूतियाँ स्पष्ट होती हैं—

अपने तेँ जाइछँ हो पॅराभु उरबी-पुरबिया हो
कहमे गमयलें हो पॅराभु एती बेरी रतिया ?
तोहरो से सुनदर गे धॅनी मलिनिया के रे बेटिआ
तोरो से ऊतिम गे धॅनी मलिनिया के रे बेटिआ
ओकरे संग गमइलीं गे धॅनी एती बेरी रतिआ
मरिहउ मरिहउ गे मालिनें तोहरो जेठ भइआ
कोने फूल लोभयले गे बहिनी बलमुआ निर-रे-बुधिआ
एली फूल लोढ़ली गे बहिनी चमेली फूल गे लोढ़ली
ओही फूल गमकवे गे बहिनी बलमुआ निर-रे-बुधिआ
आधा रात अगली पहर रात पछली,
निसबद रतिया खोलई बजर-केवरिआ
दूरी जा हो दूरी जा हो कुतवा-बिलइआ,
दूरी जा हो सहर-तर के लोग
नाहिं हम हकी हे धनी कुतवा-बिलइआ,
नहीं हकी सहर तर के लोग
हमहुँ तेँ हकी गे धनी बारी रे बिअहुआ,
खोलें देहू बजर-केवार
हमें कइसे खोलिअइ हे पॅराभु बजरि केवरिआ,
कहमें गमयलें हो पॅराभु एती बेरी रतिआ
अँगना में हकइ हो पॅराभु तुलसी चउरवा,
सेहे छूइ हो पॅराभु पलँगिया चढ़ि हो बइठिहें

तुलसी छुअइते गे धनी हमें मरि जएबेउ
छुटि जएतउ सोलहो सिंगार
सोलहो सिंगरवा हो पॅराभु तोरे सँग हो बोधबइ
मालिन सउतिनिया हो पॅराभु सहलो न जाय

अर्थात्, (स्त्री अपने पति से कहती है) हे प्रभो, आप तो विदेश कमाने जा रहे हैं, तो आपने इतनी रात कहाँ बिता दी ? (पति कहता है) तुमसे भी सुन्दर और उत्तम मालिन की बेटी है, उसी के साथ इतनी रात बिताई। (स्त्री झट कुपित हो शाप दे बैठती है) अरी मालिन की बेटी, तेरा बड़ा भाई मर जायगा। तूने किस फूल से मेरे भोले भाले (निर्बुद्धि) पति को लुभा लिया। (मालिन की बेटी कहती है) हे बहन, मैंने चम्पा-चमेली के फूलों को लोढा, उन्हीं फूलों की गमक से तुम्हारे पति को आकृष्ट किया। (एक दिन की बात है) आधी रात बीत गयी। रात्रि के पिछले पहर में चारों ओर (नि शब्द) सन्नाटा छाया था। पति किवाड़ खुलवाता रहा। (स्त्री ने समझा) कोई पड़ोस का आदमी या कुत्ता बिल्ली है। (स्त्री ने कहा) दुर हो कुत्ता-बिल्ली या दुर हो पड़ोसी। (पुरुष ने कहा) हे प्यारी, मैं न कुत्ता बिल्ली हूँ और न पड़ोस का कोई व्यक्ति। मैं तुम्हारी छोटी उम्र का ब्याहा पति हूँ। इसलिए वज्र कपाट खोलो। (स्त्री कहती है) हे प्रभो, मैं कैसे वज्र किवाड़ खोलूँ ? आपने इतनी रात कहाँ गवाँ दी ? (आखिर किवाड़ खोलकर स्त्री ने कहा) प्रभो! आँगन में तुलसी चौरा है, उसको छूकर ही मेरे बिछावन पर पैर रखो। (पति कहता है) हे सुन्दरी, तुलसी छूने से (झूठा पाखंडी होने के कारण) मैं मर जाऊँगा, तो तुम्हारा सोलहो सिंगार (सोहाग) छूट जायगा। (पत्नी बोली) हे प्रभो। जबतक तुम्हारे सग रहूँगी, तबतक सोलह सिंगार कैसे भूलूँगी, पर हे नाथ! मालिन सौत सही नहीं जाती।

नारी जहाँ एक ओर सेवा, प्रेम और ममता की मूर्त्ति है, वहाँ दूसरी ओर उसमें मानव स्वभावानुसार ईर्ष्या के भाव भी होते हैं। 'सौतिया-डाह' शब्द लोकभाषाओं में प्रसिद्ध है। नीचे के लोकगीत (कजली) में देखिए—

नदिया के तीरे मुँगिआ बोएलो हे हरी।
हरि हे, मुँगिआ फरलइ घओंछे डढ़िया हे हरी॥
खोंइछा भरी तोरली आउरो चँगलिया भरी हे हरी।
हरि हे, आइ गेलइ खेत रखवरवा हे हरी।
छीनि लेलकइ गेरा के हँसुलिया हे हरी॥
एक मन करइ नदिरा जइती हे हरी।
हरि हे, दोसर मन करइ जमुना डुबिती हे हरी॥
नदिरा के गेलें फेर बहुरबइ हे हरी।
हरि हे, जमुना के डूबल फेन न बहुरबइ हे हरी॥

ओहु पार धोबिया लुगवा धोअइ छइ हे हरी ।
हरि हे, किनकर लछुमिनिया पुतहू डुबलन हे हरी ॥
मचिया बइठल सासु रोवइ हे हरी ।
हरि हे, चीलम के बोरुवइया पुतहू डुबलन हे हरी ॥
भनसा पइसले गोतनी रोवइ हे हरी ।
हरि हे, भनसा के करयइया गोतनी डुबलन हे हरी ॥
सुपती खेलइते ननदी रोवइ हे हरी ।
हरि हे, माथा के बँधवइआ भउजी डुबलन हे हरी ॥
जुअया खेलइते देओरा रोवइ हे हरी ।
हरि हे, हँसी के करयइया भउजी डुबलन हे हरी ॥
पोथिया पढ़इते सामी रोवइ हे हरी ।
हरि हे, पलँगा के सोवइआ धनिया डुबलन हे हरी ॥
पलँगा सोअइते सउतिन हुलसइ हे हरी ।
हरि हे, भले-भले सउतिनिआँ जमुना डुबलन हे हरी ॥

नदी किनारे (खेत में) मूँग बोयी है। मूँग की फलियों के गुच्छे लगे हैं। एक नव-विवाहिता युवती ने आँचल भर मूँग की छीमियाँ तोड़ चँगेरी में भी भर ली। (इतने में) खेत का रखवाला आ गया। उसने युवती के गले की हँसुली छीन ली। (लज्जा-ग्लानि वश) उस युवती के मन में आया कि मायके चली जाय, फिर मन में आया कि यमुना में डूब मरे। (उसने सोचा कि) मायके जाकर तो (जीवित) लौट सकती हूँ, किन्तु यमुना में डूब जाने पर पुन: नहीं लौट सकती। नदी के उस पार धोबी (लूगा) कपड़े धो रहा था। (वह स्त्री को डूबते देख) बोला—हे भगवान्, लक्ष्मी के समान किसकी पुतोहू डूब मरी। (तदुपरान्त) मचिया पर बैठी सास रो रही है कि चिलम बोझकर देनेवाली मेरी पुतोहू डूब मरी। उसकी जेठानी रसोईघर में बैठते ही रो पड़ती है कि रसोई बनाकर देनेवाली मेरी गोतिनी डूब गयी। सुपती मउनी (सूप डलिया) खेलते वक्त ननद रो रही है कि माथे क केश बाँधन—शृंगार कर देनेवाली भाभी डूब गयी। जूआ (चौपड़) खेलते समय देवर रो रहा है कि हँसी-मजाक करनेवाली भाभी डूब गयी। पोथी पढ़ते समय स्वामी रो रहा है कि पलँग पर साथ सोनेवाली सुन्दरी चल बसी। किन्तु, पलँग पर सोते समय सौत भीतर ही-भीतर बहुत प्रसन्न है कि भले सौत यमुना में डूब मरी (अब केवल उसी की गोटी लाल होगी)।

नारी के लिए पति ही सबसे बढ़कर प्रिय है। पति परदेश कमाने जा रहा है। नारी व्याकुल है। वह अपने पति द्वारा पाले गये सुग्गे को रख लेती है। सुग्गा उसे तंग करता है। उसे काट लेता है, पर चूँकि वह उसके पति का प्यारा सुग्गा है, इसलिए उसे नहीं पटक देती।

वह सुग्गा परदेश जाकर पति को स्त्री का सँदेशा सुनाता है। पति के विरह में स्त्री की जो दशा है, उसका वर्णन करता है। निम्नांकित गीत में नारी-हृदय की करुणा का बड़ा स्वाभाविक चित्रण हुआ है—

हरिलाल सुगवा है उतारि लेलकइ न पिअवा।
तोंहीं त जाइत पिअवा देस रे विदेसवा।
सुगवा सुगवा कहमा धएले जाइछ॥
भुखवा जे लगतउ सुगवा हमरो के कहिहे।
लालीं लाली अमरुद खिआइए देवऊ न॥
पिअसवा जे लागतऊ सुगवा हमरो के कहिहे,
गंगाजल पिआइए देवऊ न॥
नीनमा जे लगतऊ सुगवा हमरो के कहिहे, सुताइए देवऊ न।
चोली बन के बिचवा सुताइए देवऊ न॥
आधा रात अगली पहर रात पछली,
सुगवा कनरइ चोली-बन के बीचे न।
एक मन करइ सुगवा भुँइआँ धर बँजारितीं,
दोसर मन करइ सुगवा पिआजी के खेलओनमा रे न।
हिआँ के जे ऊरल सुगवा गेलइ ओहि रे कलकतवा,
बइठइ सुगवा पीआ के पगरिआ॥
हुआँ से उतारलन पिअवा जाँघी पे बइठयलन,
कहु कहु न घर के कुसलिआ रे न॥
मइया त रोअइछऊ रजवा एहरो से देहरी,
बहिनिआँ रोवऊ न ओहि ससुररिआ,
धनिआँ रोअइछऊ लाली रे पलँगिआ।

अर्थात्, पति ने (पिंजड़े में टँगे) हरिलाल नामक सुग्गे को उतार लिया। पत्नी के पास रख दिया कि उसे देख विरह में मन बहलाया करेगी। (स्त्री कहती है) हे प्रियतम। आप तो विदेश जा रहे हैं, इस सुग्गे को किस पर छोड़े जा रहे हैं? (फिर भी, सुग्गे से कहती है) हे सुग्गा, भूख लगे तो मुझसे कहना, मैं लाल लाल अमरुद खिलाऊँगी। जब प्यास लगे, मुझसे कहना गंगा-जल पिला दूँगी। जब नींद लगे, तब मुझसे कहना, सुला दूँगी, चोली बन्द के बीच में सुला लूँगी। आधी रात बीतने पर पिछले पहर में सुग्गा चोली बन्द को बीच से कुतरने लगा। पहले तो मन में आया कि

सुग्गे को जमीन पर पटक दूँ; दूसरे ही क्षण मन में आया कि यह सुग्गा तो प्रिय पति का खिलौना (मन बहलानेवाला) है। यहाँ से सुग्गा उड़ा, तो कलकत्ता (पहुँच) गया, पतिदेव की पगड़ी पर बैठ गया। प्रियतम ने सिर से उतार अपनी जाँघ पर बिठाया। पूछा—कहो-कहो, घर का कुशल मंगल ? (सुग्गे ने कहा)—तुम्हारी माँ दहलीज पर बैठी रोती रहती है, बहन अपनी ससुराल में रो रही है, पत्नी लाल पलँग पर पड़ी रोती रहती है।

इसी प्रकार, नारी—बेटी, बहू, माँ, सास, भावज, ननद, सौत, बंध्या, रमणी, विधवा, बूढ़ी आदि अनेक रूपों में—अनेक प्रकार से, वज्जिका लोकगीतों में, चित्रित हुई है। वज्जिका लोकगीतों में नारी-हृदय के नाना प्रकार के भावों के हृदयग्राही चित्रण का यह दिग्दर्शनमात्र है। नारी जीवन की गहराइयों में उतरने के लिए तो एक महानिबन्ध की आवश्यकता होगी।

●●

बिहार की स्त्रियाँ : वर्त्तमान स्थिति और विकास

श्रीमती सुशीला सहाय 'गुप्त', द्वारा श्रीदयानन्द सहाय, बदमकुँआ, पटना,
भूतपूर्व प्रतिनिधि, कस्तूर बा ट्रस्ट, पूसा, बैनी (दरभंगा)

आज के पितृसत्ताक मानव समाज में स्त्री की महत्ता गौण है। यह एक प्राकृतिक तथ्य है कि जो जितना महत्त्वपूर्ण होता है, उतना ही गौण होता है, अदृष्ट होता है। छोटे पौधों से विशाल वृक्ष तक की जड़ें गौण हैं, कुटिया से भव्य भवनों तक की आधार-शिला गौण है। गंगा की उद्गम स्थली गंगोत्री गौण है और समूचे ब्रह्माण्ड का संचालन करनेवाली वह शक्ति भी अज्ञात है, गौण है। प्रश्न प्रधान और गौण का नहीं, परोक्ष अपरोक्ष का भी नहीं और न लघुता महत्ता का ही है। प्रश्न है मजबूती का, विकास का। वृक्ष की जड़ें, भवनों की आधार शिला कमजोर और अविकसित हो तो क्या होगा? वृक्ष गिर जायगा, इमारत धँस जायगी। परिवार और समाज की आधार-शिला—मानव की निर्मात्री—कमजोर और अविकसित हो, तो क्या होगा? वही न, जो आज हो रहा है। आज हर क्षेत्र में विध्वंस के कगार पर बैठी मानवता को दानवता निगलती जा रही है, मानव गिरा हुआ और पथभ्रष्ट सा दिखायी दे रहा है। इस स्थिति को सँभालना है, तो समाज की आधार-शिला—स्त्री—को मजबूत और सर्वाङ्ग विकसित बनाने पर पूरा ध्यान देना होगा। आज पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में बिहार की स्त्रियों की क्या स्थिति है तथा इन क्षेत्रों के समष्टिगत संदर्भ में उनके वैयक्तिक अंगों शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और सांस्कृतिक—के विकास का क्या समाधान हो सकता है, इसपर विचार करना आवश्यक है।

पारिवारिक और सामाजिक क्षेत्र मे

बालक और बालिका दोनों का जन्म परिवार में होता है। किन्तु, शैशव के प्रथम अवस्था में ही बालिका माँ बाप के लिए बोझ बनकर आती है और बालक मुक्ति का सोपान। यह शाश्वत सत्य है कि न अकेले पुरुष से वंश परम्परा चल सकती है और न अकेली स्त्री से। दोनों में आत्म तत्त्व है, जीवन है सुख दुख की अनुभूति है, सहजीवन की हूक है और है सर्वाङ्ग विकसित जीवन जीने की आकांक्षा। तब यह वैषम्य क्यों? क्या इसके लिए सामाजिक रीति रिवाज सोलह आने जिम्मेदार नहीं? वास्तव में तिलक दहेज और पर्दे की प्रथा ने, विवाह को जीवन की सबसे जरूरी जरूरत मानने की मान्यता ने, हमारी नव कलिकाओं के विकास का द्वार बन्द कर दिया है। आज एक माता स्त्री होकर भी बेटे और बेटी में भेद भाव बरतती है। बेटे के शरीर और बुद्धि पर जितना ध्यान दिया जाता है, बेटी के शरीर और बुद्धि के प्रति उतनी ही उपेक्षा बरती जाती है। विवाह में होनेवाले तिलक-दान की चिन्ता के आगे बेटी के विकास की चिन्ता कुण्ठित हो जाती है। गहराई से सोचें तो तिलक का अर्थ जहाँ अधिकांश माँ बाप के लिए घूसखोरी जीविका के साधनों की बिक्री और कर्ज है, वहाँ स्त्री के लिए उसके समग्र विकास का शोषण भी है। इसके बावजूद आज शिक्षा में लड़कियों के बढ़ते आँकड़े माँ बाप की लाचारी का ही प्रतीक है, क्योंकि विवाह के बाजार में शिक्षा की माँग बढ़ रही है। अर्थात्, जो विकास हो रहा है, वह भी विकास की दृष्टि से नहीं। दूसरी ओर पर्दा प्रथा अपना मुँह खोले खड़ी है। अधिकतर लड़कियों ने जहाँ शैशव को विदा कर किशोरावस्था में चरण रखे, वहां बाहर का उन्मुक्त वातावरण उनके लिए दुर्लभ हो जाता है। माँ बाप के घर में चारदीवारी के अन्दर विवाह का रोना झींकना सुनते सुनते जीवन का बहुमूल्य समय समाप्त हो जाता है और शादी के बाद ससुराल में पर्दे के अन्दर शिशु पालन की जानकारी के बिना बच्चे पैदा करना और किसी तरह पाल पोसकर निर्बल, अस्वस्थ और असंस्कारी बच्चे तथा मनुष्य समाज को देना—इसी में उसके जीवन की इति हो जाती है। कुछ परिवारों में तो शादी के समय डोली के पर्दों से घर तक के जिन रास्तों की झलक उसे मिली थी फिर इन रास्तों से उसकी अरथी ही दुबारा भेंट करती है। सारी इच्छा आकांक्षाओं की बलि चढ़ाकर और जीवन की अवशेष रक्त बूँद चुकाकर भी उसकी कृति का मूल्य कितने पुरुष आंकते हैं? शायद हजार में एकाध। पुरुष आठ दस घण्टे काम कर जो कमाता है, उसके सामने स्त्री के चौबीस घण्टे के श्रम की कोई कीमत नहीं। कितनी विडम्बना है यह स्त्रियों के जीवन के साथ?

आज एक मकान बनवाना होता है तो कुशल राज की खोज की जाती है, उत्तम साधन और उत्तम सामग्री जुटायी जाती है किन्तु जिस शरीर के रक्त मांस से मानव शिशु का शरीर बनना है और जिस जीवन की छाया में नये मानव का निर्माण होना है उसकी यह कैसी उपेक्षा है? वास्तव में समाज हित के नाते लड़के की

अपेक्षा लड़की के विकास पर अधिक ध्यान देना जरूरी था और है; क्योंकि उसकी जिम्मेदारी व्यष्टि और समष्टि के निर्माण में पुरुष की अपेक्षा नैसर्गिक रूप से अधिक है, और रहेगी भी।

इधर चार पाँच वर्षों में बदलती आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों ने पर्दा-प्रथा को किसी हद तक झँझोड़ा है और वह दिन दूर नहीं, जब यह अतीत की स्मृति मात्र बन जाये, लेकिन तिलक की प्रथा निम्नवर्ग में भी बढ़ी ही है। तिलक का मोह, शादी की धूमधाम आज सुधारवादी नेताओं से भी नहीं छूट रही, तब इसमें सुधार कैसे किया जाय— यह मूल प्रश्न है। तिलक-प्रथा बन्द हो या न हो, लेकिन वह स्त्री के जीवन का अभिशाप न बने, इसके लिए एक रास्ता जरूर है। माँ बाप लड़के की तरह लड़की के विकास की चिन्ता और प्रबन्ध करें। शादी को जीवन की अनिवार्य आवश्यकता न मानकर लड़की को शारीरिक, नैतिक और आर्थिक रूप से सशक्त तथा स्वावलम्बी बनावें। ऐसा होने पर जहाँ लड़कियों के मन की खिन्नता दूर होगी, वहाँ शादी का समाधान भी उसमें से निकलेगा। फिर अच्छा जीवन साथी मिला, तो ठीक, वर्ना घुल घुलकर अविकसित जीवन जीने से तो अविवाहित रहकर समाजोपयोगी बनना अधिक श्रेयस्कर होगा। दूसरी ओर अपने जीवन के अतीत को ध्यान में रखते हुए माताएँ अपने लड़के की शादी में तिलक की माँग एवं धूमधाम बन्द करने का निश्चय करें। स्त्री ही स्त्री-जाति के प्रति संवेदनाशील बने तभी ये सामाजिक समस्याएँ सुलझ सकती हैं।

आर्थिक क्षेत्र में

आर्थिक क्षेत्र में स्त्रियों के तीन वर्ग हैं—१. उच्च वर्ग, जिसकी स्त्रियाँ कोई काम नहीं करतीं, किसी प्रकार की कमाई करना तो दूर रहा, २. मध्यम और उच्च मध्यम वर्ग, जिसकी स्त्रियाँ पहले कूटना-पीसना घर में कर कुछ बचत कर लेती थीं, लेकिन मिलों के चक्कर में वह कम होता जा रहा है और खाना बनाने का या घर-गृहस्थी देखने का उद्योग ही अब उनके हाथों में रह गया है, इस वर्ग की कुछ महिलाएँ नौकरी के विविध क्षेत्रों में भी निकली हैं, लेकिन उनकी संख्या नगण्य सी ही है, ३. निम्न वर्ग, जिसकी स्त्रियाँ मेहनत-मजदूरी या शरीर-श्रम से पुरुष के बराबर अर्जन कर लेती हैं, लेकिन शराब, तम्बाकू आदि के कुछ व्यसनों के चक्कर में वे भी फँसी हुई हैं। निम्न वर्ग को छोड़कर शेष वर्गों की स्त्रियाँ आर्थिक रूप से पूर्णतया पुरुषों पर आश्रित हैं। परिणामत, इन वर्गों की अधिकांश स्त्रियों को पुरुष वर्ग के नाना प्रकार के अत्याचार सहने पड़ते हैं और पग-पग पर हीनता का अनुभव होता है। इस वर्ग की अनेक स्त्रियों को तो पति की शराबखोरी और व्यभिचार तक में सहयोगी बनना पड़ता है। कितनी अपमानजनक स्थिति है यह ! लेकिन आर्थिक असमर्थता और सामाजिक रूढ़ियाँ उसे इस स्थिति में रहने के लिए बाध्य करती हैं। विवाह तो जीवन के उत्थान के लिए होता है, पतन के लिए नहीं। पति के पतन को रोकना पत्नी का तथा पत्नी के पतन को रोकना पति का धर्म होना चाहिए, न कि

पतन में सहयोगी बनना। इसके अलावा मँहगाई, दुर्घटनाओं आदि ने स्त्री को आर्थिक रूप से स्वावलम्बन की क्षमतावाली बनना आवश्यक बना दिया है। इसके लिए उसे जहाँ अनावश्यक खर्च में कटौती कर मितव्ययी बनाना होगा, वहाँ उत्पादन में भी समर्थ बनाना होगा। अनावश्यक खर्च कई प्रकार के हैं। जैसे—१ शृङ्गार, आभूषण और विलासिता के साधनों के। २. रीति-रिवाजों की धूमधाम के। ३ दुर्व्यसनों के, जो शरीर और चरित्र के लिए हानिकारक हैं। ४ गन्दगी और असावधानी से पैदा होनेवाली बीमारी के। ५. समय का दुरुपयोग कर लड़ाई झगड़े या अशान्ति के।

अब क्रमशः इन पाँचों पर कुछ विस्तार से विचार किया जाय—१. किसी युग में स्त्री स्वरक्षिता रही होगी, लेकिन उसकी शृङ्गारप्रियता ने उसे न केवल पुरुष का विलास-साधन ही बनाया, वरन् उसकी सुरक्षा को खतरे में डालकर पर-रक्षिता भी बना दिया। शिव का धनुष, जिसे रावण सा महारथी भी हिला न सका, एक तर्जनी पर उठा लेनेवाली जनकनन्दिनी तथा पति के साथ वन-वन निर्भीक विचरनेवाली दशरथ पुत्रवधू सीता को हिरण्मय हरिण के मोह में पड़कर जीवितावस्था में ही राम के अश्वमेध यज्ञ में स्वर्णमयी निर्जीव प्रतिमा मात्र बनकर रह जाना पड़ा। स्वर्ण के मोह में पड़ने का कितना बड़ा दण्ड था यह। आज घर घर में रामायण का प्रचार होने पर भी स्त्रियाँ इस तथ्य को हृदयगम न कर सकीं और आभूषणों का, शृङ्गार का मोह बढ़ता ही गया। घर में बच्चों का शिक्षण भले ही न हो, लेकिन स्त्री को आभूषण चाहिए। लड़के-लड़की की शादी में आभूषणों के लिए जहाँ जीविका के साधन बन्धक रखे जाते हैं, वहाँ राष्ट्र की सम्पत्ति का बहुत बड़ा दुरुपयोग हो रहा है आभूषणों के रूप में। आज आभूषणों के रूप में अरबों की सम्पत्ति देश के घरों में गड़ी पड़ी है और दूसरी ओर राष्ट्र को विदेशों से कर्ज की भीख माँगनी पड़ रही है। क्या ही अच्छा होता, यदि स्त्री अपने स्त्रीत्व को कायम रखने तथा राष्ट्र की उन्नति के लिए इस मोह से छुटकारा पा लेती। २. रीति-रिवाजों या पर्व-त्योहारों पर धूमधाम करने का शौक पुरुष की अपेक्षा स्त्री को ही अधिक रहता है। अधिकांश रीति रिवाज और पर्व त्योहार हमारी संस्कृति के प्रतीक हैं। उन्हें सादे ढंग से इस प्रकार मनाने की परिपाटी चलाना जरूरी है कि वे लोक में संस्कृति और शिक्षा के प्रसार का माध्यम बन सकें तथा अनावश्यक अपव्यय से परिवार और समाज को बचा सकें। ३ आज अधिकांश स्त्री और पुरुष दोनों ही दुर्व्यसनों के शिकार हैं। हुक्का, बीड़ी या तम्बाकू ग्रामीण स्त्रियों में जोरों से प्रचलित है। दूसरी ओर शिक्षित-वर्ग की स्त्रियों में सिनेमा का व्यसन बढ़ता जा रहा है। इनसे शरीर के साथ साथ चरित्र भी पतन की दिशा में अग्रसर हो रहा है और पैसे का अलग अपव्यय होता है। ४. पुरुष कैसा ही क्यों न हो, घर का बनना बिगड़ना स्त्री पर ही निर्भर है। स्त्री यदि फूहड़ या गन्दी है, तो घर और बच्चे भी वैसे ही दीखने लगते हैं। आज घर या समाज में फैलनेवाली अधिकांश बीमारियाँ गन्दगी और अस्वास्थ्यकर तत्त्व ग्रहण करने से होती हैं। गहराई से सोचा जाय, तो स्वास्थ्य

की जिम्मेदारी बारह आना स्त्री ही पर है। अतः, हर स्त्री में स्वास्थ्य-रक्षा की जानकारी और सफाई का संस्कार होना नितान्त आवश्यक है। प्राथमिक चिकित्सा और घरेलू दवाओं का ज्ञान भी उसे होना चाहिए, तभी परिवार और समाज को जब तब चुकायी जानेवाली धन, जन, समय एवं शक्ति की हानि से छुटकारा मिलेगा। ५. गाँव या शहर की स्त्रियाँ अपार बहुत-सा समय गप शप, परनिन्दा और लड़ाई-झगड़ा करने में बिताती हैं। ये ही लड़ाई-झगड़े एक दिन गाँव का अखाड़ा बन जाते हैं और मुकदमेबाजी तथा अशान्ति का सर्जन करने लगते हैं। इस समय का उपयोग वे किसी उत्पादक श्रम, समाज सेवा या रचनात्मक कार्य या ज्ञान बढ़ाने या साहित्य-सर्जन करने में लगा सकतीं, तो अपना भी भला होता, बच्चों को भी अच्छे संस्कार मिलते और देश तथा समाज की अशान्ति के कारण भी दूर हो सकते।

उपर्युक्त अनावश्यक खर्च में कटौती करने के साथ साथ हर स्त्री को कम-से कम एक दस्तकारी या उद्योग ऐसा जानना आवश्यक है, जो आर्थिक उत्पादन में उसे स्वावलम्बी बना सके। इसके लिए गाँव और शहर के अनुकूल उद्योगों का विकास करना होगा। स्त्री को आर्थिक मामले में इतना समर्थ तो होना चाहिए कि दुर्दिनों में या पुरुष की लाचारी में वह परिवार का आर्थिक पहलू सँभाल सके। शिक्षा क्रम में इसपर विशेष ध्यान देना होगा।

सांस्कृतिक क्षेत्र में

आदि काल से आजतक मानव-समाज में जिन संस्कृतियों का विकास हुआ और जो परम्परागत बनते हुए संस्कृति का अंग बन गयीं, स्त्री उनकी रक्षा व्रत-उपवास, रीति-नीति तथा संस्कारों के द्वारा आज तक करती आयी हैं। भजनों और लोकगीतों ने, रामायण और अन्य धार्मिक ग्रन्थों ने, उसे प्रेरणा दी है। गांधीजी ने कहा था—'स्त्रियाँ, जीवन में जो कुछ शुद्ध और धार्मिक है, उस सबकी विशेष संरक्षिका हैं।' फिर भी, संस्कृति का बहुत-सा रूप रूढ़ि-मात्र रह गया है, उसका अभिप्राय—उसके प्राण निकल से गये हैं और स्त्रियाँ उसे हृदयंगम किये बिना, जीवन में ढाले बिना, एक परिपाटी मात्र निबाह रही हैं। भगवद्‌गीता की विभूतियों में संस्कृति की सात शक्तियों की जिम्मेदारी 'कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा' कहकर विशेष रूप से स्त्रियों पर सौंपी गयी है। विनोबाजी ने उसकी विशद व्याख्या की है। इन शक्तियों के अन्तर्गत निम्नांकित गुणों का समावेश उन्होंने माना है, जो तथ्यपूर्ण लगता है—संस्कृति की सद्‌भावना या सुगन्ध को परम्परागत बनाना, उत्पादन की क्षमता, बुद्धि की तेजस्विता, स्वच्छता, पवित्रता, कर्म व्यवहार और चिन्तन में सावधानी या औचित्य, नम्र सत्य-मित भाषण, अनिन्दा, पृष्ठनिन्दा त्याग, उभयमान्य हितबुद्धि से दोष-प्रकाशन, सद्वस्तु के मनन या गुण-चिन्तन के साथ मौन का अभ्यास, विवेक-साधना द्वारा स्व पर-शुभ स्मृतियाँ शेष रखना, वीर्यरक्षा द्वारा

स्मृति शक्ति को बढ़ाना, आत्मज्ञान से स्व-पर-भेद मिटाना, त्याग बुद्धि द्वारा ज्ञान विज्ञान के साथ हर वस्तु का निःस्पृहभाव से आकलन, सत्त्वगुणी होना, आहार शुद्धि रखना, आसक्ति का त्याग, धीरज, दृढ इच्छाशक्ति का विकास, व्रत-सकल्पों के द्वारा उत्साह को बढ़ाना, सहिष्णुता, पृथ्वी की तरह सहज भाव से प्रेम के साथ दूसरे के अपराध क्षमा करना, अवगुण भूलकर गुणमात्र ग्रहण करना, अपकारकर्त्ता का भी समय पड़ने पर उपकार करना इत्यादि। सतशक्तियो के अन्तर्गत आनेवाले इन सभी गुणों का विकास और प्रसार, स्त्रियों को, सस्कृति की सरक्षिका के नाते, अपने म और समाज में करना है। इसी के द्वारा शील और शान्ति की रक्षा का कार्य भी हो सकेगा। अपने लोकगीतो, व्रत-सकल्पों और रीति-नीतियों म उसे सवात्म की अनुभूति भरनी होगी और 'सर्वे भवन्तु सुखिन' के स्वर देने होंगे। इसके सिवा अपने मातृत्व या वात्सल्य को व्यापक—व्यापकतम—बनाते हुए पास-पड़ोस या गाँव के बच्चों के विकास के बारे में अपने बच्चों के समान ही दृष्टि एव वृत्ति रखनी होगी। तभी वह 'स्वर्गादपि गरीयसी' हो सकेगी।

राजनीतिक क्षेत्र मे

अपने देश के सविधान ने स्त्रियों के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकार पुरुष के बराबर माने हैं। राजनीति म जहाँ हर स्त्री को एक मतदान का अधिकार प्राप्त है, वहाँ वह शासन प्रबन्ध में भी सक्रिय भाग ले सकती है। मतदान के अधिकार का उपयोग अधिक से-अधिक स्त्रियों ने किया है, लेकिन शासन प्रबन्ध में बहुत कम स्त्रियों ने भाग लिया है। इन इनी-गिनी बहनों में भी शील रक्षा का प्रश्न एक बहुत बड़ी समस्या बन गया है। आज अमेरिका, इगलैंड आदि जनतान्त्रिक देशों में स्त्रियाँ सामाजिक और आर्थिक रूप से अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्र होते हुए भी राजनीति में जाना पसन्द नहीं करतीं। वे शिक्षण और उद्योग का काम ही अधिक पसन्द करती हैं। अपने यहाँ भी उन्हीं बहनों या स्त्रियों को शासन प्रबन्ध में जाना चाहिए, जो १. स्त्रियों के लिए आदर्श-रूप हों, २. समझदार, सुशिक्षित एव प्रौढ हों, ३ पारिवारिक जिम्मेदारियों से मुक्त हो चुकी हों। अच्छा तो यह हो कि स्त्रियाँ शासन-प्रबध की सबसे छोटी इकाई ग्राम पचायतों या नगर निगमो में ही अधिक भाग लें। इनमें जो सुयोग्य, सच्चरित्र और अनुभवी सिद्ध हों, उन्हे राज्य या देश के शासन प्रबन्ध में भेजा जाय। ऐसी व्यवस्था होने पर ही राजनीति में स्त्रियों का सच्चा एव उपयोगी प्रतिनिधित्व हो सकता है।

समाज सेवा के क्षेत्र मे

आज कुछ स्त्रियाँ समाज सेवा के क्षेत्र में सलग्न सस्थाओं में वैतनिक या अवैतनिक रूप से काम कर रही हैं। ऐसी सस्थाएँ एक तो हैं भी कम, दूसरे समाज सेवा की आकाक्षा रखनेवाली हर स्त्री के लिए इन सस्थाओं का अनुबन्ध लेना भी कठिन ही है। फिर

भी, अधिक से अधिक स्त्रियाँ अपने-अपने क्षेत्र में महिला-संघ कायम कर बाल-शिक्षण और प्रौढ़ शिक्षण का, सामाजिक कुरीतियों के परिहार का, स्वास्थ्य-सुधार का तथा पर्व-त्योहारों एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों के शुद्धिकरण का कार्य कर सकती हैं। स्त्रियों की आर्थिक, नैतिक एवं बौद्धिक उन्नति का प्रयत्न भी वे कर सकती हैं।

शील-रक्षा या स्त्री-पुरुष-मर्यादा

घर के बाहर किसी भी क्षेत्र में काम करते हुए स्त्रियों के सामने शील-रक्षा का बहुत बड़ा प्रश्न आता है। आज हर क्षेत्र में बड़े माने जानेवाले नेता स्त्री-पुरुष-मर्यादा का अतिक्रमण कर रहे हैं। परिणाम स्वरूप चारित्रिक चर्चा तो खुली या दबी जबान चलती ही है, स्त्रियों के लिए बाहर काम करना भी कठिन हो जाता है। इनमें बहुत-से लोग तो अपने को साधारण लोगों से बहुत ऊँचा मानकर ऐसा करते हैं, लेकिन स्त्री और पुरुष दोनों को, चाहे वे नेता हों या महानेता, भगवान् श्रीकृष्ण का वह उत्तर जीवन में गूँथ लेना चाहिए, जो उन्होंने अर्जुन के इस प्रश्न पर दिया था—'आप तो भगवान् की श्रेणी में पहुँच गये हैं, तब कर्म क्यों करते हैं।' उन्होंने कहा था—'मैं कर्म इसलिए करता हूँ कि साधारण लोग मेरा अनुसरण कर कर्म करना न छोड़ें।' क्या अपने को पहुँचा हुआ माननेवाले लोग इस आप्तवचन का अभिप्राय सुनेंगे? गांधीजी ने एक बार अपने ब्रह्मचर्य की परख के लिए ऐसा अमर्यादित प्रयोग शुरू किया था, लेकिन वे सच्चे और ईमानदार थे। जैसे ही उनके सामने उससे साधारण लोगों द्वारा की जानेवाली बुराई रखी गयी, उन्होंने तुरन्त उसे बन्द कर दिया। बड़ों को वही करना उचित है, जिससे साधारण लोग प्रेरणा लेकर समाज का अहित न कर सकें। इसके लिए स्त्री-पुरुष को परस्पर १. वाणी का असंयम—व्यर्थ का हँसी-मजाक, २ स्पर्श, ३ एकान्तवास, ४. व्यक्ति-विशेष में विशेष दिलचस्पी, ५ परनिन्दा—इत्यादि का त्याग करना होगा। घर के बाहर काम करनेवाली स्त्रियों को सादगी, संयम और गंभीरता के साथ-साथ पद एवं यश की लोलुपता को छोड़कर कार्य पर ही दृष्टि रखनी होगी। फिर भी, शील-रक्षा का प्रश्न सामने आये, तो उसे हिम्मत, बहादुरी और समझदारी से सुलझाना होगा।

शिक्षा-क्रम

स्त्री अपना सर्वाङ्गीण विकास करते हुए हर क्षेत्र में अपने दायित्वों का भली भाँति निर्वाह कर सके, इसके लिए उसकी शिक्षा पद्धति में कुछ परिवर्त्तन एवं परिवर्द्धन आवश्यक है। शिक्षा-क्षेत्र में काम करनेवाली बहनों को भी उसका प्रशिक्षण मिलना चाहिए। एक स्त्री के नाते, मेरे विचार से, शिक्षा-क्रम में निम्नलिखित बातें रखना, स्त्रियों के विकास और समाज-हित की दृष्टि से, अत्यन्त आवश्यक है—१. स्वास्थ्य-रक्षा— शरीर की जानकारी, उसकी आवश्यकताएँ तथा उनका स्वास्थ्य की दृष्टि से ज्ञान, स्वच्छता-शास्त्र, प्राथमिक चिकित्सा, घरेलू चिकित्सा का ज्ञान एवं अभ्यास, प्रसूति गृह और प्रसूति की

व्यवस्था तथा प्राथमिक जानकारी, अस्वास्थ्यकर व्यसनों का समाज से बहिष्कार आदि; सर्वांग व्यायाम। २. सुगृहिणी—गृह-प्रबन्ध, गृह कला, गृह सत्कार, गृह-शिक्षा, ललित-कला का अभ्यास, ममता की दृष्टि आदि। ३. उद्योग—घरेलू उद्योग, जैसे कताई, बुनाई, सिलाई, साबुन बनाना, बागवानी, पिसाई, पाक विज्ञान तथा अन्य कोई उत्पादक उद्योग—जैसे बेंत, ताड़ या खजूर के पत्तों से चटाई, टोकरी, कुर्सी इत्यादि बनाना—रद्दी से उपयोगी वस्तु बनाना, चमड़े के बैग, पर्स वगैरह बनाना—इसी प्रकार का कोई शिक्षण, जो स्थानानुकूल हो। ४. बौद्धिक ज्ञान—बालमनोविज्ञान, शिशु पालन, नयी समाज-रचना के अनुरूप शिशु के संस्कारों के विकास की जानकारी, बाल-शिक्षण की जानकारी और अभ्यास। राजनीति, समाजशास्त्र, विज्ञान आदि का ज्ञान। ५. आध्यात्मिक ज्ञान—विविध धर्मों की जानकारी, रामायण, गीता उपनिषद् का गहरा ज्ञान और पाठ का अभ्यास, भजनों का अभ्यास। ६. मानसिक ज्ञान—सांस्कृतिक गुणों की जानकारी और विकास का अभ्यास, देह, वाणी और चित्त की विविध शक्तियों का विकास; शक्ति, निष्ठा, दृढ इच्छा शक्ति, साहस, निर्भयता, प्रेम, करुणा, सहानुभूति, परस्पर सहयोग की भावना का विकास, आभूषण और शृंगार-प्रियता से मुक्ति, रीति-रिवाज, पर्व त्योहार और संस्कारों की सादगी तथा शैक्षणिक ढंग से मनाने का अभ्यास, ताकि मनोरंजन के साथ-साथ वे मानवीय संस्कृति के विकास का माध्यम बन सकें, सर्वात्म और सर्वहित की अनुभूति देनेवाले लोकगीतों का अभ्यास। ७ खाली समय का सदुपयोग—सेवा के कार्यों की योजना और अभ्यास, शान्ति-स्थापना में समर्थ बनना और सक्रिय योग देना, शान्ति स्थापना के विश्वमंचीय प्रयत्नों की जानकारी, गाँव तथा नगर की आवश्यकता की दृष्टि से योजना बनाना। ८. शील-रक्षा या स्त्री पुरुष मर्यादा—नैतिक नियमों की जानकारी और उनका अभ्यास। शील-रक्षा के अन्य उपाय।

यह सामान्य पाठ्यक्रम में रहना चाहिए। इसके सिवा विशिष्ट प्रतिभावाली स्त्रियों या लड़कियों को उनकी प्रतिभा के अनुकूल विकास के अवसरों की भी व्यवस्था होनी चाहिए। शालाओं के अतिरिक्त गाँवों एवं मुहल्लों मे एक या दो घण्टे के शिक्षण-केन्द्र चलाने चाहिए, ताकि जीवन यापन के कार्यों में व्यस्त रहनेवाली स्त्रियों के विकास की भी व्यवस्था हो सके। विकास के अवसर मिलने के बाद भी यदि स्त्री, स्त्री के प्रति, संवेदना शील और अपने उत्तरदायित्वों के प्रति सजग तथा कर्त्तव्यनिष्ठ न बनी, तो समाज से बुराइयों के अन्त की आशा रखना व्यर्थ होगा। आज स्त्री को अपना महान् उत्तरदायित्व समझते हुए उसमें संलग्न होना है और अपने वात्सल्य-भाव को विशाल तथा व्यापकतम बनाते हुए समग्र मानव-जाति की वैसी सेवा में समर्पित होना है, जिसका लक्ष्य यश या पद की प्राप्ति नहीं, किन्तु सर्वाङ्गविकसित, वर्ग-विहीन, शोषण-विहीन अहिंसक समाज-रचना के मूल्यों की स्थापना करना होगा।

●●

पुनर्जागरण की वेला में नारी

श्रीमती मनोरमा श्रीवास्तव, बी० ए०, साहित्याचार्य, साहित्यरत्न;
सञ्चालिका, महिला-चर्खा-समिति, कदमकुँआ, पटना

बर्बर-युग तथा प्रस्तर-युग के एक लम्बे इतिहास-पथ को पार करने के बाद सभ्यता के प्रति उत्तरोत्तर विकासशील भारतीय मनीषी की दृष्टि क्रमशः सूक्ष्म होती हुई संस्कृति के अन्तरात्मा में प्रवेश कर सूक्ष्मतम वस्तुओं का अनुसंधान करने लगी। वहाँ उसे अन्य बहुत भारी उपलब्धियाँ जो हुईं, सो तो हुईं ही, साथ ही उसने स्त्री तत्त्वों का गंभीरतम अनुसंधान किया और उन तत्त्वों के मणि-मुक्ता से उसने जो भारतीय वाङ्मय को सजाया, वह अन्यत्र के साहित्य में दुर्लभ है। सृष्टि के कर्ता के रूप में उसने जिस सत्य सनातन ब्रह्म का अनुशीलन किया, उसकी विभूतियों के रूप में प्रकृति-रूपिणी माया का शोध करना नहीं भूल सका। जितने देव बनाये, उनकी शक्ति के विस्तार के लिए उतनी ही देवियाँ रच डालीं। जितनी उदात्त मानवीय भावनाएँ उसे मिलीं, उसने उन्हें स्त्री-तत्त्व का रूप दिया। बौद्धिक क्षेत्र में सरस्वती, प्रज्ञा, मेधा, बुद्धि, मनीषा आदि देवियों की— शक्ति के क्षेत्र में चंडी, दुर्गा, काली आदि देवियों की तथा वैभव के क्षेत्र में सिद्धि और निधियों सहित लक्ष्मी की कल्पना की। ये सारी देवियाँ नाम-रूप और उपाख्यानों से आवृत होकर जन मानस में प्रतिष्ठित हो गयी हैं तथा समय-समय पर विधिवत् आराधित होती हैं। किन्तु, वास्तव में हैं ये चिन्तनशील मस्तिष्क से उत्पन्न मानवीय भावनाओं की प्रतीक ही। इन्हें वर्ण एवं आकृति में सजाकर सामाजिक पूजा का रूप देने में स्त्रियों के प्रति अधिक आदर की भावना ही छिपी थी।

आदिम मानव और मानवी का सम्बन्ध तो कर्म-जनित आवश्यकता-पूर्ति को लेकर ही चला होगा, इसमें सन्देह नहीं है; किन्तु धीरे-धीरे मानव की बुद्धि का परिष्करण और उसके द्वारा मानवी के रूप का सर्जन जो हुआ, वह इतिहास का एक लम्बा चिरसाध्य, पर सुन्दर, प्रयास है। इसमें कितना समय और कितनी शक्ति लगी होगी, यह कहने की बात नहीं है। इसके अतिरिक्त धृति, क्षमा, करुणा, दया आदि भावनाओं को भी स्त्रीत्व का रूप देकर सामने रखा। सौन्दर्य और सौकुमार्य की तो स्त्री अधिष्ठात्री ही मानी गयी। कन्या-रूप में लालित्य, पत्नी-रूप में सौन्दर्य और माँ के अन्तिम रूप में करुणा, प्रेम, क्षमा, वात्सल्य आदि उदात्त गुणों का सन्निवेश करके मातृ-मंदिर में जो स्त्री-मूर्त्ति प्रतिष्ठापित हुई, उसके चरणों में श्रद्धा के जो पावन पुष्प चढ़ाये गये तथा भाव-विभोर होकर उसकी वंदना में जो प्रशस्ति के गीत गाये गये, उनमें भारतीय संस्कृति का चरम विकास हुआ है। माता की जिस गर्भ-कुक्षि में मानव रूप ग्रहण करता है, उसकी वेदनातुर घड़ी में जन्म लेता

तथा उसके स्तन्य-सुधा का पान कर लालित-पालित होता हुआ एक दिन लम्बा-तगड़ा मनुष्य होकर सामने खड़ा होता है। उस दिन यदि वह मातृ-महिमा को भूल जाय और माता अपने कर्त्तव्य से अपरिचित रह जाय, तो दोनों का ही दुर्भाग्य मानना चाहिए। उस अनादि अनन्त अजन्मा परमात्मा को भी नाम-रूप ग्रहण करने के लिए मातृ-कुक्षि का आश्रय लेना पड़ता है। अत', इस सृष्टि के सचालन के लिए स्त्री का माध्यम कितना अनिवार्य है, यह कहने की आवश्यकता नहीं है।

वैदिक युग से पौराणिक युग तक का साहित्य नाना कथा-कहानियों के माध्यम से स्त्री के उदात्त रूप की प्रतिष्ठा करता आ रहा है। प्राचीन साहित्य के सम्यक् निरीक्षण के बाद एक और वस्तु ध्यान में आती है। वह यह है कि जहाँ पुरुष स्वयं किसी का आराधक होकर रह जाता है, वहाँ स्त्री अपने उदात्त गुणों को प्रकाशित कर स्वय आराध्या बन जाती है। साहित्य से स्त्री के उदात्त रूप की प्रेरणा लेकर भारतीय स्त्री ने जो अपना रूप सँवारा है, वह वास्तव में गौरव की वस्तु है। पुराणों में गार्गी, मैत्रेयी, सीता, सावित्री आदि जिन पुण्यश्लोका महिलाओं की नामावली मिलती है, उन्होंने निश्चय ही अपने पूर्ववर्त्ती साहित्य का अनुशीलन कर अपने चरित्र निर्माण के लिए सामग्री सँजोयी थी, और इन महिलाओं का विकसित रूप परवर्त्ती साहित्य के लिए आधार तथा युग के लिए प्रेरणा-दायक सिद्ध हुआ, जिसका सहारा लेकर विषम से विषम परिस्थिति में भी नारी अक्षुण्ण और सुरक्षित तथा हर प्रकार के घात प्रतिघात सहने में समर्थ रही है।

भारत के दक्षिण खण्ड की भूमि जैसे भावाधिक्य के लिए अपना विशेष स्थान रखती है, वैसे ही उत्तर खण्ड की—विशेषकर हिमालय की अधित्यकावाली—भूमि तत्त्वचिन्तन के क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। यहाँ की भूमि में कुछ ऐसी चीज है, जो सहज रूप में नित्यानित्य का भेद, सत्य की यथार्थता आदि का ज्ञान करा देती है और ऐसी चिन्तनधारा यहाँ के जन-जीवन के निर्माण में काफी सहायक सिद्ध हुई है। वैदिककालीन ऋषियों ने जिस आत्मतत्त्व का चिन्तन कर उसे वैदिक तथा औपनिषदिक साहित्य में स्थापित किया—पौराणिकों ने कथाओं के माध्यम से जिस तत्त्व की पुष्टि की—बुद्ध, महावीर आदि युग प्रवर्त्तकों ने समय समय पर जिसका सशोधन किया—सतों की वाणी ने जन समुदाय में जिसका प्रचार किया, उस चिन्तन धारा में यहाँ का जन जीवन सदा आप्लावित होता रहा है। इसका परिणाम यह हुआ है कि यहाँ के जन साधारण में भी स्वतंत्र चिन्तन त्याग, सहिष्णुता, धैर्य आदि गुणों का सहज रूप में विकास हुआ। आरम्भ-काल से ही स्त्री पुरुष में कोई सामाजिक भेद न रहने के कारण स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान ही अपनी स्वतन्त्र चेतना लेकर स्वतंत्र रूप से विकासोन्मुख हुईं और समय समय पर स्त्रियों ने आत्मबल के द्वारा जो आत्म प्रकाशन किया, उससे वे इतिहास में अमर हुईं। विदेह जनक की सभा में विदुषी स्त्रियों का शास्त्रार्थ उस युग के उस क्षेत्र की स्त्रियों के बौद्धिक विकास का उद्घोष करता है। मडनमिश्र और शंकराचार्य के

पारस्परिक विवाद के बीच भारती का, अध्यक्ष पद पर आसीन होकर शंकर की विजय का निष्पक्ष निर्णय देते हुए भी, अपने पराजित पति के सम्मानार्थ, नैष्ठिक ब्रह्मचारी (शंकर) से कामकला-सम्बन्धी प्रश्नों की झड़ी लगाकर, उन्हें निरुत्तर कर देना उसकी अद्भुत बुद्धि का परिचायक है।

पौराणिक महिलाओं का उपाख्यान जिनमें अहल्या, सीता, उर्मिला आदि हैं और जो अपने चारित्रिक विकास में उत्कर्ष तक पहुँच गयी हैं—भारतीय साहित्य का गौरव हैं। अहल्या अपने पति के शाप से पत्थर हो गयी थी, यह तो प्रतीकात्मक कहानी मात्र है, किन्तु सचाई तो यह है कि अहल्या स्वतः जड़ीभूत-सी स्तब्ध और मौन हो गयी। उर्मिला की मौन साधना भी कम महत्त्व की नहीं है। इन पौराणिक कहानियों से शक्ति संचय करके परवर्ती ऐतिहासिक युग की महिलाओं ने भी अपना अद्भुत चरित्र-निर्माण किया है। भगवान् बुद्ध अमृतत्व के शोध में सब कुछ निस्सार छोड़कर चले गये; किन्तु असत्य और अनित्य समझकर जो अपनी स्मृति के रूप में पुत्र को पत्नी की गोद में छोड़ गये थे, यशोधरा उससे अंत तक चिपटी रही। उस अनित्य शिशु के संवर्द्धन में ही उसका अपना धर्म छिपा था। बौद्धधर्म के प्रचार और प्रसार में जितना पुरुषों ने भाग लिया, उससे कम स्त्रियों ने नहीं लिया। संघमित्रा आदि महिलाएँ तो इस तरह की हुई, जिन्होंने अपना जीवन इस पुण्यकर्म के लिए उत्सर्ग किया और अमर हुई, किन्तु ऐसी अनेक अनामा महिलाएँ हुई, जिन्होंने इस पावन अनुष्ठान में अपने पति पुत्र का सहर्ष उत्सर्ग कर दिया। हिंसा, पशुता, राज्य लिप्सा आदि के विरोध में, मानव-धर्म के प्रचार में, सुदूर देशान्तरों में गये हुए वे पथिक फिर कभी स्वदेश वापस लौटकर नहीं आये। यद्यपि इतिहास अपरिचित है उनके नाम से, किन्तु वह मिट्टी उन्हें भूल नहीं सकती, जिसने ऐसी मूक तपस्विनी महिलाओं को जन्म दिया था। मगध के स्वर्ण-युग का इतिहास राजनीतिक क्षेत्र में भी स्वतंत्र चेतना रखनेवाली स्त्रियों का परिचय देता है। बिम्बिसार की पत्नी वासवी, अजातशत्रु की प्रेमिका आम्रपाली, चन्द्रगुप्त की माता मुरा, अशोक की पत्नी तिष्यरक्षिता, हर्ष की बहन जयश्री आदि महिलाओं का राजनीतिक क्षेत्र में स्वतंत्र अस्तित्व है।

सीता निर्दोष होती हुई भी, पति द्वारा निर्वासित होकर अभिशप्त जीवन का भार ढोती हुई, पति के प्रति अंत तक अनुरागिनी बनी रहीं और अंत में मर्यादा-पुरुषोत्तम राम से यही प्रार्थना करती हैं कि मुझे पति-लोक में ही आश्रय मिले। अपनी सारी तामसिक वृत्तियों को दबाकर उन्होंने अपनी क्षमाशील वृत्ति का पोषण सारी शक्ति लगाकर किया। न पति निन्दा की, न कहीं उलाहना लेकर गयीं। संतप्त हुई, पीड़ित हुई, फिर भी गौरवान्वित ही रहीं। राजा राम के प्रजा-रंजन के व्रत निर्वाह में वनवासिनी सीता ने सच्चे अर्थ में सहधर्मिणी का कर्त्तव्य-निर्वाह किया। वे मौन हो गयीं, सारे दैहिक दुःख झेल लिये, किन्तु आत्मिक शांति बनी ही रही। राजा राम के प्रजातंत्र के युग में,

भौतिक अर्थ में, यदि सबसे अधिक कोई पीडित प्रजा थी, तो उन्हीं की प्राणेश्वरी, सीता—अर्थात् राम ही स्वयं। यदि उन्हें यह भान होता कि सीता उनसे कुछ अलग हैं, तो वे उनके निर्वासन का साहस नहीं करते। सीता को निर्वासित कर किरीट मुकुटधारी राम स्वयं भी वनवासी-सा रहे। अश्वमेध यज्ञ में कंचन-प्रतिमा बनी; किन्तु सीता की ही। सीता ने अपना नाम गुप्त रखा, अपने बच्चों को भी अपना वास्तविक परिचय नहीं दिया कि वे कहीं पिता के विद्रोही न बन बैठें। अपना दायित्व पूरा करके सीता जिस दिन धरातल में प्रवेश कर गयीं, उस दिन राम को भी अपना जीवन भार प्रतीत होने लगा। प्रेरणा के समाप्त होते ही राम की कहानी समाप्त हो गयी। सीता की ही बहन उर्मिला के प्रति इतिहास मौन है, किन्तु लक्ष्मण के चौदह वर्ष के ब्रह्मचारी-जीवन को निश्चिन्तता से सफल होने देने का श्रेय उसी देवी को है।

कहने का तात्पर्य यह कि भारत के उत्तर-खंड की भूमि, जहाँ स्त्रियों के गुणों को इतना आदर और उन्हें इतना उच्च स्थान मिला—उनका आध्यात्मिक, सामाजिक और राजनीतिक अधिकार पुरुषों के बराबर रहा—जहाँ की स्त्रियाँ आध्यात्मिक शास्त्रार्थ के लिए स्वतंत्र थीं, वेद मंत्र के उच्चार और निर्माण में समर्थ थीं, विवाह में स्वयं पति वरण करती थीं, राजनीति के दाँव पेंच को समझती थीं, युद्ध, आखेट, उत्सव आदि में साथ जाती थीं, सही अर्थ में पुरुषों की सहयोगिनी थीं, दया, क्षमा, त्याग, शौर्य, उदारता आदि आन्तरिक गुणों से युक्त थीं—उन्हीं का बौद्धिक और शारीरिक ह्रास किन परिस्थितियों में कब और कैसे शुरू हुआ, यह सोचने की बात है। किस दुर्दिन से पीडित होकर पुरुषों ने उनके हाथ से सारे अधिकार छीन लिये, उन्हें घर की चहारदिवारी में बंद कर दिया, जहाँ ज्ञान के प्रकाश के साथ साथ सूर्य का प्राकृतिक प्रकाश भी उनके लिए दुर्लभ हो गया, जिसे पाने का अधिकार प्राणी-मात्र को सहज रूप में है। 'गृहिणी सचिव सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ' वाला उनका रूप कहाँ तिरोहित हो गया? पार्श्व संगिनी पद तल लुंठित कैसे हो गयी? 'वागर्थाविव सम्पृक्तौ . पार्वतीपरमेश्वरौ' की कल्पना से युक्त पति पत्नी सेव्य सेवक भाव को कब और कैसे पहुँच गये? ज्ञान के आलोक और चेतना की स्फूर्ति से शून्य सतानोत्पादन के लिए यन्त्र-रूपिणी नारी से पुरुष वर्ग कैसे सन्तुष्ट रहने लगा? इस क्षेत्र की स्त्रियों का दुर्भाग्य इतना प्रबल हुआ कि उनकी यह स्थिति अल्प-कालीन न रहकर दीर्घकालीन बन गयी। वे सुषुप्ति से भी अधिक गहरी मूर्च्छित अवस्था में पहुँच गयीं। भोजन और वस्त्राभूषण में ही जिसका संसार सिमट गया, इससे अधिक सोचने की शक्ति नहीं रही—विश्व, समाज और कुटुम्ब से क्रमशः आकुंचित होते होते जिनका स्वजन लोक पति पुत्र तक सिमटकर गृह कलह का कारण बन गया—नाना व्रत-अनुष्ठान जिनका केवल भौतिक कामनाओं से युक्त रह गया—तरह-तरह के कुसंस्कार जिनके हृदय पटल पर घनीभूत होने लगे—जन्म, विवाह, मृत्यु अथवा और भी दूसरे अवसरों पर संस्कारों का कट्टरता से पालन ही जिनका धर्माचरण बन गया—जिनकी

स्वतंत्र चेतना ऐसी लुप्त हो गयी कि वे अपना मोल तोल स्वयं ही भूल गयीं। हजारों वर्षों तक इस स्थिति में रहने के बाद जब पश्चिम की लहलहाती हवा यहाँ भी पहुँची, तब यहाँ के पुरुष-वर्ग ने अनुभव किया कि सभ्यता के रंग क्षेत्र में, जहाँ उनको कमर कसकर जाने की तैयारी है, उनकी अर्धाङ्गिनी न सहयोगिनी बन सकती है और न सहगामिनी, बल्कि कंधे पर दोनों की स्थिति में है। उन्हें चिन्ता हुई। सभ्य समाज में पत्नी की प्रतिष्ठा के लिए नये रंग में पत्नी को रँगने की आवश्यकता महसूस हुई। पिता को जामाता की संतुष्टि के लिए कन्या को नये शिक्षण और नये फैशन की तरफ अभिमुख करना पड़ा, नहीं तो विवाह की हाट में कन्या का ग्राहक कहाँ मिलता! लड़कियों ने भी इसी को सत्य समझा। वे अपने सहयोगियों के साथ प्रतिस्पर्धा में क्रमशः आगे बढ़ने लगीं।

आधुनिक जो शिक्षण प्रणाली चल रही है, उसमें ध्यान देने की बात यह है कि यह अपने देश के शिक्षा-शास्त्री के मस्तिष्क की उपज नहीं है जो अपनी संस्कृति, अपने वातावरण और अपने जीवन के अनुकूल हो, बल्कि वह एक विजयी और मदान्ध शासक के द्वारा विजित देश के मस्तिष्क को और भी विकृत तथा पराधीन करने के उद्देश्य से रची गयी प्रणाली थी, जिसके बल पर सुगमता से अनन्तकाल तक शासन तंत्र चलाया जा सके। इस शिक्षण के द्वारा नये ज्ञान की उपलब्धि की सम्भावना थी, और हुई भी; किन्तु जिस मिट्टी से हम जन्मे थे, उसके तत्त्व को पहचानने की क्षमता नहीं उपलब्ध हुई। परिणाम यह हुआ कि पूरब और पश्चिम के जीवन-जगत् सम्बन्धी तात्त्विक भेद के समझने में यहाँ का शिक्षित-समुदाय असमर्थ ही रहा। दृश्य जगत् से परे भी कोई शाश्वत वस्तु है, जिसकी उपलब्धि मनुष्य मात्र का चरम पुरुषार्थ है, उसे पाने के लिए संसार के सारे भौतिक सुख छोड़े जा सकते हैं— यह सिद्धान्त भारत का जीवन-तत्त्व है, जिसके बल पर यह देश गिरता-पड़ता लड़खड़ाता हुआ आज भी चल रहा है और इसीलिए जीवित है। बाल्य संन्यासी शंकर, सबहारा भिक्षुक भगवान् बुद्ध, सत्य अहिंसा के पुजारी बापू—सब इसके समर्थन में खड़े हैं। इसके विपरीत, भौतिक सुख की प्राप्ति ही चरम पुरुषार्थ है—इस सिद्धान्त को माननेवाले पश्चिम के देश अणुबम का निर्माण कर संसार को अपनी शक्ति की चुनौती दे रहे हैं। यह संस्कृति भेद है, जिसे शिक्षण के माध्यम से ही समझा जा सकता है। आज उसे समझाने का हमारे पास कोई साधन नहीं है, अतः हमारी दृष्टि भी ऐहिक सुखों से ऊपर नहीं जाती है। अर्थकरी विद्या के अतिरिक्त मानव-निर्माण की विद्या का आज समाज में कहीं प्रचलन नहीं है। स्त्री-पुरुष के शिक्षण में भी कहीं भेद न होने के कारण स्त्रियों में न कहीं आत्मविकास की रुचि दिखती है, न उनकी सर्जनात्मक शक्ति का परिस्फुरण दिखता है। अतः, साक्षरता और शिक्षा में प्रगति होने पर भी वह मौलिक चिन्तन का आधार नहीं है, जिसके द्वारा आत्मोपलब्धि की जा सके—वह आत्मबल नहीं है, जिसके द्वारा कठिन-से कठिन परिस्थितियों में भी अचल रहा जा सके। वह त्याग का बल नहीं है, जिसके द्वारा अग्नि-परीक्षा दी जा सकें। स्त्री आज अपने स्त्रीत्व से अपरिचित रह जाती है—उसे अपने

सत्त्व का ज्ञान नहीं है, अपनी मर्यादा का भान नहीं है, अपने कर्त्तव्य का पता नहीं है। उसकी स्थिति आज कठपुतली की तरह है—जब जिधर की हवा आयी, मुँह उधर ही फिर गया। दृष्टि हमेशा भौतिक वस्तुओं पर ललचायी सी रहती है—मन तृष्णा से भरा रहता है। उनका अपना कहने को कुछ नहीं है। न व्यक्तित्व है, न आचार है, और न विचार। हीरा खोकर काँच बटोरनेवाली स्त्री आज कितनी निर्धन हो गई है। उसका सारा कार्य-कलाप, जिसको सेवा-वृत्ति से उत्पन्न होना चाहिए, आज मान और यश की लिप्सा से अभिभूत है। इसी बीच स्त्रियों की अन्तर्दृष्टि खोलनेवाली चिर साधना और तपस्या से पूत पूज्य बापू की वाणी भी गूँजी, किन्तु बापू का शंखनाद चिर बधिर स्त्रियों के कर्ण-कुहर के अन्दर, युग धर्म के प्राबल्य के कारण, प्रवेश करने में पूर्ण रूप से सफल नहीं हुआ। अपनी काँपती हुई उँगली के द्वारा उन्होंने स्त्रियों के लिए दिशा सकेत भी किया, किन्तु सदियों तक अंध-कूप में रहने के कारण तथा बाहर निकलने के बाद सभ्यता के 'सर्चलाइट' के सामने, बापू के द्वारा निर्देशित उषा का प्रकाश किसी को दिखायी नहीं पड़ा। एक दीर्घकालीन तमसाच्छन्न रात्रि रही, और अब पुनर्जागरण की वेला में यदि आत्मज्ञान का सूर्य-प्रकाश न मिला, तो नारी बहुत दिनों तक पथ टटोलती रह जायगी—जब उसका दायित्व आज के परमाणु युग में और भी अधिक बढ़ा चढ़ा है। उसे हिंसा, अशांति और विध्वंस के विरोध में शांति दूत तैयार करने हैं—विषमता में समता की सृष्टि करनी है। गुरुतर कार्य-भार उसके सिर पर है। आवश्यकता है उसे समझने की।

●●

सूक्ति-साहित्य में नारी

संकलयिता—श्रीचन्द्रेश्वर 'नीरव', बी० ए०, डिप् इन-एड्०,
बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना

नित्य स्नान करनेवाली, सुगन्धों से सुवासित, प्रिय (मधुर) बोलनेवाली, अल्पाहार करनेवाली, कम बोलनेवाली स्त्री देवी ही हो सकती है, मानुषी नहीं।

× × × ×

इस असार संसार में सार भूत नारी है, यह समझकर ही भगवान् शंकर ने पार्वती को अर्धाङ्गिणी बना लिया।

× × × ×

सौन्दर्य से सम्पन्न, निपुण, प्रेम-विह्वला, प्रियंवदा, कुलीन और अनुकूल आचार-वाली पत्नी कम मिलती है।

× × × ×

यदि प्रिया पत्नी के साथ वृक्ष के नीचे भी रहना पड़े, तो वही घर है और उसके बिना तो सुन्दर महल भी वन-जैसा ही है।

× × × ×

कामकाज में सलाह देने के हेतु मंत्री के समान, सेवा-कार्य में दासी के समान, खिलाने-पिलाने में माता-तुल्य, शय्या पर रम्भा-सी, धर्मानुकूल आचारवाली और क्षमा में पृथ्वी के समान—इन छः गुणोंवाली पत्नी धन्य है।

× × × ×

साध्वी, शीलवती, दयावती, चतुरता और लज्जा से युत, कोमलांगी, कहासुना करने से विमुख रहनेवाली, मुस्कराती हुई, प्रियभाषिणी, प्रेम-मुग्धा और देवताओं-ब्राह्मणों-बन्धुओं-सज्जनों के हित करनेवाली पत्नी जिसके घर में हो, उसके लिए अर्थ-धर्म काम-मोक्ष के फलों को देनेवाली एक यही पवित्र लता है।

(सुभाषित-सुधारत्न-भाण्डागारम्)

पुरुष का स्त्री के समान न कोई बन्धु है, न उसके धर्म-साधन में वैसा कोई सहायक।

× × × ×

स्त्री प्रकृति की कन्या है। उसकी ओर कोप-दृष्टि से कभी मत देखो। उसका हृदय कोमल होता है, उसपर विश्वास करो।

× × × ×

जो पुरुष रोग से पीडित हो, विपत्ति में फँसा हुआ हो, उसके लिए भी स्त्री के समान कोई दूसरा औषध नहीं है।

× × × ×

पुरुष की सर्वोत्तम सम्पत्ति उसकी भार्या है।

(वेदव्यास)

जिस घर में सद्गुण-सम्पन्ना नारी सुखपूर्वक निवास करती है, उस घर में लक्ष्मी निवास करती है, देवता भी उस घर को नहीं छोड़ते।

(महर्षि गर्ग)

× × × ×

जिसके घर में माता न हो, और भार्या अप्रियभाषिणी हो, उसे वनवासी हो जाना चाहिए; क्योंकि उसके लिए वन और घर बराबर हैं।

(पंचतंत्र)

× × × ×

भारतवर्ष का धर्म उसके पुत्रों से नहीं, पुत्रियों के प्रताप से ही स्थिर है। भारतीय देवियों ने यदि अपना धर्म छोड़ दिया होता तो, देश कब का नष्ट हो चुका होता।

(महर्षि दयानन्द)

नारी ! तेरे हाथ में जीवन-निर्झर का संगीत है।

× × × ×

नारी ! जिस समय तू अपने गृहकार्य में लीन रहती है, उस समय तेरे शरीर से ऐसी मधुर रागिनी निकलती है, जैसी छोटे-छोटे पत्थर के टुकड़ों के साथ पर्वत-स्रोत के क्रीड़ा करने से निकलती है।

× × × ×

सुशीला रमणी ईश्वर का सबसे उत्तम प्रकाश है, जो इस संसार की शोभा बढ़ा रहा है।

× × × ×

नारी ! तूने अपने अथाह अश्रुओं से संसार के हृदय को उसी प्रकार घेर रखा है, जिस प्रकार समुद्र पृथ्वी को घेरे हुए है।

(रवीन्द्रनाथ ठाकुर)

अगर स्त्रियाँ ईश्वर की हल्के दर्जे की क्षुद्र रचनाओं में से हैं, तो आप जो उनके गर्भ से पैदा हुए हैं, अवश्य ही क्षुद्र हैं।

× × × ×

किसी स्त्री के सतीत्व को भंग करने के पूर्व मर जाना ही एक उत्तम कार्य है, किसी स्त्री को पाप-कर्म से बचा लेना सबसे बड़ा पुण्य-कार्य है।

× × × ×

स्त्री क्या है ? साक्षात् त्याग की मूर्ति, सहन-शक्ति की साक्षात् प्रतिमूर्त्ति है। जब कोई स्त्री किसी काम में जी-जान से लग जाती है, तब पहाड़ को भी हिला देती है।

(महात्मा गांधी)

खूबसूरत औरत रत्न है, अच्छी औरत खजाना है।

(महात्मा शेखसादी)

× × × ×

स्त्रियों की कोमलता पुरुषों की काव्य-कल्पना है। उनमें शारीरिक सामर्थ्य चाहे न हो, पर उनमें वह धैर्य और साहस है, जिसपर काल की दुश्चिन्ताओं का जरा भी असर नहीं होता।

× × × ×

जब किसी कौम की औरत में गैरत नहीं होती, तब वह कौम मुर्दा हो जाती है।

× × × ×

स्त्री पृथ्वी की भाँति धैर्यशील है, शांति सम्पन्न है, सहिष्णु है। पुरुष में नारी के गुण आ जाते हैं, तो वह महात्मा बन जाता है। नारी में पुरुष के गुण आ जाते हैं, तो वह कुलटा हो जाती है। संसार में जो सुन्दर है, उसी की प्रतिमा को मैं स्त्री कहता हूँ।

× × × ×

नारियाँ इसलिए अधिकार चाहती हैं कि उनका सदुपयोग करें और पुरुष को उनका दुरुपयोग करने से रोकें।

× × × ×

स्त्री मैले-कुचैले, फटे-पुराने वस्त्र पहनकर, आभूषण-विहीन होकर, आधे पेट सूखी रोटी खाकर, झोपड़े में रहकर, मेहनत मजदूरी करके, सब कष्टों को सहते हुए भी, आनन्द से जीवन व्यतीत कर सकती है। केवल घर में उसका आदर होना चाहिए, उससे प्रेम होना चाहिए। आदर या प्रेम से विहीन महिला महलों में भी सुख से नहीं रह सकती।

× × × ×

जिस देश में स्त्रियों को जितनी अधिक स्वाधीनता है, वह देश उतना ही सभ्य है। स्त्रियों को कैद में, पर्दे में या पुरुषों से कोसों दूर रखने का तात्पर्य यही निकलता है कि आपके यहाँ जनता इतनी आचार-भ्रष्ट है कि स्त्रियों का अपमान करने में ज़रा भी संकोच नहीं करती।

(प्रेमचन्द)

∴

नारी की करुणा अंतर्जगत् का उच्चतम विकास है, जिसके बल पर समस्त सदाचार ठहरे हुए हैं।

× × × ×

नारी का अश्रु-जल अपनी एक-एक बूँद में एक-एक बाढ़ लिये रहता है।

(जयशङ्कर 'प्रसाद')

∴

स्त्रियों की मानहानि साक्षात् लक्ष्मी और सरस्वती की मानहानि है।

('निराला')

× × × ×

प्रकृति को मैंने अपने से अलग सजीव सत्ता रखनेवाली नारी के रूप में देखा है। जब कभी मैंने प्रकृति से तादात्म्य का अनुभव किया है, तब मैंने अपने को भी नारी-रूप में देखा है।

(सुमित्रानन्दन पंत)

× × × ×

नारी केवल मांसपिंड की संज्ञा नहीं है। आदिम काल से आजतक विकास-पथ पर पुरुष का साथ देकर, उसकी यात्रा को सरल बनाकर, उसके अभिशापों को स्वयं झेलकर और अपने वरदानों से जीवन में अक्षय शक्ति भरकर, मानवी ने जिस व्यक्तित्व, चेतना और हृदय का विकास किया है, उसी का पर्याय नारी है।

×, × × ×

पुरुष विजय का भूखा होता है, नारी समर्पण की। पुरुष लूटना चाहता है, स्त्री लुट जाना।

(महादेवी वर्मा)

स्त्री, जगत् की एक पवित्र स्वर्गीय ज्योति है, वह पुरुष-शक्ति के लिए जीवन सुधा है।... त्याग उसका स्वभाव, प्रदान उसका धर्म, सहनशीलता उसका व्रत और प्रेम उसका जीवन है।

(चतुरसेन शास्त्री)

× × × ×

स्त्री जाति में हर उम्र में मातृत्व का अंश रहता है, और यही अंश उनमें सहिष्णुता, क्षमा और स्नेह को प्रेरित करता है, दुःख को कम करने की शक्ति लाता है, और इसी से उनका दिग्विजय इतना सरल हो जाता है।

(कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी)

× × × ×

अच्छी स्त्री से विवाह जीवन के तूफान में बन्दरगाह है और खराब स्त्री से विवाह बन्दरगाह में ही तूफान है।

(जे० पी० सेन)

× × × ×

स्त्रियों की उन्नति या अवनति पर ही राष्ट्र की उन्नति या अवनति निर्भर है।

(अरस्तू)

× × × ×

सौन्दर्यवती स्त्री नयनाभिराम होती है, बुद्धिमती स्त्री हृदय को प्रसन्न करती है। एक अनमोल रत्न है, तो दूसरी रत्न राशि।

× × × ×

बालक का भाग्य सदैव उसकी माता द्वारा निर्मित होता है।

(नेपोलियन)

यदि कोई लड़की लज्जा त्याग देती है, तो वह अपनी सुन्दरता का सबसे बड़ा आकर्षण खो देती है।

(सेण्ट ग्रेगरी)

× × × ×

सुन्दर और सच्चरित्र स्त्री ईश्वर की उत्कृष्ट कारीगरी तथा संसार का एकमात्र आश्चर्य है।

(हरमीज)

× × × ×

स्त्री एक ईश्वरीय उपहार है, जिसे ईश्वर ने स्वर्ग के खो जाने पर मनुष्य को उसकी क्षति पूर्ति के लिए दिया है।

(गेटे)

× × × ×

स्त्री की चितवन में हमारे कानून की अपेक्षा अधिक बल है और उसके आँसुओं में हमारे तर्क की अपेक्षा अधिक शक्ति है।

(सेनाइल)

× × × ×

स्त्री काँटेदार झाड़ी को पुष्प बनाती है, दरिद्र-से दरिद्र मनुष्य के घर को भी स्वर्ग बना देती है।

(गोल्डस्मिथ)

× × × ×

औरतें मर्दों से अधिक बुद्धिमती होती हैं, क्योंकि वे जानती कम, समझती अधिक हैं।

(जेम्स स्टीफेन)

× × × ×

सभी महान् कार्यों के प्रारम्भ में नारी का हाथ रहा है।

(ला मार्टिना)

× × × ×

पुरुष का जन्म इसीलिए हुआ है कि वह झूठ बोला करे और स्त्रियों का जन्म इसलिए हुआ है कि वे उनपर विश्वास करती रहें।

(जॉन गॉय)

× × × ×

माँ बेचारी बीस साल की मिहनत के बाद जिस बेटे को बुद्धिमान् बना पाती है, एक दूसरी औरत बीस मिनट में ही उसे बुद्धू बना लेती है।

(डेविडसन)

●●

स्वतंत्रता-संग्राम में बिहार की महिलाएँ*

अनु० श्रीसच्चिदानन्द प्रसाद, बी० ए०, कार्यालय मंत्री, बिहार सर्वोदय-मंडल, पटना

स्वतन्त्रता-संग्राम में बिहार की महिलाओं का क्या और कैसा योगदान रहा है, यह ऐतिहासिक शोध का विषय है। हमारे यहाँ स्वतन्त्रता-संग्राम का जो इतिहास उपलब्ध है, उसमें कोई साठ महिलाओं के नाम और लगभग पाँच छः हजार महिलाओं के सरकार-विरोधी जुलूसों एवं प्रदर्शनों में भाग लेने का उल्लेख आया है। अवश्य ही इससे कई-गुना अधिक महिलाओं ने स्वतन्त्रता की लड़ाई में भाग लिया होगा, लेकिन इतिहास में, सामान्यतः, उन्हीं स्त्रियों का जिक्र आया है, जो लड़ाई के मोर्चे पर अगली कतार में थीं और जिन्हें अँगरेजी साम्राज्यवाद ने, अपने अस्तित्व के लिए खतरनाक समझकर, अपने दमन का शिकार बनाया था।

---

* मगध विश्वविद्यालय के वर्त्तमान उपकुलपति डॉ० कालीकिङ्कर दत्त द्वारा लिखित और बिहार सरकार द्वारा तीन खंडों में प्रकाशित स्वतन्त्रता संग्राम के अँगरेजी इतिहास-ग्रन्थ (फाइट फॉर फ्रीडम) से संकलित।—अनु०

हमारी स्वतन्त्रता की लड़ाई का इतिहास सन् १८५७ ई० से आरंभ होता है। सन् १८५७ से १९४२ ई० तक कोई ८५ वर्षों का यह इतिहास है। भारत को स्वतन्त्र करने का पहला संगठित प्रयास सन् १८५७ ई० में एक सैनिक विद्रोह के रूप में हुआ। इसमें सेना अथवा शासन से संबद्ध व्यक्ति ही भाग ले सकते थे। अतः, स्त्रियों के लिए इस विद्रोह में भाग लेने का कम अवसर था। विद्रोह का नेतृत्व करनेवालों में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई का नाम बड़े गौरव के साथ लिया जाता है। उनके अथवा उनसे संबद्ध स्त्रियों के अतिरिक्त और किसी महिला ने इस विद्रोह में भाग लिया, इसका कोई प्रमाण इतिहास में नहीं मिलता। शायद यह संभव भी नहीं था। सन् १८५७ ई० का विद्रोह भारत को स्वतन्त्र करने में तो सफल नहीं हुआ; लेकिन उसकी गहरी छाप देश के मानस पर पड़ी। विद्रोह की जो भावना सैनिकों और राजघरानों तक सीमित थी, उसने अब जनमानस को भी प्रभावित किया। परिणाम स्वरूप देश को पराधीनता के पाश से मुक्त करने के लिए जहाँ-तहाँ छिटपुट और संगठित प्रयास भी हुए। विद्रोह की यह भावना क्रान्तिकारी राष्ट्रवादिता के रूप में प्रकट हुई और हमारे देश के नौनिहाल फाँसी के तख्तों पर झूलते अथवा अँगरेजी साम्राज्यवाद की गोलियों के शिकार होते दीख पड़े। बिहार में भी ऐसी घटनाएँ हुईं। लेकिन, बिहार की स्त्रियाँ इन घटनाओं से प्रायः अछूती रहीं।

बीसवीं सदी के प्रारम में, बिहार के छोटानागपुर-विभाग के आदिवासी क्षेत्रों की जनता ने, खासकर मुंडा जातियों ने, अँगरेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा किया। अँगरेजों के खिलाफ यह संभवतः पहला जन-विद्रोह था। 'बिरसा' नाम के एक व्यक्ति ने, जो पीछे चलकर बिरसा भगवान् के रूप में पूजित हुआ, इस विद्रोह का नेतृत्व किया। कहते हैं, इस विद्रोह में मुंडा-जाति की स्त्रियों ने भी भाग लिया और वे साम्राज्यवादी दमन का शिकार भी बनीं। अँगरेजी सरकार ने इस विद्रोह को दबाने के लिए बर्बर उपायों का सहारा लिया और अंधाधुंध गोलियाँ चलवायीं, जिससे कोई २०० स्त्री पुरुष मारे गये। इसके बाद 'बिरसा भगवान्' ने जंगलों की शरण ली और गुप्त रूप से विद्रोह का संगठन करना शुरू किया। इस गुप्त संगठन के कार्य में बिरसा-भगवान् की दो स्त्रियों ने उनकी बड़ी सहायता की। अन्त में वे पकड़े गये और कैदखाने में ही मरे।

स्वतन्त्रता की लड़ाई में हमारी महिलाओं का योगदान वस्तुतः सन् १९१९ ई० से शुरू होता है। स्वतन्त्रता-आन्दोलन का नेतृत्व जब महात्मा गांधी के हाथों में आया, तब से महिलाओं को उसमें भाग लेने का अधिकाधिक अवसर मिला। इसके पूर्व जो आन्दोलन चल रहे थे, उनका स्वरूप हिंसात्मक रहा था। ऐसे आन्दोलनों में स्त्रियों के लिए बहुत सक्रिय भाग लेना संभव नहीं था। गांधीजी ने स्वतन्त्रता आन्दोलन को अहिंसक रूप दिया। उनके सत्य-अहिंसा रूपी अस्त्रों का प्रयोग पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक सफलतापूर्वक कर सकती थीं। इसलिए, गांधीजी के नेतृत्व में बिहार की स्त्रियों ने स्वतन्त्रता की लड़ाई में शानदार हिस्सा लिया। बिहार में, गांधीजी के आने के पूर्व, पर्दा प्रथा ने स्त्रियों को घर-

आँगन की कैद में जकड़ रखा था। गांधीजी ने अपनी अहिंसक लड़ाई में भाग लेने के लिए स्त्रियों का आह्वान किया। उनके आह्वान पर बिहार की अनेक स्त्रियों ने अपना घूँघट उतार फेंका और सत्याग्रह के समर-क्षेत्र में आ खड़ी हुईं। बिहार में नारी-जागरण का इतिहास वस्तुतः गांधीजी के स्वतन्त्रता-आन्दोलन के साथ ही शुरू होता है। इसके पहले भी महिलाओं में नव-जागरण का संदेश प्रसारित करने के प्रयास हुए थे। लेकिन, गांधीजी के आने के बाद ही उन प्रयासों को वास्तविक सफलता मिली और यहाँ की स्त्रियों ने, अधिकाधिक संख्या में, सार्वजनिक कार्यों में भाग लेना शुरू किया।

गांधीजी के नेतृत्व में संचालित स्वतन्त्रता-आन्दोलन को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं— १. अहिंसक लड़ाई का श्रीगणेश (१९१९-२१), २. सत्याग्रह आन्दोलन का विकास और प्रसार (१९३०-३२); और ३० व्यक्तिगत सत्याग्रह तथा महाक्रांति (१९४१-४२)। इन तीनों अवसरों पर बिहार की महिलाएँ गांधीजी के आह्वान पर आगे आयीं और अपनी शक्ति एवं परिस्थिति के अनुसार स्वतन्त्रता-संग्राम में भाग लिया।

अहिंसक लड़ाई का श्रीगणेश (१९१९—२१)

सन् १९१७ ई० के अंत में मॉंटेगु-मिशन भारत आया। उसने भारतीय जनता के समक्ष शासन सुधार की एक योजना प्रस्तुत की, जो पीछे सन् १९१९ ई० के भारत-शासन-अधिनियम (गवर्नमेंट ऑफ् इंडिया ऐक्ट) में शामिल कर दी गयी। यह योजना भारत की राष्ट्रीय आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं कर सकती थी। यहाँ के नरमदलीय राष्ट्रवादियों को यह योजना स्वीकार्य थी, परन्तु उग्र राष्ट्रवादियों को इससे बड़ी निराशा हुई। इसपर विचार करने के लिए भारतीय राष्ट्रीय काँगरेस का एक विशेष अधिवेशन बम्बई में अगस्त (१९१८) में बुलाया गया। इस अधिवेशन ने मॉंटेगु-चेम्सफोर्ड के प्रस्तावों को निराशाजनक बताते हुए काँगरेस की ओर से बिहार के विख्यात बैरिस्टर श्रीहसन इमाम के नेतृत्व में एक प्रति-निधि-मंडल अँगरेजी शासन पर दबाव डालने के लिए इंगलैंड भेजने का निश्चय किया। इस प्रतिनिधि-मंडल में श्रीमती हसन इमाम और उनकी लड़की श्रीमती शमी भी गयीं। राजनीतिक कार्यों के लिए इंगलैंड जानेवाली बिहार की सम्भवतः ये प्रथम महिलाएँ थीं। किन्तु, प्रतिनिधि मंडल का इंगलैंड जाना व्यर्थ हुआ। सरकार अपनी नीति पर अड़ी थी। मॉंटेगु-योजना से राष्ट्रीय असंतोष में वृद्धि हुई। उसी समय 'खिलाफत' के कारण भारत के मुसलमान अँगरेजों से क्षुब्ध थे। भारत की बढ़ती हुई राष्ट्रीय भावनाओं को दबाने के लिए अँगरेजी सरकार ने कुछ ऐसे कानून बनाये, जिनके सहारे देश के अंतर्गत चल रहे राजनीतिक कार्यों को कुचला जा सकता था। यह कानून भारतीय जनता को एक चुनौती था। महात्मा गांधी ने इस कानून के विरोध में देशव्यापी हड़ताल करने का निश्चय किया। गांधीजी की पुकार पर सारे देश में एक दिन की पूर्ण हड़ताल हुई। अँगरेजी सरकार ने इस हड़ताल के जवाब में जालियानवाला बाग (अमृतसर) का भीषण कांड

रचाया। बिहार में सरकारी दमन ने उग्र रूप धारण किया। असहयोग की लहर सारे बिहार में भी फैली, जिसने यहाँ के नारी-समाज का भी स्पर्श किया और कई स्त्रियों ने इस आन्दोलन में आगे बढ़कर भाग लिया। हजारीबाग जिले में श्रीमती सरला देवी ने इस आन्दोलन की अगुआई की। सन् १९२१ ई० के अक्तूबर में बिहार के विद्यार्थियों का सोलहवाँ सम्मेलन हजारीबाग में हुआ, जिसकी अध्यक्षता उक्त सरला देवी ने की और विद्यार्थियों को सरकारी स्कूलों कॉलेजों का परित्याग करने तथा प्रिन्स ऑफ वेल्स के भारत आगमन के समारोहों का बहिष्कार करने लिए तैयार किया। पटना में इस आन्दोलन की अगुआई श्रीमती सावित्री देवी नाम की एक महिला ने की। सन् १९२१ ई० के अंत में अँगरेजी सरकार की साम्राज्यवादी नीतियों के विरुद्ध कई जनसभाएँ सावित्री देवी की अध्यक्षता में हुई। इन सभाओं में सरकारी दमन की काररवाइयों की निंदा कठोर शब्दों में की गयी और अँगरेजी साम्राज्यवाद के खिलाफ लड़ाई जारी रखने का निश्चय किया गया। सत्याग्रह-संग्राम जारी रहा। उसकी गति तेज होती गयी। ऐसा प्रतीत होने लगा कि अँगरेजी साम्राज्यवाद को जड़ उखाड़कर रहेगी। इसी बीच चौरीचौरा (गोरखपुर) में एक दु:खात घटना हो गयी। जनता की एक क्रुद्ध भीड़ ने एक पुलिस थाने में आग लगा दी, जिसमें कुछ पुलिस-सिपाही जल गये। इसके परिणाम स्वरूप गांधीजी ने सत्याग्रह स्थगित कर दिया और इस घटना के प्रायश्चित्त स्वरूप पाँच दिनों का उपवास भी किया। लेकिन, सरकार चौरी-चौरा की घटना से इतनी कुपित हुई थी कि उसने भारतीय जनता पर जुल्म ढाना शुरू किया। गांधीजी गिरफ्तार किये गये और उनपर मुकदमा चलाकर उन्हें छ साल के कारावास की सजा दी गयी। बिहार में इस समय शराब की दूकानों पर शांतिमय सत्याग्रह का कार्यक्रम चल रहा था, और इसमें कई ऊँचे घराने की महिलाएँ भाग ले रही थीं। गांधीजी की गिरफ्तारी के बाद भी यह कार्यक्रम यहाँ जारी रहा। अली-बंधुओं की माताजी ने इस समय उल्लेखनीय काम किये। उन्होंने स्वयं घर घर जाकर लोगों से 'अंगोरा कोष' का संग्रह किया और शराबबन्दी के कार्यक्रम में सक्रिय भाग लिया। इसके बाद सत्याग्रह की गति में कई उतार-चढ़ाव आये। बिहार की महिलाओं ने उसकी मंद गति के समय चर्खा सँभाला और जब जब उसकी गति तेज हुई, वे झंडा लेकर मैदान में आगे बढ़ीं। इस सिलसिले में पटना के एक बैरिस्टर की पत्नी श्रीमती सी० सी० दास और श्रीमती उर्मिला देवी के नाम उल्लेखनीय हैं। ये बिहार की उन जागरूक महिलाओं में थीं, जो निर्भीकतापूर्वक हर प्रकार के सार्वजनिक कार्यों में भाग लेती थीं। राष्ट्रीय नेताओं के आगमन पर उनके स्वागत का आयोजन करना, सभा-सम्मेलनों में उनका साथ देना और उनके संकेतों पर लड़ाई के मैदान में कूद पड़ना—ये काम वे करती थीं। गया काँगरेस के समय श्रीमती उर्मिला देवी ने सम्मेलन को सफल बनाने के लिए सराहनीय प्रयास किये।

सन् १९२१ ई० के सत्याग्रह की समाप्ति के बाद गांधीजी ने रचनात्मक कार्यक्रम पर बल दिया। अगले संघर्ष के लिए शक्ति संचय की यह प्रक्रिया आवश्यक थी। इस कार्यक्रम

में भी बिहार की महिलाओं का उन्हें यथेष्ट सहयोग प्राप्त हुआ। इस सिलसिले में जब गांधीजी बिहार पधारे, तब उस समय देशबन्धु चितरंजन दास की मृत्यु हो चुकी थी। उन्होंने देशबन्धु-स्मारक-कोष के लिए अर्थ-संग्रह का कार्य आरंभ किया और जमशेदपुर, राँची, देवघर तथा अन्य नगरों की यात्रा की। जहाँ-जहाँ भी वे गये, महिलाओं ने सैकड़ों की संख्या में उपस्थित होकर उनका स्वागत किया और देश के काम के लिए अपने आभूषण तक उतार उन्हें अर्पित किये। इस समय गांधीजी के साथ यात्रा करनेवाली महिलाओं में श्रीमती प्रभावती देवी (श्रीजयप्रकाशनारायण की पत्नी) भी थीं, जिनके अनुपम त्याग और सेवा की कहानी बिहार की महिलाओं के गौरव की कहानी है। श्रीमती प्रभावती देवी तत्कालीन जाग्रत् नारी समाज की प्रतिनिधि स्वरूपा थीं। गांधीजी की इस यात्रा को सफल करने का बहुत कुछ श्रेय प्रभावती देवी को है।

सत्याग्रह-आन्दोलन का विकास और प्रसार (१९३०-३२)

महात्मा गांधी ने सन् १९३० ई० के ६ अप्रैल को देशव्यापी नमक-सत्याग्रह का श्रीगणेश किया। उस समय बिहार की हवा में एक नयी आशा का स्पन्दन, एक नयी आकांक्षा का उभार और एक नये बलिदान का भाव दृष्टिगोचर होता था। इस वातावरण का प्रभाव बिहार के नारी समाज पर भी पड़ा और इस प्रदेश की कई सम्भ्रान्त महिलाएँ नमक-कानून भंग करने के कार्य-क्रम में सम्मिलित हुईं। संताल-परगना जिले के एक प्रमुख काँगरेसी नेता की पत्नी श्रीमती शैलबाला राय ने उस जिले की स्त्रियों को सत्याग्रह के मैदान में उतारने का सफल प्रयास किया। जगह-जगह स्त्रियों की सभाएँ हुईं और इन सभाओं में श्रीमती राय के ओजस्वी भाषणों से प्रभावित होकर अनेक महिलाएँ नमक-कानून भंग करने की ओर प्रवृत्त हुईं। शाहाबाद जिले में श्रीरामबहादुर, बार एट-लॉ की पत्नी ने सासाराम थाने के सामने नमक बनाकर नमक-कानून भंग किया। अन्य जिलों की स्त्रियों ने भी इस कार्यक्रम में हिस्सा लिया। नमक सत्याग्रह के साथ-साथ विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार और शराबबन्दी के आन्दोलन भी चल रहे थे। इन आन्दोलनों में बिहार की महिलाओं का योगदान और भी गौरवपूर्ण रहा। सत्याग्रह छेड़ते समय गांधीजी ने महिलाओं के नाम एक खुली चिट्ठी प्रकाशित कर विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार और नशाबन्दी आन्दोलन में योगदान करने के लिए उनका आह्वान किया था। उन्होंने यह अपेक्षा प्रकट की थी कि 'इस आन्दोलन में शामिल होनेवाली महिलाओं को अपमानों और कष्टों का सामना करना पड़ेगा और वे गौरवपूर्वक इन अपमानों और कष्टों का सामना करेंगी।' बिहार की स्त्रियों ने गांधीजी की अपेक्षा शब्दशः पूरी की। साम्राज्य-वादी दमन के बावजूद वे विदेशी वस्त्रों की होली जलाने और शराब की दूकानों पर धरना देने के कार्यक्रम में जुट पड़ीं। गांधीजी के विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार तथा शराब-बन्दी-आंदोलनों में बिहार की स्त्रियों की सक्रियता उनके नवजागरण का प्रतीक थी।

सन् १६१६ ई० की जनवरी में एक अखिलभारतीय महिला-सम्मेलन का आयोजन पटना में हुआ। इस सम्मेलन के अवसर पर विहार की स्त्रियों को देश के अन्य प्रातों की बहनों से मिलने तथा अपनी तरक्की और आजादी के सम्बन्ध मे चर्चाएँ करने का अवसर मिला। इसके बाद ही एक बिहारी महिला सम्मेलन का आयोजन दिसम्बर, १६१६ ई० में हुआ, जिसमें बाल-विवाह तथा पर्दा एव दहेज प्रथाओं के विरोध में प्रस्ताव स्वीकृत किये गये। सम्मेलन ने इस प्रात मे स्त्री-शिक्षा के प्रसार पर भी विशेष बल दिया। सन् १६३० ई० की जनवरी मे पुन अखिलभारत महिला-सम्मेलन का आयोजन बवई में हुआ, जिसमें विहार की अनेक बहनें प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित हुई। बिहार के इस महिला जागरण के इतिहास मे श्रीमती नन्दकिशोर लाल और श्रीमती कमलकामिनी प्रसाद के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके तथा अन्य शिक्षित बहनो के प्रयास से विहार की स्त्रियों मे एक नये साहस का उदय हुआ था, जिसकी अभिव्यक्ति गाधीजी के विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार तथा शराबबन्दी आन्दोलनों में हुई। इन आन्दोलनों को कुचलने के लिए गोरी सरकार का दमन-चक्र तेजी से चलने लगा। जगह जगह राष्ट्रीय नेताओं और कार्यकर्त्ताओं की गिरफ्तारी हुई। इस सिलसिले में विहार की कुछ स्त्रियाँ भी गिरफ्तार हुईं। हजारीबाग जिला काँगरेस कमिटी की अध्यक्षा श्रीमती सरस्वती देवी और हजारीबाग कॉलेज के भौतिक विज्ञान के प्राध्यापक की सुपुत्री श्रीमती साधना देवी राजनीतिक कार्यों के अपराध मे गिरफ्तार होनेवाली, विहार की प्रथम महिलाएँ थीं। सरस्वती देवी को तत्काल छ मास के कारावास की सजा सुनायी गयी।

अब विहार की स्त्रियाँ एक नये जीवन का अनुभव करने लगी थीं। पुरुषों के साथ कधे से कधा मिलाकर देश की स्वतत्रता के सग्राम में भाग लेने के लिए वे निर्भीकता-पूर्वक आने लगीं। सन् १६३० ई० की जुलाई म गिरीडीह-सबडिवीजन की एक महिला श्रीमती मीरा देवी सत्याग्रह आन्दोलन के सिलसिले में गिरफ्तार हुई। इनके पिता हजारीबाग-कॉलेज म प्राध्यापक थ। राजनीतिक अपराध में गिरफ्तार होनेवाली विहार की ये तीसरी महिला था। पटना नगर मे इस समय स्त्रियों का नेतृत्व प्रसिद्ध वेरिस्टर और राष्ट्रकर्मी श्रीहसन इमाम की पत्नी श्रीमती हसन इमाम कर रही थीं। पटना में विदेशी वस्त्रों की दूकानों पर सत्याग्रह करने में जो सफलता मिली, उसका अधिकाश श्रेय यहाँ के नारी-समाज को है। श्रीमती हसन इमाम के नेतृत्व में यहाँ की स्त्रियों न पटना नगर की सड़कों पर घूम-घूमकर विदेशी वस्त्रों के विरुद्ध प्रचार किया और दूकानदारों से घर-घर जाकर निवेदन किया कि वे विदेशी वस्त्रों का व्यापार बन्द करें। इस नगर के एक माइनिंग इजीनियर की पत्नी श्रीमती विन्ध्यवासिनी देवी ने इस कार्यक्रम में महत्त्वपूर्ण भाग लिया। शराब की दूकानों पर धरना देन के कार्यक्रम मे भी यहाँ की अनेक स्त्रियाँ सम्मिलित हुईं और इस आन्दोलन न ऐसा जोर पकड़ा कि पटना के जिलाधीश को उसका मुकाबला करने के लिए महिला पुलिस भरती करनी पड़ी। सरकारी दमन के बावजूद यह आन्दोलन तीव्र होता गया। श्रीमती हसन इमाम क साथ उनकी लड़की श्रीमती शमी ने भी इस

आन्दोलन में काफी काम किये। ये कॉलेज के विद्यार्थियों के बीच जा जाकर उन्हें आजादी की लड़ाई में शरीक होने के लिए उत्साहित करती थीं। इस प्रकार, विद्यार्थियों का भी साथ भी विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार तथा शराबबन्दी-आन्दोलन में प्राप्त हुआ। श्रीमती हसन इमाम तथा उनकी पुत्री श्रीमती शमी के अतिरिक्त जो स्त्रियाँ स्वातन्त्र्य-आन्दोलन की भूमिका में महिलाओं की अगुआई कर रही थीं, उनमें श्रीमती सी० सी० दास और उनकी पुत्री कुमारी गौरी दास के नाम उल्लेखनीय हैं। पटना में इन स्त्रियों ने अंग्रेजी सरकार की नाकों दम कर रखा था। श्रीमती हसन इमाम ने इनके सहयोग से स्त्रियों का एक विशाल जुलूस निकाला और विदेशी वस्त्रों के विरुद्ध प्रदर्शन किया। [illegible] महिलाओं के तीन विराट् प्रदर्शन पटना में हुए। एक प्रदर्शन में लगभग ३००० स्त्रियों ने श्रीमती हसन इमाम के नेतृत्व में भाग लिया। विदेशी वस्त्रों के विरुद्ध महिलाओं की यह अभूतपूर्व सफलता थी। पटना में आयोजित इन प्रदर्शनों का असर अन्य नगरों की महिलाओं पर भी पड़ा। मुँगेर नगर के एक कुलीन घराने की महिला श्रीमती शाह मुहम्मद जुबैर इन प्रदर्शनों से प्रभावित होकर पर्दे से बाहर निकल आयीं और विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार के कार्यक्रम में भाग लेना शुरू किया। पटना में श्रीमती हसन इमाम, श्रीमती सी० सी० दास, श्रीमती विन्ध्यवासिनी देवी, श्रीमती शमी और कुमारी गौरी दास के कार्यों से सरकार घबरा-सी गयी। उसने इनके विरुद्ध कानूनी कार्रवाई करने का निश्चय किया और उन्हें पुलिस-कानून तथा भारतीय दण्ड-संहिता की धाराओं के अन्तर्गत अदालत में उपस्थित होने का आदेश दिया। सरकार की इस कार-रवाई से सनसनी फैल गयी और इसके विरुद्ध आवाज उठाने के लिए आम सभाएँ की गयीं तथा जुलूस निकाले गये। जनता के विरोध की उपेक्षा करते हुए सरकार ने श्रीमती इमाम तथा अन्य महिलाओं पर जुरमाने किये। इन महिलाओं ने खुली अदालत में जुरमाना देने से इनकार किया। इस घटना के बाद भी इन्होंने अपना काम जारी रखा। श्रीमती इमाम, श्रीमती शमी और कुमारी गौरी दास ने हजारीबाग तथा अन्य जिलों की महिलाओं को संगठन करने के लिए दौरे शुरू किये।

संताल परगना जिले में श्रीमती साधना देवी के नेतृत्व में महिला सत्याग्रहियों ने सरकार को परेशान कर रखा था। विदेशी वस्त्रों तथा शराब की दूकानों पर धरना देने के कार्यक्रम को इस जिले की महिलाओं ने खूब सफल बनाया। इस सफलता का एक महत्त्वपूर्ण कारण यह था कि महिलाओं के साथ छोटे-छोटे बच्चे भी धरना देने के कार्यक्रम में भाग लेते थे और इन शिशु सत्याग्रहियों की संख्या दिन प्रति-दिन बढ़ती जा रही थी। महिलाओं और बच्चों के सत्याग्रह में अहिंसा की शक्ति पूर्णरूपेण प्रकट हुई, जिसने सरकारी अधिकारियों को किंकर्त्तव्यविमूढ़ बना दिया था। महिलाओं और बच्चों के विरुद्ध कारवाई करने से सरकार बदनाम होती थी और कारवाई नहीं करने से सत्याग्रह व्यापक रूप धारण करता था। अतः, सरकारी अधिकारियों की समझ में यह नहीं आता था

कि वे क्या करें। दूसरे जिलों में भी बिहार की स्त्री-शक्ति अपने सपूर्ण तेज के साथ प्रकट हुई, जिसने साम्राज्यवादी दमन का डटकर मुकाबला किया। गया में श्रीमती विद्यावती देवी, लक्खीसराय (मुंगेर) में श्रीमती विद्यावती देवी और श्रीमती सेवा देवी गिरफ्तार की गयीं। गया की एक महिला श्रीमती चन्द्रावती देवी चौकीदारी-टैक्स का विरोध करने के सिलसिले में गिरफ्तार की गयीं। इस प्रकार, सन् ३० के सत्याग्रह का जोर देखकर अँगरेज सरकार घबरायी। अतः, उसने १२ नवम्बर, (१९३०) को लंदन में, भारत की वैधानिक समस्या के समाधान के लिए, एक गोलमेज सम्मेलन किया। भारतीय राष्ट्रीय काँगरेस के प्रतिनिधि इसमें सम्मिलित नहीं हुए। कतिपय देशी राजा और उनके प्रतिनिधि, चन्द जमींदार और पूँजीपति तथा कुछ उदारपंथी लोग, जिनके विचार काँगरेस के विचारों से नहीं मिलते थे, इस सम्मेलन में सम्मिलित हुए। सम्मेलन के बाद सरकार ने राष्ट्रीय नेताओं को कारागार से मुक्त कर दिया। लेकिन, उसकी नीति में वास्तविक परिवर्त्तन का संकेत नहीं मिलता था। इसलिए, काँगरेस ने भारतीय जनता को अपना संघर्ष पूर्ववत् जारी रखने की सलाह दी। तदनुसार, २६ जनवरी (१९३१) को स्वतन्त्रता-दिवस उत्साह-पूर्वक मनाया गया। सरकारी प्रतिबंधों के बावजूद आम सभाएँ की गयीं और जुलूस निकाले गये। इन कार्यक्रमों में भी बिहार की महिलाओं ने साहस पूर्वक भाग लिया। पटना में श्रीमती सी० सी० दास, श्रीमती नवलकिशोर प्रसाद और कुमारी गौरी दास के नेतृत्व में स्वतन्त्रता दिवस का आयोजन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। सरकार की पुलिस ने पुनः बर्बरता से काम लिया। राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताओं की गिरफ्तारियाँ हुईं, उनपर प्रहार किये गये, गोलियाँ चलायी गयीं। बिहार की अनेक स्त्रियाँ पुलिस के इन अत्याचारों का शिकार बनीं।

ऊपर कुमारी गौरी दास का उल्लेख बार बार आया है। सरकार की नजर में वे एक खतरनाक महिला थीं। सरकार यह समझती थी कि उनका संबंध दूसरे प्रांतों—विशेषकर बंगाल के क्रान्तिकारियों से है। कलकत्ता की पुलिस और उसके गुप्तचर विभाग को यह पता था कि कुमारी गौरी दास बिहार की है और उसका निवास स्थान पटना में है। इसलिए, जब बिहार की पुलिस ने २६ जनवरी (१९३१) के स्वतन्त्रता दिवस के कार्यक्रमों को विफल करने के लिए राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताओं की धर पकड़ शुरू की, तब उसके साथ कलकत्ता के गुप्तचर-विभाग के लोग बड़ी संख्या में मौजूद थे। कुमारी गौरी दास को पकड़ने के लिए बंगाल सरकार ने वारंट जारी किया था। २५ जनवरी (१९३१) को बिहार के पुलिस-अफसरों के साथ बंगाल सरकार के खुफियों ने कुमारी गौरी दास के पिता श्री सी० सी० दास के घर पर छापा मारा और कुछ कागज पत्र उठा ले गये। यह कहना कठिन है कि कुमारी गौरी दास या अन्य किसी बिहारी महिला का संबंध गुप्त क्रांतिकारी आन्दोलन से था या नहीं। इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। यह भी ज्ञात नहीं है कि कुमारी गौरी दास के संबंध में पुलिस की शंकाओं का क्या आधार था।

देश में मनाया गया। बिहार में इस अवसर पर पुनः गिरफ्तारियाँ हुईं। केवल पटना नगर में १४ व्यक्ति गिरफ्तार किये गये, जिनमें आधी संख्या महिलाओं की थी। देशरत्न डॉ० राजेन्द्र प्रसाद की पत्नी श्रीमती राजवंशी देवी और पटना-जिला-काँगरेस की तत्कालीन 'डिक्टेटर' चन्द्रावती देवी थीं, जिन्हें अदालत ने १५ मास का कठिन कारावास-दंड दिया। अन्य दो महिलाओं को भी चार-चार मास का कठिन कारावास-दंड मिला। सत्याग्रह का यह दौर सन् १९३४ ई० तक जारी रहा। सन् १९३४ ई० में भारत के स्वतंत्रता संग्राम का एक अध्याय समाप्त हुआ और दूसरा शुरू हुआ। राष्ट्रीय संघर्ष के मंच पर किसान-आन्दोलन और क्रांतिकारी राष्ट्रवाद के रूप में दो नयी शक्तियों का उदय हुआ, जिन्होंने आगे चल-कर हमारी स्वतंत्रता की लड़ाई के स्वरूप और पद्धति पर गहरा असर डाला। बिहार में इन दोनों शक्तियों के पुष्ट होने के लिए अनुकूल अवसर और सुयोग्य नेतृत्व प्राप्त हुआ। राष्ट्रीय संघर्ष की इस नयी भूमिका में महिलाओं के लिए बहुत कुछ करना संभव नहीं था। गांधीजी के सत्याग्रह-आन्दोलन में वीरतापूर्ण कार्य करने के लिए इतना प्रचुर अवसर स्त्रियों को प्राप्त हो रहा था कि उससे कोई भिन्न प्रकार का आन्दोलन उन्हें आकृष्ट नहीं कर सकता था। इसलिए, क्रांतिकारी राष्ट्रवाद से प्रेरित आन्दोलनों में बिहार की महिलाओं ने कोई उल्लेखनीय कार्य किया, ऐसा नहीं दीखता। अपवाद स्वरूप कुछ क्रान्तिकारी मूर्त्तियाँ अवश्य होंगी। लेकिन, अभी इतिहास को उनका पता नहीं है।

व्यक्तिगत सत्याग्रह और महाक्रांति (१९४१-४२)

सन् १९३४ ई० के बाद हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन में एक नयी धारा शुरू हुई और वह भी वैधानिक धारा। अँगरेजी सरकार ने भारतीय जनता के सामने एक नया विधान (१९३५) प्रस्तुत किया। काँगरेस ने सरकार की इस नीति का लाभ उठाना चाहा और विधान-सभाओं में प्रवेश करने का निश्चय किया। देश-भर में चुनाव हुए और अधिकांश प्रांतों में काँगरेस की सरकारें (सन् १९३७ ई० में) बनीं। लेकिन, सन् १९३९ ई० में द्वितीय विश्व-महायुद्ध शुरू हुआ। अँगरेजी सरकार ने भारत को भी इस युद्ध में घसीटा। भारत के राष्ट्रीय नेताओं ने यह शर्त रखी कि भारत की जनता इस युद्ध में अँगरेजी सरकार का सहयोग तभी करेगी, जब वह घोषणा करे कि युद्ध के बाद भारत पूर्ण स्वतंत्र हो जायगा। सरकार ने ऐसा कोई आश्वासन देने से इनकार किया। अतः, काँगरेस ने सरकार के युद्ध सम्बन्धी कार्यों में असहयोग करने का निश्चय किया। तदनुसार, सभी काँगरेस सरकारों त्यागपत्र दे दिया। देश में पुनः निराशा और क्षोभ का वातावरण व्याप्त हो गय इसी समय (सन् १९४० ई० में) काँगरेस का वार्षिक अधिवेशन रामगढ़ (बिहार) में हुआ बिहार की स्त्रियों को इसकी तैयारी करने तथा इसमें भाग लेने का अवसर मिल बिहार की दर्जनों स्वयंसेविकाओं ने अधिवेशन के आयोजन में भाग लेकर उसे सप बनाने का प्रयास किया। अनेक बिहारी महिलाएँ काँगरेस के इस अधिवेशन में सम्मि

भी हुई। रामगढ़-कॉंगरेस ने अँगरेजी सरकार के विरुद्ध तत्काल सत्याग्रह छेड़ने का निश्चय तो नहीं किया, लेकिन राष्ट्र को अगली लड़ाई के लिए तैयार रहने को कहा। अँगरेजी सरकार ने इस समय, साम्प्रदायिक तत्त्वों को बढ़ावा देकर, 'फूट डालो और राज करो' की नीति का अनुसरण करते हुए, भारत पर अपना साम्राज्यवादी पंजा जमाये रखने की कोशिश की। उसकी इस नीति के विरोध-स्वरूप गांधीजी ने (सन् १९४१ ई० में) व्यक्तिगत सत्याग्रह का कार्यक्रम देश के सामने रखा और चुने हुए लोगों को ही उसमें भाग लेने की अनुमति दी। सरकार सत्याग्रह को दृढतापूर्वक कुचलने के लिए तैयार बैठी थी। उसने राष्ट्रीय नेताओं और कार्यकर्त्ताओं को गिरफ्तार करना शुरू किया। बिहार की महिलाएँ इस अवसर पर कब पीछे रहनेवाली थीं? अनेक महिलाओं ने इस सत्याग्रह में भाग लिया और गिरफ्तार भी हुई। गया में श्रीमती प्रियंवदा देवी, श्रीमती जगतरानी देवी और श्रीमती जानकी देवी गिरफ्तार की गयीं और उन्हें चार-चार मास का कारावास दंड दिया गया। श्रीमती शांति देवी नाम की एक महिला को भी कारावास दंड मिला। उन पर दो सौ रुपये का जुरमाना भी किया गया। संताल परगना जिले में भी कुछ महिलाओं ने सत्याग्रह किया। लेकिन सरकार ने किसी महिला को वहाँ गिरफ्तार नहीं किया।

इस सिलसिले में एक घटना का उल्लेख यहाँ आवश्यक है। २२ फरवरी (सन् १९४१ ई०) को दुमका (संताल परगना) में एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया, जिसमें यह घोषणा की गयी कि संताल-परगना-कॉंगरेस कमिटी के अध्यक्ष की पत्नी श्रीमती महादेवी केजरीवाल दुमका नगर में सत्याग्रह करेंगी। सभा के बाद एक विराट् जुलूस भी निकला। २६ फरवरी को श्रीमती केजरीवाल दुमका के डिप्टी-कमिश्नर से उनके बँगले पर मिलीं और उन्हें निम्नांकित आशय की लिखित सूचना दी—"यह लड़ाई हिन्दुस्तान की लड़ाई नहीं है, इसलिए अँगरेजों को धन से, जन से किसी तरह से भी मदद देना पाप है। हमलोगों को सत्याग्रह के जरिये सशस्त्र लड़ाई का विरोध करना चाहिए।"—यह सूचना देकर श्रीमती केजरीवाल ने सत्याग्रह किया। लेकिन डिप्टी कमिश्नर ने उन्हें गिरफ्तार करने का आदेश नहीं दिया। उक्त घटना से प्रकट है कि महिला सत्याग्रहियों के आगे अँगरेजी सरकार ने घुटने टेक दिये थे। व्यक्तिगत सत्याग्रह में यद्यपि कुछ चुनी हुई महिलाएँ ही भाग ले सकती थीं और इस बात की आशंका नहीं थी कि यह सत्याग्रह व्यापक रूप धारण करेगा, तथापि सरकारी अधिकारियों के मानस पर, खासकर संताल परगना जिले के शासकों पर, महिला-सत्याग्रहियों का रोब ऐसा छा गया था कि वे उन्हें गिरफ्तार करने का साहस नहीं कर सकते थे। किन्तु, लगभग एक वर्ष के बाद, कॉंगरेस ने व्यक्तिगत सत्याग्रह स्थगित कर दिया। कारण, जापानी आक्रमण का खतरा भारत की सीमा के निकट आ गया था। कॉंगरेस ने सोचा कि इस नाजुक परिस्थिति में अगर कॉंगरेस के लोग कारागार में बन्द रहेंगे, तो भारतीय जनता का समुचित मार्ग-प्रदर्शन कौन करेगा। व्यक्तिगत सत्याग्रह स्थगित करके कॉंगरेस ने जिस सौहार्द का परिचय दिया, उसका कोई असर सरकार की नीति पर

फिर भी, कुमारी गौरी दास के प्रति सरकार ने जो रुख अपनाया था, उससे प्रकट है कि बिहार की कुछ महिलाएँ, चाहे उनकी संख्या कितनी नगण्य हो, गुप्त क्रांतिकारी आन्दोलन में दिलचस्पी रखती थीं और कुमारी गौरी दास उनका नेतृत्व करती थी। बिहार में महिलाओं और युवकों के संगठन का काम ता वे करती ही थीं, पटना-युवक संघ' नाम की एक संस्था से उनका गहरा संबंध भी था। युवकों की संस्था होने के कारण उसका गुप्त क्रांतिकारी आन्दोलन से संबंध होना स्वभाविक-सा है। लेकिन, सामान्यतः यह स्वीकार करना चाहिए कि बिहार की महिलाओं ने गांधीजी के नेतृत्व में चलनेवाले स्वातन्त्र्य-आन्दोलन में ही विशेष रूप से भाग लिया और साम्राज्यवादी दमन का अहिंसापूर्वक सामना करने में अपनी अद्भुत सहिष्णुता, धैर्य और साहस का परिचय दिया। बिहार में गांधीजी की अहिंसा का तेज हमारी महिलाओं के कर्त्तृत्व में प्रकट हुआ। सन् '३० के सत्याग्रह के बाद सरकार ने गांधीजी के साथ आँख-मिचौनी की नीति अपनायी। कभी वह उनके साथ नरमी से पेश आती, तो कभी उनपर तथा उनके साथियों और अनुयायियों पर टूट पड़ती। गांधीजी की अहिंसा ने उसे किंकर्त्तव्यविमूढ़ बना दिया था।

सन् १९३१ ई० के प्रारंभ में इंगलैण्ड की सरकार ने पुनः नरमी की नीति अपनायी, जिसके फलस्वरूप गांधी-इर्विन-समझौता हुआ। इस समझौते के अनुसार सत्याग्रह के स्थगन की घोषणा की गयी। लेकिन सरकार ने ईमानदारी से इस समझौते की शर्तों को कार्यान्वित नहीं किया। भारत की स्वतन्त्रता के प्रश्न पर उसकी नीति में कोई वास्तविक परिवर्तन नहीं हुआ था। यह बात तब और भी स्पष्ट हो गयी, जब २३ मार्च (१९३१) को महात्मा गांधी तथा सारे देश के विरोध के बावजूद सरदार भगतसिंह, श्रीराजगुरु और श्रीसुकदेव को सरकार ने फाँसी पर लटका दिया। सरकार की इस अमानुषिक काररवाई का जवाब भारतीय जनता ने हड़तालों और प्रदर्शनों से दिया। बिहार में जहाँ तहाँ इन हड़तालों और प्रदर्शनों के आयोजन में महिलाओं ने महत्त्वपूर्ण भाग लिया तथा साम्राज्यवादी बर्बरता के विरोध में अपनी आवाज ऊँची की। इस सिलसिले में शाहाबाद जिले की एक घटना उल्लेखनीय है। भगतसिंह और उनके साथियों की फाँसी के विरोध में ३० मार्च को एक विराट् जनसभा का आयोजन आरा में हुआ। इस आयोजन में शाहाबाद-जिला-काँगरेस-कमिटी के तत्कालीन अध्यक्ष की पत्नी श्रीमती कुसुमकुमारी देवी का मुख्य हाथ था। सभा के मंच से नौजवानों को ललकारते हुए इस महिला ने ऊँची आवाज में कहा—"नौजवानो! तुम पीछे क्यों हो? बिस्मिल, भगतसिंह और खुदीराम की तरह अपने को कुर्बान करने के लिए आगे क्यों नहीं बढ़ते? भगतसिंह की चिता की आग ठंडी नहीं हुई है। आओ और उसकी चिनगारियों को प्रज्वलित करने के लिए आगे बढ़ो।" कुसुमकुमारी का यह भाषण बिहारी महिलाओं की वीरता एवं निर्भीकता का परिचायक है।

अप्रैल, १९३१ ई० में लार्ड विलिंगडन भारत के वायसराय बनकर आये। अगस्त, १९३१ ई० में गांधीजी से इनकी बातचीत हुई, जिसके फलस्वरूप द्वितीय गोलमेज सम्मेलन

करने का निर्णय किया गया। गाधीजी इस सम्मेलन में भाग लेने के लिए लदन गये। लेकिन, यह सम्मेलन भी विफल हुआ और भारत मे निराशा एव क्षोभ का वातावरण फिर उत्पन्न हो गया। सत्याग्रह की भूमिका देश म फिर तैयार हुई। ४ जनवरी (१६३२) को महात्मा गांधी तथा दूसरे नेता गिरफ्तार कर लिये गये। सत्याग्रह की आग फिर भड़क उठी। बिहार मे हडतालों और प्रदर्शनों का ताँता बँध गया। सरकार की ओर से गिरफ्तारी और लाठी प्रहार होने लगे। बिहार की महिलाएँ इस अवसर पर भी आगे आयीं और वीरतापूर्वक सरकारी दमन का सामना करने के लिए सत्याग्रह के समर-क्षेत्र में डट गयीं। इस बार सरकार ने और भी अधिक क्रूरता का प्रदर्शन किया। पहले के आन्दोलनों में सरकार महिला-सत्याग्रहियों क प्रति कुछ नरमी से पेश आती थी। इस बार उसने उनके प्रति भी कठोरता की नीति अपनायी। सरकार समझती थी कि महिलाओं का सत्याग्रह-आन्दोलन में प्रवेश उसक अस्तित्व के लिए खतरा है। इसलिए, उनके प्रवेश को रोकन के लिए उनके साथ कड़ाई से पेश आने का निश्चय किया गया। १३ जनवरी (१६३२) को बिहार और उडीसा की सरकार न अपने अफसरों को निर्देश भेजे और उन्हें आदश दिया कि महिला-सत्याग्रहियों के प्रति कड़ा-से-कड़ा रुख अपनाया जाय।

सरकार के इस रुख के बावजूद बिहार में अधिकाधिक महिला-सत्याग्रहियो की टोलियाँ हर जिले मे निकलीं। कई महिला सत्याग्रहियों पर बर्बरतापूर्वक प्रहार किये गये और उन्हें अपमानित भी किया गया। देश की स्वतंत्रता के लिए उन्होंने वीरतापूर्वक सरकारी अत्याचारों को झेल लिया। इस सिलसिले में महिलाओं की गिरफ्तारियाँ सबसे अधिक मुँगेर जिले में हुईं। मुँगेर नगर में श्रीमती सोना देवी, श्रीमती ठाकुर देवी, श्रीमती मूर्त्ति देवी और श्रीमती यशोदा देवी डाकघर पर धरना देने के अपराध में गिरफ्तार हुईं। पूर्वसराय की लक्ष्मी देवी भी गिरफ्तार की गयी। कुछ स्त्रियों को दो दो, तीन-तीन बार कारावास का दड दिया गया। खगडिया थाने के अलौली गाँव की श्रीमती सीता देवी तीन बार कैदखाने में बद हुईं। गोगरी थाने की १४ स्त्रियाँ धरना देने तथा जुलूसों मे भाग लेने के अपराध मे गिरफ्तार की गयीं। उनमें गोगरी के एक प्रमुख काँगरेसकर्मी की माता श्रीमती अनूप देवी, मधेपुर की श्रीमती सुशीला देवी और कन्हैयाचक की श्रीमती सरस्वती देवी के नाम उल्लेखनीय हैं। पटना और गया में भी कुछ महिलाओं की गिरफ्तारी हुई। गया के एक डॉक्टर की पत्नी श्रीमती चौधरी सभाएँ करने के अपराध में दंडित की गयीं। किंतु, दमन की इन सारी काररवाइयों के बावजूद सत्याग्रह आन्दोलन दबा नहीं। अँगरेजी सरकार भी एक ओर सुलह और दूसरी ओर दमन की दुरगी नीति चलाती रही। उसने तीसरा गोलमेज सम्मेलन, सन् १६३२ ई० के अतिम दिनों में, आयोजित किया। यह सम्मेलन भी व्यर्थ सिद्ध हुआ। सत्याग्रह की लड़ाई जारी रही और सरकार का दमन भी जारी रहा। ४ जनवरी (१६३३) को सारे देश में गाधी-गिरफ्तारी-दिवस मनाया गया। इस सिलसिले मे आम सभाएँ की गईं, जुलूस निकले और प्रदर्शन हुए। इसके बाद २६ जनवरी को स्वतंत्रता दिवस शान के साथ सारे

नहीं पड़ा। इसके उत्तर में सरकार के प्रवक्ताओं ने जो वक्तव्य दिये, उनसे भारतीय जनता का असंतोष और भी गहरा हो गया। इस असंतोष की आग अन्दर ही-अन्दर सुलगती रही और सन १९४२ ई० के अगस्त में भयंकर ज्वाला के रूप में फूट पड़ी।

सन् '४२ की महाक्रांति

सन् १९४२ ई० की महाक्रांति में भी बिहार की महिलाओं ने महत्त्वपूर्ण योगदान किया। क्रांति ६ अगस्त को विद्यार्थियों की हड़तालों के साथ शुरू हुई। पटना मेडिकल-कॉलेज के विद्यार्थियों के साथ मेडिकल कॉलेज अस्पताल की परिचारिकाओं ने भी हड़ताल की। पश्चात् देशरत्न राजेन्द्र बाबू के बीच-बिचाव से उनकी हड़ताल समाप्त हुई। पटना में महिला-चर्चा क्लब (अब 'महिला-चर्चा-समिति') की बहनों ने अगस्त क्रांति की ज्वाला को धधकाने और उसे व्यापक बनाने का काम किया। ९ अगस्त को उन्होंने महिलाओं का एक विराट् जुलूस पटना में निकाला। डॉ० राजेन्द्रप्रसाद की बहन श्रीमती भगवती देवी की अध्यक्षता में महिलाओं की एक सभा हुई, जिसमें श्रीमती सुन्दरी देवी, श्रीमती रामप्यारी देवी तथा अन्य महिलाओं के भाषण हुए। सभा में सरकारी कर्मचारियों से अपनी नौकरी और वकीलों से अपनी वकालत छोड़ने तथा जनता से सरकारी दमन का दृढ़तापूर्वक सामना करने की अपील की गयी। फिर, १२ अगस्त को कई जुलूस पटना नगर में निकाले गये और सैकड़ों महिलाएँ उनमें शामिल हुईं। श्रीमती धर्मशीला लाल, बार-एट लॉ भी जुलूस में शामिल हुईं और गिरफ्तार की गयीं। बिहार के अन्य प्रमुख नगरों में भी महिलाओं ने अगस्त-क्रांति में भाग लिया। इस सिलसिले में मानभूमि जिले के पुरुलिया नगर में कुछ महिलाएँ गिरफ्तार हुईं। पुरुलिया के शिल्प-आश्रम को पुलिस ने जब्त कर लिया और उसमें रहनेवाले राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं के साथ श्रीमती लावण्यप्रभा घोष और उनकी सुपुत्री कमला घोष को भी गिरफ्तार किया।

हजारीबाग जिले में स्थानीय नेताओं की गिरफ्तारी के बाद अगस्त क्रांति की बागडोर श्रीमती सरस्वती देवी ने सँभाली। ११ अगस्त को हजारीबाग नगर में एक विराट् जुलूस उनके नेतृत्व में निकाला गया। उसी दिन संध्या में वे गिरफ्तार कर ली गयीं और उन्हें भागलपुर भेज दिया गया। भागलपुर में अगस्त क्रान्ति का नेतृत्व विद्यार्थी कर रहे थे। १२ अगस्त को जब श्रीमती सरस्वती देवी एक अन्य महिला कैदी के साथ हजारीबाग से भागलपुर केन्द्रीय कारागार में लायी जा रही थीं, तब विद्यार्थियों के एक जत्थे ने उन्हें पुलिस की हिरासत से छीन लिया। उसी दिन लाजपत-पार्क में विद्यार्थियों की एक सभा हुई, जिसमें सरस्वती देवी के जोशीले भाषण हुए। १४ अगस्त को वे पुनः गिरफ्तार कर ली गयीं। उधर भागलपुर जिले के बिहपुर-क्षेत्र की काँगरेस-कार्यकर्त्री श्रीमती माया देवी ने सरकार को परेशान कर रखा था। पुलिस ने जब उन्हें गिरफ्तार किया, तब जनता ने इसके विरुद्ध जुलूस निकाला और माया देवी को पुलिस की हिरासत से छुड़ाना चाहा। इसपर

पुलिस ने गोली चलायी, जिसके फलस्वरूप अनेक लोग मरे। इसी प्रकार, सारन (छपरा) जिले में सरकार के विरुद्ध जो हड़तालें और प्रदर्शन हुए, उनमे महिलाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। रेलवे स्टेशनों, डाकघरों आदि पर आक्रमण करने के कार्यक्रमों में भी इस जिले की महिलाओं ने भाग लिया। १५ अगस्त को छपरा-टाउन-हॉल मे एक विराट् सभा का आयोजन हुआ, जिसकी अध्यक्षता एक महिला (शांति देवी) ने की। अपने भाषण में शांति देवी ने छपरा के नागरिकों से अगस्त-क्रांति की आग को जलाये रखने के लिए अपील की।

संताल परगना जिले की महिलाओं ने भी अगस्त क्रांति मे शानदार हिस्सा लिया। १७ अगस्त को दुमका मे एक जुलूस श्रीमती जाम्बवती देवी और श्रीमती प्रेमा देवी के नेतृत्व मे निकला। ये दोनों महिलाएँ गिरफ्तार की गयीं। राजमहल और साहबगंज में भी बड़े-बड़े जुलूस शारदा देवी के नेतृत्व मे निकले। वे गिरफ्तार की गयी। अदालत ने उन्हें एक वर्ष के कारावास की सजा दी। इस जिले की जिन महिलाओं ने अगस्त-क्रांति में अत्यन्त सक्रिय भाग लिया, उनमें शारदा देवी और श्रीमती उषारानी मुकर्जी के नाम उल्लेखनीय हैं। श्रीमती मुकर्जी अगस्त मास के अंत मे गिरफ्तार कर ली गयीं। अगस्त-क्रान्ति के सिलसिले में, इस जिले के घोड़मारा गाँव की एक महिला श्रीमती विराजी मधियाइन पुलिस की गोली खाकर शहीद हुईं।

फिर, मुँगेर जिले की महिलाओं ने भी अगस्त-क्रांति में यथायोग्य हिस्सा लिया। बैजनाथ-हाइ-स्कूल (मुँगेर) की छात्राओं ने इस सिलसिले में महत्त्वपूर्ण काम किया—जुलूस निकालकर और घर घर जाकर अगस्त क्रांति का संदेश प्रसारित किया। अगस्त-क्रांति के महायज्ञ में इस जिले ने अपने कई सपूतों और ललनाओं की बलि चढ़ायी। चौथम थाने के अंतर्गत रूहियार गाँव के लोगों पर गोरी फौज के सिपाहियों ने अमानुषिक अत्याचार किये। उन्होंने २ सितम्बर को इस गाँव के लोगों पर भयंकर गोली वर्षा की, जिसके फलस्वरूप कई महिलाएँ और बच्चे शहीद हुए। श्रीमती डुकेरी तेलिन अपनी तीन साल की बच्ची और सात साल के बच्चे के साथ तथा श्रीमती सुरनी देवी अपने तीन साल के बच्चे के साथ इस गोलीबारी का शिकार बनी। इनके अतिरिक्त श्रीमती हकनी और श्रीमती सबतिया अपनी एक लड़की दूरी के साथ गोरी फौज की गोली खाकर शहीद हुईं।

इसी तरह, पलामू जिले मे भी इस महाक्रांति के लिए अनुकूल भूमिका तैयार करने में कुमारी आर० एस० दास का महत्त्वपूर्ण हाथ था। उन्होंने जिले के सुदूरतम गाँवों में घूम-घूमकर किसानों का संगठन किया था। जपला की सीमेंट-फैक्टरी के मजदूरों को संगठित करने का प्रयास भी उन्होंने किया था। इस सिलसिले में कई स्थानों पर उनके भाषण हुए थे। उन भाषणों से आतंकित होकर सरकारी अधिकारियों ने उनके विरुद्ध भारत-रक्षा-कानून के अंतर्गत कारवाई की। जिले में एक विस्फोटक स्थिति का निर्माण पहले ही हो गया था। ९ अगस्त को जब अगस्त क्रांति शुरू हुई, तब उसकी आग गाँव गाँव में पहुँची

और सैकड़ों किसानों-मजदूरों ने इस क्रांति में सक्रिय हिस्सा लिया। उधर मानभूमि जिले में अगस्त-क्रांति की आग को बहुत दिनों तक प्रज्ज्वलित रखनेवालों में कुछ महिलाएँ भी थीं, जिनमें श्रीमती भागवती देवी का नाम उल्लेखनीय है। ये इस जिले के प्रमुख नेताओं में थीं। अगस्त क्रांति के सिलसिले में उन्होंने गुप्त रूप से क्रांति के संगठन का काम किया और बहुत दिनों तक इस जिले में क्रान्ति की मशाल को जलाये रखा।

सन् ४२ की क्रांति जिस रूप में हुई, उसमें महिलाएँ बहुत सक्रिय भाग नहीं ले सकती थीं। पहले के सत्याग्रह-आन्दोलनों से इसका स्वरूप भिन्न था और इसकी गति एवं दिशा भी भिन्न थी। फिर भी, बिहार की महिलाओं ने अनुभवी नेताओं के अभाव में, अपनी शक्ति और बुद्धि के अनुसार इस क्रांति में भाग लिया। इस सिलसिले में ऊपर जिन महिलाओं का उल्लेख किया गया है, उनके अलावा भी सैकड़ों महिलाएँ स्वतंत्रता की इस आखिरी लड़ाई में सम्मिलित हुई होंगी। वे अज्ञात हैं और अज्ञात ही रहेंगी।

गोरे सिपाहियों ने इस क्रांति को दबाने के लिए ऐसे-ऐसे घृणित अत्याचार किये, जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता। उनका सबसे घृणित कार्य था–महिलाओं पर बलात्कार करना। ऐसी अनगिनत घटनाएँ बिहार में हुई और हमारी अनगिनत ललनाएँ गोरे सिपाहियों की पशुता (कामुकता) का शिकार बनीं। बिहार के कुछ हिस्सों में क्रांति की आग वर्षों तक जलती रही और अँगरेजी सरकार के जुल्म भी वहाँ होते रहे। अतः, बिहार की महिलाओं पर ढाये गये जुल्मों की कहानी अनन्त है अकथनीय है। बिहार की महिलाओं ने अँगरेजी सरकार के इन सारे जुल्मों, अत्याचारों का वीरतापूर्वक मुकाबला किया और इस प्रकार देश की स्वतंत्रता के लिए एक बड़ी कीमत चुकायी। 'पिछड़े हुए' बिहार की 'पिछड़ी हुई' महिलाओं का स्वतन्त्रता-संग्राम में जो सहयोग रहा, उसका मूल्यांकन भावी इतिहासकार अधिक तटस्थतापूर्वक कर सकेंगे। हम केवल इतना कह सकते हैं कि देश की स्वतन्त्रता के लिए उन्होंने जो कुछ किया, वह बिहार का ही नहीं, भारत का भी मस्तक ऊँचा रखने के लिए पर्याप्त है।

••

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्द्धते तद्धि सर्वदा ॥

—मनुस्मृति, ३।५७

[अर्थात्, जिस कुल में स्त्रियों को परितप्त और दुःखदग्ध होने को विवश किया जाता है, वह कुल शीघ्र ही विनष्ट हो जाता है और जिस कुल में स्त्रियों को उत्पीड़ित नहीं किया जाता, वह कुल सदैव समृद्धि को प्राप्त करता है।]

बिहार की हिन्दी-साहित्यसेवी महिलाएँ

श्रीबजरंग वर्मा, एम्० ए०; साहित्यानुसंधायक, बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना

बिहार राज्य में, हिन्दी साहित्य की समृद्धि में, बिहार की महिलाओं का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। यद्यपि यह सत्य है कि इस दिशा में पुरुषों की तुलना में उनकी संख्या अत्यल्प रही है, तथापि उनकी परिस्थितियों को देखते हुए उनकी साहित्य सेवा स्तुत्य ही समझी जायगी।

हिन्दी साहित्य के इतिहास का आरम्भ होता है वज्रयानी सिद्धों की रचनाओं से, जिन्होंने पुरानी हिन्दी में अपनी साम्प्रदायिक रचनाएँ की थी। सिद्ध काल के विशेषज्ञों का कहना है कि प्रायः सभी सिद्धों ने पुरानी हिन्दी में कुछ न कुछ रचनाएँ की थीं। इन्हीं सिद्धों की परम्परा में 'मणिभद्रा' नामक एक 'योगिनी' का उल्लेख नवीं शती में मिलता है। ये सिद्ध 'कुकुरिपा' की शिष्या बतलायी गयी हैं। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने इनका निवास स्थान 'मगध' बतलाया है। दुर्भाग्यवश 'मणिभद्रा' की काव्य रचनाएँ कालचक्र में पड़कर लुप्त हो गयी हैं। फिर भी, इन्हें बिहार और हिन्दी की प्रथम साहित्य-सेविका होने का श्रेय देना कुछ अनुचित न होगा। हिन्दी की दूसरी सेविका 'चन्द्रकला' भी बिहार की ही थी। ये १५वीं शती में हुईं। श्रीहरिनन्दन ठाकुर ने इनका निवास स्थान 'तरौनी' (दरभंगा) बतलाया है। ये मैथिल कोकिल महाकवि विद्यापति की पुत्रवधू थीं। विद्वानों का अनुमान है कि ये विद्यापति के द्वितीय पुत्र हरपति की ही धर्मपत्नी थी। ये परम विदुषी और संस्कृत की प्रकांड पंडिता बतलायी गयी हैं। इनकी निम्नांकित हिन्दी रचना 'लोचन' की 'रागतरंगिणी' में संगृहीत है। इससे भी इनका संस्कृत पंडिता होना प्रमाणित होता है—

स्निग्धकुञ्चित कोमलकुचगण्डमण्डितकोमलम्।
अधरबिम्बसमानसुन्दरसर दचन्द्रानभाननम्॥
जय कम्बुकण्ठ विशाललोचन सारमुज्वल सौरभम्।
बाहुवल्लि मृणाल पङ्कज हारशोभित ते शुभम्॥
शाभय सुन्दरिममहृदय गद्‌गद हास सुदति निपुणम्।
उरपीन कठिन विशालकोमल यति युग्म निरन्तरम्॥
श्रीफलाकमला विचित्र विधातु निर्गल कुचवरम्।
श्यामा सुवेशा त्रिवलि रेखा जघन भार विलम्बिते॥
मत्तगजवर जघन युगवर गमन गतिवरगाजिते।
सुललित मन्द गमन करइ, जनि पतिसङ्ग वरटा भमइ।

अतिरूपगर्वित प्रथम समभव किं वृथा कथया प्रिये ।
तेजह रूप विमोह परिहर शोष चिन्तित चिन्तये ॥
उपचार मदन व्याधि दुस्सह दहए पावर सेवरम् ।
पवा दिमे दिमे दहए पावर युग्म दारज्वरम् ॥
श्यामायववन्दिते अतिगमय गीत सुशोभिते ।
आगमज्ञान समान सुन्दरि धार वर्तति निश्चये ॥
निश्चह सुन्दरि ममहृदयम्, अधरसुधामधुपानमियम् ।
चन्द्र कवि जयदेव मुदित मान तेज तोहँ राधिके ॥
वचन ममधर कृष्ण अनुसर किन्तु चामकला शुभे ।
चन्द्रकलाहे वचन वरसी, मानिनि माधव अनुसरसी ॥

'चन्द्रकला' की और कोई रचना प्रामाणिक रूप में नहीं प्राप्त होती। लोक कंठ में इनके नाम पर जो एक पद मिलता है, वह किंचित् परिवर्तन परिवर्द्धन के साथ विद्यापति के नाम पर भी सुनने को मिला है। अतः, वह निर्विवाद रूप से नहीं कहा जा सकता कि वस्तुतः वह पद किसका है। उस पद की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

चानन भेल विषम शर रे, भूषण भेल भारे ॥
सपनहु ने हरि आएल रे, गोकुल गेल हारे ॥
गन-गन हरी विलोकए रे, गन्ह करए पुकारी ॥
उधो जाए मधेपुर रे, बहु इ परचारी ॥
'चन्द्रकला' नहि जीवत रे, बध लागत भारी ॥

हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'चन्द्रकला' ही प्रथम बिहारी महिला हैं, जिनकी प्रामाणिक और ललित हिन्दी रचना उपलब्ध है। इस दृष्टि से इनका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान सिद्ध होता है। इन्हीं की समकालीन एक और भी कवयित्री बिहार में हुई थीं, जिनका नाम था 'माधवी'। ये भी मिथिला निवासिनी ही थीं। डाक्टर सावित्री सिन्हा ने इनकी निम्नांकित खण्डित रचना को प्रकाश में लाकर हिन्दी-जगत् का बड़ा उपकार किया है—

राधा माधव विलसहि कुंजक माझ
तनु तनु सरस परस रस पीवइ
कमलिनी मधुकर राज

× × × ×

सचकित नागर कांपइ थर थर
शिथिल होयला सब अंग।
गद्‌गद कंठ राध भेले अदरस
कब होयब तुम संग॥

लोकसंगीत निशारदा
श्रीमती विन्ध्यवासिनी देवी
(परिचय . पृ० ३५५)

(स्व० आचार्य नलिनविलोचन शर्मा
की धर्मपत्नी) श्रीमती कुमुद शर्मा
(परिचय . पृ० ३६८)

कुमारी सुषमा सेन गुप्त
(परिचय पृ० ३६६)

श्रीमती विमला देवी 'रमा'
(प[illegible] पृ [illegible])

मो धनि चंद मुख नैन किये हरषै
सुनियै अमियमय बोल।
इह मोंके हिरदै ताप किये मेटय,
सोइ धरब मिये फोल ॥
आइसन कतहु निलपति माधव,
सहचरि दरहि हँसी ॥
अपरूप प्रेम विवादित अन्तर
कह ताहि माधवी दासी ॥

सोलहवीं शती से अट्ठारहवीं शती तक का, बिहार का, साहित्यिक इतिहास महिलाओं से शून्य दीखता है। किन्तु, इससे यह नहीं कहा जा सकता कि तीन सौ वर्षों की इस लम्बी अवधि में बिहारी महिलाओं ने इस दिशा में कोई प्रयत्न ही नहीं किया, बल्कि कहा यह जाना चाहिए कि उक्त कालावधि के सम्बन्ध में अभी पर्याप्त साहित्यानुसंधान की आवश्यकता है। हाँ, उन्नीसवीं शती के आरम्भिक वर्षों में 'सुवासिन दाई' नामक एक महिला मिलती हैं, जो 'पदुमकेर' (चम्पारन) की निवासिनी थीं और उसी जिले के 'सुखीसेमरा'-ग्राम में ब्याही थीं। इनका जन्म-काल सं० १८५८ वि० (सन् १८०१ ई०) और मृत्यु-काल सं० १९४३ वि० (सन् १८८६ ई०) कहा जाता है। इन्होंने हिन्दी में अनेक पदों की रचना की थी, जो अब उपलब्ध नहीं होते। इनके अतिरिक्त उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में केवल तीन साहित्यिक महिलाएँ मिलती हैं—अम्बालिका देवी, जनेश्वरी बहु-आसिन और भैअनि देवी। इनमें भी अन्तिम का कोई परिचय नहीं मिलता, केवल उनकी निम्नांकित रचना उन्हें मिथिला-निवासिनी बतलाती है—

सुन्दर स्याम। सिर सोभय गौरी,
कर जोड़ि जानकि पूजल गौरी ॥
चानन फूल अछत लेल हाथ,
गौरी पुज चललीं पहु क समाज ॥
नाना विधि नैवेद्य बनाय,
सभ सखिगन मिलि मंगल गाय।
दस पाँच सखि मिलि बैसलि घेरि
धूप दीप लय आरति फेरि ॥
'भैअनि देवि' यशोगुन गाइ,
देहु अभय वर दसरथ-सुत राइ ॥

अम्बालिका देवी के विषय में इतना ही ज्ञात है कि रामनगर-राज्य (चम्पारन) के प्रबन्धक अम्बिकाप्रसाद उपाध्याय की ये धर्मपत्नी थीं। इन्होंने बँगला उपन्यास 'राजपूत-रमणी' का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित कराया था। बिहार की हिन्दी सेविकाओं में गद्य-

(मुजफ्फरपुर), विभा (भागलपुर) विमला किशोर (सारन), सत्यवती (पूर्णिया), सत्याकुमारी 'आर्या', सरोजिनी बाला (शाहाबाद), सावित्री शुभा, (पटना), सुदर्शना देवी (पटना), सुधा शर्मा (भागलपुर), सुधा सिंह (मुजफ्फरपुर), सुशीला दत्त (पटना), सुशीला देवी (मुँगेर), सुरबाला 'सुलोचना' (मुँगेर), शकुन्तला देवी अग्रवाल (चम्पारन), शकुन्तला सिन्हा 'करुणा' (सारन), शकुन्तला शर्मा 'शशि' (मुजफ्फरपुर), शान्ता-कुमारी 'लली' (गया), शान्ताकुमारी 'सुमन' (सहरसा), शान्ता सिन्हा (पटना) शान्ति पाण्डेय (सारन), शारदा लाल (दरभंगा), शैलजा कुमारी श्रीवास्तव (सारन) आदि। इनमें से अनेक की कई पुस्तकाकार रचनाएँ प्रकाशनार्थ तैयार हैं। अहिन्दी-भाषी जहाँआरा बेगम के ही दो कहानी-संग्रह प्रकाशकों की प्रतीक्षा में हैं। इनके अतिरिक्त इधर एक दूसरी मुस्लिम महिला आयशा अहमद हिन्दी-सेवा की ओर प्रवृत्त हुई हैं। हिन्दी को इनसे भी बड़ी बड़ी आशाएँ हैं। एक मलयाली महिला टी० भारती अम्मा भी, जिनका विवाह दक्षिण-भारत के पुराने हिन्दी-प्रचारक चम्पारन-निवासी श्रीदेवदूत विद्यार्थी से हुआ है, भारती विद्यार्थी के नाम से, पिछले अनेक वर्षों से, हिन्दी-सेवा करती आ रही हैं। हिन्दी में इनके लिखे मौलिक उपन्यासों के अतिरिक्त मलयालम से अनूदित कई उपन्यास भी प्रकाशित हुए हैं। इनकी उल्लेख्य पुस्तकें हैं—'चुनौती', 'हार या जीत', 'दो सेर', 'मलयानिल' आदि।

वर्त्तमान शती में जिन बिहारी महिलाओं ने इस प्रान्त के बाहर जाकर हिन्दी प्रचार में हाथ बँटाया है, उनमें दो के नाम विशेष रूप से उल्लेख्य हैं—उर्मिला सहाय (सारन) और विद्या देवी (मुँगेर)। प्रथम ने रूस की राजधानी मॉस्को में लगभग तीन वर्ष रहकर हिन्दी प्रचार कार्य किया। 'सोवियत-नारी' के सम्पादन में सहयोग देते तथा वहाँ की आकाशवाणी में उद्घोषिका का कार्य करते हुए इन्होंने कई रूसी पुस्तकों का हिन्दी-रूपान्तर भी किया। द्वितीय भी मद्रास में रहकर दक्षिण-भारत में बरसों हिन्दी-प्रचार करती रही हैं। पत्र-संपादन की दिशा में कुछ बिहारी महिलाओं के जो नाम मिलते हैं, वे इस प्रकार हैं—कांतिकुमारी सिंह 'सखी' (मुँगेर), चन्द्रमणि देवी (दरभंगा), रामदुलारी सिंह (मुजफ्फरपुर), शान्तिकुमारी 'सुमन' (सहरसा)। उक्त महिलाओं ने क्रमशः 'प्रभात', 'आदर्श महिला', 'कन्या-साहित्य', 'मजदूर' तथा 'सर्जना' का सम्पादन किया है या कर रही हैं।

प्रस्तुत लेख में जिन महिलाओं के नामोल्लेख हुए हैं, उनके अतिरिक्त और भी कितनी ही देवियाँ साहित्य-सेवा में संलग्न होंगी, जो कालक्रम से प्रकाश में आ जायँगी। मैंने बहुत ही संक्षेप में सिर्फ बानगी दिखायी है। आज बिहार में बड़ी तेजी से स्त्री-शिक्षा का प्रचार बढ़ रहा है। अनेक महिलाएँ अपनी छात्रावस्था से ही आज किसी न किसी रूप में हिन्दी-सेवा कर रही हैं। विभिन्न हाइ-स्कूलों और कॉलेजों से प्रकाशित पत्रिकाओं के सम्यक् निरीक्षण से भी नयी प्रतिभा की अनेक किरणें झलकती हैं तथा यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भविष्य में बिहारी महिलाएँ, हिन्दी सेवा की दृष्टि से भी, किसी अन्य प्रान्त या राज्य की महिलाओं से पीछे नहीं रहेंगी।

●●

'समिति' का बालवाडी-वर्ग

'समिति' के प्राङ्गण में बालवाडी के बच्चों की व्यायाम क्रीडा

(श्रीशालकुमार शरण) की धर्मपत्नी और महात्मा श्रीजानकीशरण 'स्नेहलता' की शिष्या थी। ये 'कान्तिलता' के नाम से प्रसिद्ध थीं और इसी नाम से इनकी साहित्यिक कृतियाँ उपलब्ध होती हैं। हिन्दी में लिखित इनकी तीन पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं। १०. श्यामबाला देवी 'काकी' (गया) की थीं। इनके पति गयाप्रसादजी भी कवि थे। इनकी हिन्दी-कविताएँ 'कवि' में 'श्याम' के नाम से प्रकाशित होती थीं। ११. छिताबबाई सिरादर छपरा की थीं। इनकी समस्यापूर्तियाँ हिन्दी की तत्कालीन पत्र पत्रिकाओं में मिलेंगी।

उन्नीसवीं शती-उत्तरार्द्ध की एक वयोवृद्ध महिला पण्डिता चन्दाबाई जैन वर्त्तमान हैं। आप मथुरा के श्रीनारायणदासजी अग्रवाल की सुपुत्री हैं। आपका विवाह आरा के एक धनाढ्य घराने में श्रीधर्मकुमारजी से हुआ था। आपके पतिदेव का देहान्त युवावस्था में ही हो गया। सन् १९०१ ई० से ही आप तपस्विनी का जीवन व्यतीत कर रही हैं। आरा में आपने स्त्रीशिक्षा-प्रचार के लिए 'जैनबाला-विश्राम' संस्था स्थापित करके नारी-समाज में ज्ञान-विज्ञान का प्रसार कर रही हैं। लगभग बाईस वर्षों से आप 'जैन-महिला-दर्शन' मासिक पत्र का योग्यतापूर्वक सम्पादन कर रही हैं। आपका अध्ययन और विविध विषयों का परिज्ञान बहुत ही गम्भीर है। प्रेममन्दिर (आरा) से (स्व०) श्रीदेवेन्द्र प्रसाद जैन ने आपकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित की थीं। ऐतिहासिक स्त्रियाँ, महिलाओं का चनवर्चित्व, आदर्श कहानियाँ आदि आपकी प्रसिद्ध पुस्तकें हैं। एक सर्वाङ्गसुन्दर विशाल अभिनन्दन-ग्रन्थ भी आप को अर्पित हुआ है।

अद्यावधि, अनुसंधानों के आधार पर, आरम्भ से उन्नीसवीं शती तक की बिहारी हिन्दी सेविकाओं के विवरण हमें इससे अधिक प्राय: उपलब्ध नहीं होते। वास्तव में, इस दिशा में अभी और अधिक अनुसंधान की आवश्यकता है। संभव है, भविष्य के साहित्यिक अनुसंधानों से उक्त कालावधि के और भी नाम प्रकाश में आ जायँ। हम उन दिनों की प्रतीक्षा में हैं।

बीसवीं शती का युग एक प्रकार से नारी-जागरण का युग है। इस युग में महिलाओं के बीच शिक्षा का प्रचार प्रसार बड़ी तीव्र गति से हुआ। फलतः राजनीति, साहित्य, संस्कृति आदि विभिन्न क्षेत्रों में पुरुषों के साथ महिलाएँ भी बड़े उत्साह के साथ आयीं। यही कारण है कि बिहार के हिन्दी-संसार में, इस युग में, अनेक हिन्दी-सेविकाओं के नाम मिलते हैं। इनमें कुछ ने साहित्य की रचना कर, कुछ ने पत्रों का सम्पादन कर और कुछ ने अहिन्दी क्षेत्रों में हिन्दी प्रचार कर साहित्य सेवा का अद्भुत आदर्श प्रस्तुत किया। साहित्य की सृष्टि करनेवाली बिहारी महिलाओं की सूची बहुत लम्बी है। इनमें जिन्होंने अपनी रचनाएँ प्रकाशित कराकर हिन्दी जगत् में अपना स्थान बना लिया है, उनमें कुछ प्रमुख के नाम इस प्रकार हैं— आशा सहाय (सारन), कौशल्या देवी विद्यालंकार (पटना), ताराrani श्रीवास्तव (सारन), द्रौपदी देवी (मुजफ्फरपुर), प्रकाशवती नारायण (सारन), मणि देवी (पटना), मिथिलेशकुमारी (गया), राधा प्रसाद (सहरसा), ललिता देवी

चौहान (गया), विन्ध्यवासिनी देवी (सारन), विमला देवी 'रमा' (शाहाबाद), सुशीला सिन्हा (सारन), (स्व०) शकुन्तला देवी (सारन), शकुन्तला श्रीवास्तव (पटना), शान्ति रमण (मुजफ्फरपुर), शारदा देवी वेदालंकार (भागलपुर) और (स्व०) शिवकुमारी देवी (पलामू)। इनमें भागलपुर के सुन्दरवती महिला महाविद्यालय की आचार्या शारदादेवी वेदालंकार ने हिन्दी-साहित्यानुसंधान की दिशा में बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इन्होंने इंगलैंड जाकर उन्नीसवीं शती के हिन्दी-गद्य पर बड़ा गहन अनुसंधान किया। इनका वह शोधपूर्ण ग्रन्थ जब प्रकाशित होगा, तब साहित्य के एक अभाव की पूर्त्ति होगी। इनके अतिरिक्त इधर पटना-विश्वविद्यालय से 'प्रेमचन्द के नारी पात्र' पर शोध-कार्य करके श्रीमती गीतालाल ने भी पी० एच्० डी० की उपाधि प्राप्त की है। इनका शोध-प्रबन्ध शीघ्र ही प्रकाश में आ रहा है। इन दोनों विदुषियों के अतिरिक्त आज और भी अनेक बिहारी महिलाएँ विभिन्न विश्वविद्यालयों के माध्यम से इस दिशा में प्रवृत्त हैं। इनमें अक्षयवती मेहरा, आयशा अहमद, इन्दु सिन्हा, उषा जायसवाल, कमलादेवी, कल्याणेश्वरी वर्मा, गीतादेवी श्रीवास्तव, चम्पा वर्मा, निशारानी सिन्हा, रुक्मिणी तिवारी, शशिप्रभा करपटने, सम्पत्ति आर्याणी, स्नेहलता देवी आदि के नाम उल्लेख्य हैं। पटना विश्वविद्यालय की एम० ए० छात्रा के रूप में भी इधर निम्नांकित पाँच महिलाओं ने हिन्दी के विभिन्न पक्षों पर प्रशंसनीय शोध-प्रबंध प्रस्तुत किये हैं—इन्दु सिन्हा, लक्ष्मीनिधि सिंह, राजेश्वरी सिंह, सुशीला देवी और उमा सिन्हा। इस वर्ष के अंत तक पद्रह और छात्राओं के प्रबंध तैयार हो जायेंगे। यह क्रम रुकेगा नहीं। भविष्य में और भी छात्राएँ इस ओर प्रवृत्त होंगी, ऐसी आशा है।

वर्त्तमान शती में जो बिहारी महिलाएँ स्फुट साहित्य की रचना कर हिन्दी-साहित्य को समृद्ध करती रही हैं, उनकी नामावली यह है—आशा किशोर (मुजफ्फरपुर), आशा माथुर (पटना), आशा सहाय (सारन), इन्दुबाला देवी (पूर्णिया), इन्दुबाला वर्मा (सारन) इन्दिरा देवी (मुँगेर), इन्दिरा नारायण 'प्रियदर्शिनी' (सारन), स्व० इन्दिराबाला देवी, कमल आर्य (पटना), कमला सिन्हा (मुँगेर), कमलेश्वरी देवी (सारन), कलावती त्रिपाठी (पटना), कांतिकुमारी सिंह 'सखी' (मुँगेर), कांति करवाल (मुँगेर), कुमुदिनी शर्मा (मुजफ्फरपुर), गीतादेवी श्रीवास्तव (शाहाबाद), चन्द्राकुमारी (सहरसा) चम्पा वर्मा (सारन), जहाँआरा बेगम (चाइबासा), प्रफुल्लकुमारी 'सुषमा' (बेगूसराय), पार्वतीकुमारी 'बिन्दु' (राँची), पुष्पलता अग्रवाल (भागलपुर), मालतीबाई 'विदुषी' (गया), रत्नाकुमारी शर्मा (मुजफ्फरपुर), राजदेवी कुँवरि विशारदा (शाहाबाद), राधिका देवी श्रीवास्तव (शाहाबाद), (स्व०) रामकिशोरी देवी (सारन), रामदुलारी सिंह (मुजफ्फरपुर), रामप्यारी देवी (मुँगेर), रामस्नेही देवी (दरभंगा), रामेश्वरी कुमारी (मुँगेर), लक्ष्मीपति देवी (गया), लक्ष्मीपति देवी 'लीला' (दरभंगा), वासन्ती गुप्ता (मुजफ्फरपुर), विद्याप्रकाश 'बिजली' (मुँगेर), विनोदिनी शर्मा

लेखिका के रूप में इनका ही नाम पहले-पहल मिलता है। इनसे पूर्व कोई बिहारी गद्य-लेखिका नहीं मिलती। इस दृष्टि से इनका भी विशेष महत्त्व माना जाना चाहिए। इन्हीं की तरह दूसरी देवी के सम्बन्ध में भी केवल इतना ही ज्ञात है कि ये 'बड़हगोढ़िया' (दरभंगा) के महाराजकुमार श्रीनिनेश्वर सिंह (बनमाली बाबू) के द्वितीय पुत्र बाबू नन्दनजी की धर्मपत्नी थीं। इन्होंने मैथिली में बहुत से गीतों की रचना की थी, जिनमें आज कुछ ही उपलब्ध हैं। उन्हीं में से एक की पंक्तियाँ देखिए—

जय जय तारा भव दुख हारा,
जय जगदम्बा नाम तोहारा।
जय काली जय त्रिपुर-सुन्दरी,
जय तारिनि अहि हारा॥
तोहर अन्त केओ नहि पावए,
महिमा अगम अपारा।
चारि भुजा तिन नयन विराजित,
परिहन बर बघछाला॥
फनि भूषन मुण्डमाल विराजए,
पदयालीढ़ अधारा।
दासि 'जनेश्वरि देवि' दिसि हेरिअ,
धएल चरन गहि तोरा॥

उन्नीसवीं शती-उत्तरार्द्ध तक आते-आते हिन्दी-सेवी महिलाओं की संख्या में, पूर्वकाल की अपेक्षा, पर्याप्त वृद्धि दीख पड़ती है। इस कालावधि में सोलह महत्त्वपूर्ण नाम मिलते हैं, जिनमें निम्नांकित तीन के जन्म-मरण की निश्चित तिथियाँ भी ज्ञात हैं— १. जागेश्वरी देवी, २. चन्द्रावली और ३. शारदाकुमारी देवी। पहली देवी का जन्म सन् १८६० ई० में हुआ था। ये रसूलपुर-चैनवा (सारन) निवासी श्रीकेदारनाथ की धर्मपत्नी थीं। कहते हैं, इन्हें समस्त 'गीता' कण्ठस्थ थी। सर्चलाइट प्रेस (पटना) से, दोहों में रचित, 'नारद-उपदेश' नामक इनकी एक पुस्तक निकली थी। ये सन् १९४२ ई० में, ८२ वर्ष की आयु में, परलोक सिधारीं। दूसरी देवी आरा (शाहाबाद) के प्रसिद्ध आर्यसमाजी वकील रामनेवाज लालजी की पुत्री और समस्तीपुर (दरभंगा) के श्रीगिरिवरधरजी, वकील की धर्मपत्नी थीं। इनका जन्म सन् १८८४ ई० में आरा शहर के महादेवा मुहल्ले में हुआ था। इन्होंने नारी-सुधार आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया था और एक बार बिहार-प्रान्तीय महिला संघ की उपसभानेत्री भी चुनी गयी थीं। ये भाषण-कला में भी प्रवीणा थीं। इन्हें हिन्दी के साथ संस्कृत का भी अच्छा ज्ञान था। समस्तीपुर के आजाद प्रेस से इनकी एक हिन्दी-कविता-पुस्तक 'उद्गार' नाम से प्रकाशित हुई थी। इन्होंने 'शिव शिवा' नाम से एक पद्य नाटक की भी रचना की थी, जो छप न सका। ये भी

सन् १९४२ ई० में ही दिवंगत हुईं। इनके सुपुत्र प्रोफेसर उमेशचन्द्र 'मधुकर', एम्० ए० हिन्दी के सुपरिचित साहित्यसेवी हैं। उत्त तीसरी देवी का जन्म सन् १८८८ ई० में मुजफ्फरपुर के घिरनीपोखर मुहल्ले में हुआ था। इन्होंने छपरा के 'महिला दर्पण' पत्र का सम्पादन भी कुछ दिनों तक किया था। 'मर्यादा', 'चाँद', 'गृहलक्ष्मी' आदि पत्रिकाओं में इनकी रचनाएँ (लेख, कहानियाँ, कविताएँ आदि) बराबर छपा करती थीं। इनकी कहानियों का एक संग्रह 'गल्प-विनोद' प्रकाशित भी हुआ था। इनका निधन काल अज्ञात है।

उपर्युक्त तीन हिन्दी-सेविकाओं के अतिरिक्त शेष के नाम इस प्रकार हैं—१. गोप्य-अली, २. प्यारी देवी, ३. भवानी देवी, ४. भोगवती देवी, ५. मालतीबाई, ६. रत्नावती शर्मा, ७. राजदेवी कुँवरि ठकुराइन, ८. रामदुलारी देवी, ९. सिया सहेली, १०. श्यामबाला देवी और ११. सितावबाई बिरादर। इन ग्यारह महिलाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—१. गोप्य अली 'बिरनामा' (गया) की रहनेवाली थीं। इनका विवाह हुआ था, अपहर (सारन)-निवासी बालकृष्ण देवव्रतजी से। ये श्रीसीतारामजी की परमानुरागिणी थीं। अयोध्या के महात्मा श्री १०८ रामरसरंग-मणिजी इनके धर्मगुरु और वहीं के प्रसिद्ध रामायणी सन्त श्रीजानकीशरणजी 'स्नेहलता' इनके विद्यागुरु थे। स्नेहलताजी भी इन्हीं के जिले के थे। इन्होंने हिन्दी में भक्तिरसात्मक काव्य-रचना प्रचुर मात्रा में की थी। इनकी रचनाओं में इनका नाम 'गोप्य अली' के अतिरिक्त 'ज्ञानकला' भी मिलता है। कुल मिलाकर इन्होंने अठारह हिन्दी-पुस्तकों की रचना की थी, जिनमें आठ प्रकाशित हुई थीं। २. प्यारी देवी या 'प्यारीजी' गया के नईगोदाम मुहल्ले की थीं। इनकी ब्रजभाषा की अनेक समस्यापूर्तियाँ 'साहित्यमाला' में प्रकाशित हुई थीं। ३. भवानी देवी भी गया के ही जमीन्दार श्रीदुर्गाप्रसाद की धर्मपत्नी थीं। इन्होंने हिन्दी में पाँच पुस्तकों की रचना की थी। लगभग ७० वर्ष की आयु में सिमला में इनका देहान्त हुआ। ४. भोगवती देवी 'गोगरी' (मुँगेर) के श्रीसत-राम की पत्नी थीं। इन्होंने हिन्दी में भक्ति प्रधान स्फुट कविताओं की रचना की थी। इनकी 'सतमत-प्रकाशिका' पुस्तक प्रकाशित भी हुई थी। ५. मालतीबाई गया-निवासिनी थी। इन्होंने भी समस्यापूर्ति करने में प्रसिद्धि पायी थी। 'साहित्यमाला' में 'विदुषी' उपनाम से इनकी अनेक समस्यापूर्तियाँ मिलती हैं। ६. छपरा की रत्नावती शर्मा महा-महोपाध्याय पंडित रामावतार शर्मा की धर्मपत्नी और आचार्य नलिनविलोचन शर्मा की माता थीं। हिन्दी में इनके कुछ लेख (लखनऊ) में 'माधुरी' और 'सुधा' में निकले थे। ७. राजदेवी कुँवरि ठकुराइन गया की थीं। इन्होंने हिन्दी में स्फुट कविताएँ रची थीं। 'पटना-कविसमाज' से इनकी रचनाएँ प्रकाश में आयीं। ८. रामदुलारी देवी महेन्द्रू, (पटना) की थीं। 'रसिक-मित्र' (कानपुर) में इनकी अनेक कविताएँ 'सती' उपनाम से प्रकाशित हुई थीं। ९. सियासहेली जी 'दरौली' (सारन) के कालिकाप्रसादजी

(मुजफ्फरपुर), विभा (भागलपुर). विमला किशोर (सारन), सत्यवती (पूर्णिया), सत्यरत्नाकुमारी 'आर्या', सरोजिनी बाला (शाहाबाद), सावित्री शुभा, (पटना), सुदर्शना देवी (पटना), सुधा वर्मा (भागलपुर), सुधा सिंह (मुजफ्फरपुर), सुशीला दत्त (पटना), सुशीला देवी (मुंगेर), सुरबाला 'सुलोचना' (मुंगेर), शकुन्तला देवी अग्रवाल (चम्पारन), शकुन्तला सिन्हा 'करुणा' (सारन), शकुन्तला शर्मा 'शशि' (मुजफ्फरपुर), शान्ता-कुमारी 'सती' (गया), शान्ताकुमारी 'सुमन' (सहरसा), शान्ता सिन्हा (पटना) शान्ति पाण्डेय (सारन), शारदा लारा (दरभंगा), शैलजा कुमारी श्रीवास्तव (सारन) आदि। इनमें से अनेक की कई पुस्तकाकार रचनाएँ प्रकाशनार्थ तैयार हैं। अहिन्दी-भाषी जहाँआरा बेगम के ही दो कहानी-संग्रह प्रकाशकों की प्रतीक्षा में हैं। इसके अतिरिक्त इधर एक दूसरी मुस्लिम महिला आयशा अहमद हिन्दी-सेवा की ओर प्रवृत्त हुई हैं। हिन्दी को इनसे भी बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं। एक मलयाली महिला टी० भारती अम्मा भी, जिनका विवाह दक्षिण भारत के पुराने हिन्दी-प्रचारक चम्पारन-निवासी श्रीदेवदूत विद्यार्थी से हुआ है, भारती विद्यार्थी के नाम से, पिछले अनेक वर्षों से, हिन्दी सेवा करती आ रही हैं। हिन्दी में इनके लिखे मौलिक उपन्यासों के अतिरिक्त मलयालम से अनूदित कई उपन्यास भी प्रकाशित हुए हैं। इनकी उल्लेख्य पुस्तकें हैं—'चुनौती', 'हार या जीत', 'दो सेर', 'मलयानिल' आदि।

वर्त्तमान शती में जिन बिहारी महिलाओं ने इस प्रान्त के बाहर जाकर हिन्दी प्रचार में हाथ बँटाया है, उनमें दो के नाम विशेष रूप से उल्लेख्य हैं—उर्मिला सहाय (सारन) और विद्या देवी (मुंगेर)। प्रथम ने रूस की राजधानी मॉस्को में लगभग तीन वर्ष रहकर हिन्दी प्रचार कार्य किया। 'सोवियत-नारी' के सम्पादन में सहयोग देते तथा वहाँ की आकाशवाणी में उद्घोषिका का कार्य करते हुए इन्होंने कई रूसी पुस्तकों का हिन्दी-रूपान्तर भी किया। द्वितीय भी मद्रास में रहकर दक्षिण-भारत में वर्षों हिन्दी-प्रचार करती रही हैं। पत्र-सम्पादन की दिशा में कुछ बिहारी महिलाओं के जो नाम मिलते हैं, वे इस प्रकार हैं—कान्तिकुमारी सिंह 'सखी' (मुंगेर), चन्द्रमणि देवी (दरभंगा), रामदुलारी सिंह (मुजफ्फरपुर), शान्तिकुमारी 'सुमन' (सहरसा)। उक्त महिलाओं ने क्रमशः 'प्रभात', 'आदर्श महिला', 'कन्या साहित्य', 'मजदूर' तथा 'सर्जना' का सम्पादन किया है या कर रही हैं।

प्रस्तुत लेख में जिन महिलाओं के नामोल्लेख हुए हैं, उनके अतिरिक्त और भी कितनी ही देवियाँ साहित्य-सेवा में संलग्न होंगी, जो कालक्रम से प्रकाश में आ जायँगी। मैंने बहुत ही संक्षेप में सिर्फ बानगी दिखायी है। आज बिहार में बड़ी तेजी से स्त्री शिक्षा का प्रचार बढ़ रहा है। अनेक महिलाएँ अपनी छात्रावस्था से ही आज किसी न किसी रूप में हिन्दी-सेवा कर रही हैं। विभिन्न हाइ स्कूलों और कॉलेजों से प्रकाशित पत्रिकाओं के सम्यक् निरीक्षण से भी नयी प्रतिभा की अनेक किरणें झलकती हैं तथा यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भविष्य में बिहारी महिलाएँ, हिन्दी सेवा की दृष्टि से भी, किसी अन्य प्रान्त या राज्य की महिलाओं से पीछे नहीं रहेंगी।

●●

'समिति' का बालवाडी-वर्ग

'समिति' के प्राङ्गण में बालवाडी के बच्चों की व्यायाम क्रीडा

देशरत्न डाक्टर राजेन्द्र प्रसादजी की सहधर्मिणी स्वर्गीया श्रीमती राजवंशी देवी
(परिचय पृ० ३२१)

विहार की प्रमुख महिलाएँ

भारतीय नारी का आदर्श :: श्रीमती राजवंशी देवी

श्रीवाल्मीकि चौधरी, भूतपूर्व राष्ट्रपति के भूतपूर्व निजी सचिव, चिरैयाटाँड, पटना

श्रीमती माता राजवंशी देवीजी हमारे भूतपूर्व राष्ट्रपति देशरत्न डॉक्टर राजेन्द्र प्रसादजी की धर्मपत्नी थीं। आप आधुनिक भारत की सर्वप्रथम सौभाग्यशालिनी महिला थीं। आप संपूर्णरूपेण भारतीय आदर्श और संस्कृति की उपासिका थी। भारतीय ग्रामीण गृहस्थ परिवार की आदर्श स्वरूपा देवी और सादगी तथा सरलता की मूर्त्ति के रूप में आप अद्वितीय थीं। प्रजासत्तात्मक भारत संघ के सर्वप्रथम राष्ट्रपति पूज्य राजेन्द्र बाबू की अर्द्धाङ्गिणी होने का स्पृहणीय सौभाग्य प्राप्त करके आपने पूर्वजन्म की तपस्या का जो परिचय दिया था, वह प्रत्येक भारतीय महिला के लिए प्रेरणाप्रद है। आपका शुभजन्म दलन छपरा (बलिया-जिला, उत्तरप्रदेश) में और विवाह जीरादेई (सारन, बिहार) में हुआ था। उस समय पति पत्नी ने तेरह बसन्त भी नहीं देखे थे। आप आदि से अन्त तक भारतीय सभ्यता और संस्कृति के आदर्श पर आरूढ रहीं। समय और परिस्थिति के अनुसार आप कभी बदलीं नहीं। आज उच्चपदस्थ अधिकारियों की पत्नियाँ अपने पति की शोभा बढाने के लिए जुलूस जलसे में आधुनिक ढंग से साथ देना ही अपना कर्त्तव्य मान बैठी हैं, पर आपने—भारत के सर्वोच्च आसन पर अपने पतिदेव के विराजमान् रहते हुए भी—उस पथ को कभी नहीं अपनाया। जिस तरह अपने गार्हस्थ्य जीवन के आरम्भ में आपने अपने पति को खिलाकर ही खाना अपना श्रेष्ठ कर्त्तव्य माना और अपने इस आदर्श की छाप परिवार पर भी छोड़ना उचित समझा, उसी तरह इस आदर्श को आप बड़ी खूबी के साथ अन्त तक निबाहती रहीं। आपमें जो स्वाभाविक शील लज्जा संकोच आदि महिलोचित गुण थे, उनका महत्त्व वे नारियाँ नहीं समझेंगी जो भारतीय सभ्यता संस्कृति को छोड़ पश्चिमी रंग में रँग गयी हैं—जो विदेशी चाल ढाल की नकल करके अपनी शक्ल बिगाड़ बैठी हैं—जिनसे परिवार में विशृंखलता आयी है।

पूज्य राजेन्द्र बाबू को एक बार मद्रास के किसी महिला समाज में जाना पड़ा। उस समय हिन्दू कोड बिल की चर्चा चल रही थी, जिसके बारे में अपनी असहमति प्रकट करते हुए राजेन्द्र बाबू ने कहा था—"हमारे यहाँ प्राचीन काल से स्त्रियों का अपना उचित स्थान सामाजिक रीति-रिवाजों से निर्धारित है। वे घर की देवी और स्वयं लक्ष्मी मानी गयी हैं। उनका आदर्श और कर्त्तव्य उन्हें बताने की आवश्यकता नहीं है। उनका जीवन रीति-रिवाजों और पारिवारिक सम्बन्धों की परंपरा से इस तरह बँधा हुआ है कि उसे हम

आधुनिक सभ्यता के साँचे में ढालना चाहें और उन्हें कानून के पाश में बाँधना चाहें, तो यह उचित नहीं होगा। उनको क्या चाहिए—क्या नहीं, यह वे स्वयं जानती हैं और वे कितनी सुशीला हैं, यह हमारा पुराना इतिहास बता रहा है। हिन्दू कोड-बिल या इस तरह का कोई कानून भी हमारे सामाजिक एवं गार्हस्थ्य-जीवन की शृंखला को तोड़ देगा।" ऐसा कहते हुए उन्होंने साफ शब्दों में स्वीकारा था कि 'ये सारी बातें मुझे अपनी पत्नी से ही मालूम हुई हैं, मैं उनको भारतीय नारी का वास्तविक प्रतिनिधि मानता हूँ। उनकी राय में भी यह हिन्दू कोड-बिल उनके रीति-रिवाजों तथा घरेलू प्रेम संबंधों में बाधक है। वे कहती हैं कि मैं इस बिल को नापसन्द करती हूँ और समझती हूँ कि भारत की बहुसंख्य नारियाँ इसे नापसन्द करती हैं।'

पूजनीया माता राजवंशी देवी ने सद्‌गृहस्थ परिवार के आदर्शों को आत्मसात् कर रखा था। आप स्वयं घर के बहुत से काम अपने हाथों करती-कराती थीं। रसोई बनाने के लिए रसोइया भले ही हो, किन्तु चावल दाल को अमनिया करना तथा साग-भाजी को एक-एक करके स्वयं चुनना और सुधारना और तब रसोइया को बनाने देना—ऐसा एक रिवाज-सा अपने घर में आपने लगा रखा था। यह काम नौकर-रसोइये पर इसलिए आप नहीं छोड़ती थीं कि वे कहीं जल्दी में या आलस्यवश बिना देखे-चुने न बना दें। रसोई बनाने के पहले रसोईघर को स्वच्छ करना, फिर स्वयं को साफ सुथरा बनाकर वहाँ प्रवेश करना तथा बगैर स्नान किये रसोईघर में प्रवेश न करना—इसका खयाल आप बराबर रखती थीं। साथ ही, परिवार को प्रेम के एक ही धागे में बाँधकर रखना भी आप अपना उत्तरदायित्व समझती थीं। परिवार या वंश में विशृंखलता न आने देने के लिए आप जीवन भर सचेष्ट और सजग रहीं। राजेन्द्र बाबू के परिवार में यह एक बड़ी चीज है कि घर की सभी स्त्रियाँ एक साथ रहती हैं और इसका श्रेय आपको ही है। इसमें सबसे बड़ी जवाबदेही आप अपनी ही समझती थीं। आपने त्याग और तपस्या, संयम और नियम से इसे अन्त तक निबाहा भी। पूज्य राजेन्द्र बाबू जीवन-पर्यन्त सार्वजनिक पुरुष रहे। उनकी पत्नी होने के नाते माताजी कुछ सामाजिक तथा राष्ट्रीय कार्य करना भी अपना कर्त्तव्य मानती रहीं। आप आमोद-प्रमोद, सभा सम्मेलन आदि में केवल पति की प्रतिच्छाया बनकर ऊपरी दिखावे के लिए जाना पसन्द नहीं करती थीं। लेकिन, आप उनके उन सार्वजनिक कामों में साथ देती थीं, जो स्त्री समाज के कल्याण के लिए होते थे। अपने पतिदेव को निजी घरेलू काम के फिजूल झमेले से दूर रखने का आपने सदैव प्रयास किया और इस बात पर बराबर ध्यान रखा कि उनको सार्वजनिक काम करने में घर-गृहस्थी की ओर से किसी प्रकार की बाधा न हो। सार्वजनिक काम करनेवालों की पत्नी का क्या कर्त्तव्य है, यह आप भली भाँति जानती थीं और उसके अनुसार ही चलती रहीं। सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं की सफलता बहुत-कुछ उनकी पत्नी के आचार-विचार, कार्य पद्धति तथा उदारता पर निर्भर करती है—इस रहस्य को आपने खूब समझ लिया था। अत, सार्वजनिक

देशरत्न डाक्टर राजेन्द्र प्रसादजी की सहधर्मिणी स्वर्गीया श्रीमती राजवंशी देवी
(परिचय पृ० ३३१)

कार्यों में लगे व्यक्ति की गृहस्थी की जवाबदेही अगर पत्नी उठा ले, तो यह किसी भी सार्वजनिक सेवा से कम नहीं है। गांधीजी या राजेन्द्र बाबू इतने बड़े स्वय न होते, और न इतना बड़ा काम कर सके होते, यदि वे घर-गृहस्थी के प्रपंच चक्र में अपने को फँसाये रखते। गृहस्थी में रहकर भी वे इससे जजाल से मुक्त रहे और देश की चिरस्मरणीय सेवा कर सके, इसका श्रेय उनकी आदर्श पत्नी को ही है। इतना ही नहीं, घर के आडम्बरों को कम करके परिवार को फिजूलखर्ची से बचाना और इस तरह घर का नैतिक स्तर ऊँचा उठाना आपका ध्येय था। इस तरह की बारीक और गहन बातों पर आपका ध्यान सदैव रहा।

पूज्य राजेन्द्र बाबू को आपसे बहुत बड़ा बल और सहारा मिलता रहा है, जिससे वे सुदीर्घ काल तक निश्चिन्तता से राष्ट्र की महती सेवा कर सके हैं। व जबसे गांधीजी के सपर्क में आये और चर्खा चलाने लगे, तबसे नियमित कताई करना माताजी के जीवन का भी अग बन गया। कताई के सिद्धान्तों को आप अच्छी तरह समझती थीं। आप एक सत्यनिष्ठ धर्मपरायण महिला थीं। पूजा पाठ में बहुत विश्वास और श्रद्धा रखती थीं। बगैर पूजा किये भोजन नहीं करती थीं। राजेन्द्र बाबू के साथ आप और कहीं जायें या न जायँ, किन्तु वैसे स्थानों मे अवश्य जाती रहीं, जो धार्मिक महत्त्व के होते थ। राजेन्द्र बाबू राष्ट्र के सार्वजनिक क्षेत्र मे अतिशय महान् माने जाते हैं। उनके जीवन में उनकी गृहदेवी का क्या स्थान है, यह उनके एक वक्तव्य से मालूम होता है। उन्होंने एक बार अपने जन्म-दिन के अवसर पर शय्या त्यागते ही अपनी डायरी के एक पन्ने में लिखा—"मैं कितना सौभाग्यशाली हूँ कि मुझको देश और समाज की ओर से इतना सम्मान मिला। गुरु के रूप में बापू मिले और धर्मपत्नी क रूप में राजवंशी देवी मिलीं, जिनकी सहायता और सहयोग से ही मै देश की थोड़ी-बहुत सेवा कर सका। अब मुझे कुछ नहीं चाहिए। ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि अब वह मुझको सब चीजों से हटाकर अपनी ओर ले चले और जबतक यहाँ रखना हो, आध्यात्मिकता की ओर चलने दे।" प्रत्येक भारतीय नारी की यह अभिलाषा रहती है कि वह अपने पति के सुख दु ख में निरतर साथ रहे—अन्तिम साँस तक सौभाग्यवती बनी रहे—दूध पूत से भरी पूरी रहे और वश की वृद्धि देखते हुए अपने वशधरों के लिए विरासत के रूप में अनुकरणीय आदर्श छोड़ जाये। आपकी यह अभिलाषा अच्छी तरह पूरी हुई। भारत की महिला जो कुछ चाहती है और जो कुछ चाह सकती है, वह सब पूर्णरूपेण आपको प्राप्त हो चुका था। अपने तपोमय जीवन से आपने भारतीय महिलाओं के समक्ष जो उज्ज्वल आदर्श उपस्थित किया, वह पवित्र और महान् है।

गत ६ सितम्बर (१९६२ ई०) रविवार को पूर्वाह्न में आपका देहान्त पटना मे हो गया। गगा-तट पर सैनिक सम्मान के साथ चन्दन चिता पर आपका दाह-संस्कार हुआ। आपके दो सुपुत्र—श्रीमृत्युञ्जय प्रसाद और श्रीधनञ्जय प्रसाद—तथा अनेक पौत्र पौत्रियाँ हैं। आप-जैसी सदा सुहागिन महिला का दिव्य जीवन सदियों तक नारी समाज को पुण्याचरण का प्रकाश देता रहेगा।

राजेन्द्र बाबू की बड़ी बहन : हम सबकी 'फूआ जी'

श्रीवाल्मीकि चौधरी , चिरैयाटाँड़, पटना

पूज्य राजेन्द्र बाबू की बड़ी बहन श्रीमती भगवती देवी उनसे पन्द्रह साल (जन्म १८६६ ई०) बड़ी थीं। उनके जन्म के पहले ही इनका ब्याह एक बड़े धनाढ्य कायस्थ-परिवार में बाबू गुलजार सहाय से हुआ था। शादी के थोड़े ही दिनों बाद 'जीरादेई' गाँव में ही बाबू गुलजार सहाय का आकस्मिक निधन हो गया। इनके बाल विधवा होने से सारा परिवार शोक-सन्तप्त हो उठा। तभी से ये मायके में ही रहने लगीं। पूजा पाठ और व्रतोपवास तथा तीर्थाटन ही इनके जीवन का लक्ष्य बन गया। ईश्वर भक्ति और सार्वजनिक सेवा में ही इनका सारा समय लगने लगा। लोक-सेवा में तत्पर रहते हुए भी ये पूजा पाठ और व्रत पालन में सदा नियमित रूप से दृढ़ रहीं। गृह परिवार और गृहस्थी के कामों में भी इनका सहज अनुराग बना रहा। विवाह, यज्ञ, मंगलोत्सव आदि में कुल परम्परागत विधि-व्यवहार और लोकाचार की इन्हें पूरी जानकारी थी। अपने परिवार और कुटुम्बियों में ये 'प्रधान' और 'सरदार' मानी जाती थीं। प्रायः समाज में विधवाएँ सर्वत्र शुभ कर्म से अलग रखी जाती हैं, पर इनके सम्मान में कभी किसी प्रकार की कमी नहीं हुई। घर के सभी कल्याणकारी अनुष्ठानों में इनका सहयोग बड़े आदर के साथ लिया जाता था।

भारत का कोई मुख्य तीर्थस्थान नहीं, जहाँ ये न गयी हों। जहाँ-कहीं भी गयीं, बिहार की छाप छोड़ आयीं। बिहार की प्रमुख बोली भोजपुरी से तीर्थवासियों को परिचित कराने में इनका विशेष हाथ रहा। जहाँ दूसरों के पूजा-पाठ और रीति रिवाज का अंश लेती थीं, वहाँ अपनी ओर से भी बाँट देती थीं। तीर्थमन्दिरों में बड़ी श्रद्धा से देवी देवताओं के चरणोदक से नेत्राञ्जन करतीं, तल्लीनता से प्रार्थना और परिक्रमा करके महाप्रसाद लेतीं और उत्साहपूर्वक दक्षिणा भी देती थीं। राजेन्द्र बाबू का परिवार रहन-सहन, खान-पान रीति रस्म, विचार और परिपाटी में शुद्ध सनातनी है तथा घर की स्त्रियों में पर्दा प्रथा की भी प्रबलता रही है। अपने धर्मनिष्ठ परिवार की पौराणिक विशेषताओं को सुरक्षित रखने में फूआ जी का मन निरन्तर सावधान रहता था। किन्तु महात्मा गांधी ने जब बिहार में राष्ट्रीय स्वतन्त्रता-संग्राम का श्रीगणेश किया, तब इन्होंने पर्दा प्रथा को तोड़कर बिहारी महिलाओं के नेतृत्व का झंडा उठाया। इस तरह देशोद्धार के लिए राजनीतिक क्षेत्र में उतरकर इन्होंने सबसे आगे बढ़ पर्दा प्रथा को करारी चुनौती दी। इनके कुलीन परिवार की वंशानुगत परम्परा देखते हुए अपने आप में यह बहुत बड़ा काम था, और पर्दा प्रथा के खिलाफ ठोस कदम उठाकर इन्होंने बिहार की महिलाओं को प्रोत्साहन देते हुए बतला दिया कि वे किस प्रकार सिर पर आँचल रखकर भी गांधीजी के आन्दोलन में जुट सकती हैं। बड़ी बूढ़ी होने पर भी इनमें ऐसा साहस और उत्साह देखकर अनेक महिलाएँ सुशीलता के साथ घर-घर घूमकर नर-नारियों से शुद्ध खादी पहनने का अनुरोध करने लगीं। इन्हीं से

राजेन्द्र बाबू की बड़ी बहन :: हम सब की 'फूआ जी' स्वर्गीया श्रीमती भगवती देवी
(परिचय : पृ० ३३४)

उन्हें ऐसी प्रेरणा मिली कि वे ग्रामोद्योग को जाग्रत् करने के लिए गाँव गाँव में कुटीर-शिल्प के धन्धे में अपना सारा समय लगाने लग गयीं।

ये बिहार-विधानसभा की सदस्या भी रह चुकी थीं। उससे जो पैसे मिले, उन्हें जमा रखकर अपने गाँव (जीरादेई) में श्रीलक्ष्मीनारायणजी का एक सुन्दर मन्दिर बनवा दिया। इनकी यही आन्तरिक इच्छा थी। इनकी यह भी कामना थी कि राजेन्द्र बाबू के सामने ही मेरा प्राणान्त हो। इनकी भगवद्भक्ति के पुण्य प्रभाव से इनकी यह दोनों आकांक्षाएँ पूरी हो गयीं। इनका अत्यन्त पवित्र जीवन ऐसा प्रभावशाली था कि जो कोई महिला इनके संसर्ग में आयी, वह इनके आदर्श से अनुप्राणित हुए बिना न रही। जीवन भर कभी मछली मांस और प्याज लहसुन नहीं खाया। किसी प्रकार की मादक वस्तु का कभी स्पर्श तक न किया। यहाँतक कि इस युग में रहते हुए भी साबुन का कभी उपयोग नहीं करती थीं। रेलयात्रा इन्हें बहुत करनी पड़ी, पर गाड़ी के डब्बे में इन्होंने कभी भोजन नहीं किया। हमेशा शुद्ध आसन पर बैठकर खाने का नियम निबाहती रहीं। बिना स्नान ध्यान और पूजा-पाठ किये कभी अन्न जल ग्रहण नहीं किया। पूजा पाठ के सामान के सिवा दूसरी कोई चीज खरीदती भी नहीं थीं। असहयोग आन्दोलन के समय जो खद्दर धारण करने का व्रत लिया, उसे अन्त तक बड़ी निष्ठा से निबाहा। हर एक काम और बात बात में स्वच्छता एवं पवित्रता पर इनका विशेष ध्यान रहता था। इसीलिए, छुआछूत भी मानती थीं। किन्तु, महात्मा गान्धी के सम्पर्क में आने के बाद अस्पृश्यता के भाव-विचार को पाप तो मानने लगीं, पर सब तरह की सफाई पर इनका आग्रह बराबर बना रहा। गान्धीजी समझते थे कि इनका सबसे बड़ा त्याग है अपने भाई को देश सेवा के लिए खुशी-खुशी भेंट कर देना और उनकी लोक सेवा में स्वयं भी यथाशक्ति सहायता करते रहना, जिसको आखिरी साँस तक ये करती रहीं।

पूज्य राजेन्द्र बाबू तो अपनी छात्रावस्था से ही देश के सार्वजनिक कामों में गहरी दिलचस्पी रखते रहे और स्वदेशी-आन्दोलन के आरम्भ से ही उन्होंने स्वदेशी-व्रत का अटल संकल्प ग्रहण कर लिया था, पर स्वाधीनता-संघर्ष का आरम्भ होते ही जब वे सार्वजनिक जीवन के क्षेत्र में उतर पड़े, तब उनके सर्वस्व समर्पण का प्रत्यक्ष प्रतिबिम्ब उनके अपने परिवार पर भी पड़ा। उनके आदर्श अग्रज लोकसेवक श्रीमहेन्द्र प्रसादजी ने भी उनके इस अभिनव अभियान में भरपूर सुविधा सहायता देने की उमंग-भरी उदारता दिखायी और फूआ जी तो बिहार के नारी समाज में राष्ट्रीय चेतना जगाने के साथ-साथ राजेन्द्र बाबू के जीवन और शरीर की रक्षा में भी निरन्तर तत्पर रहीं। हरदम ये उनकी तन्दुरुस्ती की निगरानी करती रहती थीं और उनके स्वास्थ्य और जीवन को ये राष्ट्र की पूँजी मानती रहीं। क्यों न हो, सारा परिवार ही गान्धीजी की तपस्या की आँच में तपा हुआ था। राजेन्द्र बाबू ने सार्वजनिक जीवन में प्रवेश पाने के साथ ही अपने पर्दाप्रथी परिवार को देशसेवा के उन्मुक्त क्षेत्र में सबसे आगे ला खड़ा किया और अपनी बहन, पत्नी, पुत्रवधू आदि को गान्धीजी के

साबरमती-आश्रम में भेज दिया। यह परिवार तो पुराना सनातनधर्मी है ही—इसके सारे काम काज हिन्दू रीति-नीति के अनुसार ही होते चले आये और हर मौके पर बात बात में पूजा-पाठ का आयोजन होता ही रहता है, किन्तु महात्माजी के निकटतम सम्पर्क से यह परम्परागत धर्म भावना और भी निखर गयी। बुआ जी और माता राजवंशी देवी इस धर्मभावना की प्रतीक थीं। इन दोनों देवियों की देख-रेख में राजेन्द्र बाबू के अनमोल जीवन का संरक्षण बड़ी सावधानता के साथ सदा होता रहा, किन्तु नियति की प्रबलता से आज इन दोनों के अभाव का कष्ट उनके कोमल हृदय को हर घड़ी महसूस हो रहा है। बुआ जी तो अपने प्राणों से भी अधिक उनपर नेह-छोह और माया-ममता रखती थीं। उनकी अस्वस्थता में डॉक्टर-वैद्य की दवा से अधिक इन्हीं की निगरानी काम करती थी। इन्हीं की देखभाल से 'सो दवा न एक परहेज' की कहावत स्पष्ट चरितार्थ होती थी। इनके परोपकारी स्वभाव और निष्कपट हृदय के कारण समाज में सर्वत्र इनका बहुत आदर होता था। स्पष्टवादिनी तो ऐसी थीं कि सच या दो टूक बात कहने में कभी हिचकती नहीं थीं। शिक्षाप्रद या उपदेशप्रद बातें बेलौस ढंग से कह डालती थीं। समस्त बिहार के लोग इन्हें 'बुआ जी' ही कहा करते थे।

इनके पुण्य-प्रताप से इनकी मृत्यु बड़े शानदार ढंग से हुई। उस समय इनके पास इन पंक्तियों का लेखक भी मौजूद था। जब इनकी अन्तिम साँस चल रही थी, इनके परिवार की सभी छोटी-बड़ी स्त्रियाँ इनकी शय्या के पास उपस्थित थीं। स्वयं राजेन्द्र बाबू भी वहीं बैठे रामधुन कर रहे थे। एक कोने में लड़कियाँ रामायण पाठ कर रही थीं। जीरादेई गाँव से दो-तीन बड़े-बड़े पंडित आ गये थे, जो श्रीमद्भागवत का पाठ कर रहे थे। राजेन्द्र बाबू के दोनों सुपुत्र—मृत्युञ्जयजी और धनञ्जयजी—तथा उनके प्रिय भतीजा श्रीजनार्दन प्रसादजी चिकित्सा एवं सेवा शुश्रूषा में संलग्न थे। उन लोगों ने डॉक्टर और नर्स से अनुरोध किया कि अब सुई लगाकर इन्हें अन्तिम क्षण में पीडित न किया जाय, बल्कि पूर्ण शान्ति के साथ इन्हें स्वर्गयात्रा करने दें। पंडित ने जब गो दान कराने के क्षण का ध्यान दिलाया, तब यह कठिनाई सामने आयी कि राष्ट्रपति-भवन की तीसरी मंजिल पर गाय कैसे लायी जाय। अतः, उस कमरे के नीचे गाय लायी गयी और उसकी पूँछ में सूत बाँधकर बुआ जी के हाथ में पकड़ाया गया। इतने में राष्ट्रपतिजी के अंगरक्षक स्वयं अपने कंधे पर एक बछड़ा तिमंजिले कमरे में ले आये। इस तरह गोदान होते ही उनके प्राण पखेरू उड़ गये। यह घटना सन् १९६० ई० की २५ जनवरी को रात में घटी थी। दूसरे ही दिन २६ जनवरी का राष्ट्रीय महोत्सव होनेवाला था, जिसमें राष्ट्रपतिजी का सम्मिलित होना अनिवार्य रूप से आवश्यक माना जाता है। अतः, राजेन्द्र बाबू यथानियम सैनिक सलामी लेने गये ही। जनता की अपार भीड़ यह न समझ पायी कि राष्ट्रपतिजी का यह आन्तरिक रूप नहीं—बाह्य रूप है, क्योंकि मातृ-तुल्य बड़ी बहन के बिछुड़ने का दुःख अपने हृदय में दबाये हुए वे जन समूह के उल्लासपूर्ण स्वागत को चुपचाप स्वीकारते चले जाते थे। मृत्यु-समाचार

केवल प्रधान मंत्री नेहरूजी को ही दिया गया था। इसलिए, जब राष्ट्रपतिजी शाही जुलूस से लौटकर आये, तब फूआ जी का शव उस कमरे से निकाला गया। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने खादी से ढकी और फूलों से लदी लाश पर कई पुष्प-गुच्छ चढ़ाये। सबकी आँखें गीली थीं। राष्ट्रपतिजी नौ बजे सुबह जिस रास्ते से राष्ट्रीय समारोह में गये थे, उसी रास्ते से शव का जलूस दिल्ली के निगमबोध घाट की ओर चला। शाम हो रही थी; पर भीड़ छँटी न थी। राष्ट्रपतिजी का सादा वेश देख लोग और भी विस्मित थे। आगे-पीछे मोटर-साइकिल पर फौजी पायलट चल रहे थे। घाट पर आरम्भ से अन्त तक राष्ट्रपतिजी बैठे रहे।

फूआ जी सन् १९५० ई० में २६ जनवरी की दुपहरी में दिल्ली के राष्ट्रपति-भवन में आयी थीं और ठीक दस वर्ष बाद उसी तारीख की दुपहरी के बाद वहाँ से उनका मृत शरीर बाहर निकला। अपने परिवार और सम्बन्धियों तथा प्रान्त-भर के लोगों में इनका जैसा आदर-मान रहा, वैसा ही इन्हें मरने पर भी मिला। इनका सम्मानपूर्ण जीवन-मरण इनकी जीवन-भर की तपस्या और देशसेवा की सफलता का संकेत करता है। राष्ट्रपतिजी ने अपने एक वरिष्ठ मित्र के समवेदना सूचक पत्र के उत्तर में लिखा था—"मेरे लिए तो वे बहन से भी अधिक माता के तुल्य थीं। आजीवन उनकी ममता की छाया हम सब पर बनी रही। जितना बन पड़ा, उन्होंने देश की भी सेवा की। बापू के साथ उन्होंने काफी पैदल यात्रा की। उनका सारा जीवन साधना और त्याग-तपस्या का रहा। जबतक जीवित रहीं, लगन और निष्ठा से अपना कर्त्तव्य करती रहीं। उनकी धार्मिक निष्ठा अपूर्व थी। उनकी ममता में सब एकाकार हो जाता था। हमारे परिवार के लिए इस उम्र में भी वे मजबूत स्तम्भ थीं। आज वह स्नेह की कड़ी टूट गयी। इस विछोह से मेरा हृदय भी टूटता है। पर आप-जैसे साथियों से ही मुझे सहारा और बल मिलता है।" राजेन्द्र बाबू के ये कारुणिक और मार्मिक वाक्य ही 'हम सबकी फूआ जी' का वास्तविक महत्त्व प्रकट कर देने के लिए यथेष्ट हैं।

रशीदन बीबी

श्रीसुहैल अज़ीमाबादी, आकाशवाणी, पटना

बिहार के लोग सदा से पुराने खयाल पर जमे रहनेवाले हैं। किसी मामले में वे तेज़ी से आगे क़दम नहीं बढ़ाते, औरतों के मामले में तो वे और भी कट्टर रहे हैं। औरतों को जरा भी आज़ादी नसीब नहीं थी, घर की चारदीवारी के अन्दर ही उनकी ज़िन्दगी शुरू होकर खत्म हो जाती थी। और, समझा जाता था कि घर से बाहर दुनिया में औरतों के लिए कुछ भी काम नहीं, उनके लिए शिक्षा भी जरूरी नहीं समझी जाती थी। जो औरतें पढ़ती-लिखती थीं, वे भी धर्म की कुछ ज़रूरी बातों से ज्यादा कुछ भी नहीं जानती थीं, और लिखना तो बस पाप ही था। और तो और, अपने पति को चिट्ठी लिखना पाप समझा जाता था। ऐसी परिस्थिति में कोई प्रतिभाशील महिला पैदा भी होती, तो उसकी

प्रतिभा कुम्हलाकर रह जाती, और वह कुछ भी न कर पाती। इसी कारण से बिहार के इतिहास में किसी ऐसी महिला का नाम नहीं मिलता, जिसने कोई बड़ा काम किया हो, और बिहार से बाहर भी मशहूर हो। लेकिन, इसका मतलब यह नहीं कि बिहार में कोई ऐसी महिला पैदा ही नहीं हुई, जिसने बड़ा काम किया हो। कुछ महिलाएँ ऐसी जरूर पैदा हुईं, जो घर की चारदीवारी के अन्दर और बन्धनों में रहकर भी बड़े काम कर गयीं, उन्होंने अँधेरे में ज्ञान के दीप जलाये और दूसरों तक रोशनी पहुँचायी। अब जब शिक्षा फैल रही है, तब पता चलता है कि इन महिलाओं ने अपने समय में कितना बड़ा काम किया था, ऐसा काम, जो आज भी आसान नहीं, उनका जलाया हुआ दीप आज भी रोशनी दे रहा है और बराबर देता रहेगा। 'रशीदन बीबी' भी ऐसी ही एक महीयसी महिला थीं। उनका असल नाम 'रशीदतुन्निसा बेगम' था। उन्होंने घर के अन्दर रहकर भी वह काम किया, जो कभी भुलाया नहीं जा सकता। वे पहली महिला थीं, जिन्होंने उर्दू में उपन्यास (नॉविल) लिखा। उनसे पहले किसी महिला ने कम-से-कम उर्दू में नॉविल नहीं लिखा था। इस नॉविल का नाम 'इसलाहुन्निसा' (स्त्री सुधार) था। जब नॉविल छपा, तब इसके कई संस्करण हुए और देश भर में इसकी प्रशंसा हुई। अब यह किताब बाजार में नहीं मिलती। यह नॉवेल उन्होंने सन् १८८१ ई० में लिखा था, पर छपा सन् १८९४ ई० में। वे सन् १८५५ ई० में, पटना में पैदा हुई थीं। उनके पिता शमसुल ओलमा खान बहादुर सैयद वहीदुद्दीन सदर आला थे। वे बड़े विद्वान् और प्रगतिशील पुरुष थे। रशीदन बीबी के एक भाई शमसुल ओलमा नवाब सैयद इमदाद इमाम असर थे, जो अपने समय के बड़े विद्वान्, कवि और आलोचक थे। इन्हीं नवाब इमदाद इमाम के बेटे 'सर अली इमाम' और 'हसन इमाम' थे, जो देश के बड़े बैरिस्टर और मशहूर नेता हुए और बड़ा नाम भी कमाया। रशीदन बीबी इन दोनों की फूफी थीं।

एक चिराग से दूसरा चिराग जलता है। इस कहावत को रशीदन बीबी ने पूरा कर दिखाया। उनके पिता ने उन्हें अच्छी शिक्षा दिलायी और जब उन्हें मौका मिला, उन्होंने औरों को भी पढ़ाना शुरू किया। अपनी शादी से पहले भी वे घर पर रिश्तेदार लड़कियों को पढ़ाती थीं। जब उनकी शादी मौलवी यहया साहब वकील से हुई, तब उनको काम करने का मौका मिला। यहया साहब भी प्रगतिशील आदमी थे और शिक्षा-प्रचार के काम में अपनी पत्नी का दिल बढ़ाया। रशीदन बीबी ने अपने घर पर एक छोटा-सा मकतब लड़कियों के लिए कायम किया। पहले तो उन्होंने आप ही पढ़ाना शुरू किया, पर जल्द ही लड़कियों की संख्या बढ़ने लगी। तब उन्होंने कुछ और भी पढ़ी-लिखी औरतों को बुलाकर काम करने को कहा। वे शहर में लोगों के घरों में जा-जाकर माँ बाप से कहतीं कि अपनी लड़कियों को पढ़ने के लिए भेजें। उनके शौहर मौलवी यहया अपने शहर के बड़े अच्छे वकील थे। शहर में उनका बड़ा मान था। रशीदन बीबी सदर-आला साहब की बेटी और नामी वकील की पत्नी थीं। फिर, उनका अपना भी नाम था। उनके

कहने से शरीफ मुसलमान घरानों में शिक्षा का चलन हुआ। धीरे-धीरे यह मदरसा बढ़ने लगा। उस समय बिहार के गवर्नर सर फ्रेज़र थे। उनकी स्त्री लेडी फ्रेज़र ने सन् १६०६ ई० में स्कूल को जाकर देखा और रशीदन बीबी के काम की बड़ी तारीफ़ की। इससे उनका दिल और भी बढ़ा। उन्होंने स्कूल को बढ़ाने का फैसला कर लिया। उस ज़माने में पटना में एक रईस थे बादशाह नवाब। वे धनी आदमी थे। उनकी कोई सन्तान भी न थी। रशीदन बीबी ने उनको ख़त लिखा। लड़कियों का बड़ा स्कूल क़ायम करने में उनकी मदद चाही। बादशाह नवाब ने उनकी मदद की और उन्हें रुपये भी दिये और काफ़ी ज़मीन भी दी। बेतिया की महारानी ने एक बहुत बड़ा मकान स्कूल के लिए दिया। इसीलिए, स्कूल का नाम तो बादशाह नवाब रिज़वी-स्कूल पड़ा; मगर इस स्कूल के मकान का नाम 'बेतिया-हाउस' पड़ गया, अब यह स्कूल तरक्की करके 'बादशाह नवाब रिज़वी ट्रेनिंग कॉलेज' है, जहाँ केवल लड़कियों और महिलाओं को शिक्षा दी जाती है। पर, अब भी इसका दूसरा नाम 'बेतिया हाउस' ही मशहूर है। पटना सिटी में गंगा के किनारे यह बड़ी खुशनुमा जगह है। अगर यह कहा जाय कि रशीदन बीबी बिहार में नारी-शिक्षा की अगुआ थीं, तो बिलकुल सच्ची बात होगी। उनसे पहले बिहार की किसी महिला ने नारी-शिक्षा के लिए इतना काम नहीं किया था। यह महिला-विद्यालय जो बिहार में नारी-शिक्षा का सबसे पहला केन्द्र है, उनकी सबसे बड़ी यादगार है। यह बड़े दुःख की बात है कि वह सड़क भी उस महीयसी महिला के नाम पर नहीं, जिस पर यह कॉलेज है।

रशीदन बीबी के सामने एक मिशन था—औरतों का सुधार। इसी कारण उनका नॉविल भी सुधारवादी है। यह नॉविल उन बुराइयों पर प्रकाश डालता है, जो उस समय हमारे समाज में, खासकर मुसलिम समाज में थीं। इसमें एक लड़की 'बिसमिल्लाह' की कहानी है, जिसकी माँ अनपढ़ थी। यह भी माँ-जैसी ही बनकर रह गयी। इसका विवाह अपने नाते के एक लड़के 'इमतयाज़' से हुआ। वह पढ़ा-लिखा और नेक लड़का था, पर इसने अपने गँवारपन से उसे तंग-तंग कर डाला। वह घबरा गया। आख़िर, उसने इसको इसके माँ-बाप के घर भेज दिया और फैसला कर लिया कि तलाक़ देकर उससे छुटकारा हासिल कर लेगा। पर, उसी समय बिसमिल्लाह की मुलाक़ात नाते की एक पढ़ी-लिखी महिला से हो गयी। उसने उसे समझाया बुझाया और पढ़ने-लिखने पर लगाया। जब इसने पढ़-लिख लिया, तब इसे अपनी भूल का भी अनुभव हुआ। फिर, इसी महिला ने सारी बिगड़ी सुधारी और बिसमिल्लाह अपने पति के साथ सुख का जीवन बिताने लगी। इसीलिए, यह कहानी उस ज़माने में बड़ी दिलचस्प साबित हुई और जब यह नॉविल छपा, इसकी धूम मच गयी। घर-घर में यह उपन्यास पढ़ा जाने लगा। जल्दी जल्दी इसके कई संस्करण हुए। इस तरह आज से क़रीब अस्सी साल पहले बिहार की इसी महिला ने उर्दू में नॉविल लिखा। सारी ज़िन्दगी वे औरतों के सुधार और उनको आगे बढ़ाने के काम करती रहीं। आख़िर, सन् १६२६ ई० में ७१ साल की उम्र में इस दुनिया से सिधारीं।

उनके कई बेटे और बेटियाँ थीं, एक बेटा मो० सुलेमान बैरिस्टर थे। उनकी एक बेटी का विवाह कुम्हरी (पटना) के मीर अली करीम[1] के बेटे मीर रज़ा करीम से हुआ था, जिनकी बेटी लेडी अनीस इमाम हैं। मीर अली करीम कुम्हरी (पटना) के ज़मीन्दार थे, जिन्होंने सन् १८५७ ई० में बाबू कुँवर सिंह के साथ मिलकर अँगरेजों से लड़ाई की थी। उनकी सारी ज़मीन्दारी अँगरेजों ने ज़ब्त कर ली थी। खुद मीर अली करीम कई साल तक छुपे मारे-मारे फिरते रहे। बाबू कुँवर सिंह उन्हें भाई और अपनी बाँह-बाज़ू कहते थे।

तीन भगवद्भक्त महिलाएँ

श्रीसीताराम शरण रघुनाथ प्रसाद 'प्रेमकमल'; आर० एम्० एस्०, पटना

श्रीमती पार्वती देवी—आप बिहार के स्वनामधन्य अवधवासी सन्त श्रीसीताराम-शरण भगवानप्रसाद 'रूपकला' जी की माता थीं। मुबारकपुर (सारन) के मुंशी तपस्वी-लालजी की आप दूसरी सहधर्मिणी थीं। पति-पत्नी दोनों ही भगवद्भक्ति में लीन रहते थे। आप नियमित रूप से प्रति दिन शिव पार्वती की विधिवत् पूजा और अपने पतिदेव की सेवा अपने ही हाथों किया करती थीं। आप जैसी रूपवती थीं, वैसी ही धर्मपरायणा और पतिव्रता भी। आपके अनुरोध से आपके पति ने पुत्रेष्टि-यज्ञ बड़ी धूमधाम से किया। प्रसिद्ध है कि यज्ञ के अन्त में एक विद्वान् ब्राह्मण-दम्पती अचानक आ पहुँचे। उन्हें वैष्णव वेश में देख पति पत्नी ने उन्हें सादर भोजन कराया। चलते समय विप्रदेव ने यज्ञ का उद्देश्य पूछा। आप दोनों प्राणी अपना मनोरथ प्रकट कर उनसे आशीर्वाद माँगा। विप्र-दम्पती ने कहा कि तुम दोनों हम लोगों की पत्तलों से प्रसाद-स्वरूप कुछ अन्न-कण ले लो। आप दोनों व्यक्तियों ने श्रद्धापूर्वक प्रसाद ग्रहण किया। रात में मुन्शीजी ने सपने में राम-जानकी के दिव्य रूप की झाँकी देखी। वे भक्ति-विह्वल हो जाग उठे। आप भी उठकर पतिदेव से भाव-विभोर होने का कारण पूछने लगीं। उन्होंने आप से ज्योतिर्दर्शन की बात कही। दोनों ने आँखें बन्द करके ध्यानस्थ भाव से हाथ जोड़ 'रामचरितमानस' की यह चौपाई पढ़ी—'जानहु मोर मनोरथ नीके, बसहु सदा उर पुर सब ही के।' उसी समय आपके कानों में सीताजी की वाणी का यह स्वर गूँज उठा कि मैं ही भक्ति रूपिणी सन्तान होकर पुत्र के रूप में तेरी गोद भरूँगी। इस दैवी अनुभूति से दोनों आनन्द मग्न हो गये। दोनों को यह भी आभास मिल गया कि दिन में जो विप्र दम्पती आये थे, वे 'युगल-सरकार श्रीसीतारामजी' ही थे। भगवत्कृपा से सन् १८४० ई० में श्रावण कृष्ण नवमी को श्रीरूपकलाजी का शुभ जन्म हुआ। माता-पिता की भक्ति भावना ही साकार होकर प्रकट हुई। 'पुत्रवती जुबती जग सोई, रघुबरभक्त जासु सुत होई।' महात्मा तुलसीदास

---

१ मीर अली करीम के विशेष परिचय के लिए देखिए 'कुँवरसिंह अमरसिंह' (हिन्दी), प्र० बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पृ० १२६।

बालवाड़ी की संचालिका और बालवाडी वर्ग के कुछ शिशु
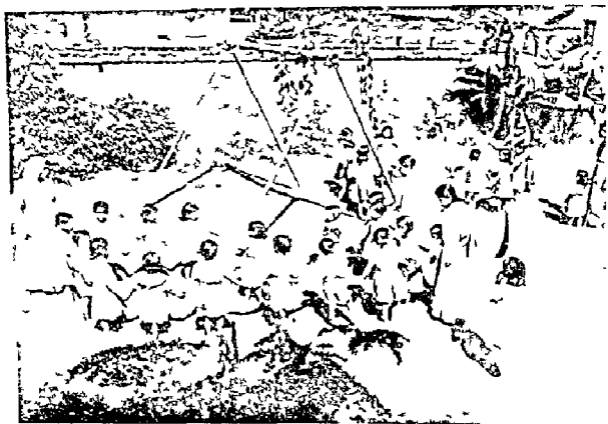
'समिति' के आँगन में बालवाड़ी के बच्चों का खेल कूद

उनके कई बेटे और बेटियाँ थीं, एक बेटा मो० सुलेमान बैरिस्टर थे। उनकी एक बेटी का विवाह कुर्जी (पटना) के मीर अली करीम[1] के बेटे मीर रज़ा करीम से हुआ था, जिनकी बेटी रोज़ी सलीम इमाम हैं। मीर अली करीम कुर्जी (पटना) के ज़मीन्दार थे, जिन्होंने सन् १८५७ ई० में बाबू कुँवर सिंह के साथ मिलकर अँगरेजों से लड़ाई की थी। उनकी सारी ज़मीन्दारी अंगरेजों ने ज़ब्त कर ली थी। खुद मीर अली करीम कई साल तक छुपे मारे-मारे फिरते रहे। बाबू कुँवर सिंह उन्हें भाई और अपनी दाहिना बाज़ू कहते थे।

तीन भगवद्भक्त महिलाएँ

श्रीसीताराम शरण रघुनाथ प्रसाद 'प्रेमकमल'; आर० एम्० एस्०, पटना

श्रीमती पार्वती देवी—आप बिहार के स्वनामधन्य ब्रजवासी सन्त श्रीसीताराम शरण भगवानप्रसाद 'रूपकला' जी की माता थीं। मुबारकपुर (सारन) के मुंशी तपस्वीलालजी की आप दूसरी सहधर्मिणी थीं। पति-पत्नी दोनों ही भगवद्भक्ति में लीन रहते थे। आप नियमित रूप से प्रति दिन शिव पार्वती की विधिवत् पूजा और अपने पतिदेव की सेवा अपने ही हाथों किया करती थीं। आप जैसी रूपवती थीं, वैसी ही धर्मपरायणा और पतिव्रता भी। आपके अनुरोध से आपके पति ने पुत्रेष्टि-यज्ञ बड़ी धूमधाम से किया। प्रसिद्ध है कि यज्ञ के अन्त में एक विद्वान् ब्राह्मण-दम्पती अचानक आ पहुँचे। उन्हें वैष्णव वेश में देख पति पत्नी ने उन्हें सादर भोजन कराया। चलते समय विप्रदेव ने यज्ञ का उद्देश्य पूछा। आप दोनों प्राणी अपना मनोरथ प्रकट कर उनसे आशीर्वाद माँगा। विप्र-दम्पती ने कहा कि तुम दोनों हम लोगों की पत्तलों से प्रसाद-स्वरूप कुछ अन्न-कण ले लो। आप दोनों व्यक्तियों ने श्रद्धापूर्वक प्रसाद ग्रहण किया। रात में मुन्शीजी ने सपने में राम-जानकी के दिव्य रूप की झाँकी देखी। वे भक्ति-विह्वल हो जाग उठे। आप भी उठकर पतिदेव से भाव विभोर होने का कारण पूछने लगीं। उन्होंने आप से स्वप्नदर्शन की बात कही। दोनों ने आँखें बन्द करके ध्यानस्थ भाव से हाथ जोड़ 'रामचरितमानस' की यह चौपाई पढ़ी—'जानहु मोर मनोरथ नीके, बसहु सदा उर पुर सब ही के।' उसी समय आपके कानों में सीताजी की वाणी का यह स्वर गूँज उठा कि मैं ही भक्ति रूपिणी सन्तान होकर पुत्र के रूप में तेरी गोद भरूँगी। इस दैवी अनुभूति से दोनों आनन्द मग्न हो गये। दोनों को यह भी आभास मिल गया कि दिन में जो विप्र दम्पती आये थे, वे 'युगल-सरकार श्रीसीतारामजी' ही थे। भगवत्कृपा से सन् १८४० ई० में श्रावण कृष्ण नवमी को श्रीरूपकलाजी का शुभ जन्म हुआ। माता-पिता की भक्ति भावना ही साकार होकर प्रकट हुई। 'पुनवती जुवती जग सोई, रघुवरभक्त जासु सुत होई।' महात्मा तुलसीदास

१ मीर अली करीम के विशेष परिचय के लिए देखिए 'कुँवरसिंह अमरसिंह' (हिन्दी), प्र० बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पृ० २३६।

बालवाड़ी की संचालिका और बालवाड़ी वर्ग के कुछ शिशु

समिति' के आँगन में बालवाडी के बच्चों का खेल कूद

की यह वाणी सार्थक हुई। सन् १८६४ ई० में प्रभु का ध्यान करते हुए आप साकेतवासिनी हुई थीं।

श्रीमती रामप्यारी देवी—आप श्रीरूपकलाजी की धर्मपत्नी थीं। आपका शुभ जन्म सारन (छपरा) जिले के 'रेपुरा' ग्राम में हुआ था। आपके पिता मुन्शी ठाकुरप्रसादजी एक नामी वकील थे। भारतीय स्वतन्त्रता की पहली लड़ाई सन् १८५७ ई० में हुई थी और उसी साल आपका शुभ विवाह श्रीभगवानप्रसादजी से हुआ था। उस समय वे छपरा-जिला-स्कूल के छात्र थे। वकील साहब लड़के की तलाश में उस स्कूल में गये, तो उनके सामने से ही एक सुशील बालक गुजरा, जो बगल में किताबें दबाये राम-नाम सुमिरता जा रहा था। उन्होंने उसी बालक को पसन्द करके उसके भक्त पिता से मिलकर शादी ठीक कर दी। उस समय देश में बड़ी हलचल थी। ब्याह होने की आशा नहीं की जाती थी। तब भी बड़ी शान्ति और सादगी से ब्याह हो गया। आप जब ससुराल में आयीं, तब दिन-रात अपने भक्त पति की सेवा में तन्मय रहने लगीं। आपको अपने पीहर में भी धर्माचरण की शिक्षा अपने साधु स्वभाव के माता-पिता से मिली थी। सास-ससुर और पति को अपनी सेवा से आपने ऐसा सन्तुष्ट किया कि गृह परिवार में सबकी हथेली का फूल बन गयीं। पति के आदेशानुसार आप भी निरन्तर पूजा पाठ और परोपकार में रत रहने लगीं। आपने कभी पति के जप-ध्यान में किसी तरह की बाधा नहीं होने दी। उनको बादाम का शर्बत और चने का सत्तू बहुत प्रिय था, इसलिए आप उनकी सुरुचि के अनुकूल पवित्रता से भोजन-सामग्री सदा प्रस्तुत रखती थीं। आपकी सच्ची पतिव्रता और ईश्वर भक्ति की अनुरागिणी समस्त रूपकलाजी आजीवन आपका प्रेमपूर्ण आदर करते रहे। वे सन् १८६३ ई० में सरकारी नौकरी छोड़कर जब अयोध्या जाने लगे, तब आपने पति की भक्ति-साधना में बाधा देना उचित नहीं समझा। आपकी ऐसी अनन्य पतिभक्ति का प्रभाव रूपकलाजी के हृदय पर इतना गहरा पड़ा कि आप जबतक जीवित रहीं, तबतक वे अपनी पेन्शन में से प्रतिमास आपको एकावन रुपये नियमित रूप से भेजते रहे। आपने कभी अयोध्या जाकर पति की तपस्या में बाधा नहीं डाली, बल्कि घर में ही पति के चित्र की पूजा में मगन रहा करती थीं। पति की प्रसन्नता ही आपके जीवन का लक्ष्य था। पति भी ऐसे आदर्श पुरुष थे कि वैरागी सन्त होने पर भी आपकी जीवन-रक्षा का बराबर ध्यान रखते थे। ऐसे आदर्श पति पत्नी धन्य हैं। आपका साकेतवास सन १८६० ई० में और आपके पति का सन् १६३२ ई० में हुआ था। आप सदासोहागिन रहीं।

श्रीमती बाचो देवी—आप 'दावाँ' (बिहिया, शाहाबाद) के मुन्शी हजारीलाल की पुत्री (जन्म १८६२ ई०) थीं। मुन्शीजी बंगाल के एक जमीन्दार के मैनेजर थे और परमभक्त वैष्णव होने से उनकी लालसा थी कि मेरी एकमात्र कन्या का ब्याह किसी धर्म-प्राण परिवार में रामभक्त लड़के से हो। रामकृपा से ऐसा ही हुआ। तेघरा (शाहाबाद) के श्रीसजीवन लाल धार्मिक स्वभाव और विचार के सदाचारी नवयुवक से आपका विवाह

हो गया। अपने पिता की प्रेरणा से आप बचपन से ही पूजा-पाठ और मनोरंजन किया करती थीं। ससुराल में भी यही क्रम चलता रहा। आपके छह पुत्र और तीन पुत्रियाँ हुईं। जब आपके पति भगवान् की आराधना करने लगते थे, तब आप अपने बच्चों को भी उनके पास चुपचाप बैठकर हाथ जोड़ने का उपदेश देती थीं और पति से कहती थीं कि इन्हें भी प्रभु की सेवा-विधि सिखाइए तथा अपने साथ ही कीर्तन-भजन भी कराइए। सन् १९१२ ई० में आपके बड़े लड़के प्लेग से बीमार पड़े। गाँव-भर के कहने पर भी आप घर छोड़ बाहर झोपड़ी में नहीं गयीं। अपने पति को 'रूपकला' जी के पास अयोध्या भेजा। वहाँ से महात्मा रूपकला का आशीर्वाद लेकर लौटते समय रास्ते में एक जगह एक चिकना-चमकीला पत्थर अनायास उन्हें मिल गया। उसी पर लाकर वे रोज पूजने लगे। रामकृपा से लड़का तो सातवें दिन अच्छा हो गया, मगर वह सुन्दर पत्थर गायब हो गया। यह बात पटना हाइकोर्ट के जज सर ज्वालाप्रसाद ने अपने गाँव (मैंहसरा, बिहिया) में सुनी। उन्होंने मुन्शीजी को बुलाकर सब हाल सुना और आश्चर्य प्रकट किया कि ईश्वर की लीला विचित्र है तथा यह भी कहा कि सन्तों के आशीर्वाद से अनहोनी बात भी होती है। सन् १९२१ ई० के असहयोग-आन्दोलन में महात्मा गान्धी और पूज्य राजेन्द्र बाबू बिहार-प्रान्त का दौरा करते हुए 'बेलौटी' (शाहपुर, शाहाबाद) ग्राम की सभा में भाषण करने गये थे, तो आप पति के साथ उन महापुरुषों के दर्शन के लिए वहाँ गयी थीं। आप कहा करती थीं कि ये दोनों नेता राम लक्ष्मण हैं और अँगरेजी रावण राज्य का संहार करेंगे। आपने जीते-जी स्वराज्य देख लिया। निन्नानबे साल की उम्र होने पर आपने कहा कि अगले साल मैं रामजी की शरण में जाऊँगी। गत वर्ष (१९६१ ई०) २१ अप्रैल (शुक्रवार) को पौने पाँच बजे शाम (वैशाख शुक्ल ६) को आप चल बसीं। आपकी शय्या के सामने राम-पंचायतन का चित्रपट था। एक ओर हरिकीर्त्तन और दूसरी ओर श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस का पाठ हो रहा था। अन्तिम क्षण तक आप सचेत रहीं और हरदम राम-राम रटती ही रह गयीं। आस-पास सारे परिवार के स्त्री पुरुष घेरे हुए थे, उन लोगों से भी बराबर कहतीं कि रामधुन करते रहो। रामजी में आपकी ऐसी अनन्य भक्ति थी कि जीवन-काल में तीर्थयात्रा के लिए कहने पर सदा यही कहती थीं कि जहाँ मेरे प्रभु राम हैं, वहीं सब तीर्थ और अयोध्या है। अन्तिम दिन तक आपका तन मन स्वस्थ रहा। स्वयं गंगा-स्नान तथा देव-दर्शन को पैदल जाती थीं। घर का कामकाज भी कर लेती थीं। पटना में ही आपका प्राणान्त हुआ था।

श्रीमती अघोरकामिनी देवी

श्रीदिगम्बर झा

श्रीमती अघोरकामिनी देवी का जन्म सन् १८५६ ई० (बँगला संवत् १२६३, वैशाख) में, बंगाल के चौबीस-परगना जिले के श्रीपुर ग्राम में, हुआ था। आपके पिता

श्रीविपिनचन्द्र वसु और पति श्रीप्रकाशचन्द्र राय बड़े पुण्यात्मा और परोपकारी व्यक्ति थे। श्रीराय आबकारी इन्सपेक्टर से डिपुटी मजिस्टर हुए थे। वे ब्रह्मसमाजी और ईश्वरोपासक थे। आप भी ब्रह्मसमाज की उपासिका थीं। शिक्षिता न होने पर भी आप अन्तर के आलोक और ज्ञान के प्रकाश से दीप्त थीं। पश्चिम बंगाल के भूतपूर्व मुख्य मंत्री और भारत-प्रसिद्ध पीयूषपाणि चिकित्सक श्रीविधानचन्द्र राय (स्व०) आपके ही सुपुत्र थे। आपके नाम पर पटना में 'अघोरकामिनी-शिल्पालय' नामक महिलोपयोगी संस्था सन् १६३८ ई० में स्थापित हुई थी, जो आज भी बिहार-वासिनी महिलाओं में हस्तशिल्प की शिक्षा का प्रचार कर रही है। आप दोनों पति पत्नी के नाम पर खजांची रोड (पटना-४) में एक 'अघोर-प्रकाश-शिशु-सदन' नामक बालवाड़ी संस्था भी है। यह आपके निजी निवास-गृह में ही है। इसके लिए उक्त श्रीविधानचन्द्र राय ने एक न्यास (ट्रस्ट) भी बना दिया है। इसका संचालन श्रीमती सुषमा सेनगुप्त करती हैं। इसमें छोटे बच्चों को उपयोगी शिक्षा दी जाती है। उक्त शिल्पालय का निजी स्वतंत्र भवन म्यूजियम रोड पर है।

श्रीमती विन्ध्यवासिनी देवी

आपका जन्म दरियापुर मोर ग्राम (नवादा, गया) में, विक्रमाब्द १६३६ (सन् १८८२ ई०) में, हुआ था। आप अपने पिता मुन्शी पोषणलाल की एकमात्र पुत्री हैं। आपके तेरह भाई हुए, जिनमें एक विश्वेश्वरदयालुजी ही जीवित रहे, जिनके सुपुत्र श्रीनागेश्वरप्रसाद 'नगीना' अपने क्षेत्र के एक कर्मठ कार्यकर्त्ता हैं। जब आप सात वर्ष की थीं, तभी आपका ब्याह पलटपुरा (पटना) के मुन्शी शिवचरण लाल वकील के पुत्र नववर्षीय श्रीअम्बिकाचरण से हुआ था। आपके पति जब जापान से 'माइनिङ्ग इञ्जीनियरिङ्ग' की शिक्षा प्राप्त कर तीन साल पर (१६०७ ई० में) स्वदेश लौटे और उसी समय गया-निवासी श्रीपरमेश्वर लाल भी इङ्गलैंड से बैरिस्टर होकर आये, तब इन दोनों की प्रथम विदेश-यात्रा के कारण सामाजिक बहिष्कार का आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। अपने पति का साथ देने में आपने अपूर्व साहस दिखाया। उनके साथ घर से निकलीं, तो फिर घोर संकटों का सामना करते रहने पर भी कभी घर नहीं लौटीं। उस समय 'माइनिङ्ग' की कद्र कम थी, अतः आपके पति को प्राइवेट कम्पनियों और देशी रजवाड़ों में भटकना पड़ा, जिससे आपको भी उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बम्बई आदि में पति के साथ ही कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं। उत्तरप्रदेश में आप आर्यसमाज के सम्पर्क में आयीं। पर, तब भी मूर्त्तिपूजा से आपकी आस्था न डिगी। किन्तु, रूढ़िवादिता और अन्धविश्वासों को आपने ठुकरा दिया। सन्तानों की मृत्यु हुई, अर्थकष्ट सहना पड़ा; पर न कभी कोई मनौती मानी और न झाड़फूँक या टोटके में विश्वास किया। छिन्दवाड़ा (म० प्र०) और झालरापाटन (रा० स्था०) में रहते समय नारी-समाज में जोरदार भाषण करके बाल-विवाह, पर्दा, अशिक्षा आदि पर स्त्रियों को प्रकाश देती रहीं। सन् १६१६ ई० के अप्रैल

में आपको बापू के दर्शन बम्बई में हुए। उनसे आपको सिद्ध मंत्र मिल गया। कुछ दिन बम्बई में ही श्रीमती अवन्तिका बाई गोखले आदि के साथ रहकर आपने प्रचार-कार्य किया, और सन् १६२१ ई० में बिहार लौटकर देशरत्न राजेन्द्र बाबू के नेतृत्व में देशसेवा करने लगीं। सन् १६२२ ई० (दिसम्बर) में, गया-काँगरेस में, पर्दा-प्रथा के बावजूद, स्वयंसेविका-दल संगठित कर आपने दक्षता से उसका नेतृत्व किया। उसके बाद विदेशी वस्त्र-बहिष्कार और शराबबन्दी के लिए धरना देने का काम आपकी देखरेख में होने लगा। आपके विश्वास पर भद्र परिवार के लोग भी शराब की दुकानों पर पिकेटिङ्ग करने के लिए अपनी अल्पवयस्का वधुओं और लड़कियों को आपके हवाले सौंप देते थे। सन् १६३० ई० के नमक-सत्याग्रह में आप महिला-दल के साथ गिरफ्तार हुईं और भागलपुर सेंट्रल जेल में छ महीने रहीं। खद्दर-प्रचार के आरम्भिक काल से ही आपने खादी को अपनाया और आजतक उस व्रत पर दृढ हैं। सन् १६३२ ई० में काँगरेस स्वयंसेविका-दल गैरकानूनी घोषित हुआ, तो आप अपने दल समेत स्वयंसेविका बनकर हजारीबाग जेल गयीं। जब विदेशी सरकार से समझौता होने पर बहुत से बड़े लोग विधान-सभा में गये, तब आपने विधायिका होने से इनकार कर दिया। कहा कि मुझे सेवा का पुरस्कार नहीं लेना है, पुरस्कार तो स्वराज्य ही होगा। आप भारतीय काँगरेस कमिटी की सदस्या भी रह चुकी हैं। कराची, अहमदाबाद, नागपुर आदि के काँगरेस-अधिवेशनों में महिलाओं में आपका प्रमुख स्थान रहा। बिहार में चर्खा और खादी के प्रमुख प्रचारक श्रीलक्ष्मी बाबू के समय आपने घर-घर घूमकर और खादी-फेरी करके प्रचार-कार्य किया था। सन् १६३४ ई० से आप काशीवास कर रही हैं। श्री वहाँ भी श्री सम्पूर्णानन्दजी के साथ आपने देश और समाज की काफी सेवा की। वहाँ भी स्त्रियों को काँगरेस-मेम्बर और खादी-चर्खा की अनुरागिणी बनाने का सगठित प्रयास किया। काँगरेस के अध्यक्ष की हैसियत से जब प० जवाहरलाल नेहरू बनारस आये थे, तब आपके नेतृत्व में महिलाओं का बड़ा सुन्दर जुलूस उनके स्वागतार्थ गया था। पूज्य राजेन्द्र बाबू ने अपने संस्मरण में आपका नामोल्लेख करके आपको अमर कर दिया है।

श्रीमती शरनन बहन

इनका जन्म सन् १८६७ ई० में, भभुआ (शाहाबाद) में, हुआ था। इनका ब्याह सन् १६१२ ई० में जमानिया (गाजीपुर) में हुआ। सन् १६१५ ई० में ससुराल गयीं और सन् १६२२ ई० तक वहीं रहीं। विधवा होने पर अपने मायके में चली गयीं। सत्रह-अठारह साल तक वहाँ पर्दे में रहीं। इनके पिता बड़े खादीप्रेमी थे। उनके आग्रह से इनके मन में खद्दर और चर्खा बस गया था। बयालीस वर्ष की उम्र (सन् १६३६ ई०) में इनके परिवार के लोग तीर्थयात्रा पर निकले। ये भी उनलोगों के साथ गयीं। अयोध्या में इनको खादी और चर्खा के प्रचार में ही जीवन बिताने की अन्तःप्रेरणा हुई और ऐसी लगन लगी कि चुपचाप दरभंगा के लिए चल पड़ीं। वहाँ से टमटम (एक्का) पर श्रीलक्ष्मीनारायणजी के पास

'सिमरी' गयीं। वहाँ खादी-चर्खा का महिला-शिक्षण-शिविर चल रहा था। उसमें ये शामिल हो गयीं। सन् १९४० ई० में श्रीजयप्रकाशजी की धर्मपत्नी श्रीमती प्रभावती देवी चर्खा और खादी के माध्यम से बिहार की महिलाओं में नवजीवन सचार का काम करने लगीं। उन्हीं के सम्पर्क में आने से इनकी बहुत दिनों की अभिलाषा पूरी हुई। सन् १९४१ ई० से ये महिला-चर्खा-समिति (पटना) के सहारे बड़े मनोयोग से खादी-चर्खा का प्रचार-प्रसार करने में तत्पर हो गयीं। महात्मा गान्धी के इस रचनात्मक कार्यक्रम में इनकी श्रद्धा ऐसी जमी कि इस क्षेत्र में इनकी सच्ची सेवा का आदर बढ़ने लगा।

सन् १९३९ ई० में अपने परिवार से अलग होने पर ये तीन साल तक अज्ञातवास में रहीं। जब श्रीमती प्रभावती देवी के तत्त्वावधान में इनकी खादी-सेवा का क्रम स्थिर हो गया, तब इन्होंने अपने परिवार को सूचना दी और सन् १९४२ ई० में बिछुड़े कुटुम्बी फिर मिले। अब ये अपने घर में ही रहकर चर्खा-खद्दर की धुन में लगी हुई हैं। इनके आसपास के गाँवों में सात सौ चर्खे इन्हीं की देखरेख में चल रहे हैं। इसके सिवा 'महिला-शिल्प-संघ' और 'चर्खा-उद्योग-संघ' का संचालन भी इन्हीं के हाथ में है। जिस समय इनके पति ने खादी की दो साड़ियाँ इन्हें दी थीं, उस समय इन्होंने सन्दूक में बन्द करके रख छोड़ा था, क्योंकि उस समय इनको बारीक रंगीन कपड़े ही पसन्द थे, किन्तु पति के श्राद्ध के दिन इन्होंने सादा कपड़ा को पहनने के बदले उसी पति-प्रदत्त साड़ी को पहनने का हठ किया। आखिर, साड़ी का छपा किनारा फाड़कर उसी को पहना। इस तरह इनके पति ने इनके हृदय में खादी प्रेम की जो आग सुलगायी थी, वह उनके मरने पर वियोग की ज्वाला बनकर धधक उठी। उसीमें तपकर इनका जीवन-कञ्चन निखर दीप्तिमन्त हो उठा। अब नारी-समाज की सेवा ही इनकी तपस्या है।

श्रीमती रमावती देवी

ये गया के प्रसिद्ध जमीन्दार श्रीनन्दकिशोर लालजी की पुत्री हैं। इनका जन्म सन् १९०० ई० में हुआ और विवाह सन् १९१८ ई० में। पटना के प्रसिद्ध मुख्तार श्रीरघुवर दयाल (स्व०) के सुपुत्र श्रीकमलेश्वरी प्रसाद मुख्तार इनके पति थे, जो सन् १९३९ ई० में स्वर्गीय हो गये। इनके चार पुत्र और दो कन्याएँ हैं। विधवा होने पर इन्होंने बापू के पथ को अपनाया। चर्खा ही इनके जीवन का चिरसंगी बन गया। पटना में मुहल्ले-मुहल्ले इन्होंने चर्खा-प्रचार किया। घर-घर जाकर और रूई सूत की भी सुविधा देकर चर्खा चलाना सिखाने में अथक परिश्रम किया। सूत कातने-कतवाने में इनका ऐसा अदम्य उत्साह है कि न कभी थकती हैं, न निराश होती हैं। बुढ़ापे में भी इनकी कर्मठता और हिम्मत देखकर महिलाओं को स्वतः प्रेरणा मिलती है। सदा प्रसन्न और कार्यरत रहना ही इनका जीवन है। इस समय ये महिला-चर्खा समिति (पटना) के गृह उद्योग-विभाग की संचालिका हैं। इनकी सेवाएँ नयी पीढ़ी की नारियों के सामने अनुकरणीय आदर्श उपस्थित कर रही हैं।

श्रीमती प्रियंवदा नन्दक्यूलियार

श्रीमती मनोरमा श्रीवास्तव; संचालिका, महिला-चर्खा-समिति, पटना

इनका जन्म विक्रमाब्द १९५९ में आश्विन शुक्ल-नवमी (१० अक्टूबर, १९०२ ई०) को हुआ था। दरियापुर-गोर (गया) इनका ननिहाल है। इनके पिता मुन्शी अम्बिकाचरणजी पलटपुरा (बिहारशरीफ, पटना) के निवासी थे, जो जापान से 'माइनिङ्ग इञ्जीनियरिङ्ग' की शिक्षा प्राप्त कर चुके थे। इनका विवाह सन १९२० ई० में ६ फरवरी को गया के बैरिस्टर श्रीरामकिशोरलाल नन्दक्यूलियार से हुआ, जिन्होंने गान्धीवादी होने के कारण बैरिस्टरी की प्रैक्टिस नहीं की। इन्होंने सन् १९१९ ई० में ६ अप्रैल को बापू के सिद्धान्तों और विचारों को ग्रहण किया। गया में राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में काम करते हुए सन् १९२१ ई० से खादी-धारण का व्रत लिया। सन् १९४१ ई० में व्यक्तिगत सत्याग्रह करके जेल गयीं और सन् १९४२ ई० के भारत मुक्ति-आन्दोलन में भी जेल-यात्रा की। सन् १९४५ से १९५४ ई० तक माता कस्तूर बा-निधि' का काम करती रहीं। सन् १९५४ से १९५८ ई० तक इलाहाबाद में हरिजन-सुधार और अछूतोद्धार का काम किया। सन् १९५८ ई० से 'महिला-चर्खा समिति' (कदमकुँआ, पटना) में सेवा कार्य कर रही हैं। शुद्ध सेवा-व्रत में इनकी निष्ठा बड़ी उदात्त भावना की है।

श्रीमती विमला देवी 'रमा' साहित्यचन्द्रिका

श्रीपाण्डेय जगन्नाथप्रसाद सिंह; हिन्दी-मन्दिर, शीतलपुर (सारन)

इनका जन्म आरा के महादेवा मुहल्ले में, सन् १९०२ ई० में, हुआ था। इनके पिता श्रीभगवत सहाय आरा में आर्यसमाज के एक नेता थे। वे एक नामी वकील, सितार-वादक और संगीत-मर्मज्ञ भी थे। उनका घर उस युग के प्रसिद्ध उस्तादों का अड्डा था। स्त्री शिक्षा के हिमायती होने के कारण उन्होंने इनकी शिक्षा-दीक्षा पर विशेष ध्यान दिया। सन् १९१९ ई० में इनका विवाह डुमराँव राज के मुन्तजिम मुन्शी लक्ष्मीप्रसाद के कनिष्ठ पुत्र श्रीमदनमुकुन्दप्रसाद से हुआ। इनके ज्येष्ठ पुत्र श्रीसुधांशुकान्त रंजन (शिवाजी) का विवाह हिन्दी साहित्यसेवी श्रीशिवपूजन सहाय की कनिष्ठा कन्या से हुआ है। इनकी बड़ी बहन श्रीमती कमलादेवी 'कमल' आपके पति के अग्रज श्रीदेवेन्द्र प्रसाद (स्व०) से ब्याही गयी थीं। दोनों बहनें द्विवेदी युग में साहित्य-सेवा करती रहीं। कमलाजी तो गृहस्थी की व्यवस्था में व्यस्त हो गयीं, पर इन्होंने हिन्दी-पत्र पत्रिकाओं में लेख कवितादि लिखना जारी रखा। इनकी दो पुस्तकें प्रकाशित हैं—'शिक्षा-सौरभ' और 'विमलपुष्पाञ्जलि'। पहली तो बिहार में पाठ्य पुस्तक के रूप में भी स्वीकृत थी। दूसरी पुस्तक में कविता संग्रह है। 'शिशुजननी' आदि कई पुस्तकें अप्रकाशित पड़ी हैं। बिहार-हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तीसरे महाधिवेशन (सीतामढ़ी) में इनको 'साहित्य पर राष्ट्र का प्रभाव' शीर्षक निबन्ध के

लिए रजत पदक मिला था। इनकी बड़ी लड़की श्रीमती महाविद्या बी० ए०, बी० टी० अनेक वर्षों तक प्रयाग के एक महिला-विद्यालय में अध्यापिका रहकर इस वर्ष (सन् १९६२ ई० में) आगरा में ब्याही गयी हैं, वे भी संगीत वाद्य में बहुत निपुण हैं। इनके घर में खासी अच्छी जमीन्दारी थी, पर अब समय के फेर से अपने पति के साथ प्रयाग में कुछ जीविका-व्यवसाय करके त्रिवेणी सेवन करती हैं।

इन दोनों बहनों ने विवाह के बाद पर्दा प्रथा तोड़कर नारी-समाज मे साक्षरता और शिक्षा का प्रचार किया था। इन्होंने कई भद्र परिवारों की महिलाओं से पर्दा-बन्धन की झिम्मड़ छुड़वायी थी। इनकी सास सदा ठाकुरजी की पूजा सेवा मे लगी रहती थी और बड़े आचार-विचार से घर में ही विरक्ति के साथ रहकर हर साल तीर्थयात्रा करती थीं। वे हर महीने लगभग दो तीन सौ रुपये दान पुण्य में खर्च करती थीं। 'रमा' जी के देवर श्रीगुप्तेश्वरनाथ भी हिन्दी के पुराने कहानी लेखक हैं और कमलाजी के बड़े पुत्र प्रोफेसर राणाजी ने दर्जनों एकांकी नाटक लिखे हैं, तथा रंगमंच निर्देशन में भी बड़े दक्ष हैं।

श्रीमती कामाख्या देवी

आपका जन्म 'धुरलाख' (समस्तीपुर, दरभंगा) में सन् १९०३ ई० में हुआ था। आपके पिता श्रीविश्वेश्वरप्रसाद सिन्हा साधु प्रकृति पुरुष थे। आपके पति श्रीनवलप्रसाद (स्व०) पटना में ऐडवोकेट थे। आपको स्कूली शिक्षा तो न मिल सकी, पर जब बिहार में पर्दा प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन चल पड़ा, तब आप भी उसे जोरदार बनाने के लिए आगे बढ़ीं। सन् १९३० ई० में महात्मा गान्धी के भद्र अवज्ञा-आन्दोलन में आपने प्रमुख रूप से सहयोग किया। पिकेटिङ्ग (धरना) और खादी-बिक्री के लिए फेरी करने में आपका योगदान बड़े महत्त्व का रहा। सन् १९३२ ई० के सत्याग्रह में महिलाओं का संगठित जुलूस निकालने के अभियोग में आपको छ महीने का कठोर कारावास हजारीबाग सेण्ट्रल जेल में भोगना पड़ा। सन् १९३५ ई० में आप कांग्रेस की ओर से बिहार विधानसभा की विधायिका पटना-क्षेत्र से निर्वाचित हुई। आप ही बिहार की सर्वप्रथम विधायिका हैं। सन् १९४२ ई० के 'भारत छोड़ो'-आन्दोलन में जेल जानेवाले क्रान्तिकारी स्वतन्त्रता सैनिकों के परिवारों के भरण-पोषण के लिए आपने काफी दान दिया था।

आपके पति बिहार के एक बड़े विद्वान् अधिवक्ता थे जो सन् १९२० ई० से ही महात्मा गान्धी के भक्त और खादी के हिमायती हो गये थे। वे राजनीतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक क्षेत्र के सार्वजनिक कार्यों में बड़ी दिलचस्पी से हाथ बँटाते तथा मुक्तहस्त हो दान भी देते रहे। आपने भी अपने पति के आदर्शों का अनुकरण सच्ची कर्त्तव्य निष्ठा के साथ किया। आपके सुपुत्र श्रीसुरेन्द्रप्रसादजी पटना-हाइकोर्ट के ऐडवोकेट हैं। आपकी सेवावृत्ति आधुनिक नारियों के लिए शुभ प्रेरणा देनेवाली है।

स्थापना की थी, जो दो वर्षों तक चलकर कतिपय कारणों से बन्द हो गया।
का नाम श्रीसुधांशु भट्टाचार्य है, जो भट्टाचार्य रोड, पटना में रहते हैं। यह
का एक सम्मानित परिवार है। आपका शिक्षा-प्रेम, शिल्प-कला के प्रति
और समाज-सेवा-कार्य महिलाओं के लिए प्रेरणादायक है।

श्रीमती प्रभावती देवी

श्रीमती मनोरमा श्रीवास्तव ; संचालिका, महिला-चर्चा-समिति, पटना

आपका जन्म सन् १९०६ ई० के जून में, श्रीनगर (सीवान, सारन) में हुआ
आपके पिता श्रीब्रजकिशोर प्रसादजी बिहार के एक श्रेष्ठ और कर्मठ नेता थे। आ
माता का नाम श्रीमती फूलकुमारी देवी था। महात्मा गांधी जब चम्पारन में पधारे,
आपके पिता उनके प्रथम सहयोगी हुए। वे एक प्रसिद्ध और यशस्वी वकील तथा भार
संस्कृति के पोषक थे। युगों से पुञ्जीभूत कुसंस्कारों से सर्वथा निर्लिप्त रहते थे। उन
विचार बड़े क्रान्तिकारी थे। उन्होंने आपको स्कूल-कॉलेज के वातावरण से दूर रखकर
अपने ही तत्त्वावधान में घर पर ही शिक्षा-दीक्षा दी। उन्हीं के निर्देशन में आपके जीवन
का निर्माण हुआ। उनके आदेशानुसार आपके अध्ययन का विषय था—सीता-सावित्री-
चरित्र, भारत का गौरवपूर्ण इतिहास, विषमता में साम्य दिखानेवाला दर्शन, नीरसता में
सरसता का संचार करनेवाला साहित्य और जगतीतलधन्य देवियों का जीवन-वृत्तान्त।
फलस्वरूप, आपमें सहिष्णुता, त्यागपरता, कर्त्तव्यनिष्ठा, भौतिक वस्तुओं के प्रति उदासीनता,
देश एवं समाज की सेवा आदि सद्गुणों का विकास हुआ। उस पिछड़े युग में, जब बिहारी
महिलाएँ अनेक प्रकार के सामाजिक प्रतिबन्धों में जकड़ी हुई थीं, आपने घर के आँगन की
सीमा लाँघकर दकियानूसी संस्कारों की चारदिवारी तोड़ते हुए उन्मुक्त आकाश और व्याप—
वसुन्धरा में निर्भय विचरण करने का साहस दिखाया। बिहार की नारियों के लिए यह
एक क्रान्तिकारी घटना थी।

सन् १९२० ई० में आपका विवाह सिताब-दियारा (सारन) के निवासी
श्रीहरसूदयालजी के सुपुत्र श्रीजयप्रकाशनारायणजी से हुआ, जो आज भारत के विश्वविख्यात
सर्वोदय नेता और जीवन-बलिदानी हैं। ऐसे महापुरुष को पति के रूप में पाकर आपकी
मानसिक और चारित्रिक प्रभा उत्तरोत्तर निखरती चली गयी। जैसे सबल और सघन वृक्ष के
चतुर्दिक् लिपटकर लता शोभती है, वैसे ही ये दोनों एक दूसरे के व्यक्तित्व के पूरक हुए।
आपके उदारमना, विद्याव्यसनी और देशभक्त पिता ने आरम्भ से ही आपके मन में जैसे
ारतीय संस्कारों को जमाया था, वैसे ही आपके पतिदेव ने भी आपके सुसंस्कृत जीवन
ौर विचारों को स्वदेश की परिस्थितियों के अनुकूल सँवारने का प्रयास किया। अपने
ति के अमेरिका चले जाने पर आप राष्ट्रपिता बापू के आश्रम (साबरमती) में विरह के
ों को बापू के समान त्रिकालातीत गुरु और धर्मपिता की छत्रच्छाया में

श्रीमती सावित्री देवी

श्रीमती प्रियम्वदा नन्दकेयूलियार; महिला-चर्खा-समिति, पटना

आपका जन्म विक्रमाब्द १९६१ में आश्विन शुक्ल-षष्ठी को (अक्तूबर १९०४ ई० में) हुआ था। आप गया के प्रतिष्ठित जमींन्दार श्रीनन्दकिशोरलालजी (स्व०) की कनिष्ठा पुत्री हैं। वे एक नामी वकील और बड़े दबंग तथा निडर व्यक्ति थे। उच्च विचार और सादा व्यवहार उन्हें बहुत प्रिय था। उस युग में भी वे छुआछूत नहीं मानते थे। धनी-मानी होने पर भी उन्होंने अपने लड़के लड़कियों को तड़क भड़क और दिखावे से दूर रखा। उस समय की राजनीति में भी वे दखल रखते थे। बिहार को बंगाल से अलग करने और बिहार-नशनल (बी० एन०) कॉलेज (पटना) के निर्माण में उनका सक्रिय हाथ था। ऐसे आदर्श पिता के तत्त्वावधान में आपका लालन पालन और प्रशिक्षण हुआ। सन् १९२० ई० में आपका विवाह श्रीअवधेशनन्दन सहायजी से हुआ, जो पटना हाइकोर्ट के एक नामी ऐडवोकेट हैं। जैसे गया नगर में आपका पैतृक परिवार सुप्रतिष्ठित घराना माना जाता है, वैसे ही आपके पतिदेव का परिवार भी पटना जिले का एक प्रसिद्ध कायस्थ कुल समझा जाता है। आपके ससुर श्रीमहावीर सहाय (स्व०) कलकत्ता-हाइकोर्ट के एक नामी वकील थे, जिनके भाई बाबू कृष्णसहाय भी अपने समय के बड़े उत्साही समाजसेवी और एक्जिक्यूटिव कौंसिल के प्रथम बिहारी मेम्बर भी थे। इन्होंने ही आपके ससुर के मरने पर आपके पति का पालन-पोषण किया था। आपके पतिने सन् १९२० ई० में महात्मा गान्धी की पुकार पर कॉलेज छोड़कर कलकत्ता में राजनीतिक कार्यक्षेत्र में पदार्पण किया। आपने भी पति का अनुसरण किया।

इस प्रकार, आप दो देशभक्त परिवारों की धरोहर हैं। सत्यप्रियता, निर्भीकता, सादगी, विनोदशील और अध्ययन का अनुराग आपका मौलिक गुण है। कठिनाइयों और संघर्षों में भी आप घबराती नहीं हैं। अविचल धैर्य और सहिष्णुता आपकी स्वाभाविक विशेषता है। भगवान् का पक्का भरोसा रखते हुए आप अपने सिद्धांत पर सदैव अटल रहती हैं। खादी चर्खा प्रचार और पर्दा-प्रथा के उन्मूलन में तथा स्त्रियों में स्वावलम्बन का भाव जगाने में आपका बलिष्ठ हाथ रहा है। आप कई सरकारी और गैर सरकारी संगठनों की मान्य सदस्या हैं। यथा : लघु गृह-उद्योगशाला, अघोर कामिनी-शिल्पालय, गान्धी स्मारक निधि, हरिजन सेवा संघ, खादी-बोर्ड आदि। गत चार वर्षों से आप बिहार-विधानपरिषद् की सदस्या (एम्० एल्० सी०) हैं। विगत अनेक वर्षों से आप महिला-चर्खा-समिति (पटना) की मन्त्रिणी हैं। आपकी मधुर और विनम्र प्रकृति तथा अहर्निश समाज सेवा की अटूट लगन वर्तमान युग की उगती-पीढ़ी की नारियों के लिए सर्वथा अनुकरणीय है।

स्थापना की थी, जो दो वर्षों तक चलकर कतिपय कारणों से बन्द हो गया। आपके पति का नाम श्रीसुधांशु भट्टाचार्य है, जो भट्टाचार्य रोड, पटना में रहते हैं। यह परिवार पटना का एक सम्मानित परिवार है। आपका शिक्षा-प्रेम, शिल्प-कला के प्रति आपकी अभिरुचि और समाज-सेवा-कार्य महिलाओं के लिए प्रेरणादायक है।

श्रीमती प्रभावती देवी

श्रीमती मनोरमा श्रीवास्तव ; सचालिका, महिला-चर्चा समिति, पटना

आपका जन्म सन् १९०६ ई० के जून में, श्रीनगर (सीवान, सारन) में हुआ था। आपके पिता श्रीब्रजकिशोर प्रसादजी बिहार के एक श्रेष्ठ और कर्मठ नेता थे। आपकी माता का नाम श्रीमती फूलकुमारी देवी था। महात्मा गान्धी जब चम्पारन में पधारे, तब आपके पिता उनके प्रथम सहयोगी हुए। वे एक प्रसिद्ध और यशस्वी वकील तथा भारतीय संस्कृति के पोषक थे। युगों के पुञ्जीभूत कुसंस्कारों से सर्वथा निर्लिप्त रहते थे। उनके विचार बड़े क्रान्तिकारी थे। उन्होंने आपको स्कूल कॉलेज के वातावरण से दूर रखकर अपने ही तत्त्वावधान में घर पर ही शिक्षा दीक्षा दी। उन्हीं के निर्देशन में आपके जीवन का निर्माण हुआ। उनके आदेशानुसार आपके अध्ययन का विषय था—सीता सावित्री-चरित्र, भारत का गौरवपूर्ण इतिहास, विषमता में साम्य दिखानेवाला दर्शन, नीरसता में सरसता का सचार करनेवाला साहित्य और जगतीतलधन्य देवियों का जीवन-वृत्तान्त। फलस्वरूप, आपमें सहिष्णुता, त्यागपरता, कर्त्तव्यनिष्ठा, भौतिक वस्तुओं के प्रति उदासीनता, देश एव समाज की सेवा आदि सद्गुणों का विकास हुआ। उस पिछड़े युग में, जब बिहारी महिलाएँ अनेक प्रकार के सामाजिक प्रतिबन्धों में जकड़ी हुई थीं, आपने घर के आँगन की सीमा लाँघकर दकियानूसी संस्कारों की चारदिवारी तोड़ते हुए उन्मुक्त आकाश और व्यापक वसुन्धरा में निर्भय विचरण करने का साहस दिखाया। बिहार की नारियों के लिए यह एक क्रान्तिकारी घटना थी।

सन् १९२० ई० में आपका विवाह सिताब दियारा (सारन) के निवासी श्रीहरसूदयालजी के सुपुत्र श्रीजयप्रकाशनारायणजी से हुआ, जो आज भारत में विश्वविख्यात सर्वोदय नेता और जीवन-बलिदानी हैं। ऐसे महापुरुष को पति के रूप में पाकर आपकी मानसिक और चारित्रिक प्रभा उत्तरोत्तर निखरती चली गयी। जैसे सबल और सघन वृक्ष के चतुर्दिक् लिपटकर लता शोभती है, वैसे ही ये दोनों एक दूसरे के व्यक्तित्व के पूरक हुए। आपके उदारमना, विद्याव्यसनी और देशभक्त पिता ने आरम्भ में ही आपके मन में जैसे भारतीय संस्कारों को जमाया था, वैसे ही आपके पतिदेव ने भी आपके सुसंस्कृत जीवन

स्थापना की थी, जो दो वर्षों तक चलकर कतिपय कारणों से बन्द हो गया। आपके पति का नाम श्रीसुधांशु भट्टाचार्य है, जो भट्टाचार्य रोड, पटना में रहते हैं। यह परिवार पटना का एक सम्मानित परिवार है। आपका शिक्षा-प्रेम, शिल्प-कला के प्रति आपकी अभिरुचि और समाज-सेवा-कार्य महिलाओं के लिए प्रेरणादायक है।

श्रीमती प्रभावती देवी

श्रीमती मनोरमा श्रीवास्तव ; सचालिका, महिला-चर्चा-समिति, पटना

आपका जन्म सन् १६०६ ई० के जून में, श्रीनगर (सीवान, सारन) में हुआ था। आपके पिता श्रीब्रजकिशोर प्रसादजी बिहार के एक श्रेष्ठ और कर्मठ नेता थे। आपकी माता का नाम श्रीमती फूलकारी देवी था। महात्मा गान्धी जब चम्पारन में पधारे, तब आपके पिता उनके प्रथम सहयोगी हुए। वे एक प्रसिद्ध और यशस्वी वकील तथा भारतीय संस्कृति के पोषक थे। युगों के पुञ्जीभूत कुसंस्कारों से सर्वथा निर्लिप्त रहते थे। उनके विचार बड़े क्रान्तिकारी थे। उन्होंने आपको स्कूल कॉलेज के वातावरण से दूर रखकर अपने ही तत्त्वावधान में घर पर ही शिक्षा दीक्षा दी। उन्हीं के निर्देशन में आपके जीवन का निर्माण हुआ। उनके आदेशानुसार आपके अध्ययन का विषय था—सीता सावित्री-चरित्र, भारत का गौरवपूर्ण इतिहास, विषमता में साम्य दिखानेवाला दर्शन, नीरसता में सरसता का सचार करनेवाला साहित्य और जगतीतलधन्य देवियों का जीवन-वृत्तान्त। फलस्वरूप, आपमें सहिष्णुता, त्यागपरता, कर्त्तव्यनिष्ठा, भौतिक वस्तुओं के प्रति उदासीनता, देश एव समाज की सेवा आदि सद्गुणों का विकास हुआ। उस पिछड़े युग में, जब बिहारी महिलाएँ अनेक प्रकार के सामाजिक प्रतिबन्धों में जकड़ी हुई थीं, आपने घर के आँगन की सीमा लाँघकर दकियानूसी संस्कारों की चारदिवारी तोड़ते हुए उन्मुक्त आकाश और व्यापक वसुन्धरा में निर्भय विचरण करने का साहस दिखाया। बिहार की नारियों के लिए यह एक क्रान्तिकारी घटना थी।

सन् १६२० ई० में आपका विवाह सिताब दियारा (सारन) के निवासी श्रीहरसूदयालजी के सुपुत्र श्रीजयप्रकाशनारायणजी से हुआ, जो आज भारत म विश्वविख्यात सर्वोदय नेता और जीवन-बलिदानी हैं। ऐसे महापुरुष को पति क रूप में पाकर आपकी मानसिक और चारित्रिक प्रभा उत्तरोत्तर निखरती चली गयी। जैसे सरल और सघन वृक्ष के चतुर्दिक् लिपटकर लता शोभती है, वैसे ही ये दोनों एक दूसरे के व्यक्तित्व के पूरक हुए। आपके उदारमना, विद्याव्यसनी और देशभक्त पिता ने आरम्भ से ही आपके मन में जैसे भारतीय संस्कारों को जमाया था, वैसे ही आपके पतिदेव ने भी आपके सुसस्कृत जीवन और विचारों को स्वदेश की परिस्थितियों के अनुकूल सँवारने का प्रयास किया। अपने पति के अमेरिका चले जाने पर आप राष्ट्रपिता बापू के आश्रम (साबरमती) में विरह के क्षणों को बापू के समान त्रिकालातीत गुरु और धर्मपिता की छत्रच्छाया में उनकी

धर्मपुत्री बनकर बिताने लगीं। उनकी आध्यात्मिक पाठशाला में प्रवेश करके आपने सेवा, संयम और साधना द्वारा जीवन-सागर का मन्थन कर जो अमृत प्राप्त किया, वही आपके पवित्र, सरल और मधुर व्यक्तित्व को नारी-समाज के लिए आकर्षक एवं आदर्श बनाने-वाला सिद्ध हुआ। आश्रम के निर्मल वातावरण में कठोर दिनचर्या के साथ साथ कताई, धुनाई, बुनाई, गृहशिल्पोद्योग आदि का प्रशिक्षण सुव्यवस्थित रीति से चलता रहा। फल स्वरूप, आपमें जितने सद्गुण बीज-रूप में छिपे थे, वे क्रमशः बापू के स्नेह-सिञ्चन के सहारे अंकुरित, पल्लवित और पुष्पित तथा फलित होकर समाज के सामने प्रकट हो गये। आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता, कार्यकुशलता, स्वाभिमान, देशभक्ति, करुणा, सेवा आदि अलग-अलग प्रकाशित हो उठे। पूज्य बापू और मातृ तुल्य कस्तूर बा का साहचर्य पाकर आप ईश्वरोन्मुख हो आत्मचिन्तन की दिशा में अनुदिन प्रगति करने लगीं। आपकी प्रवृत्ति विशेषतः बापू के रचनात्मक कार्यक्रम की ओर ही रही। आपने राष्ट्रीय आन्दोलन में भी सक्रिय योगदान किया। सन् १९३२ ई० में पहली बार लखनऊ में गिरफ्तार हुईं विदेशी वस्त्र-बहिष्कार में, और दूसरी बार सन् १९४२ ई० में पकड़ी गयीं, तो भागलपुर-सेण्ट्रल जेल में तीन वर्ष रहीं तथा पूना के आगा खाँ महल में भी तीन महीने बापू के पास रहीं। सन् १९५८ ई० में पाँच महीने विदेश-यात्रा में बीते—इङ्गलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, युगोस्लाविया, मिस्र आदि में भ्रमण किया। श्रीमती कमला नेहरू का सामीप्य भी आपको प्राप्त रहा और चन्द्रकान्ता बहन की मैत्री भी। दक्षिण भारत में योगी अरविन्द और रमण महर्षि के दर्शन तथा उपदेश भी आपकी उपलब्धियों में उल्लेख्य हैं। बचपन से ही शिवभक्ति की लगन लगी और आज भी श्रद्धा-विश्वास-पूर्वक पूजा पाठ का नियमित अभ्यास जारी है। आपकी सारी तपस्या केवल अपने पति की कल्याण कामना से प्रेरित है और अहर्निश पति की सेवा में तल्लीन रहना ही आपके जीवन की एकमात्र साधना है। आपके पिता ने चम्पारन में आपको गान्धीजी की सेवा में सौंपा था, जब आप उनके आश्रम में पहली बार दस महीने रही थीं और उसी आश्रम जीवन का प्रभाव है कि पति के साथ विचार साम्य रखते हुए आप ब्रह्मचर्यपालन पूर्वक वैवाहिक जीवन व्यतीत कर रही हैं।

श्रीमती सती सम्पत्ति देवी

पण्डित मथुरानाथ शर्मा 'श्रोत्रिय', साहित्यवाचस्पति, बेढना (पटना)

'बाढ' स्टेशन (ई० आर०) से पौन मील दक्षिण 'बेढना' ग्राम पटना-जिले के बड़े-बड़े गाँवों में प्रसिद्ध है। गाँव में नौ मौजे या टोले हैं। सबसे बड़ा मौजा 'बुजुर्ग' है। उसमें श्रोत्रिय ब्राह्मण प० मेघमणि शर्मा एक प्रकाण्ड विद्वान् थे। इन्हीं के वंश में पाण्डेय केशव शर्मा हुए, जिनकी पत्नी रामेश्वरी देवी से प्रथमा पुत्री 'सम्पत्ति देवी' का जन्म विक्रमाब्द १९६४ (सन् १९०७ ई०) में, पौष शुक्ला षष्ठी (गुरुवार) को, हुआ था। इनका विवाह 'सरथा' (पटना) के प० विश्वेश्वर पाण्डेय के द्वितीय पुत्र पं० सिद्धेश्वर शर्मा से

हुआ था। उस समय इनकी अवस्था सात वर्ष की और इनके पति की नौ वर्ष की थी। पति बचपन से ही कुशाग्रबुद्धि थे। पन्द्रह वर्ष के थे, तो मध्यमा परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। काशी में पढ़ने गये। कुछ ही दिनों बाद राजयक्ष्मा से आक्रान्त हो गये। तब घर चले आये। चिकित्सा होने लगी। पति की सेवा-शुश्रूषा के लिए इनको, शुभ मुहूर्त न रहने पर भी मायके से ससुराल आना पड़ा। सूर्य उगते ही उठ घर आँगन बुहारना, स्नान कर रसोई बनाना, सबको भोजन कराना, पथ्य बनाकर पति को खिलाना, पति के आरोग्य लाभार्थ दो-तीन बजे दिन तक देवी-कवच, संकटाष्टक, महाविद्या-स्तोत्र आदि के पाठ करना, पति की सेवा में रात-भर उनके सिरहाने बैठ मिठास के साथ उन्हें धीरज बँधाते रहना—यही इनका नित्य-नियमित कार्य था।

किन्तु, इनकी श्रद्धाभक्तिपूर्ण सेवा के बावजूद मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी (२१ नवम्बर, १६२७ ई०) को सिद्धेश्वरजी के प्राणपखेरू उड़ गये। घर में कुहराम मच गया। ये मृत पति के सिरहाने निश्चल बैठी थीं। एक स्त्री ने इनकी चूड़ियाँ फोड़ दीं। दूसरी ने सिर की सिन्दूर-रेखा मिटा दी। जब इनकी चेतना जगी, तब बोलीं—'मेरी चूड़ियाँ किसने फोड़ दीं, मैं विधवा कहाँ हुई हूँ'। फिर, आकाश की ओर देख बोलीं —'अच्छा देव। किञ्चित् ठहरो, दासी अविलम्ब आ रही है।' बस, धड़फड़ाकर उठने लगीं। अचानक साड़ी से आग धधक उठी। घर की 'लखिया' दाई ने पानी का घड़ा उड़ेल दिया। उसे शाप देने को सती उद्यत हुईं। सती-चरणों पर दाई गिर पड़ी। उसे क्षमा मिल गयी। ये सती होने के आग्रह पर दृढ़ रहीं। जब आधी रात में शव बाढ़ कचहरी में पहुँचा, एस्० डी० ओ० श्री के० सी० मजूमदार ने इन्हें बहुत समझाया। दारोगा हरनन्दन सिंह और जमादार नूर महम्मद खाँ ने भी कानून का भय दिखाया। पर, इनका सङ्कल्प न डिगा। पुलिस ने गौढ़वेथान श्मशान में शव को भेजकर चिता सजवायी। किन्तु, उसके जलने से पहले ही ये गंगा तट पहुँच गयीं। हजारों आदमी इनके साथ थे। विप्रवर्ग मंगल-पाठ कर रहा था। इन्होंने गंगास्नान कर लखिया दाई से कपड़ा माँगा। पुलिस ने साड़ी-कंचुकी की जाँच-पड़ताल की। यहाँतक कि सिन्दूरदानी में भी अँगुली डाल देखी। दारोगा ने इन्हें चिता पर बैठने की आज्ञा दी। पति शव को बाईं जाँघ पर रख चितारूढ़ हुईं। पाठ करने के लिए 'गीता' माँगी। उसके पन्ने भी कई बार उलट पलट दारोगा ने छानबीन की। कुछ श्लोकों के पाठ के बाद इनके काँपते हाथों से 'गीता' छूट पड़ी। ज्योंही इन्होंने भगवान् सूर्यनारायण की ओर देख सिर झुकाया, त्यों ही निर्धूम चिता चारों ओर से धधक उठी। सती के जयघोष से दिङ्मण्डल गूँज उठा। जो सिपाही चिता के पास गंगा में नाव पर बैठे थे, दारोगा का इशारा पाते ही सती पर पानी उलीचने लगे। कुछ सिपाही तावड़तोड़ बालू फेंकने लगे। कुछ ने लाठियों से चिता को गंगा की ओर बिखेर दिया। पति के शव को खोजने कमर-भर जल में ये चली गयीं। किन्तु, गंगा में गयी अधजली लाश न मिली। सब लोग इनसे बाहर आने की करबद्ध प्रार्थना करने लगे।

किनारे आयी, तो देह में पड़े छाले दीख पड़े। वहीं एस्० डी० ओ० अस्पताल चलने का अनुरोध करने लगे। ये कतई तैयार न हुईं। जब एस्० डी० ओ० ने अपनी जवाबदेही की कठिनाई बतलाई, तब ये जेल जाने को तैयार हुईं। २३ नवम्बर (१९२७) को जेल में गयीं। इनकी सेवा के लिए 'लखिया' दाई को भी आज्ञा मिली। दूसरे ही दिन इनके तन का तेज तीव्र प्रकाश के रूप में आकाश में विलीन हो गया। बड़े ही समारोह के साथ हवनादि के उपरान्त उमानाथ घाट के उत्तर इनका शव गंगा में प्रवाहित कर दिया गया।

श्रीमती रामप्यारी देवी

श्रीरामसिंहासन सिंह 'विद्यार्थी'; गया

आपका जन्म 'जिट्ठली' (चम्पारन) में, सन् १९११ ई० में ७ अक्टूबर को हुआ था। गाँव के बालिका-विद्यालय से सन् १९२२ ई० में मिडिल पास किया। उसी समय से देशसेवा की लगन लगी। पढ़ने में तेज होने से शुरू से ही छात्रवृत्ति मिली। चम्पारन में महात्मा गांधी के राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रभाव प्रत्यक्ष पड़ा। भारतीय काँग्रेस कमिटी का महाधिवेशन गया में सन् १९२२ ई० में ही देखा। चम्पारन के नामी देशभक्त अपने भाई श्रीसुखदेवप्रसाद वर्मा के साथ मोतीहारी में रहकर अपनी सहेलियों-सहित परीक्षा की तैयारी की। सन् १९२२ से १९२९ ई० तक कभी महिला विद्यापीठ (प्रयाग) और कभी साहित्य सम्मेलन (प्रयाग) की परीक्षाओं के लिए प्राइवेट तौर पर तैयारी करती रहीं। काँगरेस भक्त होने से स्कूल में दाखिल होना कठिन था। मंगल सेमिनरी-स्कूल ने आपको प्राइवेट पढ़ने की आज्ञा दी। संस्कृत की मध्यमा परीक्षा में प्रथम स्थान पाया। महिला-विद्यापीठ से विदुषीरत्न हुईं।

सन् १९३० ई० में आपका ब्याह श्रीजगतनारायण लालजी से हुआ, जो उस समय काँगरेस के एक नेता और भारतीय हिन्दू महासभा के प्रधान मंत्री थे। पर्दा और तिलक दहेज के युग में भी समाज सुधार का अनुकरणीय आदर्श उपस्थित किया। पारिवारिक और सामाजिक विरोध-बाधाओं का सामना बड़े साहस से करती रहीं। १२ मार्च को आपकी शादी हुई और ३० मार्च को नमक सत्याग्रह (१९३०) में सम्मिलित हो गयीं। पटना और हजारीबाग में एक साल जेल में बिताया। कराँची-काँगरेस में स्वामी सहजानन्द को हराकर भारतीय काँगरेस-कमिटी की सदस्या हुईं और तब से रामगढ़ काँगरेस तक सदस्या रहीं। पटना जिला काँगरेस की द्वितीय डिक्टेटर के रूप में पूरे जिले का क्रांतिकारी दौरा किया। कतरीसराय (बिहारशरीफ) में भाषण करते समय गिरफ्तार हो गयीं। आपकी लोकप्रियता ऐसी थी कि जनता ने विद्रोह मचा दिया। पुलिस के दो बड़े अफसर मारे गये। दंगे के मामले में लगभग दो सौ व्यक्ति पकड़े गये। एक मास तक आपको हिरासत में रखकर हाजत में ही कोर्ट बैठा था। चार मास की कैद और चार हजार जुरमाना हुआ, जिसे न देने पर चार मास और भी सजा भुगतनी पड़ी। पर, बीच में ही गांधी इरविन पैक्ट के अनुसार

रिहाई हो गयी। सन् १९३२ ई० में बाढ (पटना) में भाषण करने के कारण गिरफ्तारी का वारण्ट हुआ, पर आप 'डेरा इस्माइल खाँ' (अब पाकिस्तान) और दिल्ली तक दौरा करती रहीं। हिन्दू-महासभा-भवन (दिल्ली) में हिन्दू नेता भाई परमानन्द के यहाँ गिरफ्तार हुई, परन्तु पटना लाकर छोड़ दी गयीं। सन् १९३० से '३६ ई० तक लगातार भारतीय काँगरेस-कमिटी की सदस्या रहीं। पटना-जिला-काँगरेस की उपाध्यक्षा तीन बार बनायी गयीं और उतनी ही अवधि तक पटना नगर-काँगरेस की अध्यक्षा भी थीं। सन् १९२८ ई० में श्रीमगनलाल गांधी बिहार में पर्दा-प्रथा का उन्मूलन करने बापू के आदेश से आये थे। आप और लेडी अनीस इमाम तथा जस्टिस मनोहरलाल की पत्नी घर-घर घूमकर स्त्रियों को उत्साहित करती थीं। पीली कोठी (पटना) में मगन भाई का कैम्प था—उनका देहान्त भी पटना में ही हुआ। सन् १९३६ से '३९ ई० तक आप पटना-जिला बोर्ड की भी सदस्या रहीं। सन् १९४२ ई० में अपने तीन-चार बच्चों के साथ गिरफ्तार हो गयीं। सन् १९४३ ई० की फरवरी में रिहा हुईं और उसी मास में आपकी पुत्री आशाकुमारी का जन्म हुआ, जो आज बी० ए० (ऑनर्स) की छात्रा हैं। रामगढ़-काँगरेस (१९३९) के समय आपने महिला संघ की स्थापना की, जिसका उद्घाटन श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित ने किया था। बिहार-राज्य में इस संस्था की आठ शाखाएँ नारी समाज के विकास और कल्याण का कार्य कर रही हैं। आप ही इसकी अध्यक्षा हैं। विख्यात अन्तरराष्ट्रीय संस्था भारत-स्काउट्स गाइड्स की राज्य-कमिश्नर (गाइड) आप सन् १९५३ ई० से ही हैं। गाँव से शहर तक में इसका सेवा क्षेत्र विस्तृत है। इसके माध्यम से आप स्त्रियों की उन्नति और समाज-सेवा के कार्य निरन्तर कर रही हैं। जब बिहार में समाज कल्याण-बोर्ड नहीं बना था, तब आप एजेण्ट के रूप में विभिन्न संस्थाओं का निरीक्षण कर उन्हें अनुदान दिलवाती थीं। जब बोर्ड बना, तब शुरू से ही आप सदस्या हुईं और अब गत तीन चार साल से उपाध्यक्षा हैं। आपने बर्मा, जापान, थाइलैण्ड आदि देशों में भ्रमण कर समाजसेवी संस्थाओं का अध्ययन करके काफी अनुभव प्राप्त किया है। महिला चर्खा समिति (पटना) के निर्माण और विकास में आपका सहयोग चिरस्मरणीय है।

श्रीमती भवानी मेहरोत्रा

इनका जन्म मुजफ्फरपुर के पुरानीबाजार मुहल्ले में सन् १९१२ ई० में डॉ० पुरुषोत्तम नारायण नन्दे के घर हुआ था। सन् १९२५ ई० में श्रीगोपीकृष्ण मेहरोत्रा के पुत्र श्रीबनवारी लालजी से विवाह हुआ। इनके पति क्रान्तिकारी दल के थे और पन्द्रह वर्ष की उम्र में ही पकड़े गये थे। आगे चलकर वे गान्धीवादी बन गये। सन् १९३४ ई० के भूकम्प में उनका निधन हुआ, जिससे इनका जीवन अथाह शोक में निमग्न हो गया, किन्तु ईश्वर की कृपा से उसी समय गान्धीजी वहाँ गये और उनके सम्पर्क से देश-सेवा को इन्होंने ऐसी श्रद्धा से अपनाया कि नगर में नारी-जागरण का प्रथम श्रेय इन्हीं को प्राप्त है। स्वाधीनता की लड़ाई में भी सक्रिय योगदान किया। उस युग में नगर की प्रमुख आदर्श महिला यही थीं। इनका साहस

और उत्साह अदम्य है। नगर के नर नारी समाज में ये बहुत लोकप्रिय हैं। बिहार-कस्तूर बा-निधि की सेवा दस साल तक कर चुकी हैं। इनका हृदय अत्यंत कोमल और दीन-दुखियों के प्रति बहुत सहानुभूतिपूर्ण है।

श्रीमती विद्या देवी

इनका जन्म सन् १९१६ ई० के नवम्बर में, अपने नाना के घर (पशुपुरा, बेगूसराय, मुँगेर) में हुआ था। इनके पिता श्रीगीताप्रसाद सिंह किसान थे। ये उनकी पहली सन्तान थीं, अत: बड़े लाड़ प्यार से पाली-पोसी गयीं। इनका नाम 'जानकी' रखा गया। चौदह वर्ष की कच्ची उम्र में ही इनका ब्याह 'पुनाम' (दरभंगा) के श्रीव्रजनन्दन शर्मा से सन् १९२६ ई० में हुआ। विवाहोपरान्त अक्षरारम्भ हुआ और नाम भी बदल गया—जीवन की दिशा ही बदल गयी। पारिवारिक बाधाओं के बीच हिन्दी साहित्य सम्मेलन (प्रयाग) की मध्यमा परीक्षा ('विशारद') उत्तीर्ण हुई। शादी के कुछ दिनों बाद ही पर्दे का प्राचीर तोड़कर सार्वजनिक सेवा कार्य करने के लिए बाहर आयीं। श्रीकार्यानन्द शर्मा के नेतृत्व में लखीसराय (मुँगेर) के चित्तरंजन आश्रम में काम करने लगीं। वहीं से १४४ धारा तोड़कर हजारों की भीड़ का नेतृत्व करती जेल गयीं। वहीं इनका परिचय उड़ीसा की प्रमुख प्रसिद्ध महिला श्रीमती रमा चौधरी और श्रीमती मालती चौधरी से हो गया। जेल से निकलने पर पति के साथ राष्ट्रभाषा प्रचार के लिए दक्षिण भारत गयीं। वहाँ की भाषा तेलुगु सीखकर स्त्रियों में हिन्दी प्रचार करती रहीं। सन् १९३८ ई० में दक्षिण से आकर रामगढ़-काँगरेस में स्वयंसेविकाओं के दल का नेतृत्व और सन् १९४६ ई० में कस्तूर बा-महिला-प्रशिक्षण केन्द्र (मधुबनी तथा राँची) का काम सँभाला। सन् १९४६ ई० में ही अपने पति के सहयोग से बालिका विद्यापीठ (आवासीय शिक्षण संस्था) की स्थापना लखीसराय में की। अब उसी की संचालिका हैं। उसी के विकास और अभ्युदय में तन मन लगा रखा है। अब वही इनके जीवन की एकमात्र साधना है। सन् १९५६ ई० से ही बिहार राज्य समाज कल्याण बोर्ड की सदस्या हैं। सन १९६१ ई० से ही बिहार राज्य स्त्रीशिक्षा परिषद् की भी सदस्या हैं। इनकी एकमात्र पुत्री डॉक्टर हैं और तीन पुत्रों में एक लेक्चरर, दूसरे सरकारी कर्मचारी तथा तीसरे एम्० ए० के छात्र हैं। इनके द्वारा संचालित संस्था महिलोपयोगी शिक्षा देने में अद्वितीय है।

श्रीमती विन्ध्यवासिनी देवी

श्रीपाण्डेय कपिल एम्० ए०, अनुवाद विभाग, सचिवालय, पटना

इनका जन्म सन् १९१८ ई० में हुआ था। बचपन में ही मातृहीन हो गयीं। ननिहाल (मुजफ्फरपुर) में अपने भगवद्भक्त नाना के पास रहकर थोड़ी-बहुत शिक्षा प्राप्त की। जब वे हरिकीर्त्तन करते थे, तब ये भी हरिगुण गाती थीं। लोकगीतों से ता

बचपन से ही अनुराग रहा, अतः ग्रामगीत भी गाती रहती थीं। लोकगीत संग्रह का भी व्यसन था। आज इनके पास हजारों हजार लोकगीतों का बेजोड़ संग्रह तैयार है। इनका विवाह दिघवारा (सारन) के श्रीमहदेवेश्वरचन्द्र वर्मा के साथ सन् १९३१ ई० में हुआ था। ससुर बाबू रामप्रसादजी पटना हाईकोर्ट के नामी वकील थे। उनके देहान्त के बाद पूरे परिवार के साथ सन् १९४५ ई० में पटना चली आयीं। उसी साल आर्यकन्या-विद्यालय में शिक्षिका हो गयीं। इनके पति ने इन्हें साहित्य और संगीत के अध्ययन मनन की ओर प्रवृत्त किया। हिन्दी-विश्वविद्यालय (प्रयाग) से 'विशारद' और हिन्दी विद्यापीठ (देवघर) से 'साहित्यभूषण' की उपाधि परीक्षाएँ उत्तीर्ण हुईं। पति स्वयं संगीतज्ञ हैं—उन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा दी, फिर इन्होंने भातखण्डे विश्वविद्यालय का लगभग चार साल का प्रशिक्षण प्राप्त कर लखनऊ-पद्धति से कण्ठ-संगीत की विधिवत् शिक्षा प्राप्त की। शास्त्रीय शिक्षा पाकर लोकगीतों की स्वरलिपियाँ तैयार कीं। 'मानव' इनकी एक उत्तम कलाकृति है, जो प्रकाशित होने के पूर्व ही अभिनीत और प्रशंसित हो चुकी है। उसका अभिनय देखकर तत्कालीन शिक्षा सचिव और हिन्दी के यशस्वी नाटककार श्रीजगदीश चन्द्र माथुर आइ० सी० एस० बड़े सन्तुष्ट हुए थे और जब वे भारतीय आकाशवाणी के महानिर्देशक हुए, तब पटना केन्द्र में लोकगीतों की प्रोत्साहिका (प्रॉड्यूसर) के पद पर इनकी नियुक्ति हो गयी। तत्कालीन लोकशिक्षा-निदेशक ने भी कहा था कि जो काम अँगरेजी जीवन के लिए बर्नार्ड शॉ ने किया था, वही 'मानव' ने बिहारी जीवन के लिए कर दिखाया। अनेक लोकगीतों और लोकनृत्यों से सम्पन्न यह संगीत-रूपक बिहार-सरकार द्वारा स्वीकृत और अनेक सुअवसरों पर अभिनीत हो चुका है। इसके अभिनय से दो वर्ष पूर्व, सन् १९४९ ई० में, पति पत्नी ने मिलकर पटना में विन्ध्य-कला मन्दिर की स्थापना की थी, जिसको अब केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकार से आर्थिक अनुदान भी मिलने लगा है। इसमें संगीत नृत्य के सिवा सिलाई कसीदा-कढ़ाई आदि भी सिखायी जाती है। प्राथमिक स्तर के बच्चों के लिए 'सुबोध विद्यालय' भी है। उक्त संस्था ने लोकगीतों के आधार पर कई रूपक भी तैयार किये हैं, जो प्रायः खेले जाते हैं।

इनकी कण्ठमाधुरी प्रभावित होकर 'हिज मास्टर्स वॉयस'ने मांगलिक अवसरों के कितने ही लोकगीत इनसे गवाकर रेकर्ड कराये हैं, जो ऐसे लोकप्रिय हुए कि देश भर में फैल गये। पटना-रेडियो के माध्यम से भी इनके ललित गान प्रान्त के लोक कण्ठ में बस गये हैं। बिहार की महिलाओं में संगीत, वाद्य, नृत्य, हस्तशिल्प आदि कलाओं की चेतना को उद्बुद्ध करने में इन्होंने अथक परिश्रम किया है। सन् १९५६ ई० से ही ये भारत-सरकार की संगीत नृत्य-नाट्य अकादमी की जेनरल कौन्सिल की मानद सदस्या हैं। मैथिली, भोजपुरी और मगही की इस सुमधुर गायिका का जन्म हुआ मैथिली-अञ्चल में, ब्याह हुआ भोजपुरी क्षेत्र में और काम करने का अवसर मिला मगही क्षेत्र में। अतः, इनकी हृदयहारिणी कण्ठकला का वरदान इन तीनों प्रमुख लोकभाषाओं को मिला। तीनों के लोकगीतों को मधुमय बनाया और

उनके पारस्परिक सम्बन्ध की सरणि भी स्पष्ट की। इनकी संगीत कला सम्बन्धी सेवा सर्वथा श्लाघ्य है।

श्रीमती मोहिनी सिन्हा

प्रोफेसर श्रीरमेशचन्द्र; हिन्दी विभागाध्यक्ष, सहरसा-कॉलेज

आपका जन्म सन् १६२४ ई० में, आषाढ़-कृष्णाष्टमी को मुजफ्फरपुर में हुआ था। आपके नाना रायसाहब विद्यानन्द वहाँ पुलिस के डिपुटी-सुपरिण्टेण्डेण्ट थे। आपका घर बिहटा के करीब रामतरी गाँव में है। आपके पितामह रायबहादुर रामप्रसाद और पिता श्रीअखिलेश्वरीप्रसाद सिन्हा पूर्णिया में दोनों वकील रहे। सन् १६३३ ई० तक आपकी शिक्षा वहीं हुई। उसी साल वहाँ हिन्दी निबन्ध प्रतियोगिता हुई, जिसमें आपका स्थान द्वितीय रहा। सन् १६३४ ई० में आप गर्ल्स-हाइ-स्कूल में प्रविष्ट हुईं। सन् १६३८ ई० में पिता की मृत्यु के बाद आपकी शिक्षा का भार नानाजी पर आ गया। सन् १६४० ई० में आपने मैट्रिक की परीक्षा पास की। उसी साल गया निवासी श्रीसच्चिदानन्द सिन्हा (सहरसा कॉलेज के वर्त्तमान प्रिन्सपल) से आपका विवाह हुआ। पढाई का क्रम भंग हो गया। फिर भी, शिक्षा में अत्यधिक रुचि रखने के कारण आप अध्ययन करती रहीं और सन् १६४५ ई० में आपने आइ० ए० की परीक्षा पास की। उच्च शिक्षा के लिए अपने पतिदेव से आपको अनवरत प्रोत्साहन मिलता रहा। उन्होंने सभी विषयों का अध्यापन भी किया। सन् १६४७ ई० म आपने बी० ए० की परीक्षा पास की। सन् १६५० ई० म एम्० ए० (हिन्दी) की परीक्षा में उच्च श्रेणी में उत्तीर्ण हुईं। सन् १६५४ ई० में नवबालिका-विद्यालय (गया) की अवैतनिक प्राचार्या हुईं—इसकी स्थापना में भी आपका प्रमुख हाथ रहा। सन् १६५६ ई० में सहरसा आने पर राजकीय विद्यालय में प्रधान के पद पर रहीं। इस विद्यालय की स्थापना का श्रेय भी आपको ही है। सन् १६५८ ई० में यह राजकीय विद्यालय घोषित हुआ और आपने त्यागपत्र दे दिया। सन् १६६० ई० से आपकी नियुक्ति सहरसा-कॉलेज के हिन्दी विभाग म हो गयी। आपके तीन लड़के और तीन लड़कियाँ हैं, जिनमें दो लड़के इञ्जीनियरिङ्ग पढ़ रहे हैं। दैनिक 'आर्यावर्त्त' और मासिक 'छात्रबन्धु' (पटना) में आपके निबन्ध छपा करते हैं। कॉलेज पत्रिका में भी आप बराबर लेख देती हैं। स्त्री-शिक्षा, समाज सेवा और साहित्यिक कार्यों में आपकी विशेष अभिरुचि है। जीवन सीधा सादा है। रोज के घरेलू कामों को करते हुए अध्ययन-अध्यापन कार्य भी बड़े मनोयोग और बड़ी सफलता से करती हैं। आपके समाज सुधार सम्बन्धी विचार बड़े उदार हैं। भारतीय संस्कृति में आपका स्वाभाविक अनुराग है। नारी जाति की सेवा करते रहने में आपकी खास दिलचस्पी है।

श्रीमती आशा सहाय

इनका जन्म चितौली (ससराम, शाहाबाद) में सन् १६२५ ई० म हुआ था। इनके पिता श्रीब्रजविलास प्रसाद पूर्णिया में लगातार नव वर्षों तक मुन्सिफ, सदराला और जज थे।

यहीं इन्होंने मैट्रिक तक शिक्षा पायी। फिर, स्वाध्याय के नियमित अभ्यास से अपनी योग्यता काफी बढ़ा ली। छपरा नगर (भगवानबाजार) के रईस श्रीयदुनाथ सहाय के सुपुत्र श्रीब्रजनाथ सहाय, एम्० बी० बी० एस्० के साथ सन् १९४३ ई० में इनका विवाह हुआ था, जो इस समय बिहार-राज्य के उद्योग खनन-विभाग में डॉक्टर हैं। पति के साथ बोरिंग रोड (पटना) में रहकर साहित्य सेवा करती हैं। विश्वमित्र, विश्वबन्धु (कलकत्ता), हुंकार, योगी, ज्योत्स्ना (पटना), आज (काशी), प्रभात (मुँगेर) आदि पत्र पत्रिकाओं में इनकी कहानियाँ छप चुकी हैं। 'एकाकिनी' मौलिक उपन्यास अन्तरराष्ट्रीय प्रकाशन-मण्डल (पटना) से प्रकाशित हो चुका है। आवरण, प्रश्न और बिन्दु, समर्पिता—तीन उपन्यास अप्रकाशित हैं। पद्यबद्ध नाटक (आम्रपाली) भी अप्रकाशित है, किन्तु अभिनीत हो चुका है। सफल कथाकार की प्रतिभा इनमें पर्याप्त मात्रा में है। साहित्याराधन ही इनका व्यसन है।

श्रीमती छाठो देवी

इनकी उम्र आज तीस साल की है। खुशरूपुर (पटना) में जन्म और मोर्त्तजापुर (बाढ, पटना) में विवाह हुआ था। सन् १९५६ ई० में बिहार के खादी-ग्रामोद्योग संघ की बाढ-शाखा द्वारा सालिमपुर बिहटा (बख्तियारपुर) में कताई बुनाई की शिक्षा पायी। सन् १९५७ ई० में नवीनगर (गया) में चार मास और फिर तिलौथू (शाहाबाद) में नव मास काम किया। बाद पटना खादी बोर्ड में आ गयीं और गौहरपुर (पटना) में चार मास खादी सेवा करने के बाद राँची में साल-भर के लिए बदली हो गयी। उधर धनबाद और पलामू में भी खादी-चर्खा प्रचार किया। जसीडीह (ई० आर०) के विद्यालय म भी दस महीने तक कच्ची कताई सिखाती रहीं। मुँगेर क बाढ-पीडित क्षेत्र म भी सेवा कार्य अपनी बहनों क साथ कर चुकी हैं। आजकल काँगरेस क सेवा कार्य में सलग्न हैं। युवावस्था में ही विधवा हो जाने पर पर्दा-प्रथा-भग करके समाज सेवा म तत्पर हो गयीं और तब से आज तक समाज सुधार और खद्दर-प्रचार में लगी हुई हैं। इनकी देशभक्ति नयी पीढ़ी क लिए अनुकरणीय है।

श्रीमती रामरती देवी

इनका जन्म खुशरूपुर ग्राम (पटना) में हुआ था। ये साधारण शिक्षिता हैं। इनका सम्बन्ध आर्यसमाज से रहा। अत, इनमें समाज-सुधार की भावना जाग्रत् हुई। इन्होंने अपने क्षेत्र में नारी जागरण का अच्छा काम किया। सन् १९४७ ई० में ये श्रीकस्तूर बा गान्धी स्मारक निधि के कार्य करने लगीं। ग्रामीण स्त्रियों के विकास के लिए 'निधि' के अन्तर्गत जो कार्यक्रम चलते रहे, उनमें इनकी अमूल्य सेवाएँ उल्लेखनीय हैं। बहुत दूर दूर के गाँवों मे, ठेठ देहात के कोने-कोने में, जहाँ किसी सवारी की कोई सुविधा नहीं है, तीस चालीस मील तक पैदल चलकर, इन्होंने बडे उत्साह से देहाती स्त्रियों के बीच काम किया। ये बड़ी

ही निर्भीक, स्पष्टवादिनी, श्रमशीला और निष्ठावती महिला हैं। इन्हें जाननेवालों के हृदय में इनके प्रति स्वाभाविक श्रद्धा है।

श्रीमती सुनीति देवी

इनका जन्म और ब्याह मुजफ्फरपुर जिले में हुआ था। सन् १९२८ ई० में पिता के घर से ससुराल न जाकर अपने पति श्रीकिशोरीप्रसन्न सिंह के पास (मुजफ्फरपुर) आयीं। उस समय की जबरदस्त पर्दा प्रथा तोड़कर पति के साथ काँगरेस की सेवा करने लगीं। काम करने की ऐसी पक्की धुन लगी कि भूख, नींद, वर्षा, गरमी, सरदी और हैरानी-परेशानी का ध्यान ही नहीं रहता था। कई साल दिन रात खटते रहने से बीमार हो गयीं। आर्थिक संकट के कारण यथेष्ट चिकित्सा या सेवा-शुश्रूषा न हो सकी। देशसेवा की अटूट लगन का आदर्श छोड़ यह कार्यशील कर्मठ महिला असमय ही चल बसी। मुजफ्फरपुर जिले की अन्य तीन देशसेविकाओं के नाम भी उल्लेख्य हैं—सन्ध्या देवी, रामतनुक देवी और राधिका देवी।

डॉक्टर कृष्णकामिनी रोहतगी

श्रीमहावीर प्रसाद 'प्रेमी'; लालकोठी, दानापुर कैण्ट (पटना)

जिस पाटलिपुत्र (पटना) को प्राचीन काल से 'कोशा'–जैसी पद्मिनी और नैतिक गुणालंकृता नारी को जन्म देने का गौरव प्राप्त है, उसी को आधुनिक युग में आप जैसी प्रतिभा सम्पन्न महिला का जन्म स्थान होने का भी सम्मान उपलब्ध है। पटनासिटी के लब्धप्रतिष्ठ नागरिक श्रीविनयकृष्ण रोहतगी, एम्० ए० की आप सुपुत्री हैं। अपने व्यक्तित्व और कृतित्व द्वारा आपने सारे बिहार का मस्तक ऊँचा किया है। आपका आदर्श जीवन प्रत्येक महिला के लिए प्रेरणा प्रदायक है। ऊँची संस्कृति, नैतिक अनुशासन और स्वस्थ वातावरण में आपका पालन पोषण हुआ। विज्ञान-विषय लेकर आपने प्रवेशिका परीक्षा में प्रथम श्रेणी में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त कर शिक्षा-विभाग से स्वर्णपदक और छात्रवृत्ति पायी। धनाढ्य घराने की होने से छात्रवृत्ति-द्रव्य का उपयोग आपने निर्धन सहपाठिनी छात्राओं की सहायता में ही किया। जिस समय कलकत्ता विश्वविद्यालय भर में आप प्रथम हुईं, मैं वहाँ 'जागृति' के सम्पादकीय विभाग में था। आई० एस्सी० से बी० एस-सी० और एम्० एस्० सी० तक की परीक्षाओं में आप लगातार विश्वविद्यालय भर में सर्वप्रथम होती रहीं। मैंने 'जागृति' में सचित्र टिप्पणी द्वारा आपको बधाई दी थी। उसके बाद ऑक्सफोर्ड-युनिवर्सिटी में तीन वर्षों तक शिक्षा पाकर सन् १९५३ ई० में आप डी० फिल्० हो स्वदेश लौटीं। फिर, अमेरिका प्रवास में एक वर्ष रहकर और वहाँ की सरकार द्वारा प्रदत्त 'फुलब्राइट एवं स्मिथ मुण्ड' फेलोशिप लेकर आप भारत आयीं तथा कलकत्ता-साइन्स कॉलेज में विज्ञान के रासायनिक अन्वेषण का कार्य, 'सर पी० सी० राय रिसर्च-फेलो के रूप में,

करने लगीं। साथ ही, कलकत्ता-विश्वविद्यालय में अवैतनिक रूप में, चार वर्षों तक अध्यापन कार्य भी करती रहीं। अब आप यादवपुर-विश्वविद्यालय (पश्चिम बंगाल) में 'रीडर' के रूप में, कार्बनिक रसायन-शास्त्र सम्बन्धी अध्यापन कार्य कर रही हैं। आपके निर्देशन में तीन चार छात्र रसायन विज्ञान में अनुसन्धान कार्य कर रहे हैं। आपने सिद्धान्त-मूलक रसायनशास्त्र में अनेक महत्त्वपूर्ण अनुसन्धान किये हैं। देश-विदेशों की पत्र-पत्रिकाओं में आपके रसायन-विज्ञान विषयक निबन्ध प्रकाशित और समादृत हुए हैं। आपकी यह मान्यता है कि 'साहित्य में रस और विज्ञान में रसायन—दोनों की ओर प्राचीन भारत आकृष्ट था। आज के युग में तो आधुनिक साहित्य का रस भी रसायन में आ गया है। एक से एक बढ़कर रासायनिक चमत्कार हमारे जीवन को सुन्दर, सुखद और स्वास्थ्यप्रद बनाने के लिए प्रस्तुत हैं। कमी है तो मानव की विवेक बुद्धि की।' आज आप अपने अधिकृत विषय के क्षेत्र में अग्रणी हैं। शिक्षा, संस्कृति, ललित कला और हस्त शिल्प के क्षेत्र में भी आपकी अद्भुत ज्ञान-गरिमा है। आपने बिहार की महिलाओं का मुख उज्ज्वल किया है।

श्रीमती सरस्वती सिन्हा

श्रीमहावीर प्रसाद 'प्रेमी'

नागपुर-विश्वविद्यालय से बी॰ ए॰, बी॰ टी॰ की उपाधि पाने के बाद आपने पटना-विश्वविद्यालय से एम्॰ ई॰ डी॰ की डिग्री पायी। गृहशास्त्र विषय लेकर परीक्षोत्तीर्ण होनेवाली आप सर्वप्रथम बिहारी महिला हैं। आजकल आप उच्च-माध्यमिक कन्या-विद्यालय (पटना) की प्रधानाचार्या हैं। कई सार्वजनिक संस्थाओं के संस्थापक और राष्ट्रभक्त नेता श्रीरामलखनजी चन्दापुरी की आप पत्नी हैं। स्थानीय मन्दिरी मुहल्ले में रहती हैं। आपके पिता स्थानीय राजापुर के निवासी हैं, जो बहुत दिनों से नागपुर में सिविल सर्जन हैं। आप अँगरेजी की अच्छी लेखिका हैं। गृहशास्त्र-विज्ञान-विषयक आपके दो निबन्ध अँगरेजी दैनिक 'सर्चलाइट' (पटना) में छपे थे, जिनकी बड़ी प्रशंसा हुई थी। कई साल से आप बड़ी योग्यता और सफलता के साथ कन्याओं को शिक्षा प्रदान करती आ रही हैं। आप गृह-प्रबन्ध में भी बहुत कुशल हैं। फोटोग्राफी की कला में अत्यन्त निपुण हैं। 'बैडमिण्टन' की सिद्धहस्त खिलाड़ी भी हैं। आपकी दोनों बहनें सुशिक्षिता हैं—श्रीमती कमला सिन्हा, एम्॰ ए॰, बी॰ टी॰ और श्रीमती सरला सिन्हा, एम्॰ ए॰।

श्रीमती श्यामकुमारी देवी

आप अधिक शिक्षा-प्राप्त नहीं हैं, पर हस्त-शिल्प-कौशल में पूर्ण पारंगत और आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर हैं। वस्त्रों की सुन्दर कटाई, सिलाई और बुनाई का उत्तम ज्ञान है। कलकत्ता-प्रवास के समय से लेकर पटना और दानापुर में अद्यावधि रहने तक आपने

अनेक बालिकाओं और महिलाओं को शिल्प-कौशल और सिलाई मशीन चलाना सिखाकर स्वावलम्बी बनाया है—उन्हें शील सम्मान की रक्षा के साथ ही बेकारी, बेरोजगारी और जीविका-चिन्ता से मुक्त कर दिया है। आप स्वयं साधन हीन होते हुए भी हस्तकला उद्योग सीखने की जिज्ञासु कन्याओं और अभावग्रस्त दुखिया बहनों की सेवा-सहायता के लिए यथासाध्य तैयार रहती हैं। अपने कलात्मक गुणों का सदुपयोग करते हुए आप एकान्त भाव से नारी समाज की सेवा में दत्तचित्त हैं। आपका स्वभाव बड़ा सरल और मिलनसार है। स्त्रियों में आपकी बड़ी प्रतिष्ठा है।

श्रीमती मुन्नी देवी ग्रामसेविका

श्रीरामनगीना पाण्डेय, शिक्षक, अपर प्राइमरी स्कूल, मुहल्ला कटरा, छपरा

इनका जन्म दौलतगंज मुहल्ले (छपरा) में हुआ था। माता सीता देवी और पिता हरिहरप्रसाद पांडेय इन्हें बचपन में ही अनाथ कर गये। इनके बहनोई गोपीनाथ पांडेय इन्हें अपने घर (रेपुरा, दिघवारा, सारन) ले गये। इनकी बड़ी बहन भगवती देवी ने इन्हें पढ़ाया लिखाया। किसी तरह मिडिल की परीक्षा पास कर गयीं। आगे पढ़ने की सुविधा न रही। बगडीला निवासी श्रीयज्ञानन्द पांडेय के साथ इनका विवाह हुआ। घर के पर्दे में बन्द रहकर समाज सेवा से विमुख रहना इन्हें पसन्द न था। पति को सामाजिक सेवा के लिए उत्प्रेरित करने लगीं। फलत, पति भूदान आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने लगे। इनको भी सुयोग मिला। पति के साथ कस्तूर बा गान्धी-ट्रस्ट द्वारा संचालित ट्रेनिङ्ग (पूसा, दरभंगा) में भरती हो गयीं। दो साल तक ग्रामसेविका का प्रशिक्षण पाकर डालटनगंज (पलामू) से चौदह मील दूर जंगल में मीतकीला केन्द्र जाना पड़ा। वहाँ तीन साल तक ग्रामीण जनों में काम करके अपूर्व जागरण पैदा कर दिया। वन्य जातियों में सभ्यता संस्कृति के विकास के साथ ही उनकी स्त्रियों में शिक्षा, सफाई, कताई, बुनाई का भी खूब प्रचार किया। वहाँ की नारियाँ अपने ही हाथों बुने कपड़े पहनने लगीं। खादी चर्खा-उद्योग के स्वनामधन्य उन्नायक और अनन्य सेवक श्रीलक्ष्मीनारायणजी का ध्यान इनकी ओर आकृष्ट हुआ। ये भूदानी ग्राम (खोजकीपुर, दरभंगा) में बुलायी गयीं। वहाँ भी उन्होंने सोत्साह कार्य किया। उस क्षेत्र के ग्रामीण हरिजनों और पिछड़ी जाति के लोगों में इन्होंने अधिकांश को रोगग्रस्त देखा। बस, होमियोपैथी चिकित्सा-विधि का अध्ययन शुरू कर दिया। उसमें इन्हें काफी सफलता मिली। दवा दारू के लिए रोगी लोग इनकी शरण में आने लगे। ट्रस्ट के नियमित दैनिक कार्य करने के बाद ये उन गरीबों की देखभाल करने लग गयीं। मझरिया गाँववाले ने इनका यश सुना, तो ट्रस्ट से कह सुनकर इनकी बदली अपने गाँव में करा ली। इनकी दिनचर्या में इनकी सेवा निष्ठा झलकती है। चार बजे तड़केही उठकर नित्य-कृत्य और पूजापाठ छः बजे तक कर लेती हैं। सात बजे तक

सादा भोजन भी बना लेती हैं। तब बाल-बाड़ी का काम देखती हैं। दस बजे तक पढ़ाती हैं। फिर, रोगियों की देख-रेख के बाद बारह बजे भोजन करती हैं। विश्राम के बाद तीन बजे से पाँच बजे तक स्वाध्याय में लीन रहती हैं और आगन्तुकों को भी थोड़ा समय देती हैं। प्रौढ़ महिलाओं को सफाई रखने, बच्चों को पोसने, रोगी-परिचर्या करने आदि की शिक्षा देते रहना इनका निश्चित कार्यक्रम है। आजकल भदरिया (दरभंगा) में कार्यरत हैं। सेवाकार्य से इन्हें बड़ा आनन्द मिलता है। सदा कहती हैं—"मेरे भैया ने सिखाया है : सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः।"

श्रीमती तारा रानी श्रीवास्तव

श्रीविपिनविहारी 'नन्दन'; मुलनाचक, कुम्हरार, पटना

इनका जन्मस्थान है महाराजगंज थाने (सारन) का बालबँगरा गाँव। इनके पति श्रीफुलेनाप्रसाद श्रीवास्तव भारत के अहिंसात्मक स्वतन्त्रता संग्राम में शहीद हुए थे। अगर उनकी शहादत की कोई तस्वीर आँकी जायगी, तो इनके साथ ही आँकना पड़ेगा। प्रकाश और छाया के सहारे ही चित्र आँका जा सकता है। प्रकाश की आधार होती है छाया। फुलेना की छाया थी तारा—शान्त और शीतल। ये सचमुच क्रांति की एक चिनगारी हैं। फुलेना बाबू ने जो कुछ कर दिखाया, सबके पीछे इन्हीं की प्रेरणा-शक्ति थी। जिस समय वे मातृभूमि की बलिवेदी पर बलिदान हुए, उन क्षत-विक्षत शरीर को अपनी गोद में लिये बैठी थीं। इनके चेहरे पर न विषाद की रेखा थी और न आँखों में आँसू थे। इनके चेहरे से एक विचित्र आभा टपक रही थी। साम्राज्यवादियों की गोलियों के शिकार बने पति के मुखड़े पर विराजते हुए तेज को एकटक देख रही थीं। कितना मजबूत कलेजा है इनका कि लुटते हुए सुहाग की घड़ी में भी गंभीर धैर्य धारण किये बैठी थीं। इन्हें आत्मसंतोष था कि मातृभूमि के सुहाग की रक्षा के लिए इन्होंने अपना सुहाग लुटा दिया। पति के रक्तास्त शरीर से निकली रक्तधारा से इनकी अलकावली रक्त-रंजित हो गयी थी। इनके आँचल से रक्त टपकता था। खून के पनाले बहते देख भी तनिक घबरायीं नहीं। पास ही खड़ी थीं इनकी माता राधिकाकुँवरी रोती चिल्लाती। फिर भी, इनका कलेजा जैसे कोई अथाह समुद्र हो, जिसमें सारी वेदनाएँ बूँदों की तरह विलीन हो गयी हों। तब अकम्पित चरणों से धीरे धीरे उठीं। माता और अपने दो बच्चों की सहायता से पति का शव उठाकर आगे बढ़ीं। गंगा-तट दूर था, अरथी सामने पड़ी थी। भीड़ बढ़ती जा रही थी। लोगों की आँखें छलछला रही थीं, इनके चेहरे से दृढ़ संकल्प की दीप्त ज्योति फूटी पड़ती थी। अरथी जब आगे बढ़ी, इन्होंने उसमें अपना कंधा लगाया। बोलीं—'वन्दे'। पीछे से भीड़ बोली—'मातरम्'। असंख्य ज्वालामुखी अपने अन्तस्तल में दबाये अरथी उठाये बढ़ी जा रही थीं। गंगातट की चिता पर पति के शव को निरखती

चुप खड़ी रहीं। आग की लपटें उठीं। इन्होंने अपना सिर झुका लिया। भीड़ से बुलन्द आवाज उठी—हम इसका बदला चुकाकर दम लेंगे। इन्होंने शांत स्वर में कहा—अहिंसक रीति से। जैसे उबलते दूध में किसी ने ठंडे जल का छींटा डाल दिया। यह अलौकिक वीरांगना पूज्य बापू के आह्वान पर व्यक्तिगत सत्याग्रह में अपने पति के कदम से कदम मिलाकर जेल में बन्दिनी का जीवन बिताते हुए जो यातनाएँ सह चुकी थी, उनके कारण तथा लखनऊ और फतहगढ सेण्ट्रल जेलों में नजरबन्द रहने से असह्य दुःख झेलने को मानों अभ्यस्त हो गयीं। तभी तो अब भी वियोग वेदना का दुस्सह भार उठाए दुःखों की चट्टान पर खड़ी हैं। जो कभी मातृमन्दिर की पुजारिन थीं, आज सरस्वती की पुजारिन हैं। एकान्त ग्रामवासिनी बनकर साहित्य-सेवा की धुन में बिना पतवार की जीवन-नौका खेती जा रही हैं। पौरुष प्रतीक फुलेना बाबू चले गये—अपनी प्रेरणा-शक्ति को छोड़कर, ताकि हमारा आपका पुरुषत्व अनुप्राणित होता रहे।

श्रीमती रामदुलारी सिंह

इनके पिता श्रीमहेन्द्र सिंह एक श्रेष्ठ समाज सेवी और कट्टर देशभक्त थे। महात्मा गांधी की पुकार पर आजादी की लड़ाई में खुशी-खुशी सपरिवार जेल यातना सह चुके थे। इनके पिता, भाई, भतीजा, ससुर और पति ने कुर्बानी की मिसाल कायम की। इनके मायके और ससुराल के परिवारों से समाज-सुधार—पर्दा विरोध, स्त्री शिक्षा, अछूतोद्धार आदि—आन्दोलनों को बड़ा बल मिला। इन्होंने काशी-हिन्दूविश्वविद्यालय और पटना विश्वविद्यालय दोनों से एम० ए० पास किया। ये बिहार की प्रथम और एकमात्र डबल एम० ए० महिला हैं। अँगरेजी और हिन्दी के पत्रों में समय-समय पर आपके सारगर्भ लेख छपते रहते हैं। जब ये बोलने के लिए खड़ी होती हैं, इनकी जिह्वा पर सरस्वती विराजती हैं। इनका भाषण सजीव और प्रभावशाली होता है। ये प्रेमचन्द की भाषा बोलती हैं। व्याख्यान में इनकी निर्भीकता देख पंडित नेहरूजी ने लिखा था—"सार्वजनिक क्षेत्र में महिलाओं को प्रोत्साहन मिलना चाहिए, बम्बई में ऑल-इण्डिया कॉंगरेस कमिटी के अवसर पर श्रीरामदुलारी सिंह ने जिस निर्भयता से भाषण किया, उससे मैं प्रभावित हूँ।" इस प्रकार बम्बई, मेरठ, जयपुर, भावनगर और पटना के काँगरेस अधिवेशनों में इनके उच्च कोटि के भाषणों ने इनके निर्मल यश पर चार चाँद लगा दिये हैं। वर्षों तक ये गांधी राष्ट्रीय स्मारक-निधि (बिहार शाखा) की मन्त्रिणी रहीं। जब सन्त विनोबाजी बिहार आये, इन्होंने सीतामढी इलाके में यात्रा करके सैकड़ों एकड़ जमीन के दानपत्रों का संग्रह किया और राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू के शुभागमन के अवसर पर उन्हें अर्पित कर दिया। सन् १९४४-४५ ई० में बिहार कस्तूर बा-स्मारक समिति की उपाध्यक्षा रहकर श्लाघ्य कार्य किया था। मुँगेर की प्रलयकारी बाढ़ में घर-घर से कपड़े और धन माँगकर पीड़ितों की सहायता की। बिहार-विधानसभा की सदस्या के रूप में इनका तथ्यपूर्ण भाषण सभी प्रमुख विधेयकों पर होता है।

श्रीमती पार्वती वर्मा

श्रीदिगम्बर झा

इनके पति डॉक्टर बी० पी० वर्मा आरा-निवासी हैं। अखिलभारतीय वीमेन्स कान्फरेन्स की सदस्या सन १९२५ ई० से ही हैं और सन् १९५६ ई० से उपाध्यक्षा। राष्ट्रीय बचत-अभियान की प्रबन्ध समिति में सन् १९५८—६० ई० तक रहकर इन्होंने प्रायः दो लाख रुपये इकट्ठे किये। सन १९२७ से २९ ई० तक महिला-समिति (पुरुलिया) की सदस्या रहीं। वहाँ की स्त्रियों को अवैतनिक रूप से बुनाई, कसीदा और पाकशास्त्र की शिक्षा दी। सन् १९३४-३५ ई० के भूकम्प में इन्होंने मुंगेर में रिलीफ का और बाल कल्याण-केन्द्र का काम किया था। आरा के गर्ल्स प्राइमरी-स्कूल की उपाध्यक्षा दस वर्षों से हैं। नारी-समाज की सेवा में इनकी खासी दिलचस्पी है।

श्रीमती कुमुद शर्मा

इनका जन्म सन १९२६ ई० में २४ मार्च को पटना में हुआ था। ये स्वनामधन्य विद्वान् महामहोपाध्याय पं० रामावतार शर्मा की पुत्रवधू और पटना विश्वविद्यालय के भूतपूर्व हिन्दी-विभागाध्यक्ष आचार्य नलिनविलोचन शर्मा की धर्मपत्नी हैं। इनका विवाह सन् १९४१ ई० में २९ जून को हुआ था। इनके पिता प० अमरनाथ शर्मा सारस्वत श्रीमती एनीबेसेण्ट के साथ रहते थे और अदयार (मद्रास) में उनकी शिक्षा-दीक्षा हुई थी। इनके वृद्धप्रपितामह गया (बिहार) के ही निवासी थे, जो कपूरथला (पंजाब) के पास एक गाँव में जा बसे थे। ये अपने घर में ही 'रत्नावती विद्या-मन्दिर' नामक शिशु-पाठशाला चला रही हैं, जिसकी स्थापना इनके पति द्वारा इनकी सास के नाम पर सन् १९६१ ई० में १६ जनवरी (सोमवार) को हुई थी और जिसमें तीन से दस वर्ष के बालक-बालिकाओं को हिन्दी के माध्यम से शिक्षा दी जाती है। उन्हें शुद्ध बोलना, लिखना, पढ़ना सिखाया जाता है। भाषा की शुद्धता पर ध्यान रखते हुए उनकी चारित्रिक शिक्षा पर विशेष बल दिया जाता है, जिससे उनमें आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता पैदा हो। आर्थिक सुविधा होते ही संस्कृत-शिक्षण की व्यवस्था करने का भी सकल्प है। इन्होंने वैज्ञानिक ढंग से 'शिशु वर्ण-परिचय' लिखा है, जो अभी अप्रकाशित है। इस समय अपने स्वर्गीय पति की समस्त रचनाओं का संग्रह करके उनके प्रकाशन के प्रबन्ध में प्रयत्नशील हैं। इनके एकमात्र पुत्र श्रीराजीव शर्मा पटना-कॉलेज में बी० ए० के छात्र हैं। अपनी कुल परम्परा के अनुसार ही ये अत्यंत प्रतिभाशालिनी विदुषी हैं। विद्वद्वर पति के संसर्ग से इनकी साहित्यिक चेतना का खूब विकास हुआ है। इनकी उक्त पाठशाला की लोकप्रियता दिन दिन बढ़ रही है। एकान्त भाव से मौन शिक्षा-सेवा करनेवाली ऐसी देवियों की आज बड़ी जरूरत है।

प्रो० श्रीमती मोहिनी सिन्हा
(परिचय : पृ० ३५७)

श्रीमती पार्वती वर्मा
(परिचय : पृ० ३६८)

श्रीमती प्रियवदा नन्दक्यूलियार
(परिचय : पृ० ३४६)

श्रीमती सरस्वती सिन्हा चन्दापुरी
(परिचय : पृ० ३६०)

बिहार के चीनी-मिल मजदूरों के संगठन की नींव नरकटियागंज (चम्पारन) में इन्हीं की अध्यक्षता में पड़ी थी। अखिलभारतीय अल्यूमीनियम कर्मचारियों के फेडरेशन का प्रथम सम्मेलन इन्हीं के सभापतित्व में हुआ था। अनेक कारखानों और कम्पनियों के कर्मचारियों तथा मजदूरों के यूनियनों (संघों) की ये सदस्या हैं। बिहार श्रमिक-शिक्षण संस्थान की मन्त्रिणी भी हैं। काँगरेस के अध्यक्ष श्रीढेबर के सन् १९६० ई० में पटना पधारने पर, तो मजदूर रैली में कहा था—'इस प्रकार की महिला मजदूर-नेत्री भारत में एक भी नहीं है।' किसान-आन्दोलन को भी आपके प्रान्तव्यापी दौरे और व्याख्यानों से बड़ा बल मिला है। सन् १९४६ ई० में ये बिहार-महिला-समिति की संगठन मन्त्रिणी थीं। अब भी बिहार-काँगरेस महिला-समिति की सदस्या हैं। सन् १९४७ ४८ ई० में बिहार युवक-काँगरेस की मन्त्रिणी के रूप में कई जिलों का दौरा किया था और आज भी बिहार युवक समाज की मंत्रिणी हैं। बिहार-विश्वविद्यालय, पटना रेडियो, बिहार पुस्तकालय संघ महिला ट्रेनिंग-स्कूल, बालिका-विद्यालय आदि संस्थाओं की सदस्या भी हैं। हिन्द-अरब मैत्री-संघ की समानेत्री हैं। बम्बई-काँगरेस के समय 'हिन्दुस्तान स्टैंडर्ड' ने लिखा था—' काँगरेस के आकाश में एक नयी तारिका का उदय हुआ है, जो धाराप्रवाह बोलीं, जिसमें काफी समझ की बातें थीं।'' इसी तरह सन् १९४८ ई० में उक्त नरकटियागंज-सम्मेलन के समय 'इण्डियन नेशन' ने लिखा था—''इनके भाषण से पता चलता है कि इनका दिमाग रचनात्मक है और ये मजदूर-समस्या की सूक्ष्मतत्त्वदर्शिनी हैं।'' लगभग बीस वर्षों से ये लोकहित के सार्वजनिक आन्दोलनों में सक्रिय भाग ले रही हैं।

श्रीमती मुनेश्वरी देवी

श्रीमती यमुना देवी, सरथा, हरनौत (पटना)

इनका जन्म मोगाढ़ी (हिलसा, पटना) में हुआ था। अपने माता पिता की इकलौती पुत्री थीं। सरथा के प्रसिद्ध स्वतन्त्रता सैनिक और साहित्यसेवी श्रीरामचरण सिंह 'सारथी' से इनका विवाह सन् १९२८ ई० में हुआ था। ससुराल में ही पति द्वारा मिडिल तक की योग्यता प्राप्त की। बुद्धि और प्रतिभा तीक्ष्ण थी। जब इनके पति स्कूल से असहयोग करके हिलसा में दारू ताड़ी गाँजे की दूकानों पर स्वयंसेवकों के जत्थे के साथ धरना देने गये, तब दारोगा ने थाने में उन्हें बुलाकर लाठी से पिटवाया और हिरासत में भेज दिया। यह सुनकर इन्होंने अपनी सहेली प्रेमलता सिन्हा के साथ वहाँ जाकर धरना दिया और बाजार में घूम घूमकर विदेशी कपड़ों की होली जलायी। सन् १९३० ई० में सखी-सहित गिरफ्तार हो तीन मास के लिए जेल गयीं। वहाँ श्रीजगतनारायण लाल की पत्नी रामप्यारी देवी, श्रीपुण्यदेव शर्मा की पत्नी मनोरमा देवी तथा चन्द्रावती देवी से इनका परिचय हुआ। जेल से छूटने पर इन्होंने सरथा में रामप्यारीजी और चन्द्रावतीजी को बुलाया। उन दोनों के साथ गाँव गाँव घूमकर देहाती स्त्रियों को स्वयंसेविका बनने के लिए उत्साहित किया। सरथा,

बेलछी, वेन्ना और वढौना गाँवों में सत्याग्रही स्वयंसेविकाओं के प्रशिक्षण-शिविर खोले गये। ग्रामीण नारियों को चर्खा चलाना सिखाया जाने लगा। पटना जिले की स्त्रियों में राष्ट्रीय चेतना, साहस और उत्साह जगाने का श्रेय उक्त रामप्यारीजी और चन्द्रावतीजी को ही है। उन्हीं दोनों देवियों की शिष्या ये दोनों सखियाँ थीं। रामप्यारीजी की मंत्रणा से ही ये दोनों सहेलियाँ सन् १६३०-३२ ई० के सत्याग्रह-आन्दोलन में शामिल होकर जेल गयीं। बाँकीपुर जेल में छ मास की कैद भोगते हुए विषमज्वर से इनका देहान्त हो गया। आज भी प्रेमलताजी इनके क्लेश और बलिदान की करुण कहानी सुनाती हैं। इनके शहीद हो जाने पर भी इनके पति इनकी प्रेरणा के फलस्वरूप सन् १६४२ ई० के क्रान्तिकारी आन्दोलन तक देशसेवा में तत्पर रहकर नौ बार जेल गये और पटना कैम्प जेल में देश के राजनीतिक हलचल का इतिहास लिखने लगे, जो दै० 'आज', सा० 'कर्मवीर' एव 'हुंकार' में क्रमशः प्रकाशित हो चुका है। सचमुच, मुनेश्वरीजी त्याग और सेवा की श्रद्धा से सम्पन्न आदर्श महिला थीं।

श्रीमती सुदामा सिन्हा

श्रीरामसिंहासन सिंह 'विद्यार्थी'; गया

इनके पिता श्रीहरदेवन सिंह सरल प्रगति के सरकारी व्यक्ति हैं। उन्ही की प्रेरणा से इनको देश और समाज की सेवा की लगन लगी। ये सूत कातने की कला में परम प्रवीण हैं और उसी से बुनी खादी पहनती हैं। ऐसी सादगी पसन्द हैं कि शरीर पर कोई प्रसाधन नहीं, केवल समाज सेवा ही आभूषण है। इनका ब्याह दलसिंहसराय (दरभंगा) के पास 'ववका' ग्राम में हुआ है। ससुरालवाले भी पर्दा विरोधी हैं। इन्हें सिर्फ काम ही करते रहने की धुन है। आराम को हराम मानती हैं। किसी दल की सदस्या नहीं हैं। राजनीति से दूर और समाज कल्याण के अति समीप रहती हैं। नानपुर (पुपरी, मुजफ्फरपुर) की समाज कल्याण विस्तार परियोजना की अध्यक्षा हैं। इसमें बालवाडी, प्रौढ महिला शिक्षा केन्द्र, कताई-हस्तकला केन्द्र, सांस्कृतिक केन्द्र आदि विभाग हैं, जिनमें एक मुख्य सेविका के सिवा छ ग्रामसेविकाएँ, चार परिचारिकाएँ, छ बालवाड़ी शिक्षिकाएँ सम्प्रति कार्यरत हैं। समय समय पर शिशु-दिवस, नृत्य, सगीत आदि के आयोजन होते रहते हैं। इसका मुख्यालय जानीपुर में है, जहाँ से पुपरी और बेला जाकर इन्होंने कभी शिक्षा प्राप्त की थी। मैट्रिक तक पढकर इन्होंने चन्दवारा (मुज०) के महिला विद्यालय में प्रशिक्षण पाया। स्काउट-गाइड की शिक्षा भी पायी। बिहार-समाज-शिक्षा-परिषद् की ओर से घूम-घूमकर जब श्रीमती गौरी चक्रवर्ती महिलाओं को शिक्षा दे रही थीं, तब इन्होंने भी उनके शिविर (लालगंज) में जाकर समाज-सेवा और ललित-कला की शिक्षा पायी थी। ये कोरी सिद्धान्तवादिनी नहीं हैं, सम्पूर्णतया व्यावहारिक और कार्य तत्पर नारी हैं।

श्रीमती ए० एब्राहम

प्रो० वच्चनकुमार पाठक 'सलिल'; (हि० वि०) करीम-सिटी कॉलेज, जमशेदपुर

इन्होंने मद्रास-विश्वविद्यालय से विज्ञान में एम० एस् सी० पास किया था। इनका कार्यक्षेत्र बिहार-राज्य का छोटानागपुर प्रदेश रहा। पहले पहल हजारीबाग में एक वीमेन्स कॉलेज खोला, पर वहाँ से इनके चले आने पर वह नहीं चला। जमशेदपुर (तातानगर) आकर एक नाइट कॉलेज खोला, जो आज कोऑपरेटिव-कॉलेज के रूप में विख्यात है। पुनः इन्होंने वर्कर्स कॉलेज में प्राचार्या का पद भार ग्रहण किया। सम्प्रति ये करीम सिटी-कॉलेज की प्राचार्या हैं। ग्यारह साल पहले जमशेदपुर में कोई कॉलेज नहीं था, आज ये चतुर्थ कॉलेज का संचालन कर रही हैं। लड़कियों के लिए एक हाई-स्कूल भी चलाती हैं। ये एक सफल प्रशासिका और कुशल समाजसेविका विदुषी हैं। बिहार के भूतपूर्व सहकारिता-मंत्री श्रीजगतनारायण लाल ने इनके विषय में कहा था—'इनमें एक साथ गार्गी से कस्तूर बा तक के गुण आ गये हैं।' नाटे कद की गौर वर्ण, हँसमुख और अधेड़ यह महिला भारतीय साड़ी पहने देवी तुल्य जान पड़ती है।

श्रीमती कमरुन्निसा बेगम

श्रीदिगम्बर झा

इनका जन्म छपरा नगर में हुआ था। ये बिहार राष्ट्रीय विद्यापीठ की स्नातिका हैं। इन्होंने प्रयाग के क्रॉस्थवेट कॉलेज में शिक्षिका का प्रशिक्षण पाया है। पहले बाँकीपुर गर्ल्स-हाइ स्कूल में उर्दू शिक्षिका हुईं। फिर, मुजफ्फरपुर में प्रशिक्षण-कार्य किया। पुनः उस स्कूल में शिक्षिका हुईं। तब आरा के गर्ल्स-हाइ-स्कूल में बदली हो गयीं। वहाँ प्रधानाध्यापिका होकर गयीं। सन् १९५६ ई० में फिर पहलेवाले उक्त स्कूल में प्रधानाध्यापिका होकर पटना आयीं और सन् १९६१ ई० में अवसर ग्रहण कर सेवा निवृत्त हुईं। बच्चे-बच्चियों को घरेलू प्यार से पढ़ाने के कारण ये एक आदर्श शिक्षिका मानी जाती रहीं। विशेषतः बालिकाओं को समाज सेवा की प्रेरणा देती रहती हैं।

श्रीमती अमला मुखर्जी

इनका जन्म सन् १९०५ ई० में, सुनामगंज (सिलहट, अब पूर्व-पाकिस्तान) में हुआ था। घर पर ही इन्हें संस्कृत और बँगला की शिक्षा अपने पिता से मिली थी। विवाहोपरान्त प्राध्यापक पति से ही अँगरेजी, अर्थशास्त्र, इतिहास और राजनीति-विज्ञान की शिक्षा प्राप्त की। सन् १९४६-४७ ई० में महात्मा गान्धी की मन्त्रिणी सुश्री मृदुला साराभाई ने मुसलमानों के बीच काम करने के लिए इन्हें स्वयंसेविका चुना, क्योंकि ये पुरानी देशसेविका थीं। सन् १९२१-२२ ई० में अपने पति के साथ मुजफ्फरपुर में रहते हुए इन्होंने पर्दा प्रथा-बहिष्कार आन्दोलन का सूत्रपात किया था। इनके पति सरकारी नौकर थे, अतः इन्हें

बिहार के विभिन्न भागों में रहने का अवसर मिला। सर्वत्र इन्होंने नारी-समाज के जागरण का काम जारी रखा। देहातों और आदिवासियों में भी इनका यह सेवा-कार्य चलता रहा। सन् १९३४ ई० में पति के साथ पटना आयीं, तो 'अघोर-कामिनी-शिल्पालय' के विकास में अन्तकाल तक संलग्न रहीं। सन् १९६० ई० में इनकी अचानक मृत्यु हो गयी; पर इनकी सेवा-साधना कितनी ही बहनों को शुभ प्रेरणा दे गयी।

श्रीमती सरस्वती देवी

श्रीभागवत पोद्दार, विशारद; भागलपुर

इनके पति सबौर (भागलपुर) के निवासी श्रीपद्माकर झा बिहार के पुराने खादी-विशेषज्ञ हैं। वे महात्मा गान्धी के साबरमती-आश्रम से रचनात्मक कार्यक्रम की शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं। ऐसे अनन्य गान्धी-भक्त पति के संसर्ग से इन्हें भी देश और समाज की सेवा की ऐसी धुन सवार हुई कि दिन-रात जनता के बीच खादी-चर्खा-प्रचार में ही लगी रहीं। एक बार हाथ में राष्ट्रीय झंडा और गोद में दूध पीता बीमार बच्चा लिये मेरे घर आयीं। मैंने बच्चे के आराम होने तक इन्हें विश्राम करने के लिए कहा। पर, इन्होंने मुहल्ले मुहल्ले घूमकर महिलाओं को उत्साहित करते रहने में ही अपना सारा समय लगाया। रात में लौटने पर ये श्रान्त होकर मूर्च्छित हो गयीं। प्रातःकाल कुछ स्वस्थ होते ही ये सत्याग्रह-आश्रम (बिहपुर) चली गयीं। 'खादी, आजादी की दादी' इनका नारा था। जनता के दिल से भय का भूत निकालना इनका संकल्प था। सोते-जागते हिन्दू-मुस्लिम-एकता, अछूतोद्धार और खादी-प्रचार की ही धुन में लगी रहती थीं। गांधी-आश्रम (मधुपुर) में लगभग पन्द्रह हजार लोगों के बीच इन्होंने ऐसा ओजस्वी भाषण किया था कि स्वाधीनता की भावना से लोग उत्तेजित हो उठे थे। जिस समय बिहपुर (वीरपुर) के स्वराज्य-आश्रम के सामने सत्याग्रही सैनिकों का परेड हो रहा था, पुलिस ने पीछे से आकर लाठी-चार्ज शुरू कर दिया, इनकी ललकार पर जवान डटे रह गये, तब दारोगा ने वारण्ट दिखाकर इन्हें पकड़ लिया। सन् १९३१ ई० में, ५ फरवरी को, भागलपुर की जजी कचहरी में इन्हें डेढ़ साल का कठोर कारावास और पाँच सौ का अर्थदण्ड मिला। जज के बहुत समझाने पर भी इन्होंने साफ कह दिया— सत्य और अहिंसा के मार्ग से राजद्रोह फैलाकर क्रान्ति करना मैं अपना धर्म समझती हूँ।' इनके प्रोत्साहन से भूखी-नंगी और गर्भवती स्त्रियाँ भी इनके जत्थे में शरीक हो जाती थीं। जिस दिन इनकी रिहाई होनेवाली थी, जेल के फाटक पर अपार भीड़ थी; अतः पिछले फाटक से पुलिस ने इन्हें मोटर से बाहर पहुँचा दिया। उसी दिन शाम को इनका बड़ा ही जोरदार भाषण हुआ, जिससे जनता में फिर जोश जाग उठा और भाषण समाप्त होते ही पुलिस ने पुनः इन्हें गिरफ्तार कर लिया। दूसरे ही दिन तीन मास की कैद सुना दी गयी।

श्रीमती ए० एब्राहम

प्रो० वचनकुमार पाठक 'सलिल'; (हि० वि०) करीम-सिटी-कॉलेज, जमशेदपुर

इन्होंने मद्रास-विश्वविद्यालय से फिजिक्स में एम० एस्० सी० पास किया था। इनका कार्यक्षेत्र बिहार-राज्य का छोटानागपुर-प्रदेश रहा। पहले-पहल हजारीबाग में एक वीमेन्स कॉलेज खोला, पर वहाँ से इनके चले आने पर वह नहीं चला। जमशेदपुर (टाटानगर) आकर एक नाइट-कॉलेज खोला, जो आज कोऑपरेटिव-कॉलेज के रूप में विख्यात है। पुनः इन्होंने वर्कर्स कॉलेज में आचार्या का पद भार ग्रहण किया। सम्प्रति ये करीम-सिटी-कॉलेज की आचार्या हैं। ग्यारह साल पहले जमशेदपुर में कोई कॉलेज नहीं था, आज ये चतुर्थ कॉलेज का संचालन कर रही हैं। लड़कियों के लिए एक हाइ स्कूल भी चलाती हैं। ये एक सफल अध्यापिका और कुशल समाजसेविका विदुषी हैं। बिहार के भूतपूर्व सहकारिता-मंत्री श्रीजगतनारायण लाल ने इनके विषय में कहा था—'इनमें एक साथ गार्गी से कस्तूर बा तक के गुण आ गये हैं।' नाटे कद की गौर वर्ण, हँसमुख और अधेड़ यह महिला भारतीय साड़ी पहने देवी-तुल्य जान पड़ती है।

श्रीमती कमरुन्निसा बेगम

श्रीदिगम्बर झा

इनका जन्म छपरा नगर में हुआ था। ये बिहार राष्ट्रीय विद्यापीठ की स्नातिका हैं। इन्होंने प्रयाग के क्रॉस्थवेट-कालेज में शिक्षिका का प्रशिक्षण पाया है। पहले बाँकीपुर गर्ल्स-हाइ-स्कूल में उर्दू-शिक्षिका हुईं। फिर, मुजफ्फरपुर में प्रशिक्षण-कार्य किया। पुनः उक्त स्कूल में शिक्षिका हुईं। तब आरा के गर्ल्स-हाइ-स्कूल में बदली हो गयीं। वहाँ प्रधानाध्यापिका होकर गयीं। सन् १९५९ ई० में फिर पहलेवाले उक्त स्कूल में प्रधानाध्यापिका होकर पटना आयीं और सन् १९६१ ई० में अवसर ग्रहण कर सेवा-निवृत्त हुईं। बच्चे-बच्चियों को घरेलू प्यार से पढ़ाने के कारण ये एक आदर्श शिक्षिका मानी जाती रहीं। विशेषतः बालिकाओं को समाज-सेवा की प्रेरणा देती रहती हैं।

श्रीमती अमला मुखर्जी

इनका जन्म सन् १९०५ ई० में, सुनामगंज (सिलहट, अब पूर्व-पाकिस्तान) में हुआ था। घर पर ही इन्हें संस्कृत और बँगला की शिक्षा अपने पिता से मिली थी। विवाहोपरान्त प्राध्यापक-पति से ही अँगरेजी, अर्थशास्त्र, इतिहास और राजनीति-विज्ञान की शिक्षा प्राप्त की। सन् १९४६-४७ ई० में महात्मा गान्धी की मन्त्रिणी सुश्री मृदुला साराभाई ने मुसलमानों के बीच काम करने के लिए इन्हें स्वयंसेविका चुना, क्योंकि ये पुरानी देशसेविका थीं। सन् १९२१-२२ ई० में अपने पति के साथ मुजफ्फरपुर में रहते हुए इन्होंने पर्दा प्रथा-बहिष्कार-आन्दोलन का सूत्रपात किया था। इनके पति सरकारी नौकर थे, अतः इन्हें

प्रो० श्रीमती मोहिनी सिन्हा
(परिचय पृ० ३५७)

श्रीमती पार्वती वर्मा
(परिचय पृ० ३६८)

श्रीमती प्रियवन्ना नम्क्युलियार
(परिचय पृ० ८६)

श्रीमती सरस्वती सिन्हा चन्दापुरा
(परिचय पृ० ६०)

श्रीमती पार्वती वर्मा

श्रीदिगम्बर झा

इनके पति डॉक्टर बी॰ पी॰ वर्मा आरा-निवासी हैं। अखिलभारतीय वीमेन्स-कान्फरेंस की सदस्या सन् १९३५ ई॰ से ही हैं और सन् १९४६ ई॰ से उपाध्यक्षा। राष्ट्रीय बचत-अभियान की प्रबन्ध समिति में सन् १९५८—६० ई॰ तक रहकर इन्होंने प्रायः दो लाख रुपये इकट्ठे किये। सन् १९२७ से २९ ई॰ तक महिला-समिति (पुरुलिया) की सदस्या रहीं। वहाँ की स्त्रियों को आधुनिक ढंग से बुनाई, कसीदा और पाकशास्त्र की शिक्षा दी। सन् १९३४-३५ ई॰ के भूकम्प में इन्होंने मुंगेर में रिलीफ का और बाल-कल्याण-केन्द्र का काम किया था। आरा के महिला प्राइमरी-स्कूल की उपाध्यक्षा दस वर्षों से हैं। नारी-समाज की सेवा में इनकी खासी दिलचस्पी है।

श्रीमती कुमुद शर्मा

इनका जन्म सन् १९२६ ई॰ में २४ मार्च को पटना में हुआ था। ये स्वनामधन्य विद्वान् महामहोपाध्याय पं॰ रामावतार शर्मा की पुत्रवधू और पटना-विश्वविद्यालय के भूतपूर्व हिन्दी-विभागाध्यक्ष आचार्य नलिनविलोचन शर्मा की धर्मपत्नी हैं। इनका विवाह सन् १९४१ ई॰ में २६ जून को हुआ था। इनके पिता प॰ अमरनाथ शर्मा सारस्वत श्रीमती एनीबेसेंट के साथ रहते थे और अदयार (मद्रास) में उनकी शिक्षा-दीक्षा हुई थी। इनके वृद्धप्रपितामह गया (बिहार) के ही निवासी थे, जो कपूरथला (पंजाब) के पास एक गाँव में जा बसे थे। ये अपने घर में ही 'रत्नावती-विद्या-मन्दिर' नामक शिशु-पाठशाला चला रही हैं, जिसकी स्थापना इनके पति द्वारा इनकी सास के नाम पर सन् १९६१ ई॰ में २६ जनवरी (सोमवार) को हुई थी और जिसमें तीन से दस वर्ष के बालक-बालिकाओं को हिन्दी के माध्यम से शिक्षा दी जाती है। उन्हें शुद्ध बोलना, लिखना, पढ़ना सिखाया जाता है। भाषा की शुद्धता पर ध्यान रखते हुए उनकी चारित्रिक शिक्षा पर विशेष बल दिया जाता है, जिससे उनमें आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता पैदा हो। आर्थिक सुविधा होते ही संस्कृत-शिक्षण की व्यवस्था करने का भी संकल्प है। इन्होंने वैज्ञानिक ढंग से 'शिशु-वर्ण-परिचय' लिखा है, जो अभी अप्रकाशित है। इस समय अपने स्वर्गीय पति की समस्त रचनाओं का संग्रह करके उनके प्रकाशन के प्रबन्ध में प्रयत्नशील हैं। इनके एकमात्र पुत्र श्रीराजीव शर्मा पटना-कॉलेज में बी॰ ए॰ के छात्र हैं। अपनी कुल-परम्परा के अनुसार ही ये अत्यन्त प्रतिभाशालिनी विदुषी हैं। विद्वद्वर पति के संसर्ग से इनकी साहित्यिक चेतना का खूब विकास हुआ है। इनकी उक्त पाठशाला की लोकप्रियता दिन-दिन बढ़ रही है। एकान्त भाव से मौन शिक्षा-सेवा करनेवाली ऐसी देवियों की आज बड़ी आदरता है।

प्रा० श्रीमती मोहिनी सिन्हा
(परिचय पृ० ३५७)

श्रीमती पार्वती वर्मा
(परिचय पृ० ३६८)

श्रीमती प्रियम्वदा नन्दकुलियार
(परिचय पृ० [illegible])

श्रीमती सरस्वती सिन्हा चान्दापुरी
(परिचय पृ० ३६०)

चौधराइन, पता-दण्डावधि-तिथि वही; ५. देवरानी देवी, अज्ञात, चार मास (२५।१।३२); ६. सियावती देवी (सब कुछ वही); ७. मुरजया देवी, गरेरिया, इमामगंज, गया, दो मास (३०।१।३२); ८. सरस्वती देवी, धामीटोला, कोतवाली, गया, दो मास, (२।२।३२); ९. नारायणी देवी, पार नवादा, नवादा, गया, छ मास (तिथि वही); १०. महारानी देवी, रोहिनी, देवघर, सं० प०, एक मास १५ दिन और ५०) अर्थदण्ड (वही); ११. तेतरी देवी, मखदुमपुर, गया, एक वर्ष दो दिन (२।५।३२); १२. राधाकिसुन चौधरानी, गोलपथर; कोतवाली, गया, दो मास (३०।६।३२); १३. राधा ग्वालिन, लखावर, घोसी, गया, एक मास (११।८।३२); १४. रामस्वरूप देवी, अमुना, मिर्जापुर, सारन, एक वर्ष, बारह मास (१।१०।३२); १५. चन्द्रावती देवी, अईरा, अरवल, गया, एक मास (१।८।३२); १६. शान्तिदेवी, मारूफगंज, कोतवाली, गया, एक मास (२४।११।३२); १७. कौशल्या देवी, मँगरा, शेरघाटी, गया, दो मास (वही); १८ मुरजा देवी, अज्ञात, दो मास (३०।११।३२); १९. राममखी देवी, काईसील, छपरा, सारन, दो मास (वही); २०. सावित्री देवी, कालपटी, शिवपुर, शाहाबाद, दो मास (वही); २१. देवरानी उर्फ महारानी देवी, इस्लामपुर, गया, चार मास (७।१२।३२); २२. विद्यावती देवी, औरंगाबाद, गया, तीन मास (२३।१२।३२); २३. राजवती देवी (सब वही); २४. कमला देवी, पवारी, बेलागंज, गया, दो मास (६।३।३३); २५. लीलावती देवी, मँझियामा, कुर्था, गया (शेष वही); २६. दुर्गा देवी (सब वही); २७. शान्ति देवी, गोह, गया, दो मास, चौदह दिन (७।८।३३); २८. मुनिया देवी, पीपरपाँती, कोत०, गया, छ मास (२६।६।४२); २९. शान्ति देवी, रमना, कोत०, गया, छ मास १४ दिन (१८।६।४२); ३०. शान्ति देवी, घोमाखाप, मरहवरा, सारन, छ मास (१३।८।४२); ३१. जनकदुलारी देवी, सलेमपुर, छपरा-टाउन, तीन मास (वही); ३२. शारदा देवी, मलखाचक, दिघवारा, सारन, चार वर्ष (५।१०।४२); ३३. सरस्वती देवी, पता वही, तीन वर्ष (६।१०।४२); ३४. रामस्वरूप देवी, आमीर, मरहवरा, सारन, चार वर्ष (१०।१०।४२)।

बिहारी नारियों को जगानेवाली अन्यप्रान्तीय महिलाएँ

श्रीरामनवमीप्रसाद, एडवोकेट; जूरन छपरा (मुजफ्फरपुर)

महात्मा गान्धी के चम्पारन-आन्दोलन के समय, जो सन् १९१७ ई० में हुआ था, बिहार की महिलाओं की सामाजिक अवस्था बहुत पिछड़ी हुई थी। उनमें उस समय न शिक्षा का विशेष प्रचार था और न वे पर्दे से बाहर आकर कोई काम कर सकती थीं। अलबत्त आन्दोलन के अन्त में महात्मा गान्धी की धर्मपत्नी के अतिरिक्त, गांधीजी के प्रबन्ध से, महाराष्ट्र तथा गुजरात की कुछ महिलाओं ने, चम्पारन के गाँवों में रहकर, वहाँ की महिलाओं के बीच, शिक्षा तथा सफाई इत्यादि का प्रचार किया था, जिनके नाम सादर स्मरणीय हैं—१. श्रीमती कस्तूरी बाई गान्धी (महात्माजी की धर्मपत्नी), २. श्रीमती

कुमारी सुषमा सेनगुप्त

आप श्रीमहेन्द्रकुमार सेनगुप्त (बिहार इञ्जीनियरिङ्ग कॉलेज, पटना) की पुत्री हैं। आपका जन्म सन् १९०४ ई० में २१ दिसम्बर को हुआ था। गर्ल्स-हाइस्कूल (पटना) से मैट्रिक पास करके छात्रवृत्ति लेकर आइ० ए० पढ़ने कटक (उड़ीसा) गयीं। कलकत्ता जाकर बी० ए० पास किया और महारानी गर्ल्स-हाइस्कूल (दार्जिलिङ्ग) में सन् १९२८ ई० की पहली जुलाई से अध्यापिका हुई। वहाँ बारह वर्षों तक बड़े सम्मान के साथ काम करती रहीं। सन् १९४० ई० में ३० अक्तूबर को, अपने भाई डॉक्टर सुविनय सेनगुप्त की देख-भाल करने के लिए, पटना चली आयीं। आपके उक्त भाई उस समय पटना-मेडिकल कॉलेज के तृतीय वर्ष के छात्र थे, जो बड़े यशस्वी डॉक्टर हुए। उनके साथ पूरे नव वर्ष रहने के बाद आपने उन्हें एम्० आर० सी० एस्० होने के लिए सन् १९४६ ई० में १९ सितम्बर को लन्दन भेजा, पर वहाँ वे सिर्फ सोलह महीने ही रह सके, बीमार होकर सन् १९४८ ई० में वायुयान से कलकत्ता होते हुए १७ मार्च को पटना पहुँचे और १५ मई को स्वर्गवासी हो गये। उसके एक साल बाद आपने स्वर्गीय भाई की स्मृति में 'शिशु-सदन' की स्थापना की। सन् १९६० ई० के ६ दिसम्बर तक इस शिक्षा संस्था का यही नाम रहा। आपने यह सोचकर कि प्यारे भाई का पालन पोषण अघोर परिवार में ही हुआ था, इसका नाम बदलकर 'अघोर-प्रकाश शिशु सदन' रख दिया। इसमें जाति, सम्प्रदाय या धर्म का भेदभाव न रखकर सभी वर्ग के बच्चों को शिक्षा दी जाती है। इस समय शरणार्थी और गरीब बच्चों की संख्या २२५ है। बालक बालिकाओं को हिन्दी, बँगला और अँगरेजी पढ़ायी जाती है। उनके चरित्रोत्कर्ष पर बराबर ध्यान दिया जाता है। अपने आसपास के क्षेत्र में यह संस्था उगती पीढ़ी के विकास का महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही है। आप ही इसकी संचालिका और संरक्षिका हैं।

स्वतंत्रता-आन्दोलन में जेल जानेवाली कुछ महिलाएँ*

१. तारा बालादासी हिरनडोंगा, पाकौड़, सन्तालपरगना, छ मास (६।८।३०), २ विद्यावती देवी, दावेशपुर, गिरियक, पटना, एक वर्ष (१९।११।३०), ३. जानकी देवी, धामीटोला, कोतवाली, गया, एक वर्ष, एक मास, ग्यारह दिन (२०।१।३२), ४ राधाकिशोरी

* महिलाओं के नाम के साथ ग्राम, थाना, जिला, कारा-दण्ड की अवधि और दण्ड प्राप्ति की तिथि दी गयी है। बिहार-राज्य के प्रायः सभी छोटे-बड़े कारागारों के अधिकारियों को पत्र भेजकर अनुरोध किया गया था कि राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम के क्रम में कारा दण्ड पानेवाली महिलाओं की नामावली विवरण-सहित भेजने की कृपा करें। केवल गया के सेण्ट्रल जेल और छपरा के जिला-जेल के अधीक्षक महोदय ने ही कृपा की। क्रम संख्या २९ तक के नाम गया से और ३० से ३४ तक के नाम छपरा से प्राप्त हुए, जो यहाँ प्रकाशित हैं। इसी विवरण से समस्त बिहार राज्य की महिलाओं के त्याग और साहस का अनुमान किया जा सकता है। चिकित्सा विभाग से भी बिहारी महिलाओं की विवरणात्मक सूची माँगी गयी थी, पर मिल न सकी। —सं०

'समिति' के गृहोद्योग विभाग की एक झाँकी
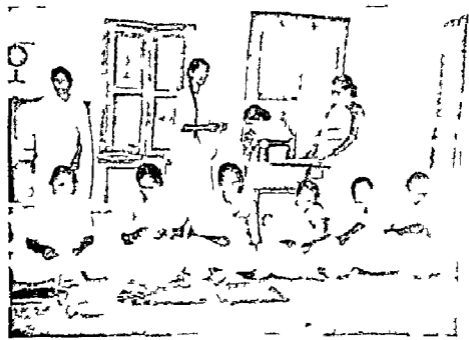
'समिति' का सिलाई बिनाई विभाग

अवन्तिका बाई (श्रीबवन गोखले की पत्नी), ३. श्रीमतीदुर्गा बाई (श्रीमहादेव देसाई की पत्नी), ४. श्रीमती मणि बाई (श्रीनरहरिजी की पत्नी), ५. श्रीमती आनन्दी बाई (महिला-आश्रम, पूना), ६. श्रीमती वीणापाणि (सर्वेण्ट ऑफ् इण्डिया सोसाइटी के मेम्बर श्रीलक्ष्मीनारायण साहू की पत्नी)।

बिहार की महिलोपयोगी संस्थाएँ

महिला-चर्खा-समिति, कदमकुआँ, पटना

श्रीदिगम्बर झा

सन् १९१७-१८ ई० में विश्ववन्द्य महात्मा गांधी ने चम्पारन में 'सत्याग्रह' का प्रथम प्रयोग किया। उनके साथ उनकी धर्मपत्नी भी आयीं और बिहारी महिलाओं में सार्वजनिक कार्यों के लिए यहीं से प्रेरणा और उत्साह का आरम्भ हुआ। सन् '२०-२१ ई० के असहयोग आन्दोलन, सन् '३०-३२ ई० के नमक सत्याग्रह और फिर सन् '४२ ई० की महाक्रांति में बिहारी महिलाओं ने अपनी कर्मठता, साहसिकता और अपने मनोबल का जो परिचय दिया, उससे तत्कालीन नेताओं को भी महान् आश्चर्य हुआ था। इस समिति की मूल कल्पना भी सन् १९४० ई० में २६ जून को, पटना में 'तीन चर्खों और पाँच बहनों' के पवित्र सकल्प से मूर्त हुई थी। बिहार के तत्कालीन प्रमुख नेताओं का समय समय पर इसे मार्ग-दर्शन और सहयोग मिलता रहा। वास्तव में रामगढ़-काँग्रेस (सन् १९४० ई०) के समय बिहारी महिला स्वय सेविकाओं की अभूतपूर्व सेवाओं और कार्यकुशलता ने बापू का हृदय जीत लिया। उन्होंने यह इच्छा प्रकट की कि 'इन कार्यकर्त्रियों के साथ राजनीतिक नेताओं का घनिष्ठ सपर्क रहना चाहिए, ताकि इनमें राष्ट्रीय चेतना जगी रहे और सामाजिक कुरीतियों को तोड़ने के उत्साह की लहर दिन-दिन उमड़ती चले—इससे जाग्रत् महिलाओं द्वारा देश सेवा और समाज निर्माण में बड़ी सहायता मिलेगी; इसलिए एक सुव्यवस्थित महिला सस्था पटना में चलायी जाय, जिससे इन कार्यकर्त्रियों का सम्बन्ध रहे।' बापू का यह विचार श्रीमती प्रभावती देवी के हृदय में बैठ गया। वे बहुत दिनों तक 'बापू' और 'बा' के साहचर्य में रही हैं। अतः, एक ऐसी सस्था की कल्पना ने उन्हें बहुत प्रभावित किया। किन्तु, अभाव था महिलाओं में सामाजिक चेतना का। यह कार्य कुछ सरल न था। फिर भी, प्रभावती बहन के अदम्य उत्साह और साहस ने श्रीमती सावित्री देवी, श्रीमती पार्वती देवी (स्व० श्रीमलदेव सहाय की पत्नी), श्रीमती सुमित्रा देवी (बाबू लालबिहारी लाल की पत्नी) आदि बहनों को ढूँढ़ निकाला और प्रारभ में बिहार-

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन भवन' (कदमकुआँ) में तीन चर्खे और सप्ताह में दो दिन के वर्ग से महिला-चर्खा-क्लास' खुला—कार्य का श्रीगणेश हुआ।

रचनात्मक कार्यों को बापू बहुत महत्त्व देते थे। उनका मत था कि राजनीतिक आजादी के बाद भी देश-निर्माण में रचनात्मक कार्यों का स्थान अग्रगण्य रहेगा। किन्तु, सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन महिला-संगठन, असहाय और अपढ़ महिलाओं को स्वावलम्बी बनाने के लिए गृह-उद्योग-शिक्षण आदि ऐसे कार्य-क्रम थे, जिनके बिना रचनात्मक कार्य आगे नहीं बढ़ सकता था। अतः, समिति की स्थापना के समय पहली महिला-सभा श्रीअनुग्रहनारायण सिंह की अध्यक्षता में हुई। देशरत्न डॉक्टर राजेन्द्र प्रसादजी आरम्भ से सन् १९४६ ई० तक इसके अध्यक्ष रहे। वर्त्तमान अध्यक्ष सर्वोदयी नेता श्रीजयप्रकाश नारायणजी हैं। डॉ० राजेन्द्र प्रसादजी का सहयोग और उनकी प्रेरणा भी इस संस्था की स्थापना के मूल में निहित है, जिनके द्वारा मिले उत्साह से ही आज इसका पल्लवित पुष्पित रूप सामने प्रत्यक्ष है।

प्रारम्भ में इसका कार्यक्षेत्र कदमकुँआ मुहल्ला ही रहा। फिर, बाकरगंज, मिरचनाय(?)पहाड़ी, लोहानीपुर आदि विभिन्न अट्ठारह मुहल्लों में इसके केन्द्र खुले। पटना सिटी में भी इसकी एक शाखा विधिवत् चल रही है। आस पास के देहाती क्षेत्रों तक इसका काम फैल गया है। किन्तु, सन् १९४२ ई० में प्रभावतीजी के गिरफ्तार हो जाने पर और उनके जेल से छूटकर आने तक, इसका काम प्रायः बिखरा-बिखरा सा रहा। प्रभावतीजी के अतिरिक्त सावित्री देवी प्रारम्भ से ही इसकी मुख्य आधार रही हैं। इन्होंने ही प्रभावतीजी के जेल चले जाने पर इसके कार्य-सूत्र को टूटने से बचाया, जिससे भिन्न-भिन्न मुहल्लों में चर्खा क्लास चलता रहा। जिन महिलाओं ने चर्खा क्लास के कार्यक्रमों को चालू रखा, उनका साहस निस्सन्देह अभिनन्दनीय है। उस समय चर्खा क्लास का केन्द्र मुख्तारटोली (कदमकुआँ) में था। उसे चलाने के लिए अर्थ की आवश्यकता थी। कदमकुआँ में रहनेवाली और इसमें योगदान करनेवाली बहनों से मासिक चन्दा मिलता था। इसीलिए, इसका मुख्य केन्द्र कदमकुआँ ही रहा। महिलाएँ कताई-धुनाई, पूनी-बनाई आदि उत्साह से सीखती थीं। शुरू में तो नयी बहनों को चर्खा सिखाने का काम भी प्रभावती देवी, सावित्री देवी आदि बहनों ने ही किया। परन्तु बाद, बिहार-खादी-ग्राम उद्योग-संघ (मुजफ्फरपुर) के अध्यक्ष श्रीलक्ष्मीनारायणजी का सक्रिय सहयोग—चर्खा-क्लास की स्थापना के पूर्व से ही, उनके दिवंगत होने तक—मिलता रहा। यह उल्लेखनीय है कि उनके प्रेरणादायक सहयोग से ही इसकी नींव सुदृढ़ हो पायी। उन्हीं के द्वारा मधुबनी से प्रशिक्षित महिलाएँ चर्खा क्लास में कताई-धुनाई-बुनाई आदि सिखाने के लिए भेजी गयीं, जिनके वेतन का खर्च उनकी संस्था ही देती रही। इस प्रसङ्ग में उसी संघ के अध्यक्ष श्रीरामदेव ठाकुरजी का सहयोग भी स्मरणीय है, जो स्वयं आकर बहनों को चर्खा कातने आदि की कला समझाते-बुझाते थे। राष्ट्रीय पर्व-त्योहारों पर अखण्ड सूत्र-यज्ञ २४ घण्टे, १६ घण्टे और १२ घण्टे का चलाया जाता रहा। चर्खा-क्लास की अपनी

'समिति' के प्राङ्गण में सम्मिलित ईश्वर प्रार्थना

'महिला चर्खा समिति' की सञ्चालिका, बालवाड़ी की सञ्चालिका
तथा अन्य अध्यापिकाएँ और कार्यकर्त्रियाँ

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन भवन' (कदमकुआँ) में तीन चर्खों और सप्ताह में दो दिन के वर्ग से महिला-चर्खा-क्लास' खुला—कार्य का श्रीगणेश हुआ।

रचनात्मक कार्यों को बापू बहुत महत्त्व देते थे। उनका मत था कि राजनीतिक आजादी के बाद भी देश निर्माण में रचनात्मक कार्यों का स्थान अग्रगण्य रहेगा। किन्तु, सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन महिला संगठन, असहाय और अपढ़ महिलाओं को स्वावलम्बी बनाने के लिए गृह-उद्योग-शिक्षण आदि ऐसे कार्य-क्रम थे, जिनके बिना रचनात्मक कार्य आगे नहीं बढ़ सकता था। अतः, समिति की स्थापना के समय पहली महिला सभा श्रीअनुग्रहनारायण सिंह की अध्यक्षता में हुई। देशरत्न डॉक्टर राजेन्द्र प्रसादजी आरम्भ से सन् १९४६ ई० तक इसके अध्यक्ष रहे। वर्त्तमान अध्यक्ष सर्वोदयी नेता श्रीजयप्रकाश नारायणजी हैं। डॉ० राजेन्द्र प्रसादजी का सहयोग और उनकी प्रेरणा भी इस संस्था की स्थापना के मूल में निहित है, जिनके द्वारा मिले उत्साह से ही आज इसका पल्लवित पुष्पित रूप सामने प्रत्यक्ष है।

प्रारम्भ में इसका कार्यक्षेत्र कदमकुँआ मुहल्ला ही रहा। फिर, बाकरगंज, मिसनापहाड़ी, लोहानीपुर आदि विभिन्न अट्ठारह मुहल्लों में इसके केन्द्र खुले। पटना सिटी में भी इसकी एक शाखा विधिवत् चल रही है। आस पास के देहाती क्षेत्रों तक इसका काम फैल गया है। किन्तु, सन् १९४२ ई० में प्रभावतीजी के गिरफ्तार हो जाने पर और उनके जेल से छूटकर आने तक, इसका काम प्रायः बिखरा-बिखरा-सा रहा। प्रभावतीजी के अतिरिक्त सावित्री देवी प्रारम्भ से ही इसकी मुख्य आधार रही हैं। इन्होंने ही प्रभावतीजी के जेल चले जाने पर इसके कार्य-सूत्र को टूटने से बचाया, जिससे भिन्न-भिन्न मुहल्लों में चर्खा-क्लास चलता रहा। जिन महिलाओं ने चर्खा-क्लास के कार्यक्रमों को चालू रखा, उनका साहस निस्सन्देह अभिनन्दनीय है। उस समय चर्खा क्लास का केन्द्र मुख्तारटोली (कदमकुआँ) में था। उसे चलाने के लिए अर्थ की आवश्यकता थी। कदमकुआँ में रहनेवाली और इसमें योगदान करनेवाली बहनों से मासिक चन्दा मिलता था। इसीलिए, इसका मुख्य केन्द्र कदमकुआँ ही रहा। महिलाएँ कताई-धुनाई, पूनी-बनाई आदि उत्साह से सीखती थीं। शुरू में तो नयी बहनों को चर्खा सिखाने का काम भी प्रभावती देवी, सावित्री देवी आदि बहनों ने ही किया। परन्तु बाद, बिहार-खादी-ग्राम उद्योग-संघ (मुजफ्फरपुर) के अध्यक्ष श्रीलक्ष्मीनारायणजी का सक्रिय सहयोग—चर्खा-क्लास की स्थापना के पूर्व से ही, उनके दिवंगत होने तक—मिलता रहा। यह उल्लेखनीय है कि उनके प्रेरणादायक सहयोग से ही इसकी नींव सुदृढ़ हो पायी। उन्हीं के द्वारा मधुबनी से प्रशिक्षित महिलाएँ चर्खा-क्लास में कताई-धुनाई-बुनाई आदि सिखाने के लिए भेजी गयीं, जिनके वेतन का खर्च उनकी संस्था ही देती रही। इस प्रसङ्ग में उसी संघ के अध्यक्ष श्रीरामदेव ठाकुरजी का सहयोग भी स्मरणीय है, जो स्वयं आकर बहनों को चर्खा कातने आदि की कला समझाते-बुझाते थे। राष्ट्रीय पर्व-त्योहारों पर अखण्ड सूत्र-यज्ञ २४ घण्टे, १६ घण्टे और १२ घण्टे का चलाया जाता रहा। चर्खा-क्लास की अपनी

'समिति' के प्राङ्गण में सम्मिलित ईश्वर प्रार्थना

'महिला चर्खा समिति' की संचालिका, बालबाड़ी की संचालिका
तथा अन्य अध्यापिकाएँ

एक विशेष दृष्टि यह रही है कि अनपढ़ देहाती स्त्रियाँ इन उद्योगों की मार्फत आत्म-निर्भर बनायी जायँ। अस्तु; यह सोचा जाने लगा कि चर्खा-क्लास का अपना भवन हो, जिसमें प्रौढ़ा महिलाओं का छात्रावास-सह-विद्यालय चले। सन् १९४७ ई० तक विभिन्न स्थानों में, भाड़े के मकान में, चर्खा क्लास चलता रहा। इसमें दो असुविधाएँ थीं—स्थानाभाव के कारण छात्रों और प्रौढ़ महिलाओं का प्रवेश निश्चित संख्या से अधिक नहीं हो पाता था और भाड़ा आदि में पर्याप्त पैसे व्यय हो जाते थे। फलस्वरूप, कदम-कुआँ के पूर्वी-दक्षिणी हिस्से में थोड़ी-सी जमीन मोल ली गई। छात्रावास दुमंजिला बनाया गया। थोड़ी-सी जमीन और भी खरीदी गयी। सम्प्रति एक बीघा नौ कट्टे जमीन में पक्के अहाते के अन्दर छात्रावास, उद्योग और शिक्षण के लिए पक्का मकान वर्त्तमान है। रसोई, गोशाला आदि के लिए अलग-अलग खण्ड हैं। थोड़ी-सी खुली जमीन भी है, जिसमें फूल-पत्तियाँ और हरी तरकारी उपजाने का कार्य छात्राएँ करती हैं। भूमि खरीदने, मकान बनवाने आदि में जो धन लगा, वह प्रायः प्रांत के बाहर से ही प्राप्त हुआ। उन उदार दाताओं ने ही इसकी कल्पना को साकार करने में मदद दी है। निजी स्वतंत्र भवन बनने पर उसका उद्घाटन इसके आद्य अध्यक्ष राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसादजी के हाथों २२ नवम्बर, १९५१ ई० में हुआ। प्रस्तुत भवन केवल छात्रावास के लिए ही है। विद्यालय का भवन अलग से अभी नहीं बन सका है।

प्रारम्भ से इसका काम, जागृति लाने की दृष्टि से, दूसरे जिलों में भी चला। गया में प्रियवदा बहन, बेतिया में पार्वती बहन तथा हजारीबाग में भुवनेश्वरी देवी की देखरेख में काम हुआ। किन्तु, कई तरह की बाधाओं के कारण वहाँ के काम ठप हो गये। अब इसके सारे कार्यक्रम पटना और आसपास के गाँवों में ही चलाये जा रहे हैं। स्मरणीय है कि शुरू के 'महिला-चर्खा-क्लास' का नाम सन् १९५१ ई० में ही 'महिला-चर्खा-समिति' कर दिया गया और 'सोसायटीज-रजिस्ट्रेशन-ऐक्ट' के अनुसार यह सरकार द्वारा निबन्धित भी करा ली गयी। स्थापना के समय ही एक संचालक-मण्डल भी बना, जो समिति के कार्यों को सुचारु रूप से चलाने तथा आवश्यक और उपयोगी परामर्श देने का कार्य करता आ रहा है। आज भी उसी के निर्देशन में समिति अपने कार्यक्रम चलाती है। सम्प्रति निम्नलिखित कार्यक्रम और प्रवृत्तियाँ चालू हैं—१ ग्रामसेविका-प्रशिक्षण, २ बालिका-विद्यालय, ३. नारी-सहयोग-विभाग (सिलाई), ४. अम्बर-चर्खा विभाग, ५. बुनाई-विभाग, ६. गृह-उद्योग-विभाग, ७. शिशु मन्दिर (बालबाड़ी)। पूज्य कस्तूर बा की स्मृति में, सन् १९५२ ई० की २२ फरवरी से, स्थानीय बच्चों की बालबाड़ी चलायी जा रही है। इन कार्यक्रमों के अतिरिक्त इसकी कार्यकर्त्रियों ने समय-समय पर समाज सेवा के सामयिक कार्यों में भी दिलचस्पी से काम किया है। स्वराज्य-प्राप्ति के पश्चात् हुए साम्प्रदायिक दंगे में, प्रभावती देवी के नेतृत्व में, यहाँ की महिलाओं ने, आहत और विपत्ति ग्रस्त लोगों की सेवा-शुश्रूषा में, अभूतपूर्व उत्साह का परिचय दिया। यद्यपि इसके मूल में जो कल्पनाएँ निहित हैं,

वे सब भी-सब अभी साकार नहीं हो पायी हैं, फिर भी आशातीत सफलता मिली है। बापू के सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों को साथ लेकर, प्रारम्भ से ही, राजनीतिक दल-विशेषों से तटस्थ रहकर, समाज सेवा का जो कार्यक्रम इसने अपने हाथ में लिया है, वह आज भी आस्था पूर्वक जारी है। पिछले बाईस वर्षों में इसके सामने विघ्न-बाधाओं के अकाल जलद आते रहे हैं, जिससे कार्य संचालन में थोड़ी-बहुत कठिनाइयाँ भी हुई हैं, लेकिन उन सबसे बचकर यह आगे निकल आयी। इसके समक्ष बापू के रचनात्मक कार्यक्रम का आदर्श है, जिसपर यह सतत चल रही है। सत्य, अहिंसा और सेवा का सम्बल ही इसकी एकमात्र पूँजी है। इसकी मुख्य संचालिका श्रीमती मनोरमा श्रीवास्तव हैं। शिशु-विहार की संचालिका हैं श्रीमती शोभा चक्रवर्त्ती, जिनके साथ श्रीमती सुनयना सहाय श्री० चन्द्रकला वर्मा और श्री० वीणा मिश्र कार्यकर्ता हैं। इनके अतिरिक्त श्री० विद्यावती सिन्हा, श्री० शीला दसौंधार, श्री० उमा सिन्हा, श्री० शारद समैयार और श्री० सुमित्रा देवी शिक्षिकाएँ हैं।

बाँकीपुर बालिका-उच्च विद्यालय, पटना

श्रीमती अघोरकामिनी देवी ने सन् १८६२ ई० में इसको स्थापित किया था। इसके मूल में बड़ा पवित्र उद्देश्य था—'घर की चहारदीवारी में सदियों से बन्द बिहारी स्त्रियों को शिक्षा के प्रकाश में लाना और उनकी सर्वाङ्गीण उन्नति के कार्य करना।' विगत सत्तर वर्षों से यह संस्था नारियों को ज्ञान का आलोक देकर उन्नति-पथ पर अग्रसर कर रही है।

श्रीजैनबाला-विश्राम, धर्मकुंज, धनुपुरा, आरा

हिन्दी की पुरानी और प्रसिद्ध लेखिका श्रीमती ब्रह्मचारिणी पण्डिता चन्दाबाई ने सन् १९२१ ई० के अप्रैल में इसकी स्थापना की थी। इसका उद्देश्य है—जैन महिलाओं को दिगम्बर-जैनधर्मानुकूल नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा देकर उन्हें विदुषी बनाना और सन्मार्ग पर लाना। इसमें पाँच विभाग हैं—हाइ-स्कूल, मिडिल स्कूल, महाविद्यालय, समाज कल्याण और शिल्पकला, संगीत कला। पण्डिताजी ही इसकी संचालिका और प्राणपोषिका हैं। (इनके सम्बन्ध में विशेष द्रष्टव्य–पृ० ७१ से ७५ तक और पृ० ३२८)।

श्रीरामसुमिरन-शिल्पशाला, उलाव (मुँगेर)

उलाव के सुप्रतिष्ठित जमीन्दार और रईस श्रीरामसुमिरनप्रसादजी (स्व०) और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सावित्री देवी ने इसकी स्थापना सन् १९२९ ई० में की थी। इसमें स्त्रियों-बच्चों को शिल्प शिक्षा दी जाती है। प्रति वर्ष इसका मुद्रित वार्षिक विवरण प्रकाशित हुआ करता है। यह एक सुव्यवस्थित और सुसंचालित संस्था है। उक्त संस्थापिका ने वहीं पर सन् १९५३ ई० में सावित्री-हाइ-स्कूल भी स्थापित किया था और उन्हीं के द्वारा स्थापित तथा संचालित सावित्री दातव्य आयुर्वेदिक औषधालय कमरुद्दीनपुर (मुँगेर) में आज

'समिति' के उद्यान में बालवाड़ी के बच्चों की बागवानी
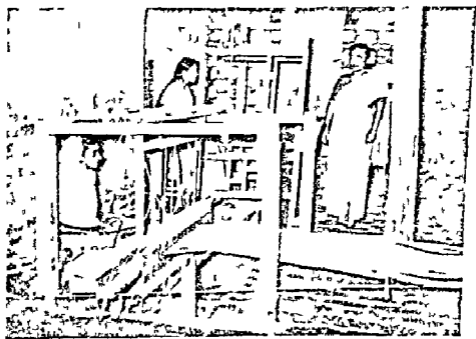
'महिला-चर्खा समिति' के बुनाई विभाग का एक दृश्य

भी गरीब रोगियों की सेवा कर रहा है। उनका आदर्श धनाढ्य देवियों के लिए अनुकरणीय है।

बिहार-महिला-विद्यापीठ, मझौलिया (दरभंगा)

दरभंगा जिले के प्रसिद्ध समाजवादी नेता श्रीरामनन्दन मिश्र और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती राजकिशोरी देवी ने सन् १६२६ ई० में इसे स्थापित किया था। इसमें महिलाओं और दस वर्ष तक के बालकों को हिन्दी माध्यम से राष्ट्रीय भावनामयी शिक्षा दी जाती थी। अब यह नामशेष हो गया। इसका निजी स्वतन्त्र भवन था, जिसके साथ एक बड़ा तालाब और फुलवारी भी थी। अब भी वहाँ खादी-चर्खा आदि का काम होता है। भवनादि का उपयोग देशहितार्थ ही हो रहा है।

अघोर-कामिनी-शिल्पालय, पटना

पटना के कुछ देशानुरागी सज्जनों और शिक्षकों ने सन् १६३८ ई० में इसको स्थापित किया था। इसका लक्ष्य है—"स्त्रियों में स्वावलम्बन का भाव जगाना, उनमें कुटीर-शिल्प और दस्तकारी का प्रसार करना, जिससे वे आत्मनिर्भर होकर अपनी आमदनी बढ़ा सकें तथा उन्हीं के द्वारा प्रान्त के अन्य भागों में भी गृह-शिल्प के कार्यक्रम चला सकें।" इसमें हिन्दी, अँगरेजी और गणित की शिक्षा दी जाती है। चर्खा चलाना, स्वेटर गंजी मोजे बुनना, नक्काशी और कसीदा काढ़ना, चमड़े के मनीबैग हैण्डबैग आदि बनाना, कपड़े की कटाई-सिलाई करना आदि उपयोगी कलाएँ भी सिखायी जाती हैं। श्रीमती अघोरकामिनी देवी के नाम पर यह स्थापित हुआ था। इसका निजी भवन म्यूजियम-रोड पर है। इसके सहारे अनेक नारियाँ स्वावलम्बिनी बनी हैं।

कस्तूर बा-गान्धी-स्मारक-निधि, वैनी (पूसा, दरभंगा)

इसकी स्थापना सन् १६४४ ई० में हुई थी। गान्धीजी के निश्चय—'यह धन देश की अति पिछड़ी ग्रामीण बहनों के विकास में व्यय होगा'—के अनुसार इसका उद्देश्य 'ग्रामीण नारियों को ग्रामसेवा के लिए तैयार करना' हुआ। यहाँ से शिक्षा पाकर बहुत सी महिलाएँ प्रान्त के विभिन्न भागों में ग्रामसेविका का काम कर रही हैं। यहाँ स्त्रियों को जीवन कला, लिखना पढ़ना, सिलाई करना, वस्त्रोद्योग आदि की शिक्षा दी जाती है। बालवाड़ी और प्रौढ़ महिला शिक्षण का भी प्रबन्ध है। देहाती क्षेत्र में यह संस्था प्रशंसनीय मौन सेवा कर रही है। इसकी बारह कार्यकर्त्रियाँ है—श्रीमती भारती विद्यार्थी, श्री० सुन्दरी देवी एम्० एल्० ए०, श्री० सुशीला सामंत (राँची), श्री० जगतरानी देवी, श्री० सुधावती ठाकुर, श्री० दीपा देवी, श्री० पवित्रा देवी, श्री० कौसल्या देवी, श्री० जगतरानी प्रसाद, श्री० भवानी मेहरोत्रा, श्री० रामरती देवी और श्री० प्रियवदा नन्दक्यूलियार।

बालिका-विद्यापीठ, लखीसराय (मुँगेर)

इसका स्थापना-काल सन् १६५५-५६ ई० है। इसका उद्देश्य—"यह विद्यापीठ केवल साक्षरता या बहुज्ञता को ही शिक्षा नहीं मानता। ज्ञान का समन्वय कर्म के साथ कर सकने की योग्यता पैदा करना ही इसका लक्ष्य है।" इसके अतिरिक्त यह ललित-कला, दस्तकारी, गृह-विज्ञान, उत्पादक श्रम, व्यायाम, सदाचार और साहित्य की शिक्षा भी देता है। किन्तु, मुख्य शिक्षा कन्याओं को भारतीय आदर्श के अनुरूप तैयार करने के लिए ही है। यह आठ ही साल में कन्याओं को प्रवेशिका (मैट्रिक) तक की योग्यता प्राप्त करा देता है, जो अन्य स्कूलों में ११ या १२ साल में प्राप्त होती है। इसकी संस्थापिका संचालिका श्रीमती विद्या देवी का परिचय इसी ग्रन्थ में अन्यत्र (पृ० ३५५) छपा है। इसके निधिपालक (ट्रस्टी) हैं—सर्वश्री देशरत्न डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद, गङ्गाशरण सिंह, नन्दकुमार सिंह, राजेश्वरीप्रसाद सिंह, व्रजनन्दन शर्मा, श्रीमती प्रभावती देवी, श्रीमती लक्ष्मी एम्० मेनन (दिल्ली)—अध्यक्षा। इस संस्था से नारी-समाज के अभ्युदय का अभिनन्दनीय प्रयत्न हो रहा है। बिहार में अपने ढंग की यह अकेली संस्था है।

विन्ध्य-कला-मन्दिर, पटना

लोकसंगीत-विशारदा श्रीमती विन्ध्यवासिनी देवी ने, जिनका सचित्र परिचय अन्यत्र (पृ० ३५५) प्रकाशित है, सन् १६४६ ई० में, अपने पति श्रीसहदेवेश्वरचन्द्र वर्मा के सहयोग से, इसकी स्थापना की थी। इसका उद्देश्य है—"आधुनिक भारतीय समाज में प्राचीन साहित्यिक क्रिया-कलाप को संगीत, नृत्य और नाट्य-कलाओं के माध्यम से पुनरुज्जीवित करना तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आयोजन द्वारा सामाजिक रुचि का परिष्कार करना।" इसमें संगीत, नृत्य, वाद्य, नाट्य, चित्र और शिल्प-कलाओं की शिक्षा कन्याओं को दी जाती है। संगीत-नृत्य-वाद्य शिक्षण का क्रम पाँच वर्षों का है और शेष का तीन वर्षों का। इसके द्वारा स्थानीय नागरिक बालक-बालिकाओं में कलात्मक सुरुचि और प्रवृत्ति बढ़ रही है। इसका मुद्रित सचित्र वार्षिक कार्य-विवरण इसकी प्रगति का प्रशस्त परिचय देता है।

नारी-कल्याण-मन्दिर, कंकड़बाग, पटना

श्रीमती शोभना भट्टाचार्य ने सन् १६५७ ई० में इसे स्थापित किया था। इसका उद्देश्य था—"समाज-बहिष्कृत निस्सहाय अबलाओं को शिल्प-कला एवं अन्य गृहोद्योगों की शिक्षा देकर आत्मनिर्भर बनाना।" तीन-चार वर्षों तक लगातार भली भाँति चल कर, दुर्भाग्यवश कुछ अपरिहार्य कारणों से, यह संस्था अकाल ही काल कवलित हो गयी। किन्तु, अपने कार्यकाल में इसने अनेक असहाय नारियों का जो उपकार किया और उन्हें पराश्रित रहने से बचा दिया, उसी के कारण यह अद्यापि स्मरणीय है।

श्रीनागरमल मोदी-सेवासदन (मातृचिकित्सा-गृह), राँची

बिहार-राज्य के छोटानागपुर-प्रखण्ड में बड़े सुव्यवस्थित ढंग से यह माताओं और बच्चों की चिकित्सा-सेवा कर रहा है। सुपरिचित समाजसेवी सेठ नागरमल मोदी की पुण्य-स्मृति में इसकी स्थापना सन् १९५८ ई० में ३१ अगस्त को हुई थी। इसका उद्देश्य है—"हर सम्भव उपाय से राष्ट्र की जनता के स्वास्थ्य की रक्षा करना।" इस उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त की जानेवाली इसकी सेवाएँ दर्शनीय हैं। यहाँ बालकों और स्त्रियों के सभी प्रकार के रोगों की चिकित्सा, औषधोपचार तथा शल्योपचार द्वारा, आधुनिकतम वैज्ञानिक विधि से, की जाती है। निःशुल्क औषध-वितरण की भी व्यवस्था है। इसका अपना भवन भी है।*

बिहार की धर्मशीला महारानियाँ

मिथिला की महारानियाँ

श्रीधर्मलाल सिंह ; महारानी कामेश्वरीप्रिया-पूअर-होम, दरभंगा

मिथिला के महाराजाओं की भाँति उसकी महारानियाँ † भी परम साध्वी, उदारता की प्रतिमूर्त्ति एवं असहायों की परम पोषिका थीं। दरभंगा-राज-परिवार कट्टर सनातनी श्रोत्रिय ब्राह्मण है। एक ही सीमित क्षेत्र में उसका वैवाहिक संबंध होता है। फलतः, वैभव की अपेक्षा कुलीनता को ही महत्त्व दिया जाता है। अतः, प्रायः महारानियाँ निर्धन परिवार से ही आती हैं। उनको बचपन में ही गरीबी एवं अभावों का अनुभव मिला रहता है। अथच, दरिद्रनारायण के प्रति उनकी उदार भावना रहती है। दीन दुखियों के लिए उनका हाथ सर्वदा खुला रहता है। यही कारण है कि इन महारानियों ने देश, धर्म, समाज एवं निरीहों के लिए स्तुत्य कार्य किये हैं। कुल-परिपाटी के अनुसार वे सभी गुप्तदान की परम हिमायती थीं। उनके लोकहितकर कार्य लेखबद्ध या प्रकाशित नहीं होते थे। पुराने समय में

* बिहार राज्य में, राजधानी पटना में और अन्य नगरों में भी, कई महिलोपयोगी संस्थाएँ बड़े उत्साह से उत्तम कार्य कर रही हैं, जिनका प्रामाणिक परिचय नहीं प्राप्त हो सका। समाचार-पत्रों में कई बार सूचना प्रकाशित की गयी। जिनका पता मालूम था, उन्हें पत्र भी लिखा गया। फलस्वरूप, जो सामग्री उपलब्ध हुई, वही यहाँ प्रकाशित है।—सं०

† दरभंगा-राज-परिवार में पर्दा-प्रथा बड़ी कड़ाई से बरती जाती है। 'असूर्यम्पश्या सा तु राजदारा' की कहावत चरितार्थ होती है। अतः, उनका छायाचित्र लेना एकदम वर्जित था। इसीलिए, उनके चित्र दुर्लभ हैं।—ले०

पोखर, कूप, मंदिर, यज्ञशाला, पाठशाला आदि ही प्रमुख कृतियाँ मानी जाती थीं। अतएव, दरभंगा जिले में उनके द्वारा स्थापित लोकोपकारी संस्थाओं का जाल बिछा हुआ है। उनके सदाव्रत के संबंध में अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। कहते हैं कि महाराज राघवसिंह की महारानी राघवप्रिया स्वयं अकिंचन-सा जीवन बिताती थीं। अधिक समय पूजा-पाठ में लगता था। दान किये बिना अन्न जल ग्रहण नहीं करती थीं। महाराज नरेन्द्रसिंह की महारानी पद्मावती द्वारा निर्मित सात बड़े बड़े जलाशय दरभंगा से उत्तर पूरब के गाँवों में हैं, जिनसे वहाँ की जनता को खेती की सिंचाई में बड़ा लाभ होता है। इन्होंने अनेक विशालकाय मन्दिर भी बनवाये। मिथिला में इनकी कीर्त्ति के लोकगीत प्रसिद्ध हैं, जिन्हें आज भी वहाँ के ग्रामीण बड़े चाव से गाते हैं। महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह की महारानी लक्ष्मीवती साहिबा सर्वगुणसम्पन्ना थीं। इनका सारा जीवन त्याग और तपस्या का था। अपने जीवन-काल में इन्होंने जितने सुन्दर कार्य किये, उनका संक्षिप्त वर्णन भी यहाँ संभव नहीं। काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय के संस्थापन में इनका भी हाथ था। सरिसवपाही टोल के संस्कृत-महाविद्यालय और उच्चांग्ल विद्यालय, लहेरियासराय की लक्ष्मीवती एकेडमी, दरभंगा की लक्ष्मीश्वर-पब्लिक लाइब्रेरी आदि इनकी स्थायी कीर्त्तियाँ हैं। उक्त लाइब्रेरी में हस्तलिखित साहित्यों का प्रचुर संग्रह है। इनके द्वारा निर्मित अनेक मठ मन्दिर और देवालय दरभंगा एवं वाराणसी में हैं, जिनके सुव्यवस्थित संचालन के लिए इन्होंने न्यास स्थापित कर दिया है। ऐसी कदाचित् ही कोई धार्मिक, सामाजिक एवं शिक्षण संस्था उस इलाके में होगी, जो इनसे किसी न किसी रूप में उपकृत न हुई हो।

जीवन के अपरांचल में ये काशीवास करने लगी थीं। वहाँ इन्होंने स्तुत्य यश कमाया। संस्कृत के छात्रों को भोजन एवं वृत्ति देती थीं। क्षेत्र भी चलाती थीं, जहाँ काशीवास करनेवाले सैकड़ों साधु संत, अकिंचन आदि प्रतिदिन प्रसाद पाते थे। उत्तर बिहार से काशीवास के लिए जानेवाली विधवाओं के हेतु इन्होंने आश्रम स्थापित कर रखा था। काशी की गली-गली में इनका यश छा गया था। जाड़े में नियमित रूप से, विपुल संख्या में, गरम कपड़े बँटवाती थीं। शासन कार्य में प्रौढ़ा एवं प्रबंध में दक्ष होने के कारण इनका दान कार्य सुचारु रूप से अनवरत चलता था। इसमें इनके भाई रायबहादुर (स्वर्गीय) श्रीनाथमिश्र भी सच्चे सहायक थे। ये अपनी कीर्त्ति की लम्बी माला छोड़ गयी हैं, जिसका जप कृतज्ञतापूर्वक सर्वत्र हो रहा है।

दरभंगा राज के अन्तिम शासक महाराजाधिराज सर डॉ० कामेश्वर सिंहजी की द्वितीया धर्मपत्नी महारानी अधिरानाराज कामेश्वरीप्रिया बहुत छोटी अवस्था में दिवंगत हो गयीं। न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं न पुनर्भवम्, कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्त्ति-

और धामों में बहुत बड़ी धनराशि व्यय हुई, अनेक संस्थाएँ उनके नाम पर स्थापित हुईं। उनके जन्मस्थान मँगरौनी (दरभंगा) में विशाल एवं विस्तृत जलाशय तथा मन्दिर का निर्माण हुआ। उनकी लोकप्रियता, दयाशीलता तथा उदारता से दरभंगा-निवासी इतने अधिक प्रभावित थे कि सार्वजनिक सभा द्वारा निश्चय करके उनकी स्मृति में 'श्रीकामेश्वरीप्रिया-पूअर-होम' नामक संस्था स्थापित की गयी। इसके लिए दरभंगा-नगरपालिका ने भूमि दी। देश के कोने-कोने से समुचित सहायता मिली। जिला परिषद् आदि संस्थाओं ने भी सराहनीय सहयोग किया। दूसरे वर्ष आयुष्मान् कुमार जीवेश्वर सिंह के यज्ञोपवीत समारोह के शुभ अवसर पर बिहार के तत्कालीन लाट श्रीरदरफोर्ड ने 'होम' का शिलान्यास किया। उस समारोह में अनेक देशी नरेश, राजा महाराजा आदि पधारे हुए थे। महाराजाधिराज ने इस संस्था को दो लाख रुपये का दान दिया, जिसमें पचास हजार नकद और डेढ़ लाख रुपये के दो भवन हैं—एक दरभंगा स्टेशन के पार्श्व में और दूसरा मिरजापुर मुहल्ले में। इन भवनों के भाड़े की आमदनी पन्द्रह हजार वार्षिक है। वैसे तो उनकी स्मृति में दरभंगा-गोशाला को साठ हजार मूल्य का सोना तथा अनाथालय को उनकी सवारीवाली रोल्स' मोटरकार मिली है।

'होम' के संचालन की व्यवस्था संतोषप्रद है। सोसायटीज रजिस्ट्रेशन अधिनियम के अन्तर्गत इसका निबंधन हुआ है। उत्तर बिहार की अपने ढंग की संस्थाओं में इसका प्रतिष्ठित स्थान है। इसमें लगभग एक सौ अकिंचन बच्चे अपंग, स्त्रियाँ एवं भिखमंगे रहते हैं। इन्हें जीवन-निर्वाह के योग्य बनाने के लिए इसके कई विभाग चलते हैं—अंध, औद्योगिक, कन्या, माध्यमिक और मोण्टेसरी विद्यालय, स्त्रियों के लिए समाज केन्द्र, खादी ग्रामोद्योग, दातव्य एलोपैथिक चिकित्सालय आदि। अंध विद्यालय सन् १९५५ ई० में खुला था। उसका विकास अब प्राथमिक से माध्यमिक श्रेणी तक हुआ है। पटना के पुराने अंध विद्यालय के अतिरिक्त इसके जोड़ की सफल संस्था इस प्रांत में दूसरी नहीं है। सन् १९५६ ई० में उक्त चिकित्सालय स्थापित हुआ, जिसके द्वारा अबतक ढाई लाख रोगियों को लाभ पहुँचा है। अन्य प्रशिक्षण-विभागों में प्रशिक्षित होकर अनेक अकिंचन जीविकोपार्जन-योग्य बन गये हैं। 'होम' का सबसे उल्लेखनीय सदाव्रत का कार्य इसका वार्षिक नेत्रदान-यज्ञ है, जो विगत उन्नीस वर्षों से अविच्छिन्न रूप में चालू है। कहते हैं कि ऐसा विशाल एवं सफल आयोजन देश में अन्यत्र कहीं नहीं होता। यहाँ एक ही बार में ढाई हजार नेत्र-रोगियों का ऑपरेशन होता है। उन्नीस वर्ष की अवधि में छियालीस हजार ऑपरेशन हुए हैं। शल्य चिकित्सा के अतिरिक्त आँख के साधारण रोगियों को दवा, नुसखा, चश्मा आदि भी दिये जाते हैं। ऐसे लोगों की इस अवधि की संख्या पचास हजार होगी। इस शिविर के प्रधान चिकित्सक अन्तरराष्ट्रीय ख्याति के डॉ० मथुरादास पहवा हैं, जो एक दिन में छः सौ आँखों का ऑपरेशन करते हैं। इनकी पद्धति सीखने के लिए अमेरिका, इंगलैण्ड, जर्मनी, आयरलैंड आदि देशों के विशिष्ट चिकित्सक आते रहते हैं। इन्होंने बर्मा,

सीलोन एवं अफगानिस्तान में भी अपरेशन किया है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने इ विषय में कहा है कि एक मिनट में ये एक आँख की मोतियाबिंद निकालते हैं। अस्तु,

इस संस्था में परोपकार के जितने कार्य हुए तथा हो रहे हैं, उतने कदाचित् ही कि एक संस्था में हुए हों या होते होंगे। इसकी भूमि निस्सहायों एवं दुखियों की जयजयका ओतप्रोत है। बिहार के मुख्य मंत्री पं० विनोदानन्द झा ने इस संस्था के एक समारोह कहा था— "महारानी यद्यपि निःसन्तान दिवंगत हुई हैं, तथापि यह संस्था उनकी यश सन्तान के रूपमें उनके पद-चिह्नों का अनुसरण करेगी और उनके दया धर्म की पा भावना से अनन्त काल तक दिग्दिगन्त को सुरभित करती रहेगी, ऐसी ही सची सन्त सकती हो।"

डुमराँव (भोजपुर, शाहाबाद) की महारानियाँ

श्रीरासबिहारी राय शर्मा, एम्० ए०, साहित्याचार्य, साहित्यरत्न, डुमराँव

महाराज राधाप्रसादसिंह की धर्मपत्नी महारानी बेनीप्रसाद कुँअरि, अपने पतिदे के दिवंगत होने पर, सन् १८९३ ई० में, राजगद्दी पर बैठीं। महाराज पहले ही वसीयत नामा लिखकर आपको उत्तराधिकारिणी बना गये थे। आपने चौदह वर्षों तक प्रिय सन्ता की तरह प्रजा का पालन किया। आप बाँसडीह (बलिया, उ० प्र०) के एक सुप्रतिष्ठित जमीन्दार की पुत्री थीं। राज्यारोहण के दो दिन बाद से ही आप प्रतिदिन अपराह्न में तीन बजे से दरबार और कचहरी करने लगीं। महल की बाँदियों के माध्यम से, पर्दे क अन्दर रहकर, आप प्रजा या कारिन्दों से बातचीत और सलाह करती थीं। चुने हुए लोग ही वहाँ पहुँच पाते थे। गढ़ के भीतर श्रीबिहारीजी (श्रीराधाकृष्ण) के भव्य मन्दिर के दरवाजों को आपने सोने चाँदी से मढ़वाया। ठाकुरजी के लिए बहुत बड़ा सिंहासन और झूलन का पलना भी गंगा जमुनी का बनवाया। राम जानकी और राधा कृष्ण—इन चार मूर्त्तियों के लिए सोने के सब गहने बनवा दिये। स्थानीय प्राचीन ग्राम सती (डुमरेजिन माइ) का विशाल मन्दिर और अपने पतिदेव की पुण्य स्मृति में समीपस्थ 'काव नदी पर लम्बा पुल भी बनवा दिया, जिससे प्रजा को काफी सुख सुविधा है। इस पुल का उद्घाटन करने बंगाल के लाट (सर ऐण्ड्रूज फ्रेजर) आये थे। आपके राज्यारूढ़ होने के दो साल बाद ही आपके यशस्वी दीवान श्रीजयप्रकाश लाल का निधन हो गया। अँगरेजी सरकार की ओर से, चार्ल्स फॉक्स नामक अँगरेज मैनेजर होकर आया। उसने रियासत में अँगरेज अफसरों को बहाल करना शुरू किया। आपने इन बहालियों का स्पष्ट विरोध किया। बंगाल और भारत के छोटे बड़े लाटों को पत्र लिखा कि राज्य की आमदनी इतनी मोटी तनखाह के अफसरों का बोझ नहीं सँभाल सकती। आपके पत्र ऐसे जोरदार थे कि पटना के कमिश्नर को ऊपर से हुक्म मिला—'महारानी जैसा चाहती हैं, वैसा ही किया जाय।' [illegible]
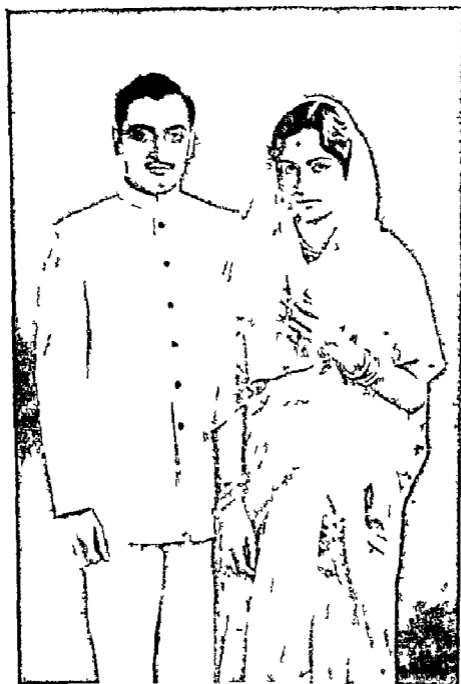
डुमराँव (शाहाबाद) की महारानी श्रीमती उषा रानी देवी
अपने पतिदेव महाराज कमलसिंह के साथ
(परिचय पृ० ३८२)

हर्जाने का दावा किया, पर आपने बड़ी निर्मयता से कुछ भी देना इनकार कर दिया। आपने राजकर्मचारियों और प्रजा से साफ कहा कि मैं गढ़ में गोरों को देखना तक नहीं चाहती, अगर इसके लिए मुझे लड़ना पड़ेगा, तो अपने दादा कुँवरसिंह की तरह जूझ जाऊँगी। अपने मुत्तजिम मुन्शी लक्ष्मीप्रसाद की राय से आपने आरा के वकील सदीसोपुर (पटना) निवासी श्रीशिवशरण लाल को मैनेजर नियुक्त किया। उक्त मुंशीजी आपके बड़े विश्वासपात्र थे। डुमरांव-स्टेशन (ई० आर०) से पश्चिम आपने बावन बीघे का आम का बाग लगवाया और बड़े समारोह से उसका विधिवत् विवाह संस्कार किया। उस महोत्सव में आपके जामाता रीवाँ-नरेश महाराज श्रीवेङ्कटरमणप्रसाद सिंह सपत्नीक पधारे थे। उनके साथ बघेलों की सेना भी आयी थी। यहाँ के उज्जैन क्षत्रियों ने आग्रह किया कि हमलोगों का जलूस ही आगे चलेगा। आपने डपटकर आज्ञा दी कि मेरी पुत्री महारानी की सेना का जलूस ही आगे रहेगा। जहाँ क्षत्रियों की तलवारें चमकने लगी थीं, वहाँ आपके निर्भीक आदेश से संघर्ष शान्त हो गया। आप बड़ी दूरदर्शिनी और बुद्धिमती भी थीं। नरही (शाहाबाद) के बाबुओं से पिछली पीढ़ी से ही मुकदमेबाजी चल रही थी। आपने राज्य के कानूनी सलाहकार को बुलाकर पूछा। गाँव के चौधरी मेरे दादा श्रीबीशन राय से भी सलाह ली। उक्त मैनेजर के विरोध करने पर भी आपने कहा कि मुकदमे में राज्य की हार होना मैं नहीं सह सकती, चाहे जो भी खर्च लगे, मैं अपील अवश्य करूँगी। आखिर अठारह लाख खर्च और बारह हजार वार्षिक 'कर' के साथ आपकी जीत हुई। सन् १६०२ ई० में भयंकर प्लेग आया, तो आपने प्रजा के लिए 'बड़ा बाग' और 'घुड़दौड़ के मैदान' में असंख्य झोपड़ियाँ बनवा दीं तथा हजारों मन खाद्यान्न का प्रबन्ध जरूरतमन्दों के लिए कर दिया। इसके बाद स्वयं गाजीपुर (उ० प्र०) की अपनी कोठी में दो सौ खास आदमियों के साथ चली गयीं। वहाँ के जिलाधीश ने हुक्म दिया कि आप तुरत नगर छोड़ दें। आपने बड़े रोष से कहला भेजा कि जबतक बड़े लाट की आज्ञा नहीं आती, मैं कहीं नहीं जा सकती। आपने वायसराय को तार दिया और फौरन हुक्म आया कि आप वहीं जबतक चाहें, रहें तथा कलक्टर को आपसे माँफी माँगने का हुक्म भी आया। उसने आपके पास आकर माफी माँगी। तब आप तीर्थयात्रा पर निकलीं। प्रयाग में पण्डों से अपने पूर्वजों का प्रमाणपत्र माँगा। एक ने संवत् १७८५ (सन् १७२८ ई०) का राजा होरिल सिंह का हस्तलेख दिखाया। उसमें आपके पति और उनके पिता के दिये हुए एक एक सौ बीघे भूमिदान का उल्लेख था। आपने भी एक सौ बीघे का भूमिदान किया तथा अन्य पण्डों को भी गोदान और शय्यादान से सन्तुष्ट किया। प्रजा पर आपके प्रगाढ़ स्नेह का एक दृष्टान्त यहाँ देना आवश्यक है।

एक स्थानीय महाजन जिस घर में थे, वह राज्य का नीलामी मकान था। अपने कारिन्दों की भूल का पता आपको लग गया। इस बात की भनक मिलते ही साहुजी घबराये। वे छ सौ रुपये लेकर आपके पास दरबार में गये और आपसे गिड़गिड़ाकर

बोले कि वे रुपये लेकर मकान मेरे ही जिम्मे रहने दिया जाय। आपने कहलवाया कि रुपये लौटा ले जाएँ और मकान न छोड़ें। वे भयवश पुनः बारह सौ रुपये ले गये। आपने उसे भी लौटाकर फिर वही आज्ञा दी। साहुजी आतंकित होकर पुनः अठारह सौ रुपये ले गये। आपने यह रकम भी लौटा दी और आज्ञा दी कि अब वे यहाँ न आयें, मकान उनको दान कर दिया गया, उसकी मरम्मत के लिए मैं ही अठारह सौ रु० उन्हें देती हूँ, जिसे वे मेरे दान की दक्षिणा समझें; क्योंकि प्रजा मेरी सन्तान है, इसलिए प्रजा को हर तरह की सुविधा और सहायता देने का मुझे पूरा अधिकार है। आपकी प्रजावत्सलता की बड़ाई चारों तरफ होने लगी।

आपके साथ महल में दस पाचिका ब्राह्मणी और १०१ परिचारिकाएँ रहती थीं, जिनके सुख-दुःख का आप हमेशा ख्याल रखती थीं तथा कोई पुरुष किसी नारी की ओर ताक नहीं सकता था। आपने स्थानीय नगरपालिका को सहायता देकर चार बालिका-विद्यालय स्थापित कराये थे। दो शिक्षिकाएँ हर पखवारे में आपके पास आकर विद्यालयों की प्रगति का ब्योरा सुनाती थीं। ये दोनों बङ्गालिन और बारिन थीं। आपके आदेशानुसार वे घर-घर घूमकर स्त्रियों में शिक्षा-प्रचार करती थीं। मुझे याद है कि मेरी माता और दादी के पास आकर ये रामायण की चर्चा करती थीं। आपने बाबू कुँवरसिंह के जगदीशपुर के एक राजकुमार श्रीजगबहादुर सिंह को गोद लिया था, जो श्रीनिवास-प्रसाद सिंह के नाम से राज्यारूढ हुए।

उपर्युक्त दत्तक महाराज से लड़कर डुमराँव-राजवंश के महाराज केशवप्रसाद सिंह विजयी हुए, जिनके ज्येष्ठ सुपुत्र महाराज रामरणविजय सिंह के बड़े राजकुमार वर्त्तमान महाराज कमलसिंह हैं। इनकी धर्मपत्नी महारानी उषा रानी बड़ी विदुषी और उदाराशया तथा प्रगतिशील महिला हैं। उन्होंने कन्याओं की शिक्षा के लिए यहाँ तीन तीन विद्यालय स्थापित कराये हैं। उनके शुभ नाम से सम्बद्ध उच्च और माध्यमिक बालिका विद्यालय सन् १९५७ ई० से ही सुचारू रूप से चल रहे हैं। सन् १९६१ ई० में उन्होंने एक बालिका-मन्दिर नामक संस्था कायम की, जिसमें इस समय एक सौ से ऊपर बालिकाएँ निःशुल्क शिक्षा पा रही हैं। वे महारानी बेनीप्रसाद कुँअरि की चलायी हुई परम्परा को बड़ी तत्परता और उदारता से आगे बढ़ा रही हैं। वे स्वयं विद्यालयों में जाकर बालिकाओं के बीच बैठ उन्हें सामयिक सदुपदेश और हस्तकला कौशल के लिए प्रोत्साहन देती हैं।

वे नगर से दूर उद्यान-भवन में रहती हैं और गढ़ के भीतर का महल स्त्रीशिक्षा के लिए दे दिया है। नैपाल के राणा वंश में उनका जन्म है। वे सुन्दर भाषण करती हैं। नारी जागरण और भारतीय संस्कृति के संरक्षण में उनकी खास दिलचस्पी है। उनकी सार्वजनिक सेवाओं से प्रभावित होकर जनता एक स्वर से कह रही है कि वे समाज-कल्याण के लिए अपने महलों और भव्य भवनों का सदुपयोग करके डुमराँव का नाम उजागर कर रही हैं।

बेतिया (चम्पारन) की महारानियाँ

श्रीहरिश्चन्द्रप्रसाद, बी० ए०; ठाकुरबारी महल्ला, मोतीहारी

सन् १६२७ ई० में मुगल-सम्राट् शाहजहाँ के समय बेतिया-राज्य की नींव पड़ी। सन् १९५५ ई० में इसका विलयन बिहार-राज्य में हो गया। इन ३२८ वर्षों के अन्दर दस राजा-महाराजाओं[1] और दो महारानियों ने राज किया। इस राजवंश की महारानियों में श्रीमती चन्द्रावती, दुलहन श्यामसुन्दर कुँअर, श्रीमती शिवरतन कुँअर और श्रीमती जानकी कुँअर विशेष उल्लेखनीय हैं। महारानी चन्द्रावती इस राजवंश के सप्तम अधीश्वर महाराज आनन्दकिशोर सिंह की धर्मपत्नी थीं। आप सदा अपने पतिदेव को राज-काज में सहायता दिया करती थीं। आपकी ही प्रेरणा से महाराज ने पटना, काशी, अयोध्या, प्रयाग और गोरखपुर में सुन्दर महल बनवाये थे। आप पर उनका असीम प्रेम था। अतः, बेतिया से दक्खिन बहनेवाली नारायणी नदी की एक शाखा-धारा का नाम उन्होंने आपके नाम पर चन्द्रावती नदी रख दिया। अब केवल बरसात में ही यह सजला रहती है। दुलहन श्यामसुन्दर कुँअर महारानी नहीं थीं। वे नवम महाराजा श्रीराजेन्द्रकिशोर सिंह के अनुज और राज्य के प्रधान प्रबन्धक श्रीमहेन्द्रकिशोर सिंह की पत्नी थीं। वे बड़ी शीलवती और निस्स्वार्थ महिला थीं।

सन् १८६४ ई० में वे विधवा हो गयीं। अपने पति के अग्रज महाराज में उनकी अपूर्व श्रद्धा थी। अपने पति को वे महाराज का सेवक और आश्रित मानती थीं। उनकी सद्भावना और सहनशीलता से राज-परिवार में सदा प्रेममयी शान्ति कायम रही। महारानी शिवरतन कुँअर अन्तिम महाराजा श्रीहरेन्द्रकिशोर सिंह की पत्नी थीं। ये सलीमगढ़ (गोरखपुर) के श्रीअक्षयवट सिंह की ज्येष्ठा पुत्री और राजा सिद्धिप्रसादनारायण सिंह की भगिनी थीं। ये बड़ी कुशल शासिका, पतिव्रता और धर्मपरायणा थीं। इनके सद्गुणों पर रीझकर महाराज ने इनके नाम पर 'शिव वाटिका' बनवायी थी, जो आज भी दर्शनीय है। कहते हैं, महाराजा को बैंगन का चोखा (सं० चोक्ष) बहुत प्रिय था, जिसे वे साल-भर रोज खाते थे। अतः, ये बराबर ध्यान रखती थीं कि महाराज को प्रति दिन यह मिला करे। रसोइया और-और चीजें बनाता था, पर भुर्ता ये स्वयं बनाकर पति को खिलाती थीं। ये नित्य प्रातःकाल काली-मन्दिर में जाकर पूजा करती थीं और भगवती का महाप्रसाद रोहू-मछली लाकर स्वयं तलकर पति को सप्रेम जिमाती थीं। इन्हीं की प्रेरणा से महाराज ने

१. यहाँ यह स्मरणीय है कि इस भूमिहार-ब्राह्मण-राजवंश के स्वामी पहले 'राजा' ही कहे जाते थे। सन् १८३० ई० में ३० सितम्बर को भारत के वायसराय लॉर्ड विलियम बेंटिंक ने सर्वप्रथम 'महाराजा' की उपाधि से राजा आनन्दकिशोर सिंह को विभूषित और सम्मानित किया। अतः, इनके पूर्व के राजाओं की सहधर्मिणियाँ केवल 'रानी' कहलाती रहीं तथा इनके बाद की 'महारानियाँ'। इन्हीं के समय से 'महाराजा' की उपाधि परम्परा अन्त तक चलती रही।—ले०

राजधानी के रक्षार्थ चारों कोनों पर द्वार-देवियों की स्थापना करायी थी। महल के भीतर जो दुर्गा-मन्दिर था, जिसकी स्थापना इन्हीं की थी, उसमें भी ये नियमित रूप से नित्य पूजा करती थीं। बहुत स्थूलकाय होने से महाराज नाममात्र के शासक थे, ये ही सारा राज-काज सँभालती थीं। राज्य-भर में स्वयं दौरा करके प्रजा की दशा देखती और दीन-दुखियों को दान देती थीं। एक बार ये सुगौली-अंचल में दौरे पर गयीं। सन्ध्या समय अपने शिविर में लौट रही थीं। तत्कालीन जिला-अभियंता पी० सी० सिली की सवारी सामने से आ रही थी। इनकी पालकी के कहार और रक्षक घुड़सवार सड़क के एक किनारे हट गये। सिली उस युग का नामी अत्याचारी था। जनता पर उसका घोर आतंक था। पालकी के पास पहुँचते ही वह पालकी पर एक चाबुक फटकारता हुआ आगे बढ़ गया। इन्होंने तुरत घुड़सवार को महाराज के पास भेजा। इनका रोष सुनकर उन्होंने सिली की मरम्मत करने के लिए घुड़सवार छोड़े। उस उद्दण्ड गोरे की ऐसी दुर्गत हुई कि शर्म के मारे जिला छोड़ भागा। सन् १८९३ ई० में २६ मार्च को महाराज स्वर्ग सिधारे। इन्होंने स्वतन्त्र रूप से राज की बागडोर अपने हाथों में ली। प्रजा-कल्याण के लिए जनता के अभावों पर इनका ध्यान विशेष रहा। इन्होंने रामनगर, दावा और केसरिया में अस्पताल बनवाये तथा उनके सचालनार्थ निश्चित आर्थिक व्यवस्था भी कर दी। सन् १८९६ ई० में २८ मार्च को इनका देहान्त हुआ था। महारानी जानकी कुँअर महाराज हरेन्द्रकिशोर सिंह की दूसरी पत्नी थीं। पूर्वोक्त बड़ी महारानी के मरने पर २३ वर्ष की अवस्था में राज्याधिकारिणी हुईं। आप आनापुर के रायबहादुर सिद्धिनारायण सिंह की पुत्री और श्रीविन्ध्येश्वरीनारायण सिंह की बहन थीं। दान पुण्य में आपकी बड़ी अभिरुचि थी। प्रजा की शुभकामना में तन्मय रहने के कारण अँगरेज मैनेजर की मनमानी आप नहीं देख सकती थीं। गोरे अफसर अपने कुचक्र में आपका हस्तक्षेप पसन्द नहीं करते थे। उन दिनों चम्पारन में गोरों का बड़ा दबदबा था। उन लोगों ने षड्यंत्र रचकर डॉक्टरों से आपको पागल करार करा दिया। फलतः, जनवरी, सन् १९११ ई० से आप प्रयाग में रहने लगीं। अन्तिम क्षण तक तीर्थराज में ही रहीं। त्रिवेणी-सेवन और भगवद्भजन करते हुए आप २७ नवम्बर को सन् १९५४ ई० में दिवंगता हुईं। निष्ठापूर्वक धर्माचरण आपका स्वाभाविक गुण था। ससारिक प्रपञ्चों से सर्वथा विरक्त रहने के कारण आपने राज्य को पुनः हस्तगत करने का कभी कोई प्रयत्न नहीं किया।*

श्रीनगर (पूर्णिया) के राजपरिवार की महिलाएँ

श्रीशशिनाथ झा, व्याकरण-साहित्याचार्य; विद्यापति-विभाग, बि० रा० प०, पटना

श्रीनगर-राज्य की नींव महिलाओं ने दी थी। बनैली (पूर्णिया) के राजा दुलार सिंह के दोनों पुत्रों – राजा वेदानन्द सिंह और राजा रुद्रानन्द सिंह—में मतभेद होने से

---

* इस प्रामाणिक सामग्री के प्राप्त करने में सुपरिचित साहित्यसेवी श्रीमान् पं० गणेश चौबे (बँगरी, बिपराकोठी, चम्पारन) की सहायता सधन्यवाद स्वीकृत है।—सं०

बनैली-राज्य दो हिस्सों में बँट गया। तब भी गृह-कलह शान्त न हुआ। वह भारत के प्रथम स्वतन्त्रता-संग्राम का समय (सन् १८५७-५८ ई०) था। सर्वत्र अराजकता-सी छायी हुई थी। दैवी विधानवश राजा रुद्रसिंह का स्वर्गवास हो गया। पतिव्रता रानी ने भी पति का पदानुसरण किया। उत्तराधिकारी के रूप में छ वर्ष के अबोध राजकुमार श्रीनन्दसिंह बच रहे। कहते हैं, देवकुल पर विपत्ति आयी, तो दुर्गतिनाशिनी दुर्गा आ पहुँची थीं। यहाँ राजकुल पर जब विपत्ति आयी, तब स्वर्गीय राजा की तीन बहनें ही दुर्गतिनाशिनी दुर्गा बन गयीं। उन्होंने सदा के लिए बनैली छोड़ दिया। श्रीनन्दसिंह को गोद में लिये वे 'सौरा' नदी के पश्चिमी तट पर झोपड़ियाँ बनवाकर रहने लगीं। बालक को आँचल में छिपाये वे राजघराने की देवियाँ बड़ी सावधानता से एकमात्र कुलदीपक की रक्षा करती रहीं। सन् १८५८ ई० में महारानी विक्टोरिया का शासन आया, तो धीरे-धीरे देश में शान्ति स्थापित होने लगी। अनुकूल समय देख तीनों बहनों ने वहीं राजधानी की नींव डाल दी। देखते-देखते विशाल राजप्रासाद बन गया, सरोवर खुद गये, उद्यान लग गये। सुनसान वीरान भूमि गुलजार नगर बन गया। यह तीन राजकुमारियों के धैर्य और साहस का फल था। फिर, उसी बालक के नाम पर उन्होंने ही राजधानी का नामकरण 'श्रीनगर' किया। जिस बिरवे को तीनों बहनों ने आँसुओं से सींचा था, वह कालक्रम से महातरु हो चला। उसे अब दूसरे की छाया की आवश्यकता नहीं थी, दूसरे ही अब उसकी छाया में रहने लगे। तीनों बहनों ने युवक राजकुमार का विवाह और राज्याभिषेक करके अपने कर्त्तव्य की इति की।

राजा होने पर श्रीनन्दसिंह का ध्यान जब कभी अपने अतीत जीवन पर जाता, तब उनका माथा उन तीनों बहनों के चरणों पर अनायास झुक जाता। उन्होंने सोच-विचारकर अपनी इन तीनों वास्तविक माताओं के हाथों तीन विशाल शिव-मंदिर की स्थापना करायी—दो श्रीनगर में और एक नमहा (सहरसा) में, जो आज भी अपनी मूक भाषा में उपर्युक्त इतिहास का साक्ष्य दे रहे हैं। उन तीनों देवियों में दो का देहान्त श्रीनगर में और छोटी का काशी-वास करते हुए वहीं हुआ। छोटी बहन ने काशी में एक छात्रावास बनवाया था, जो श्रीनगर-कोठा कहलाता था और जिसमें संस्कृत-विद्यार्थी रहते थे। दुर्भाग्यवश, तीस वर्ष की आयु में ही उक्त राजा चल बसे। उनकी विधवा रानी जगरमा आँखों में आँसू समेटे राजकाज की देखभाल करने लगीं। आपने अल्पवयस्क राजकुमारों और राजकुमारियों की शिक्षा दीक्षा पर विशेष ध्यान दिया। इसी का सुफल था कि राष्ट्रभाषा हिन्दी को 'साहित्य सरोज' राजा कमलानन्द सिंह-सा वरद पुत्र प्राप्त हुआ। जबतक आपने राज चलाया, तबतक उसपर कोई आँच न आयी। अपने राजकुमार के सयाना होने पर आपने उन्हें रियासत सौंप दी। आप राजमाता कहलाती थीं, पर वस्तुतः आप प्रजा-माता थीं। अहर्निश आपको प्रजा के सुख-दुःख का ध्यान रहता था। सम्पूर्ण श्रीनगर का सुख-दुःख आपका अपना था। सब आपके थे और आप सबकी थीं। श्रीनगर मेरा ननिहाल है। बचपन से वहाँ जाता-आता था। आपके चरण-पल्लवों की शीतल छाया में खेलने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

आँखों देखा दृश्य आज भी सामने है। आप बड़ी धर्मपरायणा और उदारचरिता थीं। आपकी ड्योढ़ी से कोई दीन दुखिया खाली हाथ नहीं लौटता था। आज भी स्वर्गीय राजा कमलानन्द सिंह की पत्नी श्रीमती रानी सत्यप्रभा जी—कुमार श्रीगङ्गानन्द सिंह की माता—वंश-परम्परागत मर्यादा का पालन कर रही हैं। इनके द्वार से भी कोई गरीब दुखिया निराश नहीं लौटने पाता। इन्होंने राजद्वार के पास ही पर्याप्त भूमि देकर एक बुनियादी विद्यालय और एक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय की स्थापना की है। अबतक सरकारी सहायता उन्हें प्राप्त नहीं था, वे स्वयं ही उन दोनों संस्थाओं का व्यय-भार वहन करती रहीं। इन्होंने अपने उदात्त गुणों को अपनी पुत्रवधू श्रीमती सिद्धिप्रभा जी (कुमार साहब की पत्नी) में भी उतार दिया है, अतः उनके द्वार पर भी जो पहुँच जाता है, वह उनकी करुणा का अधिकारी होता है।

मकसूदपुर (गया) की रानी सुन्दर कुँअर

श्रीरामेश्वर सिंह 'नटवर'; चिरैली (गया)

इनका जन्म 'सिही' ग्राम (पटना) में, सन् १८५६ ई० में, एक गृहस्थ परिवार में हुआ था। इनकी कुशाग्रबुद्धि और अनिन्द्य सुन्दरता के बल पर इनका विवाह राजा रामेश्वरप्रसादनारायण सिंह से हुआ था। दिसम्बर, १९०२ ई० में पति के मरने पर इन्होंने स्वयं ही राज्य सँभाला। राजा ने मरते समय कुछ लोगों को जागीर दी थी; पर स्वार्थी कारिन्दों के कारण उनका कब्जा नहीं हो पाता था। इन्हें पता लगा, तो सन् १९०६ ई० में दानपत्र लिखकर प्रजा को हक दे दिया। किले के उत्तर-पूर्व स्थित नवरत्नमंदिर को उपेक्षित दशा में देख उसकी मरम्मत करवायी। किले के पूरब एक रंग-भवन और काली मंदिर बनवाया। रंग-भवन शायद बिहार में एक ही नृत्यशाला है। कालीजी की दिव्य मूर्त्ति भी मनोमुग्धकारिणी है। इन्हें साहित्य, कला और संगीत से बड़ा अनुराग था। इनके दरबार में श्रीरामेश शर्मा 'श्रीश' और प० शिवराम वैद्य कवि थे। टेकारी राज के दरबारी कवि बैजनाथ द्विवेदी भी यहाँ आते रहते थे। 'श्रीश' जी अच्छे गायक और सितारिया भी थे। कई विद्वान् पंडित और वैद्य तथा उस्ताद इनके आश्रित थे। गुणियों और कलावन्तों के सम्मान तथा प्रोत्साहन में इन्हें बड़ा सन्तोष मिलता था। इनकी दो कन्याएँ विवाहित थीं। गया में सन् १९१२ ई० में इनका देहान्त हुआ।

टेकारी (गया) और अमावाँ (पटना) की रानियाँ

टेकारी-राज्य नौ-सात आने हिस्से में बँट गया था। सात आने के हिस्से में रानी रामेश्वर कुँअर बहुत प्रसिद्ध हुईं। उनका जन्म 'सेवतर' (गया) में, सन् १८६० ई० में, हुआ था। उनके पिता का नाम श्रीकाशीप्रसाद सिंह और पति का श्रीनारायणप्रसाद सिंह तथा श्वशुर का राजा रणबहादुर सिंह था। राजकुमारी रतन कुँअरि के जन्म के बाद ही वे

विधवा हो गयीं। श्वशुर भी न रहे, राज्य का प्रबंध 'कोर्ट ऑफ् वार्ड' के जिम्मे दे दिया। कन्या का ब्याह सलीमगढ़ (गोरखपुर) के राजवंश में श्रीराजराजेश्वरीप्रसाद के साथ कर दिया, जिनकी सुपुत्री (अपनी दौहित्री) श्रीभुवनेश्वरी कुँअरि के नाम से अपने हिस्से का राज्य लिखकर अपने वास्ते कुछ इलाके रख लिये। फिर, टेकारी से चार मील दक्खिन पंचानपुर के निकट एक विस्तृत बाग लगाकर उसी में विशाल महल बनवाया, जो आज भी 'रामेश्वर बाग' प्रसिद्ध है। उसीमें एक पंचमंदिर बनवाया, जिसमें चार मंदिर पत्थर के हैं और एक संगमरमर का है। देव-पूजन के लिए देवोत्तर सम्पत्ति निकालकर ट्रस्ट कायम कर दिया। वे प्रतिदिन एक गाय और पाँच ब्राह्मणों को भोजन-दान देकर तथा एक रुपया, ग्यारह आने अलग जमा करके पाँच गरीब भुक्खड़ों को खिलाने के बाद ही अन्न-जल ग्रहण करती थीं। जमा रकम गरीब लड़कियों के ब्याह के लिए दे देती थीं। उन्होंने एक गोरक्षिणी गोशाला भी बनवायी थी, जिसका सब खर्च स्वयं देती थीं। गया के तूतीबाड़ी मुहल्ले में गरीब विद्यार्थियों के लिए एक छात्रावास बनवाया था, जिसमें निःशुल्क भोजन-दान की व्यवस्था थी। प्रतिक्षण धर्माचरण और परोपकार तथा ईश्वरोपासन ही उनका एकमात्र ध्येय और कर्त्तव्य था। उनकी उक्त नतनी श्रीभुवनेश्वरी कुँअरि का जन्म सन् १८९२ ई० में टेकारी में ही हुआ था।

इनकी नानी ने सात आने हिस्से का राज्य इन्हीं को लिख दिया था। इनकी शादी अमावाँ (पटना) के राजवंश में राजा बहादुर हरिहरप्रसादनारायण सिंह से हुई थी, जिन्हें ओ० बी० ई० की उपाधि मिली थी। रानी भुवनेश्वरी बहुत धर्मपरायणा और बुद्धिमती हैं। इन्होंने अपने बड़ेकुमार का ब्याह नौ आने हिस्सेवाले महाराजकुमार कैप्टन गोपालशरण सिंह की सुपुत्री से करके सोलहों आने राज्य की स्वामिनी होने का गौरव प्राप्त कर लिया। इनके पाँच पुत्र और पाँच पुत्रियाँ वर्त्तमान हैं। अमावाँ में इन्होंने एक सुन्दर पुस्तकालय बनवाया है। अयोध्या में इनके बनवाये विशाल मंदिर में सत्रह देवताओं की अतीव सुन्दर मूर्त्तियाँ है। उसे लोग भारतीय देव-देवी-प्रतिमाओं का अजायब-घर कहते हैं। उक्त श्रीगोपालशरण सिंह को उनके जीवन-भर बीस हजार रुपये मासिक देती रहीं। मसूरी, काशी और पटना में इन्होंने कोठियाँ बनवायी हैं। पाटलिपुत्र-कॉलोनी ३० (पटना-१०) में रहती हैं। साधु, सन्त, महात्मा, विद्वान् और धर्माचार्य का आतिथ्य सत्कार इनके यहाँ बराबर होता रहता है। बिहार के अवधवासी रामभक्त श्रीरूपकलाजी से इनकी अनन्य श्रद्धा थी। इनका प्रचलित नाम बच्चा साहिबा मालिके है। ये देश और समाज के हितार्थ गुप्तदान देती हैं, प्रचार और प्रसिद्धि नहीं चाहतीं।

यहाँ नौ आने हिस्से की पूर्व अधिकारिणी रानी विद्यावती कुँअर भी स्मरणीय हैं। इनका जन्म विक्रमाब्द १९६१ (सन् १९०३ ई०) में, उतरामाँ (खिजरसराय, गया) में, हुआ था। म० कु० कैप्टन गोपालशरण सिंह से इनकी शादी हुई थी। इन्होंने टेकारी में राज हाइ स्कूल बनवाया, जिसमें सभी छात्रों को निःशुल्क शिक्षा मिलती थी। वहाँ

नाम अस्पताल भी खोला, जिसमें सबको मुफ्त दवा बँटती थी। दोनों संस्थाएँ आज भी कायम हैं और इनके मकान ऐसे पुख्ते बने हैं कि देखते ही बनता है। विधवा होने के बाद लक्ष्मण झूला (ऋषिकेश) में तपोमय जीवन बिताती हैं।

देव (गया) की रानी श्रीमती व्रजकिशोरी [1] देवी

डॉक्टर भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'

मैंने अभी सच्चिदानन्द सिंह कॉलेज (औरंगाबाद, गया) का आचार्य-पदभार स्वीकार ही किया था और वहाँ की गतिविधि का अध्ययन कर ही रहा था कि यह पता चला कि कॉलेज की आर्थिक स्थिति बड़ी डगमग है और इसके सुधार के लिए तत्काल कोई व्यवस्था होनी चाहिए। पूज्य मालवीयजी महाराज के चरणप्रान्तों में मुझे रहने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है और उनसे बहुत सारी बातें मैंने जीवन में पायी और सीखी हैं। उनमें से मुख्यतम बात यह है कि जीवन के किसी भी क्षण में, किसी भी कारण से, मन मारकर बैठ नहीं जाना चाहिए। भगवान् का स्मरण करते हुए, अपनी उद्देश्य सिद्धि के लिए, सदा पुरुषार्थ करते रहना चाहिए। इसी आदर्श के सहारे मैं उठ खड़ा हुआ और देव-राज्य की छोटी रानी साहिबा की सेवा में उपस्थित हुआ। औरंगाबाद से देव लगभग ५, ६ मील दूर है। उस दिन एकादशी (रविवार) थी। मेरे हाथ में मेरी लिखी पुस्तक 'मीराँ की प्रेम साधना' थी। मैनेजर साहब के द्वारा मैंने वह पुस्तक रानी साहिबा को भेंट की। उन्होंने मुझे ऊपर बुलवाया, फलाहार करवाया और तब आने का कारण पूछा। मैंने बहुत ही थोड़े—परन्तु अतिशय नम्र—शब्दों में कॉलेज की आर्थिक स्थिति का वर्णन किया। पता नहीं क्या बात थी, निश्चय ही इसमें ईश्वर की कृपा का ही हाथ था और पूज्य मालवीयजी महाराज की प्रेरणा की शक्ति थी कि रानी साहिबा ने तुरत दस हजार रुपये वार्षिक आय की जमीन्दारी, कॉलेज के नाम से, लिख दी और उसका 'सेस' आदि भी उन्होंने अपने खजाने से देना स्वीकार कर लिया। वह भू-सम्पत्ति आज भी कॉलेज के उपयोग में है। यह घटना मुझे जीवन में कभी भूलेगी नहीं। प्राचीन काल में जब राजदरबारों में ब्राह्मण जाते थे, तब उन्हें मुँहमाँगा वरदान मिला करता था। परन्तु, आज के युग में यह घटना अपने आपमें शायद अनुपम है।

---

[1] श्रीरामेश्वर सिंह 'नटवर' ने आपका नाम 'रानी व्रजराजकुमारी' लिखा है। उन्होंने यह भी लिखा है कि आप राजा जगन्नाथबख्शसिंह की छोटी रानी हैं और आज भी देव के किले में रहती हैं। उन्हीं के लेखानुसार बड़ी रानी श्रीविश्वनाथकुमारी सरायकेला के महाराज आदित्यप्रतापसिंह देव की बहन थीं, जो सन् १९३९ ई० में १३ जून को दिवंगता हो गयीं और आप बुढ़ीबोर (पलामू) के श्रीराधाप्रसादसिंह की पुत्री हैं। आपका जन्म सं० १९५६ वि० में जेठ अमावस (बुधवार) को हुआ था। आप दोनों के विवाहोपरान्त आपके पति को सन् १९१८ ई० में १ जनवरी को 'राजा' की उपाधि मिली थी और उनका देहान्त सन् १९३४ ई० में १९ अप्रैल (वैशा० शु० ३, १९९१ वि०) को हुआ था।—सं०

हथुआ (सारन) की महारानी श्रीमती ज्ञानमंजरी देवी

श्रीदिगम्बर झा

आपको संस्कृत और हिन्दी का अच्छा ज्ञान था। आपके पतिदेव महाराज कृष्णप्रताप साही और सुपुत्र महाराज गुरुमहादेवाश्रमप्रसाद साही बड़े धर्मनिष्ठ और प्रजापालक थे। पति के निधन के बाद आपने ही अपने जीवन भर राज्य कार्य संचालन किया। आप राज्य की कार्यवाहियों पर केवल दृष्टि ही नहीं रखती थीं, बल्कि अफसरों और प्रबन्धकर्त्ताओं को यथोचित परामर्श भी देती थीं। आपके आदेशों का अक्षरशः पालन होना अनिवार्य था। जैसे सनातन हिन्दू-धर्म में आपकी अटूट श्रद्धा थी, वैसे ही अन्य धर्मों का भी आप पर्याप्त आदर करती थीं। आपने मस्जिद और गिरजाघर भी प्रजा के लिए बनवा दिया था। दीन-दुखियों के प्रति आपकी अत्यन्त प्रगाढ़ सहानुभूति थी। प्रति वर्ष आप गरीब लड़कियों की शादी अपने खर्च से अपने ही महल के आँगन में कराती थीं। कम-से-कम पचीस ऐसी शादियाँ हर साल काफी धूमधाम से होती थीं। यहाँतक कि विवाहित दम्पति के जीवन निर्वाह की भी यथोचित व्यवस्था कर देती थीं। यह परोपकार व्रत आपको बहुत ही प्रिय था। नारी-जाति के उत्थान और कल्याण के लिए मुक्तहस्त दान दिया करती थीं। 'लेडी डफरिन विक्टोरिया महिला-अस्पताल' (कलकत्ता) के भवन-निर्माण के लिए आपने पचास हजार रुपये दान दिये थे। छपरा, मुजफ्फरपुर और पटना में भी आपके बनवाये जनाना-अस्पताल आज भी नारी समाज की खुल सेवा कर रहे हैं। महारानी विक्टोरिया की स्वर्ण-जयन्ती के समय आपने डेढ़ लाख रुपये के खर्च से छपरा में विक्टोरिया-अस्पताल बनवाया था। आपकी उदारता और देखरेख के कारण ही हथुआ का राज-अस्पताल बिहार के राज-अस्पतालों में उत्तम कहा जाता था। आपने सार्वजनिक और सामयिक कार्यों के लिए सात लाख रुपये से अधिक दान दिये थे। सन् १६०२ ई० में आपको 'कैसरे हिन्द' का उपाधि पदक प्राप्त हुआ, तो प्रजा ने बड़े समारोह से आपको हिन्दी में अभिनन्दन पत्र अर्पित किया था। यद्यपि आप पर्दे में रहती थीं, तथापि प्रजा के लिए आप का द्वार हमेशा खुला रहता था। आपके सामने पहुँच जाने पर कोई प्रजा कभी हताश नहीं हो पाती थी। आपके सुपुत्र आपके परम अनुरक्त भक्त थे। उनकी मातृभक्ति ऐसी गहरी थी कि सारे राज्य का प्रबन्ध-भार राजमाता पर ही छोड़कर निश्चिन्त पूजापाठ किया करते थे। राजमाता का स्नेह भी उनपर अगाध था। अतः, आपका वात्सल्य भी राजघरानों के लिए आदर्श था।

सूर्यपुरा (शाहाबाद) की रानी श्रीमती शकुन्तला देवी

श्रीसुरेशकुमार श्रीवास्तव, अशोक प्रेस, पटना

आप मुजफ्फरपुर के रायबहादुर द्वारकानाथ की बहन थीं। आपका विवाह सूर्यपुरा के राजा राजराजेश्वरीप्रसाद सिंह से हुआ था। वे हिन्दी के रीतिकालीन कवियों की

राम-अस्पताल भी खोला, जिसमें सबको मुफ्त दवा बँटती थी। दोनों संस्थाएँ आज भी कायम हैं और उनके मकान ऐसे पुख्ते बने हैं कि देखते ही बनता है। विधवा होने के बाद लक्ष्मण-झूला (ऋषिकेश) में तपोमय जीवन बिताती हैं।

देव (गया) की रानी श्रीमती व्रजकिशोरी [1] देवी

डॉक्टर भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'

मैंने अभी सच्चिदानन्द सिंह कॉलेज (औरंगाबाद, गया) का प्राचार्य-पदभार स्वीकार ही किया था और वहाँ की गतिविधि का अध्ययन कर ही रहा था कि यह पता चला कि कॉलेज की आर्थिक स्थिति बड़ी डगमग है और इसके सुधार के लिए तत्काल कोई व्यवस्था होनी चाहिए। पूज्य मालवीयजी महाराज के चरणप्रान्तों में मुझे रहने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है और उनसे बहुत सारी बातें मैंने जीवन में पायी और सीखी हैं। उनमें से मुख्यतम बात यह है कि जीवन के किसी भी क्षण में, किसी भी कारण से, मन मारकर बैठ नहीं जाना चाहिए। भगवान् का स्मरण करते हुए, अपनी उद्देश्य सिद्धि के लिए, सदा पुरुषार्थ करते रहना चाहिए। इसी आदर्श के सहारे मैं उठ खड़ा हुआ और देव-राज्य की छोटी रानी साहिबा की सेवा में उपस्थित हुआ। औरंगाबाद से देव लगभग ५, ६ मील दूर है। उस दिन एकादशी (रविवार) थी। मेरे हाथ में मेरी लिखी पुस्तक 'मीरों की प्रेम साधना' थी। मैनेजर साहब के द्वारा मैंने वह पुस्तक रानी साहिबा को भेंट की। उन्होंने मुझे ऊपर बुलवाया, फलाहार करवाया और तब आने का कारण पूछा। मैंने बहुत ही थोड़े—परन्तु अतिशय नम्र—शब्दों में कॉलेज की आर्थिक स्थिति का वर्णन किया। पता नहीं क्या बात थी, निश्चय ही इसमें ईश्वर की कृपा का ही हाथ था और पूज्य मालवीयजी महाराज की प्रेरणा की शक्ति थी कि रानी साहिबा ने तुरत दस हजार रुपये वार्षिक आय की जमीन्दारी, कॉलेज के नाम से, लिख दी और उसका 'सेस' आदि भी उन्होंने अपने खजाने से देना स्वीकार कर लिया। वह भू सम्पत्ति आज भी कॉलेज के उपयोग में है। यह घटना मुझे जीवन में कभी भूलेगी नहीं। प्राचीन काल में जब राजदरबारों में ब्राह्मण जाते थे, तब उन्हें मुँहमाँगा वरदान मिला करता था। परन्तु, आज के युग में यह घटना अपने आपमें शायद अनुपम है।

---

[1] श्रीरामेश्वर सिंह 'नश्वर' ने आपका नाम 'रानी ब्रजराजकुमारी' लिखा है। उन्होंने यह भी लिखा है कि आप राजा जगन्नाथबक्शसिंह की छोटी रानी हैं और आज भी देव के किले में रहती हैं। उन्हीं के लेखानुसार बड़ी रानी श्रीविश्वनाथकुमारी सरायकेला के महाराज आदित्यप्रतापसिंह देव की बहन थीं, जो सन् १९३१ ई० में २३ जून को दिवंगता हो गयीं और आप बुढ़ाबीर (पलामू) के श्रीराधाप्रसादसिंह की पुत्री हैं। आपका जन्म सं० १९५६ वि० में जेठ-अमावस (गुरुवार) को हुआ था। आप दोनों के विवाहोपरान्त आपके पति को सन् १९१८ ई० में १ जनवरी को 'राजा' की उपाधि मिली थी और उनका देहान्त सन् १९३४ ई० में १६ अप्रैल (बैशा० शु० ३, १९९१ वि०) को हुआ था।—सं०

हथुआ (सारन) की महारानी श्रीमती ज्ञानमंजरी देवी

श्रीदिगम्बर झा

आपको संस्कृत और हिन्दी का अच्छा ज्ञान था। आपके पतिदेव महाराज कृष्णप्रताप साही और सुपुत्र महाराज गुरुमहादेवाश्रमप्रसाद साही बड़े धर्मनिष्ठ और प्रजापालक थे। पति के निधन के बाद आपने ही अपने जीवन-भर राज्य-कार्य सचालन किया। आप राज्य की कार्यवाहियों पर केवल दृष्टि ही नहीं रखती थीं, बल्कि अफसरों और प्रबन्धकर्त्ताओं को यथोचित परामर्श भी देती थीं। आपके आदेशों का अक्षरशः पालन होना अनिवार्य था। जैसे सनातन हिन्दू-धर्म में आपकी अटूट श्रद्धा थी, वैसे ही अन्य धर्मों का भी आप पर्याप्त आदर करती थीं। आपने मस्जिद और गिरजाघर भी प्रजा के लिए बनवा दिया था। दीन-दुखियों के प्रति आपकी अत्यन्त प्रगाढ सहानुभूति थी। प्रति वर्ष आप गरीब लड़कियों की शादी अपने खर्च से अपने ही महल के आँगन में कराती थीं। कम-से-कम पचीस ऐसी शादियाँ हर साल काफी धूमधाम से होती थीं। यहाँतक कि विवाहित दम्पति के जीवन निर्वाह की भी यथोचित व्यवस्था कर देती थीं। यह परोपकार व्रत आपको बहुत ही प्रिय था। नारी-जाति के उत्थान और कल्याण के लिए मुक्तहस्त दान दिया करती थीं। 'लेडी डफरिन विक्टोरिया महिला-अस्पताल' (कलकत्ता) के भवन-निर्माण के लिए आपने पचास हजार रुपये दान दिये थे। छपरा, मुजफ्फरपुर और पटना में भी आपके बनवाये जनाना-अस्पताल आज भी नारी समाज की स्तुत्य सेवा कर रहे हैं। महारानी विक्टोरिया की स्वर्ण-जयन्ती के समय आपने डेढ लाख रुपये के खर्च से छपरा में विक्टोरिया-अस्पताल बनवाया था। आपकी उदारता और देखरेख के कारण ही हथुआ का राज-अस्पताल बिहार के राज-अस्पतालों में उत्तम कहा जाता था। आपने सार्वजनिक और सामयिक कार्यों के लिए सात लाख रुपये से अधिक दान दिये थे। सन् १६०२ ई० में आपको 'कैसरे हिन्द' का उपाधि पदक प्राप्त हुआ, तो प्रजा ने बड़े समारोह से आपको हिन्दी में अभिनन्दन पत्र अर्पित किया था। यद्यपि आप पर्दे में रहती थीं, तथापि प्रजा के लिए आप का द्वार हमेशा खुला रहता था। आपके सामने पहुँच जाने पर कोई प्रजा कभी हताश नहीं हो पायी थी। आपके सुपुत्र आपके परम अनुरक्त भक्त थे। उनकी मातृभक्ति ऐसी गहरी थी कि सारे राज्य का प्रबन्ध-भार राजमाता पर ही छोड़कर निश्चिन्त पूजापाठ किया करते थे। राजमाता का स्नेह भी उनपर अगाध था। अतः, आपका वात्सल्य भी राज-घरानों के लिए आदर्श था।

सूर्यपुरा (शाहाबाद) की रानी श्रीमती शकुन्तला देवी

श्रीसुरेशकुमार श्रीवास्तव; अशोक प्रेस, पटना

आप मुजफ्फरपुर के रायबहादुर द्वारकानाथ की बहन थीं। आपका विवाह सूर्यपुरा के राजा 'राजराजेश्वरीप्रसाद सिंह से हुआ था। वे हिन्दी के रीतिकालीन कवियों की

परम्परा में उच्च कोटि के कवि थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर से उनकी घनिष्ठ मैत्री थी। उनका देहान्त युवावस्था में ही हो गया। पति की मृत्यु के बाद आपने बड़ी कुशलता से रियासत को सँभाला। रैयतों पर आप न्याय और से खयाल रखती थीं। नौकरों और कारिन्दों पर आपका मातृवत् स्नेह रहता था। आरा के नागरिकों के जल कष्ट का हाल सुनने पर आपने ही अपने पतिदेव को उत्प्रेरित करके डेढ़ लाख रुपये दिलवाये थे जिनसे नगर में सरकार ने जल-कल लगाने की व्यवस्था की थी। अपने दोनों राजकुमारों की शिक्षा-दीक्षा का आपने उत्तमोत्तम प्रबन्ध किया। आपके ही स्नेहमिश्र अनुशासन में दोनों का ऐसा विकास हुआ कि आपके जीवन काल में ही वे परम प्रसिद्ध और यशस्वी हो गये।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध कथाकार राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह आपके ज्येष्ठ पुत्र हैं। आपके द्वितीय पुत्र कुमार सर राजीवरजनप्रसाद सिंह (बिहार-विधानपरिषद् के भूतपूर्व अध्यक्ष) अब नहीं हैं। इन दोनों भाइयों में राम-लक्ष्मण-सा प्रेम आपकी ही प्रेरणा से था। इन दोनों की सारी योग्यताएँ और सफलताएँ आपके ही प्रबन्ध-कौशल और उपदेश की देन थीं। अपने उक्त भाई के साथ आपने चारों धाम की तीर्थयात्रा की थी और बदरीनाथ धाम के रास्ते में एक धर्मशाला बनवा दी थी, जहाँ आज भी उस बीहड़ रास्ते में यात्रियों को विश्राम मिलता है। आपकी छोटी पतोहू श्रीमती केशवनन्दिनी सिंह ने आपकी पुण्य-स्मृति में 'शकुन्तला-मिडिल-इंगलिश-स्कूल' (सूर्यपुरा) की स्थापना की है, जो काफी अच्छी हालत में चल रहा है। आपने भी अपने पति की स्मृति में 'राजराजेश्वरी-हाइ स्कूल' खोला था और उसका विस्तृत भव्य भवन भी बनवा दिया था, जो आज उस जिले का एक आदर्श विद्यालय माना जाता है।

बनैली-राज्य (पूर्णिया) की राजमहिषियाँ

श्रीजयगोविन्द सिंह; चम्पानगर-ड्योढ़ी (पूर्णिया)

बिहार के राजघरानों में बनैली का एक प्रमुख स्थान है। इसकी दानशीलता तथा परोपकारिता बेजोड़ मानी जाती है। 'तुम्बा भर दो चाँदी से' वाली प्रसिद्ध कहानी, इसी राज्य की दानशीलता की विमल कीर्त्ति गाथा कहती है। आदि से अन्त तक, यहाँ के राजाओं तथा रानियों के सत्कर्म एवं सद्धर्म लोक-विश्रुत रहे। आज भी इस राज्य की जनता इसे श्रद्धा एवं सम्मान से देखती है तथा सम्बन्ध विच्छेद हो जाने के कारण दुःख का अनुभव करती है। इस राज्य के विस्तार का प्रमुख श्रेय राजा वेदानन्द सिंहजी को है, जिनकी रानी से 'कलिकर्ण' दानवीर राजा लीलानन्द सिंहजी का जन्म सन् १८१७ ई० में हुआ था। उनका प्रथम विवाह सन् १८३२ ई० में और चतुर्थ विवाह सन् १८७८ ई० में रपाद की उच्चकुलशीला श्रीमती सीतावती देवी से हुआ। रानी सीतावती के दो पुत्ररत्न राजाबहादुर कलानन्द सिंह और रा० ब० कीर्त्यानन्द सिंह भी अपनी दानशीला माता के

समान ही दानधर्मपरायण थे। आप ऐसी बुद्धिमती और कार्यकुशला थीं कि पति के निधन के बाद दोनों राजकुमारों की शिक्षा-दीक्षा की सुव्यवस्था करने के सिवा राज्य-शासन में भी आपने अपूर्व प्रबन्ध-कौशल का परिचय दिया। राजधानी में ठाकुरवाड़ी, शिवालय, देवी-मन्दिर, काली-मन्दिर तथा गंगासागर आदि पुष्करिणियों का निर्माण करवाया। यह गंगासागर उत्तरी क्षेत्र के धर्मप्राण लोगों के लिए प्रसिद्ध तीर्थ बन गया है। माघी पूर्णिमा और सूर्य-चन्द्र-ग्रहणों के समय यहाँ भारी मेला लगता है, जिसमें नेपाल तराई तक के लोग आते हैं। आपकी ठाकुरबारी (श्रीराधाकृष्ण-मन्दिर) अब बिहार-सरकार के प्रबन्ध में है, जिसमें वंश परम्परा के अनुसार आपके सुपौत्र राजकुमार श्यामानन्द सिंहजी सेवायत हैं। इनके प्रबन्ध से प्रति दिन संध्या समय वहाँ हरि-कीर्त्तन हुआ करता है, जिसमें ये भी नित्य पधारते और स्वयं संकीर्त्तन करते हैं; क्योंकि ये अत्यन्त प्रसिद्ध संगीताचार्य और कलाविद् हैं। अब इन्हीं के उत्साह के फलस्वरूप यहाँ का विजयादशमी मेला बिहार के मेलों में प्रसिद्ध गिना जाता है। रानी साहिबा ने आसनसोल (बंगाल) में भी एक काली-मन्दिर बनवाया है।

आपके सुपुत्र राजा कलानन्द सिंह की धर्मपत्नी रानी कलावती ने भी गढ़ बनैली में 'कलानन्द-विद्यालय' और एक सार्वजनिक दातव्य औषधालय तथा बनगाँव (सहरसा) में 'कलावती-उच्च माध्यमिक विद्यालय' की स्थापना की है।

आपके दूसरे सुपुत्र राजाबहादुर कीर्त्यानन्द सिंह भारत-प्रसिद्ध शिकारी और साहित्यानुरागी थे, जिनकी राजमहिषी श्रीमती रानी प्रभावती देवी की दानशीलता से अनेक लोकोपकारी कार्य हुए हैं और आज भी होते रहते हैं। आपसे ही उत्प्रेरित होकर राजा-बहादुर ने भागलपुर के तेजनारायण-बनैली-कॉलेज के लिए अपनी जमीन्दारी के बहुत बड़े भाग के साथ साथ लाखों रुपये अनुदान दिये थे। आपने इलाहाबाद के एक अस्पताल को नेत्र-चिकित्सा के लिए कई हजार रुपये दिये हैं। स्थानीय माध्यमिक विद्यालय को एक हजार और पटना मेडिकल-कॉलेज को एक-डेढ़ लाख का दान दिया है। बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के भवन-निर्माण के लिए आपने ही सर्वप्रथम दस हजार रुपये दिये थे। बक्सर (शाहाबाद) के 'महर्षि विश्वामित्र-महाविद्यालय' के लिए महात्मा खाकी बाबा को पाँच-छः हजार रुपये का दान दिया है। साधु-महात्माओं, दीन-दुखियों और असहाय विधवाओं के लिए आप बराबर दान देती रहती हैं। भूखे नंगे अन्न-वस्त्र और गुणी-गायक अभीष्ट वस्तु पाकर आज भी आपकी जय मनाते रहते हैं। उत्तराखंड की यात्रा के समय गंगोत्तरी में आपने अपनी बड़ी पुत्री स्व० गंगादेवी की स्मृति में एक धर्मशाला बनवा दी है और केदारनाथ में भी आपने एक धर्मशाला बनवायी है।

आप भारतीय संस्कृति और प्राचीन पवित्र परम्परा की बड़ी अनुरागिणी हैं। धार्मिक ग्रन्थपाठ में विशेष अभिरुचि है और विद्वान् पंडितों द्वारा पौराणिक तथा शास्त्रीय सद्ग्रन्थों को सतत सुना करती हैं। आपने भारत के सभी प्रमुख तीर्थों का दर्शन किया है। सन् १९४४ ई० में प्रयाग के सन्त श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी ने अखिलभारतीय संकीर्त्तन-महामण्डल

का आयोजन किया था, जिसमें आपने कुमार श्यामानन्द सिंह के तत्वावधान में बिहार की अनेक कीर्तन-मण्डलियों को अपने खर्च से रोका था और स्वयं भी वहाँ जाकर भक्तों के सत्कार में हजारों रुपये लगाये थे। अब आप अधिकतर तीर्थराज में ही रहा करती हैं और जन्माष्टमी, दशहरा आदि के समय राजधानी में आती हैं। आपके ज्येष्ठ पुत्र उक्त कुमार साहब भी आपकी प्रेरणा से सदैव सत्कर्म-रत रहते हैं। आज भी इनका दरबार गुणवन्त कलावन्तों और साधु-सन्तों से कभी रिक्त नहीं रहता। यह रानी प्रभावतीजी के ही सदुपदेश का फल है कि ये इस युग में भी धर्म के प्रति श्रद्धालु और भारतीय सभ्यता के प्रति पूर्ण निष्ठावान् बने हुए हैं।

●●●

भ्रम-संशोधन

१. पृष्ठ-संख्या २९८ में 'पुनर्जागरण की वेला में नारी' शीर्षक लेख की लेखिका श्रीमती मनोरमा श्रीवास्तव के नाम के साथ बी० ए० उपाधि भ्रमवश मुद्रित हो गयी है।

२. पृष्ठ-संख्या ३४० में 'तीन भगवद्भक्त महिलाएँ' के लेखक श्रीसीतारामशरण रघुनाथप्रसाद 'प्रेमकमल' के स्थान पर श्रीसीतारामशरण रघुनाथप्रसाद 'प्रेमकला' होना चाहिए।

३. पृष्ठ-संख्या ३०८ में श्रीसच्चिदानन्द प्रसाद के 'स्वतन्त्रता-संग्राम में बिहार की महिलाएँ' शीर्षक लेख की पाद टिप्पणी में 'फाइट फॉर फ्रीडम' की जगह 'फ्रीडम मूवमेंट इन बिहार' होना चाहिए और उन्होंने इस पुस्तक से ही अनुवाद न करके अन्य कई अँगरेजी पुस्तकों से भी सामग्री सकलित करके अनुवाद किया है। वे अनुवादक के साथ संकलयिता भी हैं।

—सम्पादक